पौष सं. १९८१
जनवरी स. १९२५

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-सचित्र-मासिक-पत्र ।

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ मातृभूमिका शत्रु .... पृष्ठ १

२ एकताका पाठ २

३ वीर्य और आनंद १७

४ ऋषियोंकी शिक्षा पद्धति २०

५ सत्य २६

६ एतरेय ब्राह्मण २९

वैदिक धर्मका शतावदी अंक।
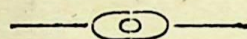
अगला अंक ही शताब्दी अंक होगा।

शीघ्र ग्राहक बन जाईये और यह अंक विनामूल्य प्राप्त कीजिये।

वैदिक धर्मके पिछले अंक।

क्रमांक २३, २४, २६ से ४४, ४६ से ६०, तक सब अंक की थोडी प्रतियां हैं। जो लेना चाहते हैं शीघ्र लिखें।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वर्ष ६
अंक १
क्रमांक
६१

पौष
सं० १९८१
जनवरी
स० १९२४

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मातृभूमिका शत्रु ।

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभि दासान्मनसा यो वधेन । तं नो भूमे रंधय पूर्वकृत्वरि ॥

अथर्व १२ । १ । १४

हे (पृथिवि) मातृभूमे ! जो हमारा (द्वेषत्) द्वेष करेगा, (यः पृतन्यात्) जो हमारे ऊपर सैन्य स हमला करेगा, जो मनसे (अभि दासात्) हमें दास बनानेका संकल्प करेगा, और जो हमारा वध करनेका यत्न करेगा, हे (पूर्वकृत्वरि भूमे) अपूर्व उत्साह देनेवाली मातृभूमि ! तू उसका (रंधय) नाश कर ।

मातृभूमिका शत्रु वह है कि जो देशके सपुत्रोंका द्वेष करता है, उनपर सैन्य से हमला चढाता है, मनसे उनको दास बनानेके ढंग सोचता है, और जो विविध शस्त्रास्त्रोंसे उनका संहार करता है । हर एक को उचित है कि वह इन शत्रुओंका नाश करे ॥
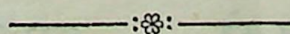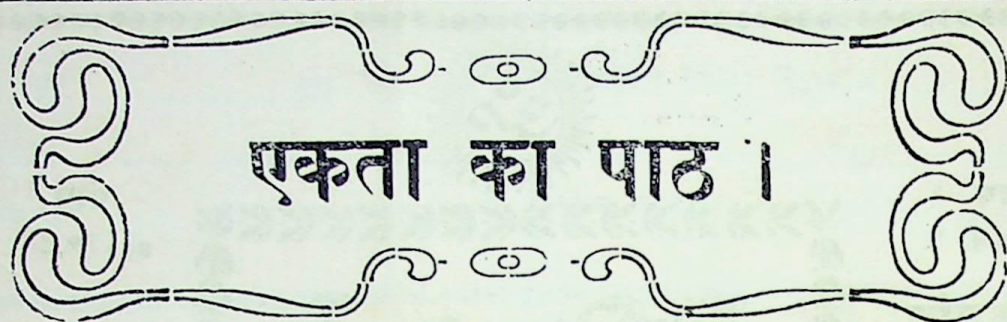
एकता का पाठ ।

महाभारत और महायुद्ध ।

महाभारत में मुख्य कथा कौरव पांडवोंके आपस के भयानक घोर युद्ध की है। यहां तक इस घोर युद्ध का परिणाम हुआ है कि, समय समय पर विनोद से " महाभारत " शब्द " महा यद्ध " के स्थान पर भी प्रयुक्त किया जात है ! इतना होनेपर भी महाभारत म जैसा " एकताका पाठ " दिया है, वैसा किसी अन्य पुस्तकमें नहीं है, यह बात हरएक महाभारतका पाठक जानता ही है।

महाभारतमें कौरव पांडवोंकी आपस की फूट का वर्णन है, परंतु उस फूट के मिषसे " एकता का पाठ " व्यास मुनिने पाठकों को पढाया है । वेदमें कहा है कि—

> मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा । सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ अथर्व. ३-३०-३

" (१) भाई भाई का द्वेष न करे, (२) बहिन बहिनसे न झगडा करे, (३) तुम मिल जुलकर, एक कार्यमें रते होकर, कल्याण पूर्ण भावनासे आपसमें भाषण करो। "

यह वेदकी शिक्षा कौरव पांडवोंके आपसके व्यवहारमें नहीं रही, इस कारण भारतीय महायुद्धका कठोर प्रसंग उत्पन्न हुआ। यह युद्धका प्रसंग देखनेसेभी पाठकोंके मनमें यहा बात जम जाती है कि, यदि ये भाई भाई आपसमें न लडते, तो ही उनका अधिक कल्याण हो जाता। अर्थात्, "आपसके झगडोंसे आपसकी एकता ही अच्छी है । "

महायुद्धका परिणाम।

कौरव पांडवोंके महायुद्ध का परिणाम देखनेसे भी यही बोध मिलता है। कौरवोंका तो समूल उच्छेद ही हुआ, और यद्यापि देखनेके लिये पांडवों का विजय हुआ, तथापि इस विजयसे पांडवों का किसी प्रकार भी लाभ नहीं हुआ। यह विजयभी एक प्रकार का दुःख कारक ही पांडवोंके लिये हुआ, इस में संदेह ही नहीं है ।

सम्राट् युधिष्ठिर तो अततक शोक ही शोक करता रहा, अर्जुन ने इसके पश्चात् कोई विशेष पराक्रम भी नहीं किया और भीम की शक्ति भी क्षीणता को ही प्राप्त होती गई। यहां तक अवस्था पहुंच गइ थी की, अंतम अर्जुन का पराजय चोरोंके द्वारा हुआ और उस कारण स्त्रियों काभी अपमान हुआ। इधर यादव भी आपस की फूटसे और मद्य के व्यसनसे नष्ट भ्रष्ट होगये और अर्जुन के दिग्विजयके कारण किसी प्रकार भी आर्य साम्राज्यका सुख बढा नहीं!

इस भारताय महायुद्ध के कारण भारत वर्ष - लाखों शूर वीर मृत्युके वशमें चले जानेके कारण यह भूमि प्रायः क्षात्र तेजसे विहीन होगई और विदेशी लोगों के लिये यहां प्रवेश सुकर होगया। यह सब घोर परिणाम हम इस समय तक भोग रहे हैं। महायुद्ध का परिणाम वीर अर्जुन जानताही था, इसीलिये वह युद्ध के प्रारम्भमें श्री कृष्ण चंद्र जीसे कहता है कि-

> न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥ तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्तराष्ट्रान् स्वबांधवान्। स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव। ३७ यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहत चेतसः।कुलक्षयकृतंदोषं मित्रद्रोहेच पातकं॥३८॥ कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापाद स्मान्निवर्तितुम्। कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन। ॥३९॥ कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥ अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः। स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः४१ संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥ ४२ ॥ भ. गीता.अ. १

(१) स्वजनोंको युद्धमें मार कर कल्याण नहीं देख पडता, (२) इसलिये हमें अपने ही बांधव कौरवोंको मारना उचित नहीं है। हे माधव ! स्वजनोंको मारकर हम सुखी क्यों कर होंगे ? (३) लोभसे जिनकी बुद्धि नष्ट हुई है, उन्हें कुलके क्षयसे होने वाला दोष और मित्रदोहका पातक यद्यपि दिखाइ नहीं देता, तथापि हे जनार्दन ! कुलक्षय का दोष हमें स्पष्ट देख पडता है, अतः इस पापसे पराङ्मुख होने का विचार हमारे मनमें आयेविना कैसे रहेगा ? (४) कुलका क्षय होनेसे सनातन कुलधर्म नष्ट होते हैं और इसकारण संपूर्ण कुलही अधर्ममें पतित होता है,(५) अधर्म बढ जाने से कुलस्त्रियां बिगडती हैं, (६) स्त्रियां बिगड जानेसे वर्ण संकर होजाता है और संकर होनेसे वह कुलघातक को और कुलको नरकमें लेजाता है। ”

इस रीतिसे युद्धके दोषोंका और राष्ट्र

पर होनेवाले घोर स्थायी परिणामोंका वर्णन वीर अर्जुन कर रहा है। हरएक महायुद्धसे इसी प्रकार कठोर परिणाम होते हैं। तरुण और कर्मकुशल पुरुषार्थी वीर युद्धमें मर जाते हैं और राष्ट्र में केवल बालक, बुड्ढे, और स्त्रियां रह जाती है। तरुणोंका नाश होनेसे तरुणी जवान स्त्रियों का प्रवृत्ति दुराचार में होजाना स्वाभाविक ही है। आचारभ्रष्ट स्त्रियोंसे जो संतति होजाजी है, वह व्यभिचारसे दुष्ट होनेके कारण शील युक्त और उच्च भावयुक्त नहीं हो सकती, इसलिये महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्रका अधःपात होजाता है। राष्ट्रका शील,सदाचार और वीर्य नष्ट होता है। राष्ट्र हित की दृष्टिसे यह भयानक आर अतिघोर अधःपात है। यह इतिहासिक सत्य वीर अर्जुन के शब्दोंमें ऊपर बताया है।

महाभारतीय युद्ध होनेके पूर्व कालमें जो वीर्य, उत्साह और पराक्रम की शक्ति आर्य क्षत्रियोंमें थी, वह पश्चात् के कालमें नहीं रही, इसका कारण उक्त वर्णन म ही पाठक देख सकते हैं। इतना घोर अनर्थ परिणामी युद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णभगवान् जैसे अद्वितीय पूर्ण पुरुष अर्जुन को प्रेरित करते हैं,क्यों कि उस समय यह महायुद्ध अपरिहार्य सा हुआ था। अधर्म इतना बढ गयाथा कि, उसका परिणाम युद्धमें होना स्वाभाविक ही था। तात्पर्य यह कि,महायुद्ध अपरिहार्य हो अथवा कैसा भी हो, परंतु उसका घोर परिणाम जनता को कई शताब्दीयोंतक भोगना ही पडता है। इसलिये श्रेष्ठ सज्जन जहांतक बन सके वहांतक युद्ध करनेसे पीछेही हटते हैं। महामना युधिष्ठिर, योगेश्वर श्रीकृष्ण आदि सत्पुरुषों ने पूर्वोक्त भारतीय युद्ध न करनेके लिये अपनी तरफसे पराकाष्ठा तक यत्न किया था, परंतु दुर्योधन की उद्दंडता के कारण युद्ध करनाही आवश्यक हुआ। इत्यादि वर्णन महाभारत में पाठक पढेंगे, तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि, युद्ध का वर्णन करतेहुए भी व्यासदेव जी की परम शुद्ध बुद्धिने युद्धसे निवृत्त होने का ही उपदेश महाभारतमें किया है।

अर्थात् महाभारतका लेखन युद्धों को बढानेके लिये नहीं हुआ,परंतु महायुद्धका घोर परिणाम दिखलाकर जनता को युद्ध से निवृत्त करनेके लियेही हुआ है। इसके साधक कथाप्रसंग महाभारतम कई हैं, उनका थोडासा वर्णन यहां करना है-

आपस में झगडनेवाले दो भाई।

महाभारत आदिपर्व अ. २९ में यह निम्न लिखित कथा आगई है उसका संक्षिप्त तात्पर्य यह है—

" एक अतिक्रोधी महर्षि विभावसु था और उसका तपस्वी भाई सुप्रतीक था। सुप्रतीक छोटा भाई और विभा-

वसु बडा भाई था। छोटे भाईकी इच्छा थी कि, पैत्रिक धन एकत्र न रहे, इसलिये वह वारंवार संपत्ति बांटनेकी बात बडे भाईसे कहता था। परंतु बडा भाई अच्छा समझदार था, वह एकतासे रहनेमें लाभ है, यह बात जानता था। इसलिये वह वारंवार छोटे भाईको निम्न लिखित रीतिके अनुसार समझाता था—

> विभागं बहवो मोहात्कर्तुमिच्छन्ति नित्यशः। ततो विभक्तास्त्वन्योऽन्यं विक्रुध्यन्तोऽर्थमोहिताः ॥ १८ ॥
> ततः स्वार्थपरान्मूढान्पृथग्भूतान्स्वकैर्धनैः। विदित्वा भेदयन्त्येतानमित्रा मित्ररूपिणः॥ १९ ॥ विदित्वा चापरे भिन्नानन्तरेषु पतन्त्यथ।भिन्नानामतुलो नाशः क्षिप्रमेव प्रवर्तते ॥ २० ॥
> तस्माद्विभागं भ्रातॄणां न प्रशंसंति साधवः। गुरुशास्त्रे निबद्धानामन्योन्येनाभिशंकिनाम् ॥ २१ ॥ नियन्तुं न हि शक्यस्त्वं भेदतो धनमिच्छसि ॥ २२ ॥
>
> म. भारत, आदि. अ. २९

" भाई! बहुतेरे मनुष्य मूढ बनकर पैत्रिक धन बंटवाना चाहते हैं, परंतु बंट जाते ही धन प्राप्त होनेके बाद, धनके लोभसे मोहित हो कर आपस में झगडा करते हैं। स्वार्थी और अज्ञानी भाईयोंके अपना अपना धनका भाग ले कर अलग होते ही शत्रुलोग, अपने आपको मित्र और हितकारी बनाकर,उन भाइयोंके अंदर बडा विद्वेष खडा कर देते हैं। आगे जब उन भाइयोंमें शत्रुता बढजाती है, तब वेही शत्रु उनकेही दोष निकालने लगते हैं। इससे उन भाईयोंका पूर्ण नाश हो जाता है। इसी कारण साधुलोक गुरु और शास्त्रोंकी आज्ञा न माननेवाले और आपसमें लडने वाले भाइयोंके अलग होनेकी प्रशंसा कभी नहीं करते। इसलिये हे भाई! तुम अपने ही भाईसे बिगड कर धनकी अभिलाषा कर रहे हो," यह ठीक नहीं है।

यह उपदेश कितना अच्छा है। प्रत्येक स्थानके भाईयोंको यह सदा सर्वदा ध्यानमें रखना योग्य है। आज कल अदालतोंमें झगडनेवाले और वकीलोंके पेट में हाजम होनेवाले भाईयोंने यह उपदेश अपने हृदयोंमें सुवर्णाक्षरोंसे अंकित करना चाहिये। वेदमें—

> मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत् ॥
>
> अथ. ३।३०।३

"भाई भाईसे द्वेष न करे," यह जो उपदेश दिया है, वह पाठकोंके मन में सुदृढ करनेके उद्देश्यसेही यह कथा महाभारतमें रखी है। अस्तु।

आपसके झगडनेका परिणाम।

उक्त प्रकार आपसमें झगडनेवाले

पूर्वोक्त तपस्वी भाई आपसके द्वेषके कारण दूसरे जन्ममें पशु बन गये। छोटा भाई बडाभारी हाथी बना और बडा भाई कछुआ बना। कश्यपाश्रमके निकटके सरोवरमें दोनों बडे लडते रहे! पश्चात् दोनों लडनेवाले भाईयोंको खाकर हजम करनेवाला तीसरा ही गरुड वहां आया, और उसने—

नखेन गजमेकेन कूर्ममेकेन चाक्षिपत्। समुत्पपात चाकाशं तत उच्चैर्विहंगमः ॥ ३८॥
म.भा.आदि.अ.२९

"आगे अतिवेगवान गरुड पक्षी अपने एक नखसे हाथी और दूसरे नखसे कछुएको लेकर आकाशमें उडगये।" पश्चात्—

ततस्तस्य गिरेः शृंगमास्थाय स खगोत्तमः। भक्षयामास गरुडस्तावुभौ गजकच्छपौ ॥३०॥म.भा.आदि.अ.३०

"अनंतर पक्षीराज गरुड पहाडकी चोटीपर बैठकर हाथी और कछुआ इन दोनोंको खा गया।" इस रीतिसे आपस में झगडा करनेवाले दोनों भाई तीसरे के ही पेटमें चले गये!!! आपस के झगडे का यह परिणाम है!!

यद्यपि भगवान् व्यास देवजीने यह कथा "हाथी और कछुवे" के नामोंसे लिखी है, तथापि उसकी सत्यता मानवी समाजमें भी सत्य है। इस कथाको पढने से निम्न लिखित बातें ध्यानमें आजाती हैं—

(१) दो तपस्वी भाई आपसमें धनके लोभसे झगड रहे थे।
(२) अंतमें वे पशु बन गये, और पश्चात्—
(३) वे दोनों तीसरेके पेटमें चले गये।

आपसमें झगडा करनेवाले भाईयोंका यही परिणाम होता है। देखिये—

(१) दो भाई पैत्रिक धनके कारण आपसमें झगडते हैं—
(२) कुछ कालके बाद उनका मनुष्यपन दूर होता है और वे आपस में पशुवत् व्यवहार करने लगते हैं। अंतमें—
(३) वे दोनों वकीलों के पेटमें जाते हैं अथवा अन्य प्रकारसे उनका नाश होता है।

यही सत्य राष्ट्रके इतिहासमें भी ऐसाही सत्य है, देखिये—

(१) एकदेशकी दो जातियां आपसमें लडतीं हैं,
(२) झगडते झगडते उनका आपसका व्यवहार मनुष्य पनके योग्य नहीं होता व पशुके समान परस्पर व्यवहार करने लगते हैं, अंतमें
(३) उन दोनों आपसमें झगडने वाली जातियोंपर तीसरी जाती हुकुमत करने लगती है—
(४) इसका परिणाम दोनों जातियों की पूर्ण परतंत्रतामें होता है

और इस कारण उक्त दोनों जातियां प्रतिदिन अधिकाधिक हीन अवस्थामें पहुंचती हैं।

उपदेश।

इस कारण जैसा भाइयोंको आपसमें झगडा करना उचित नहीं है, इसी प्रकार एक राष्ट्रके निवासी दो जातियोंको भी आपसमें झगडा करना उचित नहीं है। आजकलके भारतवर्षियों को भी इस कथासे बहुत ही बोध मिल सकता है। इस देशमें अनेक जातियां और अनेक धर्म पंथ विद्यमान हैं। सबको उचित है कि, वे आपसमें एकता से रहें और मिल जुलकर आनंदके साथ अपनी राष्ट्रीय उन्नति सिद्ध करें। परंतु दुःखके साथ देखना पडता है कि, वे आपस में एकता करने की अपेक्षा आपसमें झगडा करनाही अच्छा समझते हैं! आपसके झगडे से अपनी हानि होरही है, इस प्रत्यक्ष बातको भी वे देखते नहीं। यदि ये लोग अपनी अवस्था को देखेंगे, और एकतासे रहनेमें अपना हित है यह समझेंगे, तो कितना अच्छा होगा।

इस अवस्थामें पूर्वोक्त झगडालू तापसीयोंकी कथा अत्यंत बोध-प्रद है। परंतु इस कथा से जो बोध मिलता है, वह न लेते हुए यदि कोई कहे कि यह कथा इतिहासिक सत्य घटना नहीं है, इसलिये यह एक "गपोडा" है, तो उसको क्या कहना है। इस कथाके प्रसंगमें जो कहा है, कि (१) ये दो तपस्वी भाई आपसमें झगडते थे, (२) पैतृक धन के कारण उनमें झगडा था, (३) झगडा झगडनेके कारण मनपर बहुत बुरे संस्कार हुए और वे मरनेके पश्चात् हाथी और कछुआ बने और जिस वनमें वे थे वहां भी आपसमें झगडते ही रहे, (४) हाथी की ऊंचाई छः योजन और लंबाई बारह योजन थी, और कछुएकी उंचाई तीन योजन और गोलाई दस योजन थी, (५) इन दो झगडालु भाइयोंको तीसरे गरुडने पकड लिया और खा लिया।

यह कथा गपोडाश्री हुआ, तथापि उपदेश प्राप्त होनेके लिये जो धर्मकी सचाई चाहिये, वह इसमें विद्यमान है। उस सचाईको न देखना और हाथी तथा कछुएकी लंबाई चौडाईकी सत्यताके ऊपर वादानुवाद करना, यह एक ही बात का निदर्शक है और वह यह है, कि जिस काव्य की दृष्टिसे यह कथा या यह ग्रंथ रचा गया था, उस काव्यकी दृष्टिसे इसको कई लोग देखते नहीं हैं। यदि देखेंगे तो इस प्रकारकी शंकाएं उठही नहीं सकती।

मानलीजिये कि जो लंबाई चौडाई उक्त प्राणियोंकी इस समय होती है. उतनी ही लिखी होती, तो उक्त कथासे कौनसा बोध अधिक मिलता?

चरित्रोंकी सचाईके विषयमें कितने

विभिन्न पहलु होते हैं, यह विचारी पाठक जानते ही हैं। श्री० स्वामी दयानंद सरस्वती जी को प्रत्यक्ष देखनेवाले भी इस समय विद्यमान हैं। परंतु उनके जन्म स्थानके विषय में कितना विवाद हुआ था, यह प्रसिद्ध ही है। महात्मा लोकमान्य तिलक की जीवनी उनके साथ २६वर्ष रहे हुए सुयोग्य विद्वानने लिखी, परंतु उसमें लिखे विधानोंकी सचाईके विषयमें महाराष्ट्रके वृत्तपत्रोंमें कितना वाग्युद्ध चला है। इसी प्रकार प्रतापी वीर शिवाजी महाराजके जीवन चारित्र जो छपेथे और जो इस समय तैयार हो रहे हैं, उनमें इतना ही अंतर है कि जितना जमीन और आसमानमें है। इन बातोंको देखनेसे पता लगसकता है कि आजकल के इतिहासोंमें भी इतिहासिक सत्य कितना है। जिसका जो भक्त होता है, वह अपनी विभूतिका चरित्र अधिक गुणसंपन्न करनेकी चेष्टा करता है, सचाई की पर्वाह न करता हुआ वह अपने आदर्श पुरुष के दुर्गुणोंको भी सुद्‌गुणोंका रंग चढानेका यत्न करता हैं, तथा जिसके विषयमें अंतः-करणमें आदर नहीं उसके गुणोंको भी दुर्गुणोंकी शकलमें परिवर्तित किया जाता है। यह बात आजकल भी हो रही है,जो इस बातका अनुभव करेंगे उनको इतिहासिक सत्यताके विषयमें झगडा करनेका विशेष प्रयोजन नहीं रहेगा।

परंतु जो ग्रंथ " काव्य " लिखनेके उद्देश्य से ही लिखा गया हो, उसमें दस योजन विस्तीर्ण हाती और आठ योजन विस्तीर्ण कछुआ लिखा किंवा न्यूनाधिक प्रमाणमें लिखा, तो यह वर्णन कोई महत्त्व नहीं रखता; क्यों कि इस कविकल्पित कथामें मुख्य वक्तव्य भिन्न ही होता है। इस कथाका तात्पर्य जो "भाईयों की एकता" है वह ऊपर बतायाही है। वही देखना चाहिये, न की कथाके छिलके के विषयपर व्यर्थ वादानुवाद करना योग्य हैं।

सगेभाई भी आपसके झगडेके कारण कैसे पशु बनते हैं, यह प्रायः हरएक पाठकने देखाही होगा। तथा आपसके झगडेसे दोनोंका नाश कैसा होता है, यह भी पाठकोंके अनुभव की ही बात है। इस सचाईको स्वयं देखना और उसको अपने वैयक्तिक,घरेलू,और राजकीय सामाजिक तथा धार्मिक आचारमें ढाल देना पाठकोंको उचित है। अस्तु। पूर्वोक्त कथामें " एकताका पाठ " मिलता है, यह बात सत्य है; इसीविषयमें महाभारतका उपदेश भी थोडासा यहां देखिये -

न वै भिन्ना जातु चरंति धर्मं।
न वै सुखं प्राप्नुवंतीह भिन्नाः।।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवंति।
न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति।।

म.भा.उद्योग.३६।५८

"भिन्न अर्थात जिनमें आपसमें फूट है, वे लोग न धर्माचरण कर सकते हैं, न सुख प्राप्त कर सकते हैं, न गौरव कमा सकते हैं और न शांति भोग सकते है।"

अर्थात् जिनमें आपसके झगडे हैं, उनको धर्म, सुख, गौरव तथा शांति इनमें कुछभी प्राप्त नहीं होता। परंतु आपसमे झगडा बढाने वालों में अधर्म, दुःख, लघुता और अशांति रहती है। इसलिये जहांतक हो, वहांतक प्रयत्न करके आपसमें फूट रखना नहीं चाहिये। तथा और देखिये ---

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तम्।
योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्॥
भिन्नानां वै मनुजेंद्र परायणम्। न विद्यते किंचिदन्यद्विनाशात्॥

म. भा. उद्योग. ३६।५७

"जो आपसमें झगडा करते हैं, उनको हितकर उपदेश भी पसंद नहीं होता उनका योगक्षेम ठीक नहीं चलता, तात्पर्य यह है कि, जो मनुष्य आपसमें झगडते हैं, उनका निःसंदेह नाश हो जाता है।"

अर्थात् जिनमें आपसकी फूट है, उस जाति की कदापि उन्नति नहीं हो सकती इस लिये उन्नति चाहनेवाली जातिको उचित है कि, वे आपसमें झगडा न रखें और आपसमें एकताका बल जितना बढ सकता है, बढा दें। इसका एक उदाहरणभी महाभारतमें दिया है—

धूमायंते व्यपेतानि ज्वलंति सहितानि च॥ धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ॥

म. भा. उद्योग. ३६।६०

"हे धृतराष्ट्र राजा! जिस प्रकार चूल्हेमें लकडियां इकट्ठीं जुडी रहनेसे जलती हैं परंतु अलग अलग रखनेसे धूवां उत्पन्न करती हैं, उसी प्रकार ज्ञातियों की अवस्था है।"

इसका तात्पर्य यह है कि, जिस प्रकार लकडियां इकट्ठीं रखनेसे जलकर प्रकाशमय होती हैं और अलग अलग रखनेसे धूवां उत्पन्न करती हैं, ठीक उस प्रकार जातियोंमें एकता होनेसे उस जातिका तेज फैलता है और आपसमें फूट और विविध झगडे होनेसे उस जातीका तेज नष्ट होता है। यह जातिकी उन्नति और अवनतिका नियम हरएक मनुष्यको अवश्यमेव ध्यानमें रखना चाहिये।

महाभारत "जातीय एकता का पाठ" इस ढंगसे दे रहा है। और भी देखिये—

सुंद और उपसुंदकी कथा।

आर्य लोगोंका विद्या अभ्यासका क्रम देखनेसे पता लगता है कि, वे जिस प्रकार आर्य वीरोंका इतिहास

पढते थे, उसी प्रकार असुर और राक्षसों का तथा अन्यान्य जातियोंका भी इतिहास वे जानते थे। महाभारतमें भी राक्षसों की कथाएं इसी लिये दीं हैं, इसमें हेतु यह है कि, आर्य लोक "कूप-मण्डूक" के समान न रहें, परंतु अन्यान्य जातियों की विद्याएं देखकर उस सब इतिहाससे जो उत्तम उपदेश लेना है, वह लेकर उसका उपयोग अपनी उन्नति-में करें। "एकताके पाठ"में जिस प्रकार पूर्वोक्त झगडालू तपस्वियों की कथा देखने योग्य है, उसी प्रकार सुंद और उपसुंदकी कथा भी देखने योग्य है। यह कथा इस प्रकार है —

सुंद और उपसुंद।

महा असुर हिरण्यकशिपुके वंशमें निकुंभ नामक असुर का जन्म हुआ। उसके पुत्र सुंद और उपसुंद थे। उनका जीवन क्रम देखिये कैसा था -

> सुंदोपसुंदौ दैत्येन्द्रौ दारुणौ क्रूरमानसौ ॥३॥तावेकनिश्चयौ दैत्यावेककार्यार्थसंमतौ। निरन्तरमवर्तेतां समदुःखसुखावुभौ ॥ ४॥ विनाऽन्योन्यं न भुंजाते विनाऽन्योन्यं न जग्मतुः। अन्योन्यस्य प्रियकरावन्योन्यस्य प्रियंवदौ ॥ ५ ॥ एकशीलसमाचारौ द्विधैवैकं यथाकृतौ। तौ विवृद्धौ महावीर्यौ कार्येष्वप्येकनिश्चयौ ॥ ६ ॥ त्रैलोक्यविजयार्थाय समाधायैकनिश्चयम् ॥
>
> म.भा.आदि.२११

"उन दो दैत्यपुत्रोंमें एक का नाम सुंद और दूसरे का नाम उपसुन्द था। वे दोनों सदा एकही विषयमें संमत, एकही विषयमें दत्ताचित्त, और एकही कार्यके करनेवाले होके समान सुख दुःख समझ कर अपना समय व्यतीत करते थे। दोनों एक दूसरेको प्यारी बोली बोलते थे। और एक दूसरेका प्रियकार्य करते थे। एक भाईके विना दूसरा भाई भोजन वा गमन नहीं करता था। उन दो भाइयों-के स्वभाव और व्यवहारमें भेद न रहने-के हेतु जान पडता था, कि मानो, एक मनुष्य दो भागों में बट गया है !! हर काममें एक बुद्धि रखनेवाले वे दो बडे वीर्यवंत भाई क्रमसे बढ गये। वे तीनों लोक जीतना निश्चय कर उस कार्यको करने लगे।"

इस प्रकार वे बढ गये। उनके बढने का हेतु "आपसकी एकता" ही है। देखिये उनकी एकताका स्वरूप—

एकताके सात नियम।

(१) एकही विषयमें सहमत होना।
(२) एक ही विषयमें दत्ताचित्त होना।
(३) एकही कार्य एकविचारसे और अपने पूरे प्रयत्नसे करना।
(४) सुखदुःखमें समान हिस्सेदार होना।

(५) परस्पर मीठे शब्दों से संभाषण करना ।

(६) परस्परका प्रिय करनेका यत्न करना ।

(७) स्वभाव और व्यवहार परस्पर अनुकूल रखना ।

ये सात बातें उक्त श्लोकोंमें कहीं हैं । इनसे परस्पर मित्रता बढती है । भाई भाईमें, मित्र मित्रमें, दो जातियोंमें तथा दो राष्ट्रोंमें यदि मित्रता होगी, तो इन सात नियमोंके अनुकूल रहनेसे ही होगी, अन्यथा संभव नहीं है । आजकल आपस में झगडा करने वाले हिन्दु और मुसलमान ये राष्ट्रभाई इन सात नियमों को स्मरण रखें और इनको अपनानेका यत्न करें । इन नियमोंके पालन होनेसे-ही इन दो जातियों में एकता हो सकती है । उक्त सात नियमोंके बिलकुल विरोधी व्यवहार जबतक होता रहेगा तबतक एकता कैसी उत्पन्न होगी और स्थिर भी किस ढंगसे होगी ?

पूर्वोक्त दोनों भाई सुंद और उपसुंद आपस की एकताके कारण वीर्यवान और बलवान बनकर त्रैलोक्यका विजय कर-ने लगे । ऐक्य के बलके कारण उनका सर्वत्र विजय होता गया और उनके उग्र वीर्यके कारण उनको डर दिखाने-वाला कोई नहीं रहा । देखिये —

त्रिषु लोकेषु यद् भूतं किंचि-
त्स्थावरजंगमम् । सर्वस्मा-

न्नौ भयं न स्यादृतेऽन्योऽन्यं
पितामह ॥

म.भा.आदि.२११।२५

" हम दोनोंको एक दूसरेके विना इस त्रिलोक भरमें स्थावर जंगम आदि किसीसे मृत्यु का भय न रहे ।"

यही अवस्था आपसकी एकता के कारण उनको प्राप्त हो गई और उनका दिग्विजय सर्वत्र होगया । देखिये—

एवं सर्वा दिशो दैत्यौ जित्वा
क्रूरेण कर्मणा । निःसपत्नौ
कुरुक्षेत्रे निवेशमभिचक्रतुः ।

म.भा.आदि२१२।२७

"वे इस प्रकार कुटिल और क्रूर कार्यसे सब दिशाओंमें विजय प्राप्त कर अंत में शत्रुवर्जित हो कर कुरुक्षेत्रमें निवास करने लगे ।"

यह जो दिग्विजय सुंद और उपसुंदको प्राप्त हुआ इसका मूल कारण उनकी आपसकी एकता ही है । आर्य देश, गंधर्व देश, और देवलोक आदि सब राष्ट्रोंको उन दोनों भाइयोंने परास्त किया था और संपूर्ण त्रिलोकीमें अपना साम्रा-ज्य स्थापित किया था । इस प्रकार दिग्विजय करनेवाले दोभाइयोंमें आपस-का झगडा खडा करने के लिये तिलो-त्तमा नामक एक अप्सरा देवोंकी ओर से भेजी गई, जिसका सुंदर स्वरूप देख कर वे दोनों सुंद और उपसुंद काम मोहित होकर, उस स्त्रीके कारण आपस

में लडने लगे और जब उनमें आपस-का झगडा हुआ, तब उनका पूर्ण नाश होगया देखिये—

उभौ च कामसंमत्तावुभौ प्रार्थयतश्च ताम् ॥२२॥दक्षिणे तां करे सुभ्रूं सुंदो जग्राह पाणिना। उपसुंदोऽपि जग्राह वामे पाणौ तिलोत्तमाम् ॥ १३ ॥ वरप्रदानमत्तौ तावौरसेन बलेन च। धनरत्नमदाभ्यां च सुरापानमदेन च ॥ १४ ॥ सर्वैरेतैर्मदैर्मत्तावन्योन्यं भ्रुकुटीकृतौ। मदकामसमाविष्टौ परस्परमथोचतुः ॥ १५ ॥ एवं तौ सहितौ भूत्वा सर्वार्थेष्वेकनिश्चयौ । तिलोत्तमार्थं संक्रुद्धावन्योन्यमभिजग्मतुः ॥२६

म.भा.आदि.२१४

"वे दोनों कामवश होकर के उस नारी के पास गये और दोनों ने उसपर मन चलाया। सुंदने अपने हाथसे उस सुंदरीका दाहिना हाथ थाम लिया, और उपसुंदने उसका बायां हाथ पकडा। वे वर पाने से गर्वित, अपने भुजवीर्य के गर्वसे घमंडयुक्त, और धन रत्नों के अहंकार से उन्मत्त थे ही; फिर तिसपर दोनों मद्य और काम के नशे से बावलों के समान बने थे। सो एक दूसरे की ओर भौंह चढायके झगडने लग तात्पर्य सुंद और उपसुंद दोनों भाई मित्र भावयुक्त और हर बातमें सहमत होनेपर भी तिलोत्तमा के लिये क्रोधित होकर आपसमें झगडा करने से पूर्णतासे नष्ट होगये।"

इस रीतिसे एकताके कारण बल बढता है और आपसकी फूटके कारण बल घटता है।

यह कथा पांडवोंको भगवान् नारद मुनिने कही थी और उनको आपसमें न झगडनेका पाठ दिया था। देखिये ऋषि मुनि भी राक्षसोंका इतिहास पढते थे तथा उससे लेने योग्य बोध लेते-थे और उसका उपदेश अपने आर्य वीरों को करते थे ! अन्य देशोंके और अन्य जातियोंके इतिहास पढनेका तथा शत्रुसे भी विद्याग्रहण करनेका महत्त्व कितना है, यह यहां पाठक देख सकते हैं।

यहां विशेष देखने योग्य बात यह है कि, सुंद और उपसुंद नामक राक्षसोंकी कथा " आपसकी एकता का प्रतिपादन " करनेके लिये दी है और महाभारत की कथा कौरव पांडवोंकी "आपस की फूट " का वर्णन करनेके लिये बतायी है । एकताके बल के कारण राक्षसोंका बल कैसा बढगया था और आपसकी फूटके कारण आर्य जाती का कैसा नाश हुआ, यह उक्त कथाओंमें अर्थात् उक्त तपस्वियोंकी कथामें तथा कौरव पांडवों की कथामें देखिये यदि

कौरव पांडव एक मतसे राज्य करते, तो त्रिलोकीको जीत लेते; परंतु आपसकी फूटके कारण आर्यजातीकाही कैसा नाश हुआ, यह बात यहां विशेष विचारसे पाठक देख सकते हैं। इसीविषयमें एक उत्तम उदाहरण मार्कंडेय पुराणमें आगया है वह भी सारांशसे यहां देखना उचित है—

महिषासुर।

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्द-
शतं पुरा। महिषेऽसुराणाम-
धिपे देवानां च पुरंदरे ॥१॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं
पराजितम्। जित्वा च सक-
लान्देवानिन्द्रोऽभून्महिषा-
सुरः॥२॥ मार्कण्डेयपुराणअ.८२

" पूर्वकालमें देवों और असुरोंका युद्ध पूर्ण सौ वर्षतक हुआ उसमें देवों-का सेनापति इन्द्र था और राक्षसोंका महिषासुर था। युद्ध के अंतमें देवोंका पूर्ण पराभव हो गया और महिषासुर देवोंके राष्ट्रका सम्राट् बनगया।"

अपना पराजय होनेके पश्चात् देव भाग गये और श्रीशंकर और श्रीविष्णु के पास गये। देवोंने अपने पूर्ण पराजय का वृत्तांत भगवान विष्णुसे कहा और अपनी शोचनीय अवस्था का वर्णन उन के सन्मुख किया। उस समय भगवान शंकर और विष्णु के अन्दरसे एक विल-क्षण तेज बाहर निकल आया। उस दिव्य तेज में संपूर्ण देवोंने अपने अपने तेजों का अंश मिला दिया। देखिये इसका वर्णन—

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेव-
शरीरजम्। एकस्थं तदभून्नारी
व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥
मार्कण्डेय पुराण अ. ८२।१२

"सब देवोंके शरीरोंसे निकले हुए तेजों का मिल कर एक स्त्रीरूपी अत्यंत तेजस्वी शरीर हुआ। जिसके तेज से त्रैलोक्य व्याप्त हुआ।"

इस तेजोमय स्त्री देवीने असुरोंका पराभव करके फिर देवोंका साम्राज्य शुरू किया।

अर्थात् आपसकी फूट के कारण देवोंका पराभव हुआ और जब देवोंने अपने तेज और वीर्य का एक संघ बना दिया, तब उनके सामने राक्षस पराभूत होगये। पूर्वोक्त वर्णन में हरएक देवने अपना तेजस्वी अंश भेजा, संपूर्ण देवोंके तेजोंका एक महान " संघ " बना और उस संघने राक्षसोंका पूर्ण पराभव किया। इस वर्णन का अलंकार हटाया जाय, तो कथाका मूल स्वरूप स्पष्ट विदित होता है।

जिस समय देवोंके अंदर आपसमें एकता नहीं थी, हरएक देव अथवा हर एक देवोंका गण किंवा देवोंकी जाति, अपनी अपनी घमंडमें रहकर अलगही रहती थी, उस समय राक्षसोंके सामने

देव ठहरही नहीं सकेथे। परंतु जिस समय देवोंको आपस की फूटका पता लगा और अपना संघ बननेके विना अपना जीनाभी अशक्य है, यह बात देवोंके ध्यानमें आगई, तब उन्होंने अपना एक बडा अभेद्य संघ बना दिया, सब देवोंने अपनी अपनी शक्ती पूर्णतासे लगादी और देवराष्ट्र को जीवित रखनेके लिये हरएक देवने अपनी पूर्ण पराकाष्ठा की। इससे देवोंमें-अर्थात तिब्बत् (त्रिविष्टप्) के वासिंदोंमें बडी विलक्षण संघशक्ति बनी, उनका बल बढ गया और इसकारण वे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सके और अपने नष्ट हुए साम्राज्यको पुनः प्राप्त कर सके। तात्पर्य यह है कि, जबतक आपसमें फूट रहेगी तब तक न तो कौटुंबिक सुख मिलेगा, और ना ही राष्ट्रीय उन्नति प्राप्त होगी।

देवासुरोंके शताब्दी युद्ध (Hundred years war) के वर्णन से हमें यही उपदेश मिलता है। इतना बोध लेकर निम्नमंत्र देखिये---

> संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ऋ. १०।१९१।२

" हे सज्जनो! तुम (संगच्छध्वं) आपसमें एकता करो,(संवदध्वं)आपसमें उत्तम भाषण करो, और अपने मनोंको सुसंस्कार संपन्न करो, तथा जिसप्रकार प्राचीन ज्ञानी अपने भाग्य की उपासना करते थे उसीप्रकार तुम भी किया करो" तथा—

> समानो व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ऋ. १०।१९१।४

"हे लोगो। तुम्हारा संकल्प, तुम्हारा हृदयका भाव, तुम्हारा मन अर्थात तुम्हारा सब व्यवहार समान अर्थात सबके साथ यथायोग्य हो, जिससे तुम एकतासे रह सकोगे।"

यह वेदका उपदेश पूर्वोक्त एकताका ही पाठ दे रहा है और इसी को पाठकोंके मनपर पूर्ण रूपसे प्रतिबिंबित करनेके लिये पूर्वोक्त इतिहासिक कथाएं, तथा काव्यमय इतिहासिक वर्णन हैं। इस दृष्टिसे उक्त कथाएं पढीं और समझीं जाय, तो कथाओंका स्वारस्य समझमें आजायगा। और महाभारत के काव्यमयइतिहास का महत्त्व ध्यानमें आवेगा।

इस लेखमें (१) तपस्वी दो भाइयोंकी कथा, (२)सुंद और उसुंपद की कथा, (३) महिषासुरका आख्यान, इनका वर्णन संक्षेपसे दर्शाया है, और (४) महाभारतकी कथा सबको विदित ही है। इन चार कथाओंकी विशेषता यह है, देखिये—

(१) तपस्वी भाइयोंकी कथा—
दो तपस्वी आर्य भाइयोंका आपस में झगडा हुआ और दोनोंको तीसरेने आकर भक्षण किया।

(२) पांडवकौरवोंकी कथा—
दो भाई-कौरव पांडवों का आपसमें झगडा होगया और आर्य जातीके प्रमुख वीरोंका संहार होकर आर्य जातीका बडा नाश हुआ।

(३) सुंद और उपसुंद की कथा—
दो राक्षस भाई आपसमें पूर्ण एकतासे रहनेके कारण त्रैलोक्य में विजयी होगये। परंतु उनमें आपसका झगडा होने पर ही उनका नाश हुआ।

(४) महिषासुर की कथा—
देवों के अंदर आपस में एकता नहीं थी, ऐसे समयमें महिषासुर नामक असुर देशीय राजा ने देवराज्य पर हमला करके देवोंका पराभव किया। पश्चात् देवोंने अपनी संघशक्ति बढाई और पुनः अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की।

ये चारों कथाएं अगर पाठक ध्यानसे पढेंगे तो उनके ध्यानमें उसी समय आजायगा कि (१) आर्य तपस्वीयों में झगडा, (२) आर्य राजाओंमें आपसकी फूट, (३) देवोंमें संघशक्तिका अभाव, इत्यादि बातें उक्त कथाओंमें वर्णन की हैं।

साथ साथ (१) असुरों और राक्षसों में अपूर्व संघशक्तिका होना, (२) बल और वीर्य में उनका अधिक होना, (३) प्रायः प्रारंभमें असुरोंका विजय होना, इत्यादि वर्णन है।

इससे यह अनुमान करना अनुचित होगा कि, उस समयके सभी आर्य निकम्मे थे और सब असुर साधु थे। परंतु इस वर्णन का उद्देश्य और ही है। जो महान कवी अपनी जातिके उद्धार के लिये महाकाव्य निर्माण करता है, वह विषेश हेतुसे कथाओं, आख्यानों और उपाख्यानों का संग्रह करता है। अपनी जाति की उन्नति किस ढंगसे होगी, अपनी जातीमें कौनसे दोष हैं, अपने शत्रुओंमें कौनसे गुण हैं, इसका विचार वह कवि करता है और अपना काव्य लिखता है। महामना व्यास भगवान असाधारण कवि और अलौकिक बुद्धिमत्ता तथा विलक्षण विद्वत्ता से युक्त थे। इसी कारण उन्होंने अपने अपूर्व काव्य में--अर्थात् इस महाभारत में विलक्षण चातुर्यसे कथाओंका सिलसिला रखा है। पाठक यदि महाभारत पढते पढते सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करेंगे, तो उनको इस काव्यके स्वारस्य का पता उसी समय लग जायगा।

उन्नतिका सीधा मार्ग।

शत्रुजाति की अपेक्षा अधिक गुणोंसे युक्त होनेसे ही उन्नति हो सकती है। शत्रुके अंदर जिन विशेष गुणोंके कारण बल बढा होता है, उन गुणोंको अपने अंदर प्राप्त करना चाहिये, और बढाना चाहिये। तथा अपने अंदर जिन दुर्गुणों के कारण बलकी क्षीणता होनेकी संभावना है, उनको दूर करना अत्यंत आवश्यक है। अपने अंदर से दुर्गुणोंको दूर भगाना और अपने में सद्गुणोंकी अधिकता स्थिर करनेसे ही उन्नति हो सकती है।

इस लिये महाकवी शत्रुके गुणोंका वर्णन अधिक स्पष्ट रूपसे करते हैं, ताकि उन गुणोंका प्रतिबिंब अपनी जातिके लोगोंके अंतःकरणों पर स्पष्ट रीतिसे पडे और उन शुभ गुणोंका ग्रहण अपनी जाति करे और उन्नति प्राप्त करे, साथ साथ वे अपनी जातिके दुर्गुणोंका वर्णन भी थोडा बढा कर करते हैं, जिससे अपनी जातिके दुर्गुणोंका पता स्वजातियोंको लगे और वे उन दुर्गुणोंको दूर फेंककर निर्दोष बनकर अपनी उन्नति करें।

शत्रुके गुण देखना, उनको अपनाना, और बढाना, तथा साथ साथ अपने दोष दूर करके अपनी उन्नति करनी, यही उन्नति का सीधा मार्ग है। इस दृष्टिसे पूर्वोक्त चारों कथाओंमें आर्यजातीके दोष और शत्रुभूत असुर जातिके गुण वर्णन किये गये हैं। और इस वर्णनमें इस लिये थोडी अत्युक्ति की है कि वक्तव्य बात पाठकोंके मन में स्थिर हो जाय।

आर्य जातीके वीर पुरुषोंमें धैर्य वीर्य शौर्य आदि प्रशंसनीय गुणोंका वर्णन महाभारतमें सर्वत्र है हि। यदि यह वर्णन न होता और केवल स्वजातीके दोषों से ही यह ग्रंथ लिखा होता तो इसके पढनेसे पाठकोंका उत्साह नष्ट हो जाता। परंतु महाभारत पढने से उत्साह बढ जाता है। इसका कारण यह है कि, स्वजातीके दुर्गुण अत्युक्तिके साथ वर्णन करते हुए भी उनको गौण स्थान दिया है और स्वजातिके महत्वके गुणोंका वर्णन प्रधान स्थानमें किया गया है। इस लिये इस महाभारत के पाठ का परिणाम पाठकोंके मन पर बडा ही उच्च और उदात्त होता है। अस्तु।

महाभारत ग्रंथ " एकता का पाठ " सिखाता है। इस पाठका ढंग इस लेखमें बताया है, पाठक अब अन्यान्य कथाओंका विचार करके अधिक बोध प्राप्त करें।

वीर्य और आनंद। (लेखक-श्री. जयंत जी)

वीर्य और आनंद का पारस्परिक संबंध क्या है इस बात को बतलाने के पहिले वीर्य्य क्या है, और वस्तुतः आनंद क्या वस्तु है, इन विषयों पर कुछ वक्तव्य है ।

(१) वीर्य ।

जिस पदार्थ में चाहे वह जलवत् द्रव हो या पत्थरवत् कठोर हो, या वायुवत् हो, शरीर के प्रत्येक अवयव का सार हो उसे उस शरीर का वीर्य कहते हैं। जिसमें मनुष्य के प्रत्येक अवयवों का सार हो, उस पदार्थ को मनुष्य का वीर्य कहते हैं ।

यदि इस वीर्य्य में उस शरीर के सब तत्त्वों का सार न होता, तो उसके समान शरीर की उत्पत्ति होना भी असंभव था । वीर्य्य में न केवल हमारे प्रत्येक तत्त्वों का सार रहता है, परंतु हमारे प्रत्येक, क्रिया, मन, विचार, गुण, कर्म्म, स्वभाव, रूप, रंग, डौल इत्यादि का भी संस्कार कारण रूप में रहता है । यदि सिंह के वीर्य्य में हिंसक भाव की क्रिया विद्यमान न होती, तो हिंसक स्वभाव वाला सिंह बालक कदाचित् भी उत्पन्न न होता। कोयल के वीर्य्य से मधुर स्वर उसके बच्चों में न आता, कुत्ते के वीर्य्य से उसके बच्चों में स्वामिभक्ति कभी न आती यह केवल वीर्य्य का ही कारण है, जिससे गुण, कर्म्म, स्वभाव एक से दूसरे शरीर में उत्पन्न होते हैं। इससे सिद्ध होता है, कि जिस पदार्थ में हमारे शरीर के प्रत्येक अवयव का सार और विचार, मन, इंद्रिय,गुण, कर्म्म, स्वभाव इत्यादि का संस्कार विद्यमान हो, उसे वीर्य्य कहते हैं, या जिस पदार्थ में मनुष्य शरीर के प्रत्येक अवयव, मन, इन्द्रिय इत्यादि को उत्पन्न करने की शक्ति हो,उसे वीर्य्य कहते हैं।

(२) आनंद ।

आनंद कोई एक व्यक्ति नहीं, कोई शरीर धारी वस्तु नहीं, जिसे लाकर बतला दिया जाय । परंतु आनंद स्वभावके अनुकूल "इच्छाकी पूर्ति" को कहते हैं और स्वभाव के प्रतिकूल कार्य्य का होना "दुःख" कहाता है । बहुधा लोग कहा करते हैं, कि आनंद तो विषय भोगों में है, परंतु यह उत्तर उन की अज्ञानताका है । आनंद जैसे मैं कह चुका हूं, स्वभावानुकूल इच्छा की पूर्ति को कहते हैं, परंतु इच्छा की पूर्ति बिना मानसिक एकाग्रता के होना सर्वदा असंभव है; इसलिए मानसिक एकाग्रता को ही आनंद कहते हैं । अज्ञानी मनुष्य को यह ज्ञात है, कि हमेशा हमें विषयों से आनंद मिलता परंतु यह गलती है ।

यदि मनुष्य नशे की आदतवाला हो, तो दुःखके समय वह नशा अवश्य ही मांग लेता है, क्यों कि उसके बिना उसके चित्तकी एकाग्रता नहीं होती । जिस प्रकार वालू से तेलका निकलना, हलाहल विष से अमरत्व पाना असंभव है, इसी प्रकार असत्, अप-

वित्र जड एवम् दुःखरूप विषयों से आनंद का पाना नितान्त असंभव है । जिस प्रकार कुत्ता सूखी हड्डियें को चबाता है, हड्डिके कठोर होने के कारण उसके जीभ से खून निकलने लगता है और वह रक्तका पान करता हुवा कहता है, कि यदि मैं इन हड्डियों को ही खाया करूं, तो शीघ्र ही बलिष्ठ बन जाऊंगा, परंतु वह मूर्ख यह नहीं सोचता, कि स्वाद आनंद तो मेरे ही रक्त से मेरे जीभ को आरहा है, हड्डीसे नहीं ! इसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य यह समझते हैं, कि हमें विषयों से आनंद आरहा है, परंतु यह नहीं समझते, कि आनंद तो हमारे ही वीर्य्य में था, जिसके जाने पर आनंद भी जाता रहता है। इससे सिद्ध है, कि इच्छित पदार्थों की प्राप्तिके समय यावत् वीर्य्य शरीर में रहकर चित्त की एकाग्रता करता रहा, तब तक आनंद रहा और तृष्णा की निवृति होती रही । जब वीर्य ने प्रस्थान कर शरीर को छोड दिया उसी समय तृष्णा ने आकर फिर दबाया । यहां यह सिद्ध हुआ, कि क्षय, और अपवित्रता जिस में हैं, ऐसे विषयों में किंचित् भी सुख नहीं, परंतु सुख तो वीर्य्य का संघटन करने से प्राप्त हो सक्ता है । जिसके रहनेसे तृष्णा की निवृति, आरोग्य और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है ।

(३) जीवन ।

प्राण और मन की एकत्रावस्था को जीवन कहते हैं, इनकी एकाग्रता केवल ब्रह्मचर्य्य से ही हो सक्ती है । कोई भी मनुष्य जीवन की क्षती को आनंद नहीं मानता, अतएव सिद्ध होता है, कि ब्रह्मचर्य्य ही सच्चा सुख है ।

(४) प्रत्येक इंद्रिय में ग्रहण शक्ति होती है, जैसे जीभ में स्वादिष्ट पदार्थों के सूक्ष्म अणुओं की ग्राहक शक्ति है,

जैसे कान से शब्द ग्राह्य होता है, इसी प्रकार उपस्थेन्द्रिय के ज्ञान तंतुओं में वीर्य्य के सूक्ष्म परमाणु ओं के ग्रहण की शक्ति है । मनुष्य जिसको ग्रहण कर आनंद पाता है, वह वीर्य्य के परमाणु ओं का ग्रहण है । इससे भी सिद्ध होता है कि सुख ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त हो सक्ता है ।

(५) अन्न और स्वभाव में पारस्परिक घनिष्ट संबंध है, अन्नसे वीर्य्य में स्वभावका संस्कार होना प्रथम सिद्ध किया जा चुका है । इस लिए वीर्य्य और स्वभाव का भी संबध सिद्ध होता है । अन्न के समान स्वभाव के भी राजसिक, सात्विक और तामसिक तीन भेद हैं । स्वभावानुकूल कार्य्य की पूर्ति में आनंद होता है, परंतु विना इच्छा के कोई कार्य्य नहीं घटता । इच्छा हमेशा नीचे से उपर की ओर उठती हैं, इसी कारण स्वभावानुकूल प्राप्तिसे समानता, निकृष्ट के योग से दुःख, और उत्तम के संबध से आनंद प्राप्त होता हैं । जैसे एक कृषिकार को उसका दैनिक भोजन देने से न आनंद और न दुःख होता है, क्यों कि वह उसके स्वभाव

के समान है, और यदि उसको कुछ उत्तम भोजन दिया जाय तो वह आनंद मानता है। इसी प्रकार यदि राजसिक भोजन करने वालों को तामसी भोजन दिया जाय, तो दुःख होता है और सात्विक भोजन से सुख होता है। इससे भी सिद्ध होता है, कि बार बार किसी पदार्थ का भोग करने से उसके आनंद की ग्राह्य शक्ति नष्ट हो जाती है। वीर्य के सूक्ष्म परमाणुओं को ग्रहण कर आनंद प्राप्त करने की शक्ति हमारे अंदर विद्यमान है, ऐसा पूर्व बताया जा चुका है। इससे भी सिद्ध होता है, कि वीर्य्य को पवित्र रह कर उसके बढाने से ही आनंद नित्य बढ सक्ता है, यही कारण था कि हमारे पूर्वज ऋषि ब्रह्मचर्य पर अधिकाधिक जोर देते थे। वे इस सिद्धांत को जानते थे, और वीर्य के कम व्यय से अधिक आनंद उठाने का उपदेश करते थे। वीर्य की हीनता से आनन्द किस प्रकार नष्ट हो जाता है, यह इस सिद्धांत से स्पष्ट हो गया है। आप जिस आनंद की प्राप्ति के लिए रात दिन परिश्रम करते हैं, नाना प्रकार के असह्य कष्टों को सहन करते हैं, परंतु हाय हाय कहते हुए ये शब्द कातर और दयामयी वाणी से उच्चारते है कि "संतोष नहीं मिला, संसार दुःखदायी है।" पाठकों से आग्रह पूर्वक निवेदन है, कि यदि वे मनुष्य हैं पशु पक्षियों से अधिक बुद्धि और ज्ञान रखते हैं, तो विचारें कि आज कल के सामयिक युग में मनुष्य जातिने पशु पक्षियों से भी अधिक पाप कर दैविक शक्तियों पर किस प्रकार कुठाराघात किया है; तिस पर भी कहते हैं, कि हममें ज्ञान अधिक है!! सज्जनो! आप चाहे जिस धर्म्म के अनुयायी हों, चाहे आपके सिद्धांत हमसे कितने भी भिन्नता रखते हों, परंतु यह बात आग्रह पूर्वक कहूंगा कि दुनिया की जितनी जातियों ने जितने धर्मावलंबियों ने जो कुछ भी उन्नति की है, वह ब्रह्मचर्य द्वारा ही की है। जिसने ब्रह्मचर्य का आश्रय नहीं लिया, वह संसार में कुछ भी नहीं कर सका है। इसकी पुष्टता के लिए सारे संसार के इतिहास आपके सन्मुख विद्यमान हैं। जो वीर्य्य का नाश कर रहे हैं। वे अपना नाश ही नहीं, अपि तु अपनी जाति, समाज, राष्ट्र, धर्म, तथा अपनी आत्मा का नाश कर रहे हैं, और परमेश्वर के दिए हुए इस सुखरूप शरीर को मृत और दुःख का आगर बना रहे हैं! क्या ब्रह्मचर्य से किसी की भी हानि होते देखी गयी है? यदि नहीं, तो ब्रह्मचर्य से बढकर मनुष्यमात्र का परम कर्तव्य और धर्म्म का प्रथम सोपान कौनसा हो सक्ता है? इसलिए भाइयो! यदि धर्म और कर्तव्य की पालना करना है, धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक उन्नति करना है, तो ब्रह्मचर्य को अपनाओ और शिक्षा में ब्रह्मचर्य को प्रथम स्थान दो।

ऋषियोंकी शिक्षा पद्धति ।

शरीरके बल की अपेक्षा हरएक मनुष्य के लिये शरीरके स्वास्थ्यकी अत्यंत आवश्यकता है । क्योंकि शरीर " स्वस्थ" न रहा और उसमें नाना प्रकार के रोग रहे, तो "जीवन का आनंद" प्राप्त होना अशक्य ही है । इस लिये कहा है कि

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

"धर्मका साधन—धर्मका मुख्य साधन —निश्चयसे शरीर की स्वस्थता अर्थात् शरीरका आरोग्य ही है ।" यह हरएक मनुष्यका अनुभव है, कि जिस समय शरीर की स्वस्थता नहीं रहती, उस समय न तो वह मनुष्य किसी कार्य को पूर्णरूपसे कर सकता है,और यथाकथंचित् कार्य पूर्ण होनेपर —अथवा विजय प्राप्त होने पर भी—उस विजय का यथा योग्य आनंद उसको मिल नहीं सकता; क्यों कि विजय का आनंद अनुभव करनेके लिये भी शरीरका स्वास्थ्य अवश्य ही चाहिये ।

आज कल अपने भारत भूमिमें कितने ऐसे सुपुत्र हैं, कि जो तारुण्य में ही वृद्ध दिखाई देते हैं ! कई ऐसे हैं, कि जो अस्वास्थ्यके कारण अपना विद्याभ्यास ही परिपूर्ण रूपसे नहीं कर सकते । कई ऐसे हैं, कि जो विद्याभ्यास समाप्त करते ही मृत्यु के अतिथि बन चुके हैं ! कई ऐसे हैं, कि जो थोडासा कार्य प्रारंभ करते ही इह लोकसे प्रस्थान करनेकी तैयारी करने लगता है !

प्रिय पाठको ! विचार तो कीजिये, कि यह देशकी और जाति की कितनी हानि हो रही है ! हरएक तरुण के विद्या कमाने के लिये जितना व्यय होता है, वह देशका धन है, यदि विद्या पढ चुकनेके पश्चात् उस तरुणकी आयुका क्रमसे कम पचास साठ वर्ष राष्ट्र को उपयोग न हुआ, तो उस राष्ट्र की कितनी हानि हुई? इस दृष्टिसे विचार कीजिये, कि अपने राष्ट्रकी हानि इस समय कितनी हो रही है, और उससे बचनेका कौनसा उपाय आप आज ही प्रारंभ कर सकते हैं । यह विचार करना आपका आजका कर्तव्य है ।

आज कल पाठशालाओं में विद्या तो देते हैं, परंतु उस विद्याका परिणाम केवल मन तक ही रहता है। विद्याका सुसंस्कार जो हृदय पर होना चाहिये, वह आज कल की विद्यासे नहीं होता है, और ना हीं शरीर स्वास्थ्य सुधरता है; प्रत्युत निश्चय से कहा जाता है, कि शरीर स्वास्थ्य उसी कारण बिगडता भी है।

हृदय
मन
शरीर

यह क्रम है। सुदृढ शरीर में सुसंस्कृत विद्यासंपन्न मन रहा और भक्तियुक्त अंतः-करण बना, तो ही वह मनुष्य कुछ कार्य कर सकता है। परंतु आज कल की विद्या प्रणाली ऐसी है, कि जिससे मन पर विद्याका बोझ बढता है, उस कारण शरीर निर्बल होता है, और हृदय संस्कार हीन ही रह जाता है! यह विषय इतना गंभीर और अत्यावश्यक है, कि इसका विचार आज कल के बडे बडे विद्वानों को अति शीघ्र करना चाहिये। विद्याका जो फल हमारे ऋषिमुनियोंने कहाथा, वह आजकल बिल-कुल दिखाई नहीं देता। देखिये आर्ष दृष्टिसे वि-द्याका फल यह होना चाहिये —

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह
वीर्यं करवावहै। तेजस्विना
वधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥
तै.आ.८।१।१

(अधीतं) अध्ययन किया हुआ हमारा ज्ञान हम दोनों की (अवतु) रक्षा करे, हम दोनों को (भुनक्तु - भोजयतु) खान पान के पदार्थ देवे, इस ज्ञानसे हम दोनों मिलकर (वीर्यं करवावहै) पराक्रम करें, हमारा ज्ञान तेजस्वी होवे और इस ज्ञानसे हम दोनों आपसमें (मा विद्विषावहै) द्वेष न करें।

अर्थात् अध्ययन किये हुए ज्ञानसे समाजके दोनों प्रकारके (१) लोगोंका रक्षण होना चाहिये, (२) सबको भोजन मिलना चाहिये, (३) मिलकर पराक्रम करनेकी शक्ति बढनी चाहिये, (४) तेजस्विता बढनी चाहिये, (५) और आपसमें द्वेष नहीं रहना चाहिये, ज्ञानसे ये पांच फल मिलने चाहियें! परंतु आजकल की विद्यासे इनमेंसे कौनसा फल मिल रहा है, क्या इस आज कलकी विद्यासे अपनी रक्षा करनेकी शक्ति पढनेवालों में बढ रही है? क्या भोजनके सवाल का हल हो रहा है? क्या तरुणोंमें मिलकर पराक्रम करनेकी शक्ति बढ रही है? क्या उनमें तेजस्विता दिखाई देती है? अथवा आपसका द्वेष कम हुआ है? पाठक गण! विचार तो कीजिये, कि इस से कौनसी सिद्धि मिली है।

हमारे विचार से तो निःसंदेह पांचोंबातोंमें अवनति ही हो रही है और हम ऋषि-मुनियोंके उच्च आदर्श से प्रतिदिन दूर दूर जा रहे हैं। इस लिये इसका विचार हरएक मनुष्यको करना चाहिये।

ऋषि कहते हैं कि विद्यासे आत्मसंरक्षण करने की शक्ति बढनी चाहिये, परंतु आज

कलकी विद्यासे हमारे युवकों की स्वसंरक्षण की शक्ति घट रही है। ऋषि कहते हैं कि विद्या ऐसी होनी चाहिये, कि जिससे भोजन प्राप्त करनेका सवाल हल हो जाय, परंतु आज की विद्यासे भूषित या दूषित हुए हुए विद्वान कालेजोंसे बाहर आकर " अब हम आजीविकाके लिये क्या करें ? " इस प्रश्न की चिंतामें दग्ध हो रहे हैं। ऋषि मुनि कहते हैं कि विद्यासे शिक्षित मनुष्य की पराक्रम करने की शक्ति बढनी चाहिये, परंतु आज कल के शिक्षित दिन प्रतिदिन भीरु बन रहे हैं। ऋषि कहते हैं कि विद्यासे तेजस्विता बढती है, परंतु आजकल की विद्यासे शिक्षित पीले, फीके, निस्तेजही दिखाई देते हैं। ऋषि कहते हैं कि विद्यासे आपस का द्वेष कम होता है, परंतु आज कल की विद्यासे आपस में द्वेष बढ रहे हैं, जाति जातियोंमें कलह भडक रहे हैं और अनर्थ होने तक अवस्था पहुंच रही है ! क्या येही लक्षण विद्याके हैं ? इस लिये ज्ञानी लोगोंको इसका अवश्य विचार करना चाहिये और सुधारका उपाय सोचना चाहिये।

शांति, आरोग्य, बल और दीर्घ आयुष्य यदि न बढा, तो उस ज्ञान का क्या उपयोग है। विद्या समाप्त करते ही यदि तरुण परलोक को पधारने लगे, तो विद्या किस काम की हुई। इस लिये दोष कहां है, इसका विचार सबकोही करना चाहिये और दोष दूर करनेका अतिशीघ्र यत्न करना चाहिये। इसका इलाज आर्ष प्रणाली का पुनरुज्जीवन करना ही है।

शिक्षाका क्रम निम्न प्रकार होना अत्यंत स्वाभाविक है—

(१) शारीरिक, (२) इंद्रिय संबंधी, (३) मानसिक, (४) बौद्धिक, (५) आत्मिक, (६) सामाजिक तथा राष्ट्रीय और (७) जगत्संबंधी। इसमें शिक्षाका प्रारंभ शरीर से अर्थात् शारीरिक शिक्षासे होता है, इसका कारण यही है, कि शरीर सबसे बाह्य आवरण है, यदि मनुष्य किसी मंदिर में जाना चाहे, तो उसको बाह्य द्वारका प्रवेश प्रथम करना होता है। उसी प्रकार मनुष्यका बाह्य आवरण शरीर है, इसी कारण शारीरिक शिक्षा सबसे प्रथम होनी चाहिये। उसके अंदर इंद्रियां हैं अतः इंद्रियोंकी शिक्षा शारीरिक शिक्षाके पश्चात् होनी योग्य है। इंद्रियों से परे मन है इस कारण मानसिक शिक्षा इंद्रिय शिक्षाके पश्चात् होना अत्यंत स्वभाविक है, तदनंतर बौद्धिक और तत्पश्चात् आत्मिक शिक्षा देनी चाहिये।

इस रीतिसे अपने अंदर की शक्तियों की उन्नति करनेकी शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् अर्थात् वैयक्तिक शुभ संस्कार होनेके पश्चात एक व्यक्ति के साथ संबंध बतानेवाले ज्ञानके अभ्यास शुरू होने योग्य हैं, इन शिक्षाओं को ही सामाजिक, राजकीय और संपूर्ण जगत् के संबंध की शिक्षा कहते हैं। यह शिक्षा क्रम अत्यंत स्वाभाविक, निसर्ग सिद्ध और ऋषियोंका अनुमोदित है। परंतु आज कल इस प्रकार पढाईका क्रम है ही

नहीं, पाठशालाओं में शारीरिक शिक्षा के लिये कोई स्थान है ही नहीं । पाठशाला का शिक्षा विधि देखा जाय, तो वहां प्रारंभ में, मध्यमें और अंतमें पुस्तक रटनाही रटना है, इससे मन के ऊपर अस्वाभाविक बोझ पडता है और सब अन्य शक्ति केंद्र अशक्त बनते हैं । यही आज कल हो रहा है । परंतु वैदिक धर्मियोंका भी लक्ष्य इस ओर अबतक गया नहीं । वैदिक धर्मियों ने गुरुकुलादि शिक्षा संस्थायें बहुतसी निर्माण की हैं और नवीन निर्माण हो रही हैं । वह सब प्रयत्न आशा बढानेवाला निःसंदेह है, परंतु पाठ्य विषयोंमें भिन्नता होनेके अतिरिक्त वहां भी अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है । परंतु अन्य पाठशालाओं की अपेक्षा वहां की परिस्थिति अधिक आकर्षक है इसमें कोई संदेह नहीं । तथापि अधिक योग्य दिशासे सुधार होनेकी आवश्यकता वहां भी है । आर्ष शिक्षा का क्रम निम्न लिखित सूत्रसे ज्ञान हो सकता है—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार -
धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि ।

योग सू. २ । २९

" यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ अंग हैं । " ये योग के अंग हैं और योग साधन मानवी शिक्षाके लिये ही है । इसका अधिक स्पष्टीकरण यह है —

(१) **यम, नियम**= इसमें शुद्ध व्यवहार के साधारण नियम बताये जाते हैं। "अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ।" ये यम नियम हैं और इन का पालन करने से मनुष्य नीरोग, तेजस्वी और उच्च बनता है ।

(२) **आसन** = शरीर स्वास्थ्य के व्यायाम, जो अशक्त मनुष्य से लेकर सशक्त मनुष्यको भी लाभदायी हो सकते हैं ।

(३) **प्राणायाम**=अंदरकी जीवन शक्तिको चेतना देनेवाला यह व्यायाम है, इस से शरीर के जीवनकेंद्र शक्तिशाली होते हैं, इंद्रियोंकी शक्ति बढती है और मन का चंचल प्रवाह भी शांतिसे स्थिर होने लगता है अर्थात यह व्यायाम शरीरको तथा मन-सहित इंद्रियोंको भी लाभकारी है ।

(४) **प्रत्याहार और धारणा** = मन की स्थिरताके लिये ये अभ्यास हैं ।

(५) **ध्यान** = यह अभ्यास इधर मन की स्थिरताके लिये जैसा है उसी प्रकार उधर आत्मिक प्रसन्नता के लिये भी है ।

(६) **समाधि** = यह अभ्यास आत्मिक शक्ति विकास के लिये है । इस रीतिसे देखा जाय, तो पता लग जायगा, कि शिक्षा का क्रम जो पूर्वोक्त सूत्र में दिखाई देता है, वह शरीरसे प्रारंभ होकर आत्मातक समाप्त होता है । यही क्रम हमने पूर्व स्थलमें सूचित किया है । इससे स्पष्ट है, कि पाठ शालामें विद्यार्थी आते ही सबसे प्रथम उसको " मनुष्यधर्म " का सर्व साधारण उपदेश होना चाहिये और तत्पश्चात्

"आसन" आदि व्यायाम आयु, अवस्था और शारीरिक बल आदिके अनुरूप करालेना शिक्षक का प्रथम कर्तव्य है । "सूर्य भेदन व्यायाम" और " आसन" इनका उचित अभ्यास हो जाने के पश्चात् यथा विधि साधारण पूरक-कुंभक-रेचकात्मक प्राणायाम हरएक विद्यार्थी से करा लेना चाहिये। इन मेंसे बालकों के लिये तथा बालिका ओं के लिये कई अभ्यास साधारण होंगे और कई विशेष होंगे, इसका बिचार स्थानिक शिक्षकों को करना आवश्यक है।

यह विद्याभ्यास की " पूर्व तैयारी" है। शिक्षक तथा विद्यार्थी भी इस बातका अनुभव करेंगे, कि इस पूर्व तैयारी के पश्चात मन ऐसा प्रसन्न हो जाता है, कि जिसमें बोया हुआ विद्याका बीज उसी समय उगने लगता हैं। क्यों कि सूर्य भेदन व्यायामसे और आसनोंसे संपूर्ण नसनाडीयों के मल दूर होकर प्राणायामसे संपूर्ण शारीरिक और मानसिक केंद्रोंको स्फुरण मिलनेके कारण विद्याज्ञानका प्रवेश विद्यार्थीके मनके अंदर सुगमतासे हो सकता है। यह बात आज कल की शिक्षा प्रणालीमें नहीं है और इसी कारण शिक्षित तरुणों में निस्तेजता और निरुत्साह दिखाई देते हैं और शारीरिक शिक्षाके अभाव के कारण ही तरुणोंकी आहुति मृत्युके मुखमें पड रही है।

यह हमने देखा है, कि इतना करनेके लिये अधिकसे अधिक आध घंटे से एक घंटा पर्याप्त होता है, विद्यार्थी भी आनंदसे आसनों को और सूर्य भेदनको करते हैं, क्यों कि उनको तत्काल ही प्रसन्नताका अनुभव होता है। इतना आसन प्राणायाम का थोडासा अभ्यास प्रतिदिन नियम पूर्वक करनेसे न केवल उनको दैनिक उत्साह प्राप्त होता है, प्रत्युत संपूर्ण आयुकी नीरोगता प्राप्त होनेके कारण उनका जीवन भर उत्साह स्थिर रहता है। इस लिये इस शैलीमें जैसा वैयक्तिक वैसाही सामाजिक और राष्ट्रीय लाभ है।

कई लोग कहेंगे कि लडके शामके समय खुली हवामें गेंद बला, क्रिकेट, फूटबाल, हॉकी आदि खेल खेलेंगे, क्या इससे काम नहीं चलेगा ? इस शंका का उत्तर यह है कि आजकल विदेशी खेलोंका प्राधान्य हुआ है वह गुलामी मनका द्योतक है। देशी खेल खुली हवामें और खुले मैदान में खेलनेके लिये बहुत अच्छे होनेपर भी विदेशी खेलोंको अपने देशमें उत्तेजन देना सर्वथैव हानिकारक और दासता बढानेवाला है। इस से विद्यार्थीयों के मनपर यही परिणाम होता है, कि शरीर स्वास्थ्यके लिये अत्यावश्यक खेल भी हमारे पास नहीं हैं ! क्या राष्ट्रिय दृष्टिसे इस प्रकारका परिणाम होना इष्ट है ?

तथापि, मान लो, कि खुली हवाके खेल लडके खेलते हैं। परंतु इस में कई आपत्तियां हैं । साधनसामग्री के लिये धनका व्यय करना पडता है और पर्याप्त संख्यामें खेलनेवाले न रहे तो अकेले से

खेला नहीं जाता । इसकारण ये खेल धन वालोंके लिये ही उपयोगी हैं । परंतु शरीर स्वास्थ्य तो जैसा धनिकोंके लिये उसी प्रकार गरीबों के लिये भी आवश्यक है । दूसरी बात यह है कि ये खेल सब विद्यार्थी अवश्य ही खेलते हैं ऐसी बात नहीं है । सौ में पांच भी खेलते नहीं । खेलनेका मन में निश्चय होने परभी आवश्यक स्थान और साधन न होनेके कारण कईयों को अवसर ही नहीं मिल सकता । इत्यादि अनेक आपत्तियां इसमें है ।

परंतु आसन और सूर्यभेदन के व्यायाम करनेमें पूर्ववत एक भी आपत्ति नहीं है । दूसरे की सहायता के विना ही आसनोंका व्यायाम होता है, इसके लिये व्यय बिलकुल ही नहीं हैं, बहुत स्थानकी आवश्यकता नहीं है, तत्काल उत्साह बढता है और नस-नाडी की शुद्धता हो जाती है ।

यह बात स्पष्टही है कि आसनोंका प्रयोजन और है तथा खुले मैदानमें खेल-नेका प्रयोजन और हैं । परंतु खेलोंसे सुस्ती आती है और नसनाडी की मलीनता होती है, वैसी आसनोंसे नहीं होती, यह भिन्नता दोनों व्यायामोंमें है ।

इसके अतिरिक्त वृद्ध मनुष्य आसन करके अपना स्वास्थ्य सुरक्षित रख सकता है, परंतु उस अवस्थामें मर्दानी खेल खेलना प्रायः अशक्य हो जाता है । इत्यादि अनेक कारणोंसे पाठशाला की शिक्षा प्रारंभ होने के पूर्व घंटा आधा घंटा आसनों और सूर्य भेदन व्यायामों का अभ्यास करना अत्यंत लाभ दायक है । इनके करनेके पश्चात् सायंकाल में खुली हवामें खुले मैदान में पर्याप्त खेलनाभी उपयोगी है ही । देवत्व के लक्षणों में मर्दानी खेल खेलना ही पाहिला लक्षण हैं । (क्रीडाकुशलः देवः) मर्दानी खेल खेलनेमें कुशल होना देवत्व का एक लक्षण है । केवल इतने ही से देवत्व नहीं मिलेगा, इसके दूसरे लक्षणों को भी अपनाना अत्यावश्यक है, परंतु यह लक्षण भी उपेक्षणीय नहीं है ।

अस्तु, इतने लेखसे यह बात स्पष्ट हो गई है कि पुस्तकों का अभ्यास प्रारंभ होने के पूर्व पाठशालाओंमें आसनों,सूर्य भेदनव्या-यामों और प्राणायामों का यथायोग्य अभ्यास करवाना चाहिये । यदि शिक्षा प्रणालीमें इतना सुधार हो जाय, तो बहुतसे दोष दूर हो सकते हैं और आज कलके तरुणों की शक्तिका नाश नहीं हो सकता ।

पाठ विधिमें ब्रह्मचर्य का वायुमंडल उत्पन्न करने योग्य पाठ विधि बनाना चाहिये तथा पाठविधि ऐसा हो कि जिसमेंसे गुजर जानेके बाद ऋषियों के बताये हुए पूर्वोक्त पांच लाभ प्राप्त हो सकें ।

इस विषयमें बहुत सा लिखना है, परंतु इस प्रथम लेखमें इतनाही पर्याप्त है । आगे क्रमशः इसपर अधिकाधिक प्रकाश डाला जायगा ।

दयानन्द शताब्दिके उपलक्ष्य में पं० अभयद्वारा संगृहीत ।

वैदिक उपदेश माला ।(१०) सत्य ।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तन्मे राध्यतामिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।

एक बार एक विद्वान् लेखक ने ऋषि दयानन्द पर लिखने के लिये 'सत्यका दूत' यह अतीब उपयुक्त शीर्षक दिया था। सचमुच दयानन्द सत्य का सन्देश लेकर ही संसार में आये थे । उन्होंने दुनिया में जहां कहीं असत्य देखा उसका खण्डन किया और जहां जो सत्य देखा वह जरूर कहा, फिर चाहें सब संसार उनसे नाराज हो जाय, लोग इंटे बरसायें या जहर भी दे देवें । उन्हें सत्य प्यारा था- सदा प्यारा था और सत्यस्वरूप परमात्मा में भक्ति थी । पिछले लेखमें यह जान चुके है कि सत्य और श्रद्धा बहुत नजदीकी वस्तुयें हैं सत्य में विश्वास का नाम ही श्रद्धा है । इसलिये श्रद्धालु दयानन्द स्वभावतः "सत्यके दूत" हुवे और जगत् में ईश्वरीय सन्देश फिरा गये। सत्यार्थ का प्रकाश करना ही एक मात्र उनके जगत में उद्देश्य था । हम उनके आर्य समाजमें उनके इस महान् सन्देश का अनुसरण करनेके लिये ही प्रविष्ट हुवे हैं । वे जो हमारे लिये खजाना छोड गये हैं उस में एक चमकता हुवा अनमोल हीरा यह है ।

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सदा उद्यत रहना चाहिये।

यह सब जगत् अटल सत्य नियम से चल रहा है । सबने सत्य स्वरूप तक सत्यमार्ग से ही पहुंचना है। इसीलिये उपनिषद् में कहा है-"**सत्यमेव जयते नाऽनृतम् सत्येन पन्था विततो देवयानः ।**"

और इसीलिये सत्य सब से बडा धर्म है। सब पुण्य कार्य, सत्यमें समाजाते हैं और सब अधर्म और सब पाप 'असत्य' या 'अनृत' इस शब्द से समझे जा सकते हैं। क्यों कि धर्म और अधर्म अटल सत्य नियमों का पालन करना और तोडना है। जब हम सत्य व्यवहार करते हैं, तब जगत् की सब शक्ति हमारे पीठ पर होती है, हमारे अनुकूल होती है और जब हम थोडासा भी असत्य करते हैं, चाहे हम न जानें, तब हम इस महान् शक्ति को ललकारते हैं और स्वभावतः दुःख पाते हैं । जो है वह सत्य है और है नहीं वह असत्य है, तो सत्य के विपरीत आचरण करना, व्यर्थ में अपना सिर शिला से टकराना है। यदि हम इस इतनी स्पष्ट बात को समझ जांय तो हम कभी भी असत्य बोलना न चाहें, कभी भी असत्य न सोचें और कभी असत्य न करें ।

संसारमें अवश्य धोखे से भी सफलता मिलती दिखायी देती है । परन्तु यह सफलता क्षणिक

होती है और असलमें अवास्तविक होती है। फिरभी यह जितनी सफलता दिखाती देती है वह इस लिये होती है कि असत्य सत्य का रूप धर आया होता है। कोरे नंगे असत्य से किसी को धोखा नहीं दिया जा सकता। यदि सत्य के रूप धरने से ही कुछ क्षणिक सफलता मिलती है तो असली सत्य द्वारा ही क्यों न चिरस्थायी सफलता प्राप्त की जाय।इस धोखेसे मनुष्यको सदा बचना चाहिये।

यह ठीक है कि सत्य का जानना भी बडा कठिन है। परन्तु यह तभी तक है जब-तक कि सत्य से प्रेम नहीं होता। जिसे सत्य की लगन है,यही जिसके लिये दुनियामें एक मात्र चीज है; उसके पास तो सत्यप्रेमी जन की तरह भागा आता है। उसके लिये सत्य बडा आसान होजाता है। तो बात प्रेम की है। सत्य में अपना प्रेम पैदा कीजिये, सत्य से अपना अटूट नाता जोड लीजिये। यह एक ही वस्तु हमें हमारे उद्देश्य तक प-हुंचाने के लिये पर्याप्त है।

यह जीमें आता है और उचित प्रतीत होता है कि यदि आजकल के जगत् में विद्यमान एक महात्मा के वचन जिसका की सत्य ही प्राण है और सत्य के लिये जो रहा है उसके कुछ वचन उद्धृत कर दूं। मैं आशा करता हूं जैसे मुझे उन वचनों के पढने से सत्य के लिये उत्साहना मिलती है वैसे ही पाठकों को भी प्राप्त होंगी।

कहते हैं कि एक न्यायाधीश ने प्रश्न किया कि 'सत्य क्या है, । उसका उत्तर उसे नहीं मिला। पर हिन्दुधर्म ग्रन्थों के अनुसार सत्य के लिये हरिश्चन्द्रने सर्वस्व अर्पण कर दिया और खुद स्त्री पुत्र सहित चाण्डाल के हाथ बिक गये, इमाम हसन और हुसैनने सत्य के खातिर अपने प्राण दे दिये। ऐसा होते हुवे भी उस न्यायाधीश को जबाब नहीं मिला कि 'सत्य क्या है'।

"हरिश्चद्र जिसे सत्य समझते थे उसके लिये तरह तरह के संकट सहकर अमर होगये। इमाम हुसैन ने जिसे सत्य जाना उसके लिये अपना प्यारा देह तक खो दिया, पर हरिश्चद्र और इमाम हुसैन का जो सत्य था वह हमारा सत्य हो या न भी हो। क्यों कि हर एक व्यक्ति का सत्य परिमित अथवा सापेक्ष सत्य होता है।

"पर इस परिमित सत्य के बाद शुद्धनिरपेक्ष सत्य तो है ही। जो अखण्ड और सर्व व्यापक है वह अवर्णनीय है। क्यों कि सत्य ही तो परमेश्वर है अथवा परमेश्वर ही तो सत्य है।

"इस लिये जिसने सत्य के सच्चे स्वरूप को पहिचान लिया है, जो 'काया वाचा मनसा' सत्याचरण ही करता है उसने पर-मात्मा को पहिचान लिया है। और इसी लिये वह त्रिकालदर्शी भी होता है। वह जीवन्मुक्त है।

"जिसका जीवन सत्यमय है वह तो स्फटिकमणि जैसा है। असत्य तो इसके पास एक क्षणभर भी टिक नहीं सकता। सत्या-चरणी को कोई ठग भी नहीं सकता। क्यों कि उसके सामने दूसरों को असत्य भाषण

करना असंभव होना चाहिये । संसार में सब से अधिक कठिन व्रत सत्य व्रत ही है। सत्य स्वयं प्रकाश और स्वयं सिद्ध है। पर मैं जानता हूं कि ऐसा सत्याचरण इस विषम कालमें कठिन है, पर अशक्य नहीं है । जो पूरा सत्य वादी है वह तो अनजानमें भी न असत्य कहता है, न करता है । वह असत्य कहने और करने में असमर्थ हो जाता है। सत्य कहना और करना उसका स्वभाव हो जाता है।

"हमें हर एक कार्यमें सत्य ही का दृढता पूर्वक प्रयोग करना चाहिये। सत्यपर पूरी श्रद्धा रखनी चाहिये और जो सत्य मालुम हो उसे वैसा ही कहने में किसी से न डरना चाहिये । सत्य के अभाव में निर्दोषता असंभव है। सत्याचरण ही हमारी मुक्ति का द्वार है।

"सत्य शब्द की व्युत्पत्ति सत् से है जिसका अर्थ है 'होना'। केवल परमात्मा ही सदा तीनों कालमें एकरूप है । इस सत्य की जिसने भक्ति की है,इसे अपने हृदय में बिठा दिया है उस पुरुष को मेरा सौ सौ वार प्रणाम है।

"मैं तो यह कभी नहीं मानता कि अत्युक्ति से कभी जनता का थोडा भी भला हो सकता है। अत्युक्ति तो असत्यका ही एक रूप है। असत्य से यदि प्रजाकी उन्नति होती हुई दिखाई दे तो भी हमें तो उसका त्याग ही करना चाहिये। क्यों कि वह उन्नति आखिर अवनति ही सिद्ध होगी।

"आधे सत्य को मैं डेढ असत्य कहता हूं क्यों कि वह दोनोंको भ्रममें डालता है ।

"मेहतर के शरीरपर जो मैला लगता है वह तो शारीरिक, स्थूल होता है। उसे तो हम फौरन धो सकते हैं। पर अगर किसीपर असत्य, पाखण्ड आदिका मैल चडजाय तब तो उसे धो डालना बहुत ही कठिन बात है। क्यों कि वह मैल बहुत सूक्ष्म होता है । अगर कोई अस्पृश्य कहा जाय तो असत्यवादी और पाखण्डी लोगों को भले ही ऐसा कह सकते हैं।

" जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना इसीका नाम "सत्याग्रह" है। तो जनता की सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक उन्नति जितनी सत्याग्रहमें देख सकता हूं उतनी और किसी में नहीं। "

तो आइये आजसे हम सत्य का व्रत धारण करें और वेदमन्त्रद्वारा इसके लिये परमात्मा से अटल साहाय्य की प्रार्थना करें।

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तन्मे राध्यतामिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।

हे ज्ञानस्वरूप, हे सब व्रतों के स्वामी ! मैं यह व्रत धारण करूंगा। यह आपके संमुख प्रतिज्ञा करता हूं। मैं इस व्रत को कर सकूं। मेरा यह व्रत करा ओ। मैं अनृत को छोडता हूं और सत्य को प्राप्त होता हूं।

ऐतरेयब्राह्मण में तूष्णींशंस सूक्त।

(लेखक—श्री० पं. परमानंद उपदेशक)

ब्राह्मण ग्रन्थ क्या हैं? और इन का वैदिक साहित्य में क्या स्थान है? इस विषय पर बहुत मतभेद चला आता है, कई लोग तो मंत्र और ब्राह्मणभाग दोनों को वेद मानते हैं! उनके साथ अभी इस लेखके प्रयोजन के लिये हमारा कोई विवाद नहीं, परंतु कई और महानुभाव हैं जो ब्राह्मणों को यज्ञ विनियोगपरक ग्रन्थ मानते हैं, और यह समझते हैं, कि इनग्रन्थों द्वारा वेद मंत्रों को यज्ञों में विनियुक्त किया जाता है। ब्राह्मण ग्रंथों का भाष्यकार सायण इस विचार का प्रतिनिधि हैं। भारत के आधुनिक पण्डित भी प्रायः ऐसा ही समझते हैं और उन की देखा देखी यूरोपियन विद्वानों का भी यही मत आ ठहरा है, यूरोपियन विद्वानों में से जहां तक मुझे स्मरण पडता है प्रो० मैकडानल महाशयने इस से कुछ अधिक भाव गृहीत किया है और हर्षका विषय है, कि स्वर्गवासी पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी इस परम्पराजाल से बाहर निकलनेका यत्न करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण पर विचार करते हुए आप अपने ऐतरेयालोचन के पृष्ठ दोन पर इस प्रकार लिखते हैं:—

"वेदार्थवित्तमेन ब्राह्मणेन प्रोक्तं यज्ञविध्यनुस्यूतं मंत्रभाष्यमेव ब्राह्मणमिति, ...वस्तुतस्तु मंत्राणां हि ब्राह्मण-कालतोऽपि बहुपूर्व- कालजत्वात् ब्राह्मणकाले तदर्थप्रत्यय-संशयः संभाव्य एवेति ब्राह्मणकाराणां ब्राह्मणानां तदर्थप्रकाशनेन तत्तात्पर्या-ख्यानाय च प्रवृत्तिः समुत्पन्ना, तत एवमानि पैंग्यकौषीत-कैतरेयादीनि आदिवेदभाष्याणि संपन्नानि इति वक्तुं युज्यत एव ॥

अर्थः- वेदार्थ को सबसे अधिक जानने वाले ब्राह्मणों द्वारा कहा हुआ यज्ञविधि से युक्त और इसके अनुकूल वेदमंत्रों पर जो भाष्य है, वही ब्राह्मण है, बात तो यह है कि ब्राह्मणों के काल से वेद मंत्र बहुत काल उत्पन्न हुए थे, ब्राह्मणों के काल में उनके अर्थ ज्ञानमें संशय की संभावना हुई इसी कारण यह पैंग्य, कौषतिक और ऐतरेयकादि वेदों पर सब से पहले भाष्य बन गए यह कहना उचित है क्यों कि इनकी प्रवृत्ति वेदार्थ प्रकाशन के लिये हुई।"

आगे चलकर आप ब्राह्मण ग्रन्थों में नाना प्रकार का विज्ञान भी स्वीकार करते हैं और वेदमत्रों को ॐ यज्ञ की अपेक्षा अधिदैवत बहुल मानते हैं और इस बात पर शोक प्रकट करते हैं, कि सर्व वेदभाष्यकार सायण तथा अन्यान्य भाष्यकारों न वेद (और तदनुकूल ब्राह्मण ग्रन्थों)के केवल याज्ञिक अर्थ किये हैं। आप के शब्द बडे मर्म वेधक है, अतः उन्हें अक्षरशः यहां दिया जाता है, आप लिखते हैं–

हन्तैवंपदार्थविज्ञानशिक्षोपयोगीनि बहूपदेशपूर्णानि चैतादृशान्युत्कृष्टतमान्यधिदैवतव्याख्यानान्यपहाय परमात्मज्ञानपिपासूनां तर्पणानि अध्यात्मव्याख्यानानि च विलोक्य आधियज्ञव्याख्यानान्येवाभाषत सर्ववेदभाष्यकारः सायणाचार्यस्तथाऽन्येऽपि। उक्तं च तेन सायणन ऋक्संहिताभाष्येऽस्य वामीयसूक्तव्याख्यानारंभे 'एवमुत्तरत्राप्याधिदैवतपरतयाऽध्यात्मपरतया च योजयितु शक्यम्, तथापि स्वारस्याभावात् ग्रन्थविस्तारभयाच्च न लिख्यते; यत्र द्वासुपर्णेत्यादौ स्फुटमात्मात्मिको ह्यर्थः प्रतीयते तत्र तमेव प्रतिपादयामः'(१।१६४।१)वस्तुतो ध्वांताच्छन्नविज्ञानकालिकानामशेषशेमुषीमतामपि तेषां सायणमहीधरादीनामाधिदैवतार्थतोऽपि यत्रा ितं प्रकृतविज्ञानं मवं स्फुरितं सम्यगिति तच्छोच्यमेवाऽभवत्"

अर्थ– दुःख की बात है, कि इस प्रकारके पदार्थ विज्ञान की शिक्षा में उपयोगी और बहूपदेशपूर्ण ऐसे ऐसे उत्तम आधिदैवत व्याख्यानों को छोड कर और परमात्मज्ञान के प्यासों को तृप्त करनेवाले अध्यात्मव्याख्यानोंका लोप करके अधियज्ञ (याज्ञिक) अर्थ ही सर्व वेद भाष्य कार सायणाचार्यने किया इसी प्रकार औरों ने भी यही शैली अवलम्बन की, सायणाचार्यने स्वयं अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखा है (ऋ. १।६४।१) 'इस प्रकार आगे भी मंत्रों को अध्यात्म और आधिदैवत अर्थ में लगाया जा सकता है, तो भी अपनी रुचि के न होने और ग्रंथके विस्तार भय से नहीं लिखा जाता, जहां 'द्वासुपर्णा' इत्यादि मंत्र में स्पष्ट ही अध्यात्मिक अर्थ प्रतीत होता है। वहां वही अर्थ हम लिखेंगे, वास्तव में अन्ध कार से ढके हुए विज्ञानके काल में जन्म होनेके कारण बडे बडे बुद्धिमान् सायण महीधरादिकों को अधिदैवतार्थों से मंत्रों में कहा हुआ प्रकरण प्राप्त विज्ञान नहीं सूझा, यह शोक का विषय है।"

इसी ऐतरेयालोचन में पंडितजीने सायण और महीधर के हास्य जनक और कहीं कहीं अश्लील अर्थों का निराकरण करते और इनके अनृतेतिहास का खण्डन करते हुए ऐतरेय और दूसरे ब्राह्मणों में निम्न लिखित विज्ञानोंका उपदेश स्वीकार किया है:–

१ छोटी जातियों को मंत्र दर्शन तक का अधिकार(ब्राह्मण-ग्रंथ प्रवचन-तक का अधिकार तो सायणको भी अभिप्रेत है जो ऐतरेय को शूद्रपुत्र वतलाता है)

२ सार्वजनीन प्रीतिभाव।

३ आर्य भी अनार्य हो सकते थे। (ऐ० ७ । ३ । ६)

४ मनुष्यकी ११६ वर्षकी मध्यम आयु। (छा० ब्रा० ५ । १६ । ७)

५ जाति अथवा वर्ण गुण कर्मों द्वारा होता है। (ऐ० १ । २ । ३)

६ चातुर्वर्ण्य के कर्तव्य कर्म और धारणीय गुण।

७ चातुर्वर्ण्यके बलकारक भोजन (ऐ० ७ । ५ । ३—६)

८ चातुर्वर्ण्यके आयुध।

९ वाणी और सत्य की महिमा॥ (ऐ० ३ ।१ । १-२ ; ३ । ३ । १३ ; ४ । १ । १ ; १ । १ । ६ ; ५ । २ । ९ ; ४ । १ । १

१० पितृऋण संतानोत्पत्ति (ऐ०)७।३।१)

११ स्वयंवर और स्त्रीशिक्षा(५ ।५।४

१२ घर घर अग्नि होत्र (७ । २ । ९) सामग्री का प्रमाण (१।५।२)

१३ स्नान का विधान, न करने पर प्रायश्चित (७ । २ । ८)

१४ घृत बहुत हो, घृत खाकर ही मंत्र बोलना चाहिये(४ । २ । १)

१५ देवयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ न करनेवाला अनद्धा पुरुष(असत्य पुरुष)है(७।२।८)

१६ मनुष्य के तीन जन्म (छा. २।५।१)

१७ मृत्यु और पुनर्जन्म (छा. १४। ७ । २ । १-५) विद्या कर्म और पूर्वसंस्कार साथ जाते हैं।

१८ मनुष्य को मनुष्य क्यों कहते हैं ?

१९ अतिथि सत्कार (ऐ. ४।१।४)

२० यजमान और ऋत्विक दोनों सत्पात्र हों तो यज्ञ सफल होता है। कुयज्ञ तीन प्रकार का होता है, जग्ध, गीर्ण, वान्त (४ ।४ । ३ ॥ ३ । ५ । २) विद्वान् पुरोहित होना चाहिये (८ । ५ । ३) । यज्ञमें दक्षिणा (३ । ५ । ९) लौटाई हुई दक्षिणा न ले (६ । ५ । ९) सोना और हाथी तक दक्षिणा में देने चाहिये (८ । ९)

२१ वाणिज्य के वास्ते समुद्रयात्रा। (६ । ४ । ५)

२२ सार्वभौम राजा हो(८ । ४ । १)

२३ नगरों की प्राकार प्रबल शत्रुके आक्रमण पर परस्पर रक्षा के लिये नागरिकों की परस्पर प्रतिज्ञा घी को छूकर (१ । ४ ७) तानूनप्त्र (प्रतिज्ञा बद्ध) के साथ द्रोह न करे।

२४ सेना पति सेना के ३ भाग करके शत्रुपर आक्रमण करे (३ । ४ । १)

२५ उपभोक व्यवहार, बहंगी, सूई आदि (४ । ४ । ६ ॥ ८ । १ । १)

२६ पुरुषार्थ पर चार श्लोक, पुरूषार्थी के पाप चौरा हि में श्रमसे मरे हुए सो जाते हैं, खडे हुए, बैठे हुए, सोए हुए पुरुषका

ऐश्वर्य भी सो, बैठ और उठ जाता है, निद्राही कलियुग है, विस्तरे पर बैठे रहना द्वापर है, खडे होना त्रेता और चलना फिरना कृत युग है, पुरुषार्थी को ही मीठे फल खाने को मिलतें हैं, सूर्य नहीं थकता, परमात्मा भी चलने फिरने वाले, अपनी सहायता स्वयं करने वाले का सखा है, दूसरों पर आश्रित मनुष्य पापी है, लक्ष्मी अनुद्यमी के लिये नहीं है,

२७ सूर्योदय और सूर्यास्त का विज्ञान। (३ । ४ । ६)

२८ सूर्य का समस्त लोक धारण। (तै. १ । २ । १३ । २)

२९ चन्द्रमा में कलंक पृथिवी की छाया है, यह संसार देवयजन, कर्म भूमि है। (ऐ. ४ । ४ । ५)

३० जल में विद्युच्छक्ति और गर्भ विद्या (२। ५। ७; ६ । ५ । ५; ३ । १ । २; ५ । २ । १०)

३१ मुठ्ठा बांधकर जन्म (१ । १ ।३) पुनर्जन्म (२ । ५ । १)

३२ वायु मनुष्य का प्राणस्वरूप है, सूर्योदय के समय वायु चलता है (१। २ १)

३३ अग्नि ही भोजन उत्पन्न करता और पकाता है। (२ । ५ । ९

३४ मृतकों का दाह। (६ । ५ । ६)

३५ जल अमृत है। (८ । ४ । ६)

३६ शारीर (आत्मा)का ज्ञान (६।३।६) मनुष्य शरीर के ५ भाग (२।२। ४)

३७ घृत मनुष्यों का, सुगन्धियुक्त घृत देवताओं का, और कुछ तपाया हुआ घी पितरों का और माखन गर्भों का भोजन है (१ । १ ।३)

३८ गौ क्या क्या देती है (शत. ३। ।३)

३९ अंजन आखों का तेज है (१।१।३)

४० वर्ष के १२ मास, ३६० दिन, ७२० अहोरात्र (१ । १ । १; ३ । १ । १; २ ।२ । ७)

४१ चित्ररचना, शिल्प (श. ब्रा. ३ । २ । १ । ५)

४२ चन्द्रलोक पृथिवीसे २४००० कोस है,

भूमिका बहुत अधिक लंबी होगई है, अतः अब संक्षेपसे एक बात और कह कर हमें प्रकृत विषय पर आना है, वह बात यह है, कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती-जी ब्राम्हणों को वेदव्याख्यान रूप ही मानते, हैं, और यह तो स्वीकार करना ही पडेगा जैसा कि इन की शैलीसे स्पष्ट हो जाता है, कि ४ वेदों के ४ ब्राह्मण वेदों के दूसरे दर्जेपर अति प्राचीन और दूसरे दर्जे पर ही प्रमाण ग्रंथ भी हैं, अतः पं. सत्यव्रत सामा-श्रमी का उपर्युक्त अनुमान ब्राह्मण प्रयोजन के विषय में सर्वथा ठीक प्रतीत होता है, पंडितजी और स्वामिजी के अतिरिक्त सायण को भी यह मानना पडता है, कि ब्राम्हण ग्रंथ वेदके व्याख्यान रूप और पश्चाद्भावी है, सायणाचार्य का लेख इस प्रकार है:—

(क्रमशः)

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य।

(लेखक 'राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति' आत्मारामजी अमृतसरी)

संस्कारचन्द्रिका।

शताब्दी संस्करण बहुत उत्तम छपकर तय्यार है। मनुष्य मात्र के उपयोगी ग्रन्थ है। इस में हमारे जीवन में जो महत्व पूर्ण संस्कार होते हैं उनकी वैज्ञानिक खोज उनको कहां तक करने के लिए बाधित करती है यह सविस्तर बताया है । महर्षि दयानन्द प्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या है । प्रत्येक संस्कार की फिलासफि युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा बडी विद्वता से सिद्ध की है मू. सजिल्द ४) डा. व्यय ।।।)अजिल्द ३।।)

सृष्टिविज्ञान पुरुषसूक्तका स्वाध्याय तथा वेदोत्पत्ति संबंधी मंत्रोंकी व्याख्या मू.२)

तुलनात्मक धर्म विचार१) ब्रह्मयज्ञ ।।।) शरीरविज्ञान ।≡) आत्मस्थान विज्ञान~) नीति विवेचन १।) गीतासार ।=)

गुजराती हिन्दी शब्द कोष ६) समुद्रगुप्त ।।=) आरोग्यता।।) श्रीहर्ष।।) मजहबेइस्लामपर एक नजर =) ऋषिपूजा की वैदिक विधि ~) विज्ञापकके ग्राहकों को =) रुपया छूट। वा. मूल्य २)

विज्ञापक, बडोदा। अपने ढंग के अनूठे मासिक में प्रति मास **वैदिक समाजान्तर्गत** आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् राज्यरत्न आत्मारामजी, कुंवर चांदकरणजी शारदा, रावसाहब बाबु रामविलास जी, पं. आनन्द प्रिय जी, प्रोफेसर आर्ते एम. ए. के लेखों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रोचक विषय भी। वा. मू. २) नमूना ।~) प्रकाशक) **जयदेव ब्रदर्स बडोदा।**

"आर्य्यों को सिद्धान्तरक्षाकी सूचना"

वैदिक वेदान्त का सारगर्भित अपूर्व ग्रन्थ **" माण्डूक्योपनिषद् स्वरूपक। "** अर्थात "माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, ओंकाररहस्य, ओङ्कार दर्शन, ओंकारोपासना" जिसमें "सृष्टि-विज्ञान, शरीर विज्ञान और शब्द विज्ञान भी आगया है" जिसकी उत्तमता को श्री० म० नारायण स्वामीजी, श्री पं. आर्य्यमुनिजी, श्री . मास्टर आत्मारामजी राज्यरत्न (अमृतसरी) बडोदा आदि विद्वानों ने वर्णन किया है। मूल्य ।।≡) तथा "कठोपनिषद् का स्वरूप" अर्थात् "कठोपनिषद्भाष्य, यमगाथा, श्राद्ध मीमांसा तथा उसका वैदिक स्वरूप और रहस्य या मौतकी कहानी। मूल्य) ≡ मिलने का पता—

सञ्चालक- आर्ष विद्यासदन

(लखीचबूतरा) काशी

स्वाध्याय के ग्रंथ।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध।
मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन। १)
(२) य. अ. ३२ का व्याख्या। सर्वधर्म।
" एक ईश्वरकी उपासना। " मू. ॥)
(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण।
" सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥)
(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=)
(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =)
(४) देवताविचार। मू. ≡)
(५) वैदिक अग्नि विद्या। मू. १॥

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। मू. १॥)
(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥)
(३) वैदिक-प्राण-विद्या। मू. १)
(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।)
(५) योग साधन की तैयारी। मू. १)
(६) योग के आसन। मू. २)
(७) सूर्यभेदन व्यायाम। मू. ।=)

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग -)
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग =)
(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक ≡)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। १॥)
(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम--निबंध--माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।)
(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)
(३) वैदिक सभ्यता। मू. ॥।)
(४) वैदिक चिकित्सा--शास्त्र। मू. ।)
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥)
(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥)
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥)
(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥)
(९) शिव संकल्पका विजय। मू. ॥।)
(१०) वैदिक धर्मकी विषेशता। मू. ॥)
(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡)
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. =)
(१४) वेदमें लोहेके कारखाने। मू. -)
(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≡)
(१६) वैदिक जलविद्या। मू. =)
(१७) आत्मशक्ति का विकास। मू. ।-)

[७] उपनिषद् ग्रंथ माला।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या। ॥=)
(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला।

(१) शतपथ बोधामृत। मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;
औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

विशेषांक

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक २
क्रमांक ६२

माघ सं. १९८१
फर्वरी स. १९२५

वैदिकधर्म.

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-सचित्र-मासिक-पत्र ।

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

महाभारत ।

(१) आदि पर्व तैयार हुआ है । पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६) और वी० पी० से ७) रु० है ।

(२) सभा पर्व प्रतिमास १०० पृष्ठों का एक अंक छपकर प्रसिद्ध होता है ।

(३) १२अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म०आ० से ६) और वी० पी० से ७) रु० है ।

(४) हरएक ग्राहक को प्रारंभसे सब अंक मिलते हैं ।

म० आ० से मूल्य भेजनेसे ग्राहकोंका लाभ है, वी० पी० मंगवानेमें नुकसान है ।

शीघ्र ग्राहक बन कर महाभारत जैसे आर्योंके दिग्विजय के इतिहासिक काव्यका पाठ कीजिये ।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ हम तेरे ही हैं .... पृ. ३३
२ सम्राट् का वध ३४
३ वैदिक गीत ४६
४ योगमीमांसा ४७
५ व्रताचरण ५२
६ सरस्वती उपासकोंका दर्शन ५२
७ ईश्वर संकीर्तन (आरती) ५४
८ वेदमें सेनाध्यक्षोंके नाम ....
९ उपासना ५८
१० वै० सभ्यताका पुनरुद्धार ६१
११ वै० उपदेशमाला
आहिंसा और विश्वप्रेम ६२

ज्ञानी और शूर पुरुषोंका एक मत।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च
सम्यञ्चौ चरतः सह ॥
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं
यत्र देवाः सहाग्निना ॥

यजुर्वेद २०।२५

जहां ज्ञानी लोग और शूरवीर मिल जुलकर साथ साथ व्यवहार करते हैं और जहां ज्ञानी लोग तेजस्विताके साथ रहते हैं उसी देशको पुण्य कारक और बुद्धिसे प्राप्तव्य माना जाता है।

महाभारत

[सुंदर चित्रोंके साथ]

आर्योंका प्राचीन इतिहासिक महाकाव्य।

हम प्रतिमास १०० सौ पृष्ठों का एक अंक छाप रहे हैं।

इस समय तक आदिपर्व पृष्ठसंख्या ११२५ छप चुका है।

सभापर्व छप रहा है। यह भी दो मासमें संपूर्ण होगा।

आप शीघ्र ग्राहक बन जाइये।

१२०० बारह सौ पृष्ठोंका मूल्य म०आ० से ६) छह रु०और वी. पी. से ७) रु०है। आप म० आ० से रु० भेजेंगे तो आपका लाभ है, वी.पी.से आप का नुकसान है।

पीछेसे मूल्य बढेगा।

मंत्री —स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वर्ष १
अंक २
क्रमांक
६२

माघ
सं०१९८१
फर्वरी
स०१९२५

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

हम तेरे ही हैं ।

त्वज्जातास्त्वयि चरंति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ॥ तवेमे पृथिवि पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥

अथर्व. १२ । १ । १५

हे (पृथिवि) मातृभूमि ! हम सब (मर्त्याः) मनुष्य (त्वत्-जाताः) तुझसेही उत्पन्न हुए हैं, और (त्वयि चरंति) तुझपरही चलते हैं, तूही दो पांव वालों और चार पांव वालोंको (बिभर्षि) धारण पोषण करती हो, जिन प्राणियों के लिये (अमृतं ज्योतिः) अमृतमय तेज उदय होनेवाला सूर्य अपने किरणोंसे फैलाता है । वे (पंच मानवाः) पांच प्रकारके मनुष्य (तव एव) तेरे ही हैं।

मातृभूमिके ही हम सुपुत्र हैं, हमारा सर्वस्व मातृभूमिके लिये अर्पण होना चाहिये यह भाव हरएक मनुष्यके मनमें स्थिर होना चाहिये ।

सम्राट् का वध ।

साधारणतः आर्य धर्म शास्त्रमें " अराजक " लोगोंका सर्वत्र निषेध ही किया है । पुराणोंमें " नाऽविष्णुः पृथिवीपतिः" अर्थात् " विष्णु का अंश न होनेसे सम्राट् पद नहीं प्राप्त होता " ऐसा कह कर राजाकी शक्तीका अत्यधिक गौरव दर्शाया है । यद्यपि यह गौरव पुराणोंमें सर्वत्र है, तथापि " राजाकी शक्ति अनियंत्रित" है ऐसा किसीभी ग्रंथमें लिखा नहीं है । वेदमें भी—

राजा राष्ट्राणां पेशः ।

ऋग्वेद७।३४।११

" राष्ट्रका रूप अर्थात् राज्यकी सुंदरता राजा है । " इस मंत्रमें राजाको राष्ट्रका भूषण कहा है । इतना वर्णन होनेपर भी पुराणोंमें और इतिहासोंमें दुष्ट राजाओंका सर्वत्र निषेध ही किया है, प्रसंग विशेष में दुष्ट राजाओंका वध भी ऋषियोंने किया है । इस विषयमें वेन राजाका दृष्टांत सुप्रसिद्ध है ।

वेन राजाका वध ।

स्वायंभु मनुके वंशमें अंग नामक एक राजा था । इसका पुत्र वेन राजा अपने पिता के पश्चात् राज्यपर आगया । यह वेन राजा धर्म नियमानुसार राज्य चलाता नहीं था, इस लिये ऋषियोंने मिलकर दर्भास्त्रसे उनका वध किया । और उसके ज्येष्ठ पुत्रको नालायक होने के कारण शहरबदर करके, द्वितीय पुत्र पृथुको राजगद्दीपर बिठलाया । यह कथा विस्तार से महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण पद्मपुराण आदिमें है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि ऋषिमुनि सम्राट् का अत्यंत गौरव करते तो थे, परंतु उसके नालायक होनेपर उसका वधभी करते थे, और जो राजगद्दीके योग्य होगा, उसीको राज्य शासनमें नियुक्त करते थे । इसी नियमानुसार वेन के नालायक ज्येष्ठ पुत्रको राजगद्दी नहीं दी गई और द्वितीय पुत्रको दीगई। यह बात नालायक राजा के विषयमें होगई ।

नालायक राजाको इस प्रकार दंड करने में किसी भी सज्जन का मतभेद नहीं हो सकता । क्यों कि कोई भी

राजा क्यों न हो, वह विशेष कार्य करने के लिये ही राजगद्दीपर रखा जाता है। इस लिये जबतक वह उस कार्य को करेगा, तबतक ही वह राज्य पर रहेगा। जिस समयसे वह अपना कर्तव्य करना छोड देगा उस समयसे राजगद्दीपर रहनेका उसको अधिकार ही नहीं रहेगा इसी हेतुसे वेदमें राज्यारोहण समारंभ के प्रसंग के मंत्रोंमें कहा है कि —

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पंच देवीः। वर्ष्मन्राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥
अथर्व ३।४।२

"हे राजन्! राज्यके लिये (विशः) प्रजाएं (त्वां वृणतां) तुझकोही स्वीकार करें। पंचदिशाओंमें रहनेवाली सब प्रजाएं भी तेरा स्वीकार करें। उन प्रजाओंकी अनुमतिसे तू राज्यपर चढ और (उग्रः) शूर बनकर सब प्रजाओंको (वसूनि विभज) धनका योग्य विभाग दो।" तथा—

ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥
अथर्व. ६।८८।३

"हे राजन्। तेरी स्थिरता के लिये (इह) इस राष्ट्रमें (समितिः) राष्ट्रकी सभा तेरी सहायक हो।"

यह उपदेश स्पष्ट बता रहा है कि, वैदिक धर्मके अनुसार जनताके मतानुकूल चलने तक ही राजाके आधीन राजगद्दी रह सकती है। जिस समयसे वह प्रजाके मतानुसार नहीं चलेगा, उस समयसे वह राज्यसे भी भ्रष्ट हो सकता है। कई आर्य राजाओंका इस प्रकार प्रजा विरोधके कारण नाश हुआ था। और वह उनका नाश पूर्णरूपसे धर्मानुकूल ही हुआ था।

परंतु इन ऋषिमुनियोंको जिन्होंने कि वेनराजाका वध किया था उनको किसी भी इतिहास लेखक ने "अराजक" नहीं कहा। आजकल युरोपमें पाशवी सभ्यताके बढ जानेके कारण अराजकता का पंथ वहां शुरू हुआ है। उस प्रकार के मतका अंशभी पूर्वोक्त ऋषि मुनियोंके मनमें नहीं था। तथापि युरोपके समानही अराजकोंका षड्यंत्र महाभारतमें दिखाई देता है। इस का इस लेखमें विशेष विचार करना है। देखिये—

अराजकोंका षड्यंत्र।

भारत वर्षमें "सर्प" नामकी एक मानव जाती थी यह बात प्रसिद्ध है। सर्पस्त्रियां आर्योंके घरमें ब्याही जाती थीं, इस प्रकारके विवाह महाभारतमें कई हैं। दिग्विजयी आर्य जातीने सर्प जातिका पराभव किया था और सर्पजाती प्रायः परतंत्र और सर्वत्र अधिकार हीन सी बनगयी थी। महाभारतके पूर्वकालकी यह इतिहासिक घटना महाभारत काव्यमें स्पष्टतासे दिखाई देती है।

सर्प जाती की स्त्रियोंका विवाह आर्य पुरुषोंसे होता था, परंतु आर्य स्त्रियोंका विवाह सर्प जातीके पुरुषसे होता नहीं था। इस से भी सिद्ध होता है कि, सर्प जाती की राजकीय अवस्था अत्यंत निकृष्ट होगई थी, इसीलिये सर्प स्त्रियोंको आर्य पुरुषोंसे शरीर संबंध होनेमें लाभ प्रतीत होता था, वैसा लाभ आर्य जातिकी स्त्रियोंको सर्प जातीके पुरुषोंके साथ विवाह संबंध होनेसे नहीं प्रतीत होता था।

पराजित और परतंत्र जातीकी अधोगति की यही सीमा है कि, जिस समय उस परतंत्र जातीकी स्त्रियां अपनी जातिकी परतंत्रता करनेवाली और अपनेपर हुकुमत करनेवाली दिग्विजयी जातिके पुरुषों से शरीर संबंध करने में अपना हित मानने लग जांय। जब यह अवस्था हो जाय तत्पश्चात् उस पराधीन जातीके अभ्युदयकी कोई आशा नहीं समझनी चाहिये। क्योंकि स्त्रियोंके अंदरका स्वाभिमान नष्ट हुआ और जातीयता की कल्पना माताओंके शुद्ध अंतःकरणोंसे भी हट गयी, तो संतान भी वैसेही स्वाभिमान शून्यही उत्पन्न होंगे, इसमें संदेह ही क्या हो सकता है! इसी कारण सर्प जातीकी जो अधोगति पांडवोंके दिग्विजय के सबब होगई, उस पराधीनतासे फिर सर्पजातीकी उन्नति इस समयतक नहीं हुई। पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये कि, सर्पजातीकी दास्यवृत्तिकी यह अंतिम सीमा हो चुकी थी।

प्रायः अराजक "दबी हुई जाती" में ही उत्पन्न होते हैं। जब न्याय्य और धर्म्य मार्गोंसे अपनी उन्नति होनेके सब मार्ग बंद हो जाते हैं, विजयी लोग दबी हुई जातीको सब प्रकारकी उन्नति के मार्गपर चलनेमें चारों ओर से रोक लेते हैं, तब नवयुवकों के अंदर "अराजकता के विचार" उत्पन्न होते हैं और वे नवयुवक विजयी जातीके प्रमुख वीरों और राजाओंका घातपात जिसकिसी मार्ग से बने करनेको उद्यक्त हो जाते हैं। यही बात सर्प जातीके अराजक नवयुवकों ने की और इन्होंने आर्य सम्राट् राजाधिराज परीक्षित महाराजका वध राजगृहमें ही किया!!!

सम्राट् परीक्षित का वध।

सर्प जातीके नवयुवक राजा परीक्षित के दरबार में संन्यासियोंके वेषसे आगये। क्योंकि तापसी संन्यासी और साधुओंको आर्य राजाओंके भवनों म कभी भी प्रतिबंध नहीं था। देखिये इसका वर्णन--

जगाम तक्षकस्तूर्णं नगरं नागसाह्वयम् ॥ २१ ॥ अथ शुश्राव गच्छन्स तक्षको जगतीपतिम्। मंत्रैर्गदैर्विषहरै रक्ष्यमाणं प्रयत्नतः ॥ २२ ॥ स चिन्तयामास तदा मायायोगेन पार्थिवः। मया वंचयि-

तन्योऽसौ क उपायो भवेदिति ॥ २३ ॥ ततस्तापसरूपेण प्राहिणोत्स भुजंगमान् । फलदर्भोदकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः ॥२४॥

तक्षक उवाच ।

गच्छध्वं यूयमव्यग्रा राजानं कार्यवत्तया । फलपुष्पोदकं नाम प्रतिग्राहयितुं नृपम् ॥ २५ ॥ ते तक्षकसमादिष्टास्तथा चक्रुर्भुजंगमाः । उपनिन्युस्तथा राज्ञे दर्भानापः फलानि च ॥ २६ ॥ तच्च सर्वं स राजेन्द्रः प्रतिजग्राह वीर्यवान् । कृत्वा तेषां च कार्याणि गम्यतामित्युवाच तान् ॥ २७ ॥

म. भा. आदि. ४३

" तक्षकसर्प हस्तिनापुर को पधारा उन्होंने मार्ग में सुना कि राजा बडे यत्नसे सुरक्षित रहे हैं। तब सोचने लगा कि, कपटसे राजाको ठगना पडेगा। अनंतर तक्षक सर्पने अपने साथी सर्पोंको तपस्वीका रूप धारण कर तथा फल, दर्भ और उदक लेकर राजाके पास जानेको कहा। और साथ ही सावधानी की सूचना भी दी कि तुम हडबडी न दिखा कर किसी काम के बहानेसे राजाके पास जाकर उनको फल फूल और जल देना। सर्पोंने तक्षक सर्प की आज्ञानुसार कार्य किया और राजाको फलफूल और जल दिया। वीर्यशाली राजा परीक्षित् ने वह सब लेलिये और उनका कार्य पूर्ण कर चले जानेकी आज्ञा दी। "

इन श्लोकोंमें सर्प जातीके अराजकों के षड्यंत्र का ठीक ठीक पता लगता है। (१) सर्प जातीके कई नवयुवक आर्य संन्यासीके समान वेष धारण करते हैं, (२) राजाको भेट करने और आशीर्वाद देनेके मिषसे राज दर्बार में प्रवेश करते हैं, (३) राजदर्बार में इन कपटी साधुओं का प्रवेश होता है, (४) आर्य राजा उन तापसियोंके विषयमें किसी प्रकार संदेह नहीं करता !! परंतु उन साधुओं के बीच में ही एक मुख्य " अराजक सर्प " था, अन्य कपटी अराजक साधु फल देकर चले जाने पर भी वह वहां ही रहा था और योग्य समय की प्रतीक्षा कर रहा था। इतनेमें सूर्यास्तका समय हुआ और प्रायः सायं संध्या की उपासना करनेके लिये राजदर्बार विसर्जन करने की गडबड हो रहीथी, ऐसे समय में एकायक वह अराजक सर्प उठा और उसने सम्राट् परीक्षित का वध किया—

वेष्टयित्वा च वेगेन विनद्य च महास्वनम् । अदशत्पृथिवीपालं तक्षकः पन्नगेश्वरः ॥ ३७ ॥

म. भा आदि ४३

" अराजक सर्पने अपने शरीरसे महाराज परीक्षित को वेगसे घेर कर बडी गर्जना के साथ उसको काट लिया। "

अर्थात् यह वध किसी शस्त्रसे नहीं

किया गया, परंतु सम्राट् को भूमिपर गिराकर उसका गला घूंट लिया । सर्प जातीके नवयुवकोंके मनमें आर्यराजाओंके विषयमें इतना द्वेष था कि, वे आर्य राजाओंको गला घूट कर अथवा अपने मुखसे उनको काट कर उनकी जान लेने को प्रवृत्त होते थे !!! ऐसा क्यों हुआ, आर्य राजाओंने ऐसा कौनसा भयानक अत्याचार सर्पजातीपर किया था, इसका विचार करना चाहिये। यह देखनेके पूर्व एक दो बातें पहिले देखनी है, वे यह हैं—

राजाके मूर्ख मंत्री ।

ते तथा मंत्रिणो दृष्ट्वा भोगेन परिवेष्टितम् । विषण्णवदनाः सर्वे रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥ १ ॥ तं तु नादं ततः श्रुत्वा मंत्रिणस्ते प्रदुद्रुवुः ।

म. भा. आदि. ४४

"मंत्रीगण राजा को उस प्रकार घिरे हुए देख कर अति दुःखी होकर और मुख को खेदयुक्त बनाकर रोने लगे । आगे उसकी गर्जना का शब्द सुनकर सब भागने लगे ।"

देखिये ! ये दर्बारके मंत्रीलोग हैं ! राजाके शरीर पर शत्रुका आक्रमण हुआ है, वह अराजक नवयुवक राजाका गला घूंट रहा है, यह देखते हुए ये मंत्री रोते और भागते हैं !!! कोई एकभी अपनी तलवार उस पर नहीं चलाता ! क्या इससे अधिक मतिहीनता की सीमा हो सकती है ? जहां ऐसे दुर्बल मंत्री होंगे, वहां सम्राट् जीवित रह ही नहीं सकता। और साम्राज्य भी वहां अधिक देर तक रह नहीं सकता । पांडवोंके पश्चात् दूसरे ही पुश्त में इतना अधःपात हुआ था, यह यहां विचारसे ध्यानमें लाना चाहिये ।

उक्त प्रकार सर्प जातीके अराजक नवयुवकने राजाको अपने मुखसे काट कर मारा और वह भाग गया । और आर्य राजधानीमें वह पकडा भी नहीं गया, यह व्यवस्था हस्तिनापुर की थी!! ऐसी अंदाधुंदी यदि किसी राजधानीमें रही, तो उनका साम्राज्य कैसे बढ सकता है ! जागरूकता से अपना बचाव करनेकी शक्ति तो कमसे कम चाहिये ।

अराजक षड्यंत्र का पता ।

अराजक सर्पोंके षडयंत्र का पता राजाको सात दिन पहिले लगचुका था। और सम्राट् अपनी रक्षा भी कर रहा था । इतनी रक्षाका प्रबंध होनेपर भी कपटी सर्प संन्यासी दर्बारमें प्रवेश करते हैं, राजाके पास पहुंचते हैं और उनमेंसे एक राजाके शरीर पर हमला करता है; और उसका वध करता है, यह बात विशेष लक्ष्यपूर्वक देखनी चाहिये, तो भारतीय सम्राटोंकी दक्षताहीनता का पता लग जायगा । यदि अपने वध के लिये कई लोग षड्- यंत्र रच रहे हैं, तो

साधु हो, परीक्षा किये विना दर्बारमें प्रविष्ट होने देना यह दक्षताहीनता का ही द्योतक है ।

अराजक सर्पोंके षड्यंत्रका पता ऋषि मुनियोंके नवयुवकों को भी था । क्यों कि एक ऋषिकुमार ने ही पहिले कह दिया था कि, "आजसे सातवे दिन एक सर्प आकर परीक्षित का वध करेगा ।" देखिये—

तं पापमतिसंक्रुद्धस्तक्षकः पन्नगेश्वरः । सप्तरात्रादितो नेता यमस्य सदनं प्रति ॥ द्विजानामवमंतारं कुरूणामयशस्करम ॥ १४ ॥

म. भा. आदि. ४१

"क्रोधित तक्षक सर्प उस पापी, द्विजोंके अपमान करनेवाले , कुरुकुलके कलंक रूपी राजाको सात रातोंके बीचमें यमके घर पहुंचायेगा ।"

यह ऋषिकुमार का वाक्य अराजकों के षड्यंत्रकी बात स्पष्ट बता रहा है । नवयुवकों के अंदर कईयोंको इसका पता होगा ऐसा इससे स्पष्ट दिखाई देता है । सम्राट् के वधका समय भी करीब निश्चित साही होगया था । उक्त ऋषिकुमार के कथनमें सम्राट् परीक्षित के लिये "(१) पापी, (२)द्विजानां अवमंता, (३) कुरूणां अयशस्कर " ये तीन विशेषण हैं । इनमें भी कुछ भाव होगा ही । क्यों कि राजा परीक्षित् ने शमीक नामक एक शांत मौनव्रतधारी तपस्वी के गलेमें मृत सर्प लटका दिया था । कारण इतनाही था, की इसके प्रश्न का उत्तर उस तपस्वीने दिया नहीं ! जो राजा अपने प्रश्नका उत्तर न देनेके कारण मौनव्रती तापसोंका ऐसा अपमान कर सकता है, उसके विषयमें ब्राह्मण समाज में भी कितनासा आदर रह सकता है । इसी कारण उक्त ब्राह्मण कुमारने उक्त विशेषण परीक्षित के लिये लगाये हैं । अर्थात परीक्षित् के राज्यमें अराजक नवयुवकों का षड्यंत्र बढ गया था, और आर्य ब्राह्मण समाजमें भी उनका आदर थोडासा न्यून हुआ था । यद्यपि बडे श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग यह अपना अनादर व्यक्त नहीं करते थे, तथापि कुमार लोग उक्त प्रकार बोलनेमें संकोच नहीं करते थे । यह अवस्था उस समयकी थी ।

जब ऋषिकुमार का कथन उसके पिता शमीक ऋषीको ज्ञात हुआ, तब उस तपस्वीको बडा दुःख हुआ और उसने सम्राट् परीक्षित को अपनी रक्षा करनेकी सूचना दी । और इस सूचना के अनुसार ही सम्राट् अपनी रक्षा कर रहा था, परंतु मूर्ख मंत्रियों की दक्षताहीनताके कारण पूर्वोक्त प्रकार अराजक नवयुवक के द्वारा वह मारा गया । इस रीतिसे एक सर्प जातीके अराजक नवयुवक ने आर्य सम्राट् परीक्षित का वध किया ।

इससे पूर्व भी एकबार प्रयत्न ।

आर्य राजाका वध करनेका प्रयत्न सर्प जातीयोंने अनेकवार किया था, उस में यह अंतिम प्रयत्न था । और इस अंतिम प्रयत्न के समय सर्प जातीके युवक की इच्छा पूर्ण होगई, इससे पूर्व जो जो प्रयत्न किये गये थे, उन सबमें उनको सफलता नहीं हुई थी । इसका कारण इतनाही है कि, परीक्षित राजा स्वसंरक्षण के लिये समर्थ नहीं था, और इसके पूर्वजों में स्वसंरक्षण करते हुए अपना साम्राज्य बढाने की शक्ति विशेष थी । सर्प जातीके अराजकों का षड्यंत्र पहिले भी था, परंतु आर्योंकी वीरता विशेष रहने के कारण वे अराजक उनका कुछ भी बिगाड नहीं सकेथे, परंतु जिस समय आर्य राजाओं में वीरताकी न्यूनता और भोग भोगनेकी प्रधानता होगई, तब अराजकों की सफलता होने लगी । प्रायः अराजकों के शस्त्रोंका प्रयोग ऐसे ही दुर्बल राजाओं पर होता है । अब इसके पूर्वके षड्यंत्रका थोडासा वर्णन देखना चाहिये ।

अर्जुन और कर्णका युद्ध होने के समय एक अराजक सर्प नवयुवक अर्जुनका वध करनेकी इच्छासे कर्णकी सहायता करनेके लिये कर्ण के पास पहुंचा था और विशेष प्रकार के बाण भी उन्होंने वीर कर्णको दे दिये थे । देखिये-

ततस्तु पातालतले शयानो नागोऽश्वसेनः कृतवैरोऽर्जुनेन ॥ १२ ॥ अथोत्पपातोर्ध्वगतिर्जवेन संदृश्य कर्णार्जुनयोर्विमर्दम् ॥ १३ ॥ अयं हि कालोऽस्य दुरात्मनो वै पार्थस्य वैरप्रतियातनाय । संचिन्त्य तूणं प्रविवेश चैव कर्णस्य राजन् शररूपधारी ॥ १४ ॥

म. भा. कर्ण. अ. ९

" अर्जुनके साथ वैर करनेवाला पाताल देश निवासी सर्पजातीका एक अश्वसेन नामक मनुष्य, कर्ण और अर्जुन का युद्ध देख कर, अतिवेगसे ऊपर आया अर्जुन का बदला लेने के लिये यही उत्तम समय है, ऐसा देखकर कर्णके बाणों के संचयमें घुसा । "

इस वर्णन से स्पष्ट पता लगता है कि, अर्जुन के साथ वैर करने वाले सर्प थे । अर्जुन का नाश करने के लिये योग्य समय की प्रतीक्षा ये अराजक सर्प कर रहे थे । कर्ण और अर्जुन का युद्ध हो रहा था, यह देख कर इस अवसर से लाभ उठानेका निश्चय इन अराजक सर्पोंने किया ।

यहां पाठक देख लें कि इन अराजक सर्प युवकोंकी कितनी चतुराई थी । ये भीष्म, द्रोण आदि वीरों के साथ मिलकर अर्जुन का नाश करनेके लिये उद्युक्त नहीं हुए । क्यों कि ये अच्छी प्रकार जानते थे कि भीष्मद्रोणादी वृद्ध महारथी

अर्जुन का नाश कभी नहीं करेंगे। आर इनके साथ मिलनेसे अपनाही नाश होगा।

कर्ण के साथ मिलनेमें इनको कोई धोखा नहीं था। क्योंकि अर्जुन का वध करने की हार्दिक इच्छा कर्णके अंदर थी, कर्ण का कई वर्षोंसे इसी उद्देश्यसे प्रयत्न भी था। इसी कार्य के लिये विशेष प्रकार के शस्त्रास्त्र कर्णने अपने पास जमा करके रखे थे और कौरवोंके पास अर्जुनका सच्चा विद्वेषी कर्ण के सिवाय दूसरा कोई नहीं था। इसी लिये समद्वेषी सर्प युवक कर्णके पास आया और कर्ण के साथ मिलकर अर्जुन का नाश करनेका यत्न करने लगा। कई विशेष प्रकारके विषैले बाण तैयार करके इस सर्पने लायेथे और उसने इन बाणोंको कर्णकी तूणीरमें रख दिये। मनशा यह था कि, इन बाणोंसे अर्जुनका वध हो जावे।

उनमेंसे एक बाण कर्णने चलाया, परंतु वह अर्जुन के मुकुट पर लगा। उस बाणमें ऐसा कुछ मसाला भरा था कि, उस कारण अर्जुन का मुकुट ही जलगया! देखिये—

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो हुताशनार्कप्रतिमो महार्हः। महोरगः कृतवैरोऽर्जुनेन किरीटमाहत्य ततो व्यतीयात्॥ ४३॥ तं चापि दग्ध्वा तपनीयचित्रं किरीटमाकृष्य तदर्जुनस्य। इयेष गंतुं पुनरेव तूणं दृष्ट्वा कर्णेन ततोऽब्रवी-त्तम्॥ ४४॥

म. भा. कर्ण. ९०

"कर्णके हाथसे चलाया हुआ वह बाण अर्जुन के मुकुट पर लगा और उस कारण उसका मुकुट जल गया!" इस प्रकारके भयानक विषमय मसालेसे वह बाण तैयार किया था। यदि यह बाण शरीरपर लगता तो शरीर भी इसी प्रकार जल जाता! अराजक युवकों की यह कपट युक्ति इस प्रकार भयानक थी। परंतु इसबार अर्जुन का बचाव हुआ, फिर भी वही अराजक सर्प कर्णकी तूणीर के पास आगया और बोला कि—

मुक्तस्त्वयाऽहं त्वसमीक्ष्य कर्ण शिरोहतं यन्न मयाऽर्जुनस्य। समीक्ष्य मां मुंच रणे त्वमाशु हंतास्मि शत्रुं तव चात्मनश्च॥ ४५॥

म. भा. कर्ण० ९०

"हे कर्ण! पहिलीवार तुमने ठीक न देख कर बाण छोड दिया, इस लिये यह बाण सिरपर न लग के मुकुटपर लगा। अब की वार पुनः इसे ऐसा देख कर चला, कि जिससे तेरे और मेरे दोनों के शत्रु अर्जुन का हनन ठीक प्रकार होजाय।" यह भाषण श्रवण करके वीर कर्णको बडा क्रोध आया, क्यों कि कर्ण जैसे अद्वितीय वीरको यह युवक बोला कि "पहिलीवार ठीक देख कर बाण नहीं चलाया, अबकी वार ठीक

देख कर चला," ये शब्द किसी भी वीर को अपमानास्पद ही हैं। और आत्मसंमानी कर्णके लिये तो ये शब्द असह्य ही हुए। ये कठोर शब्द सुन कर कर्णने पूछा कि "तू कौन है!" उत्तर में उसने कहा—

नागोऽब्रवीद्विद्धि कृतागसं मां
पार्थेन मातुर्वधजातवैरम् ॥
म. भा. कर्ण. ९०।४६

"मेरी माताका वध करनेके कारण अर्जुनने मेरा बडा अपराध किया है" और इसलिये मैं अर्जुन का बदला लेना चाहता हूं। यह बात सुननेके पश्चात् आत्मसंमानी वीर कर्ण आर्य वीरके समान बोला—

न नाग कर्णोऽद्य रणे परस्य
बलं समास्थाय जयं बुभूषेत् ।
म. भा. कर्ण. ९०

"हे सर्प! वीर कर्ण दूसरेकी शक्ति का आश्रय करके जय प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करेगा।" अर्थात् आर्य जातिके शत्रुकी सहायता लेकर आर्यवीर का नाश करनेकी इच्छा करनेवाला कर्ण नहीं है। कर्ण के अंदर इतनी शक्ति है कि, जिससे वह अपने शत्रुका पराजय कर सकता है। यह कर्णका भाषण श्रवण कर अराजक सर्प युवक हताश होकर, अब कर्णके आश्रय की आशा छोड कर, स्वयंही अर्जुन का बदला लेनेका यत्न करने के लिये प्रवृत्त हुआ-

इत्येवमुक्तो युधि नागराजः कर्णेन रोषादसहंस्तस्य वाक्यम् । स्वयं प्रायात्पार्थवधाय राजन् कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः ॥ ततः कृष्णः पार्थमुवाच संख्ये महोरगं कृतवैरं जहि त्वम् ॥ ५० ॥
म. भा. कर्ण. ९०

"यह कर्णका भाषण सुन कर वह सर्प अर्जुनका वध स्वयं करनेकी इच्छासे अपना रूप उग्र बनाकर अर्जुन पर दौडा। यह देख कर श्रीकृष्ण अर्जुनसे बोले, कि हे अर्जुन! यह तेरे ऊपर हमला करने के लिये सर्प आ रहा है, इस वैरी का तू हनन कर।"

यहां तक सर्प कुमारों के अंदर अर्जुन के विषयमें द्वेष था। और इस प्रकार ये नवयुवक बदला लेनेके लिये प्रयत्न करते थे। परंतु अर्जुनादि आर्य वीरोंका अद्वितीय प्रताप होनेके कारण उनकी इच्छा सफल नहीं होती थी। इसी रीतिसे यहां भी उक्त अराजक सर्प के प्रयत्न सफल नहीं हुए। कर्णने उसकी सहायता करनेसे इनकार किया और इस लिये वह स्वयं अर्जुनपर दौडा, परंतु अर्जुनने एक बाणसे ही उसको यमराज का पाहुना बना दिया!

सर्प अराजक क्यों बने?

यहां प्रश्न होता है कि, सर्प जातीके अंदर इतना वैर आर्य राजाओं के संबंध में क्यों था? आर्य राजाओंने सर्प

जातीके ऊपर कौनसा अत्याचार किया था, कि जिस कारण सर्प जातीके लोग राजवध करने के लिये भी प्रवृत्त हुए थे ? इसका उत्तर महाभारत लेखक ही देता है—

योऽसौ त्वया खांडवे चित्रभानुं संतर्पयानेन धनुर्धरेण। वियद्‌गतो जननीगुप्तदेहो मत्त्वैकरूपं निहताऽस्य माता ॥ ५२ ॥ स एष तद्वैरमनुस्मरन्वै त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम् ।

म. भा. कर्ण. ९०

श्रीकृष्ण कहते हैं, "हे अर्जुन ! खांडव वन का दाह करनेके समय इसीकी माताको तुमने हनन किया था, उस सर्पी का यह पुत्र अश्वसेन सर्प उस वैर का स्मरण करके अपना वध करनेके लिये ही मानो तेरी प्रार्थना कर रहा है।"

सर्पके भाषण में भी यही बात है । सर्पजातीपर जो अत्याचार दिग्विजयी अर्जुनने खांडववनके दाह करने के समय किये थे, उन अत्याचारोंके कारण ही सर्पजातीके अंदर आर्योंके विषयमें विशेषतः अर्जुन के वंशजोंके विषयमें बडा ही वैर भाव हुआ था । अर्जुन ने खांडव वन में क्या किया था, इस का अब विचार करना चाहिये । उसका इतिहास यह है—

खांडव वनका दाह ।

इंद्रप्रस्थ और खांडव प्रस्थ ये दो विभाग पंजाब प्रांत के थे । देहली के पासका भाग इंद्रप्रस्थ नामसे प्रसिद्ध था । इसमें आबादी होगयी थी और नगरादि बसे थे । खांडव प्रस्थमें बडा भारी जंगल था, करीब दोतीन सौ मील का विस्तार इस महावन का था । इस वन पर इस समय शासनाधिकार तिब्बत निवासी देवसम्राट् इंद्र का था और इंद्रके शासनके नीचे असुर, दानव, राक्षस, सर्प, आदि जातियां वहां रहती थीं।

अर्जुन के मनमें वहां आर्योंकी वस्ती करनेका विचार आगया, परंतु वहां वस्ती करके रहना सुगम कार्य नहीं था । असुर राक्षसों से नाना प्रकार के कष्ट होना संभव था । इस लिये अर्जुन और श्रीकृष्णने विचार कर यह निश्चय किया कि इस खांडव वन को आग लगादी जाय । इस निश्चयके अनुसार उन्होंने उस वनको चारों ओरसे आग लगादी और जहां जहांसे भागनेके मार्ग थे उन पर स्वयं शस्त्रास्त्रोंसे सज्ज होकर रहे । इससे यह हुआ कि बहुतसी जातियां अग्निके कारण जल मरीं, जिन्होंने भागने का यत्न किया वे इन अर्जुनादि आर्य वीरोंके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मारेगये । इस प्रकार संपूर्ण खांडववन में रहने वाली जातियोंका क्रूरताके साथ अर्जुन ने नाश किया !!!

खांडववन पंद्रह दिनतक जल रहा था, इससे वनके विस्तार की कल्पना हो

सकती है। एसे विशाल वन में कितनी जातियां मारी और जलायीं गई, इसका कोई हिसाबही नहीं। इसका वर्णन आदिपर्वके अंतमें पाठक देख सकते हैं, यहां थोडासा नमूना देखिये—

तौ रथाभ्यां रथिश्रेष्ठौ दावस्याभयतः स्थितौ। दिक्षु सर्वासु भूतानां चक्राते कदनं महत् ॥ १ ॥
समालिंग्य सुतानन्ये पितॄन्भ्रातॄनथाऽपरे। त्यक्तुं न शेकुः स्नेहेन तत्रैव निधनं गताः ॥ ६ ॥

म. भा. आदि २२८

" वन के दाह होनेके समय एक ओर अर्जुन और दूसरी ओर श्रीकृष्ण रहेथे और वे वहां के रहनेवालों का नाश करने लगे। किसीने बच्चेसे, किसी ने पितासे किसी किसीने भाईसे लिपट कर वास स्थल ही में प्राण छोड दिये। पर स्नेहवश उनको छोड नहीं सके।" इस संहार का वर्णन देवोंके दूतोंने भगवान इंद्रके पास निम्न प्रकार किया—

किं न्विमे मानवाः सर्वे दह्यन्ते चित्रभानुना। कच्चिन्न संक्षयः प्राप्तो लोकानाममरेश्वर ॥ १७ ॥

म. भा. आदि. २२८

" हे इंद्र! अग्नि इन मानवों को जला रहा है जैसा कि प्रलय ही आगया है।" इसके पश्चात् कृष्ण और अर्जुन के साथ देवोंका युद्ध हुआ, देवों का पूर्ण पराजय हुआ, देव तिब्बतमें भागगये और अर्जुन का अधिकार खांडव प्रस्थ देश पर होगया। इस वनमें सहस्रों अनार्य जातिके लोगों का नाश हुआ। बडी कठिनतासे छः मनुष्य बचे...

तस्मिन्वने दह्यमाने षडग्निर्न ददाह च। अश्वसेनं मयं चैव चतुरः शार्ङ्गकांस्तथा ॥ ४७ ॥

म. भा. आद. २३०

"अश्वसेन सर्प जातीका युवक, मय नामक असुर (जो बडा इंजिनियर था) ये दो और चार ब्राह्मण पुत्र शार्ङ्गक ये छः बचे।" अश्वसेन को गोदमें लेकर माताने बचाया, परंतु अर्जुनने उस सर्पी स्त्रीपर भी शस्त्र चलाया और स्त्रीवध भी किया!!! मयासुर बडा भारी असुर जातीका इंजिनियर था इसको बचाया, इसने आगे जाकर प्रत्युपकार करनेके लिये एक बडा मंदिर पांडवोंके लिये बना दिया। अन्य चार ब्राह्मण पुत्र थे इस कारण बचे। अन्य सर्प, राक्षस और असुर कितने मरे, जले और मारे गये इसका कोई हिसाब ही नहीं।

केवल साम्राज्य बढानेके लिये।

अपना साम्राज्य बढानेके लिये इतनी क्रूरतासे अर्जुन और श्री कृष्णने काम किया और जिस संहारमें बाल, वृद्ध, गर्भिणी स्त्रियां आदि कोभी नहीं छोडा! इस रीतिसे पांडवोंने अपना राज्य बढाया, यह कारण है कि, सर्प जातीके नवयुवक जोशसे अराजक बन कर अर्जुन

और उसके वंशजों के पीछे पडे थे।

अश्वसेन ही कर्णके साथ मिलकर अर्जुनके वध का प्रयत्न करता रहा, परंतु अर्जुन के बाणसे वही मर गया। जिस समय खांडव वन जलाया गया, उस समय सर्पराज तक्षक खांडव वनमें नहीं था, वह इंद्र प्रस्थमें कुछ कार्य के लिये आया था, इस लिये बचगया। परंतु उसके मनमें अपनी जातीका इतनी क्रूरतासे अर्जुनने संहार किया इस लिये बडा वैर था। प्रयत्न करनेपर भी अर्जुन मारा नहीं गया, अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु बालपनमें ही कौरव वीरोंसे मारा गया, इस लिये अर्जुन के पोते पर अर्थात् सम्राट् परीक्षित पर पूर्वोक्त रीतिसे हमला करके सर्प जातीके लोगोंने उसका वध किया और इस प्रकार सम्राट्का वध करके सर्पोंने अर्जुन के किये अत्याचार का बदला लिया।

अराजक सर्पोंका प्रयत्न बदला लेनेके लिये इस प्रकार तीन पुश्तों तक लगातार चल रहा। परंतु परीक्षित के समय वे सफल होगये। सफल होकर भी क्या हुआ? आर्योंने मिलकर पुनः सर्प सत्र द्वारा सर्प जातीका भयंकर संहार किया। यह संहार इतना हुआ कि वह सर्पजाती इस समय तक अपना सिर भी ऊपर नहीं उठा सकी।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि, दिग्विजयी जातीके वीरों द्वारा जो अत्याचार पराजित जातीपर होते हैं, उनका बदला अराजकीय स्वरूपके अत्याचारों द्वारा लेनेका यत्न करनेसे, पराजित जातीका कदापि उद्धार होने की संभावना नहीं है। अराजकता के अत्याचार जो करते हैं, उनके उद्देश्य कुछ भी क्यों न हों, वे अत्याचार करने वाले अराजक अपने अत्याचारोंके कारण अपनी जातीकी उन्नति नहीं कर सकते। इस लिये पददलित जातियों को उचित है कि वे अपनी प्रवृत्ति अराजकीय अत्याचारों की ओर न झुकाकर, दूसरे अहिंसामय अनत्याचारी मार्गों का ही आक्रमण करके अपनी जातीय उन्नतिका साधन करें।

महाभारतसे यह बोध मिलता है। पाठक इसका विचर करें।

सारांश।

(१) दिग्विजयी जाती दलित जातीपर अत्याचार करती है, और अपना साम्राज्य बढाती है, इस कारण पददलित जातीके लोग अराजक बनते हैं, अर्थात् अराजकता का दोष पददलित जातिके पास नहीं होता है, परंतु दिग्विजयी जाती के क्रूर व्यवहार में होता है।

(२) अराजक वृत्तिके अत्याचारों से उन्नतिकी संभावना नहीं है, परंतु नुकसानही अधिक है, इस लिये अनत्याचारी मार्ग ही प्रशस्त है।

सर्प जाति ।

सर्प जाती कौन थी, इसका भी यहां विचार करना चाहिये ।

"सर्प" शब्द का अर्थ "हट, दूर हो, दूर खडा रह" ऐसा है । यह क्रियावाचक शब्द है । आर्यजाती इन को घृणाकी दृष्टिसे देखती थी, इस लिये जिस प्रकार दिग्विजयी युरोपीयन लोग इस समय अफ्रिकामें हिंदुस्थानियोंको रास्तोंपर से चलने नहीं देते, शहरों में बसने नहीं देते, गाडीयोंमें बैठने नहीं देते अर्थात हरएक समय "दूरखडा रह" ऐसाही कहते हैं, उसी प्रकार दिग्विजयी आर्यलोग हीन जातियोंको कहा करते थे। ये हीन लोग ही "सर्प" हैं । इस जाती पर कितना अत्याचार हुआ इसका थोडासा वर्णन हुआ लेखमें किया ही है ।

अस्तु । तात्पर्य यह है कि, पददलित जातिके लोगोंको यदि वास्तविक अपनी उन्नति करना है, तो अराजक वृत्तिसे अत्याचार करके किसी प्रकार का, या किसी अाहुदेदारका, वध करनेसे वह उन्नति प्राप्त नहीं होगी। उनको अपनी उन्नति करने के लिये अनत्याचारी अहिंसामय धर्म मार्गोंकाही अवलंबन करना चाहिये । यह बात महाभारत में अराजक सर्पोंके षड्यन्त्र के वृत्तांतसे कही है। पाठक इसका विचार करें और उचित बोध ले लें ।

वैदिक—गीत

(कवि.—गणेशदत्तशर्मा आगर मालवा)

निर्वैरता ।

ॐ असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ॥ नाना वीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ अ. १२ । १।२

अर्थः—

(यस्याः) जिसमातृभूमिके (मानवानां) मनुष्योंके (मध्यतः) अंदर (उद्वतः) उच्चता (प्र-वतः) नीचता तथा (समं) समता के विषयमें (बहु) बहुत [अ-सं-बाधं) निर्वैरता है, और (या) जो (नानावीर्या) विविध वीर्यगुणों से युक्त (ओषधीः) वनस्पतियोंको (बिभर्ति) धारण पोषण करती है वह (नः पृथिवी) हमारी मातृभूमि(नःप्रथतां) हमारी कीर्त्तिको (राध्यतां) सिद्धकरे ।

(सीतासूक्त)
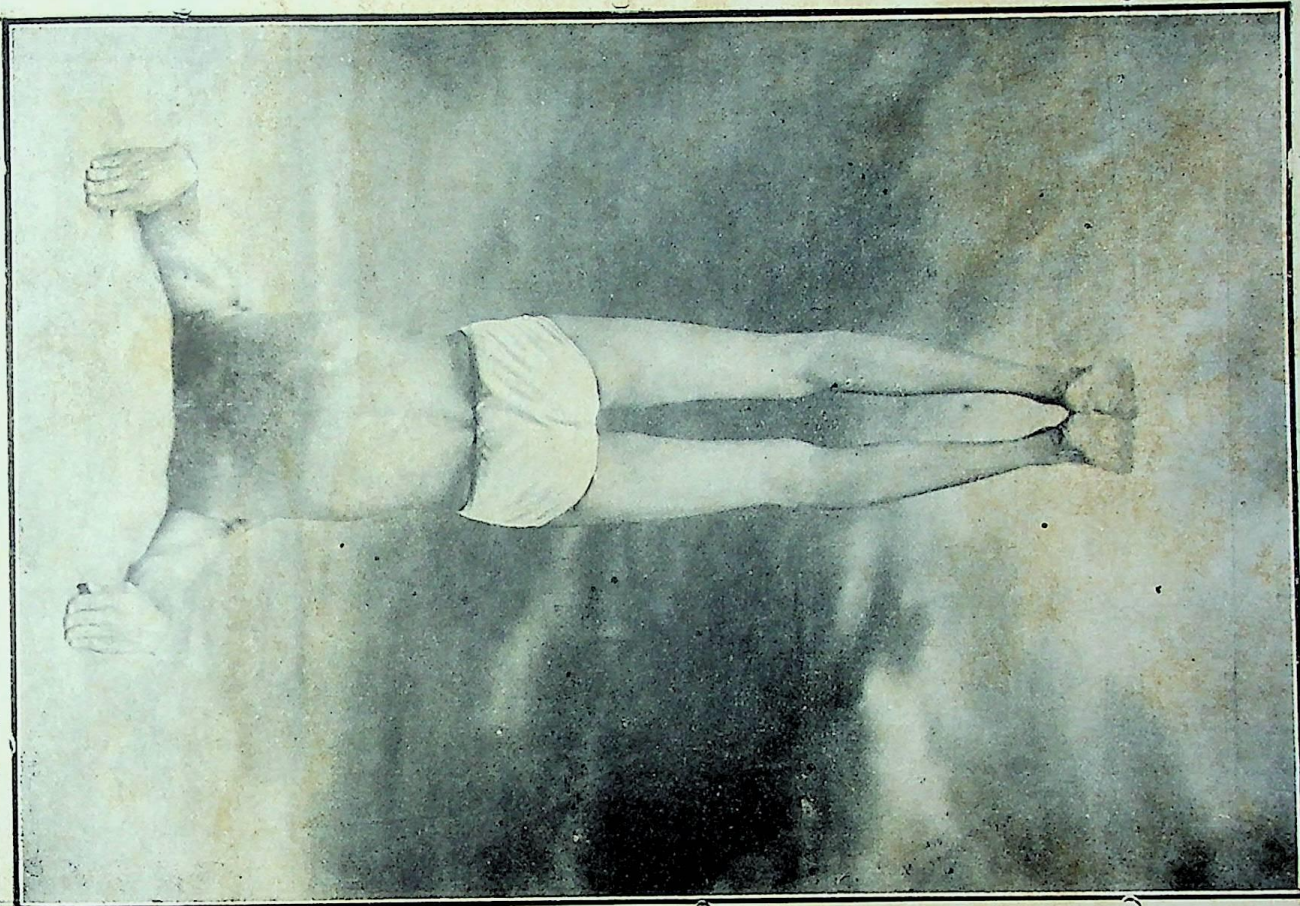
सर्वांगासन (खुले हाथ)

सर्वांगासन (पीछेका दृश्य)
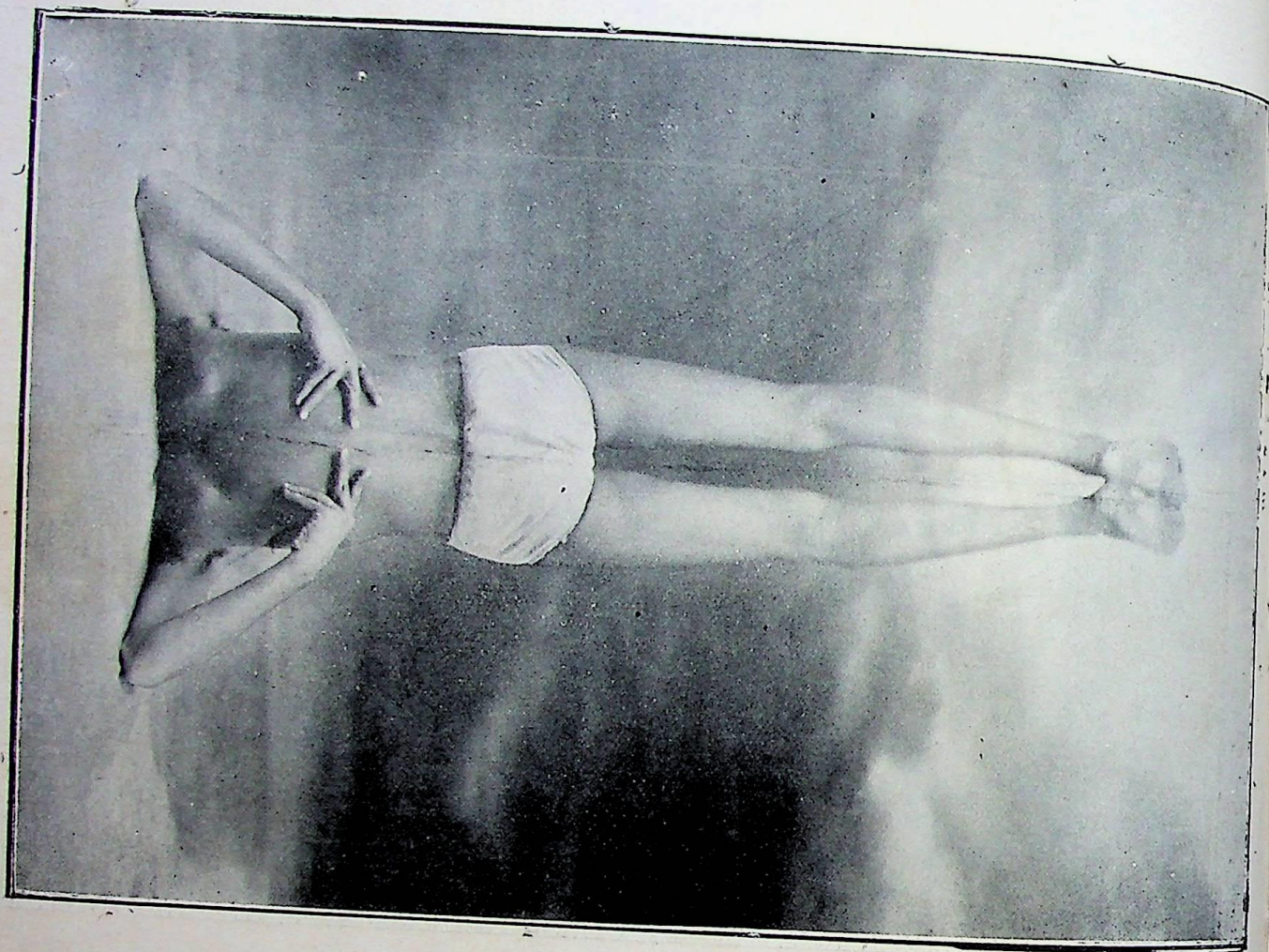
सर्वांगासन (खुले हाथ)
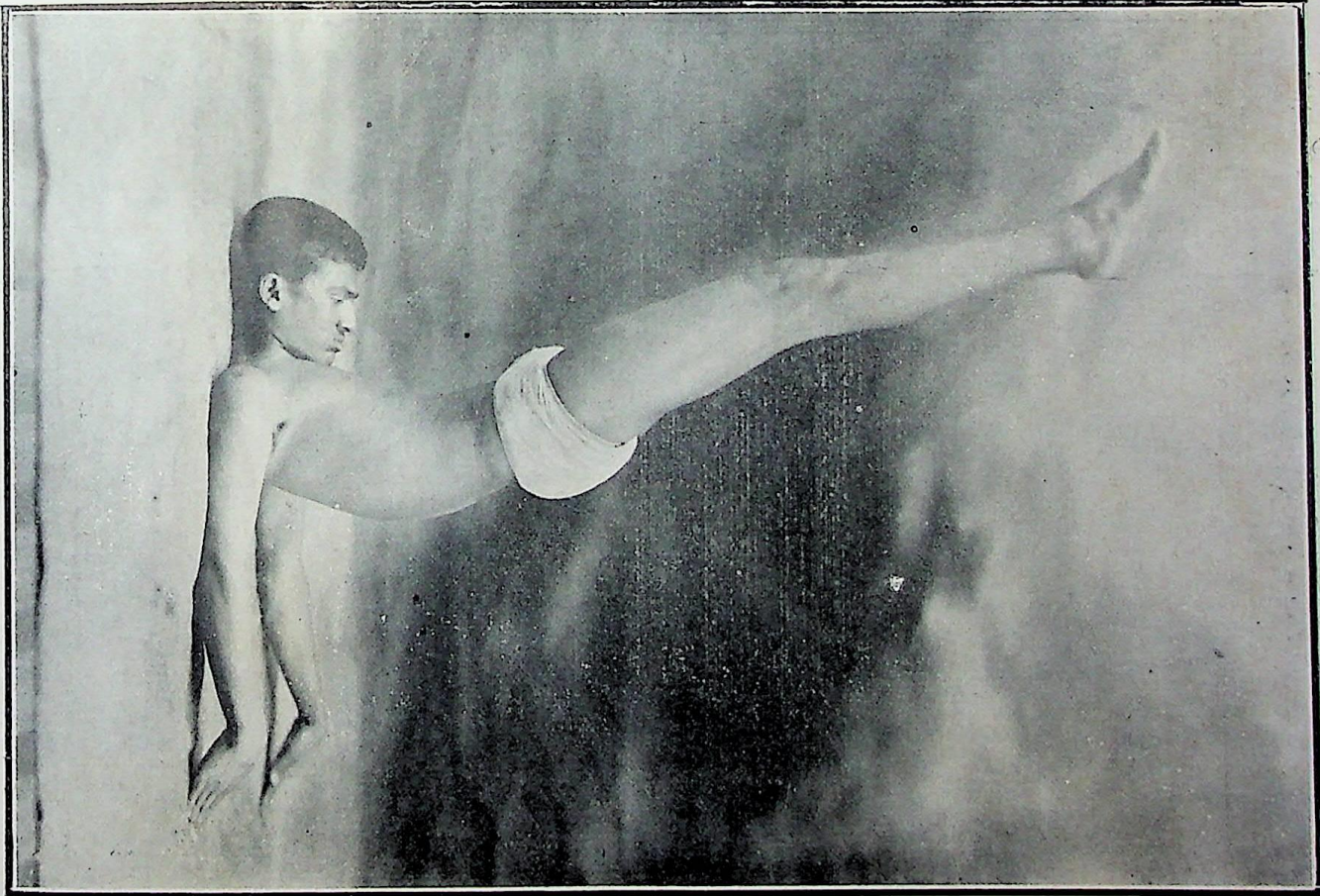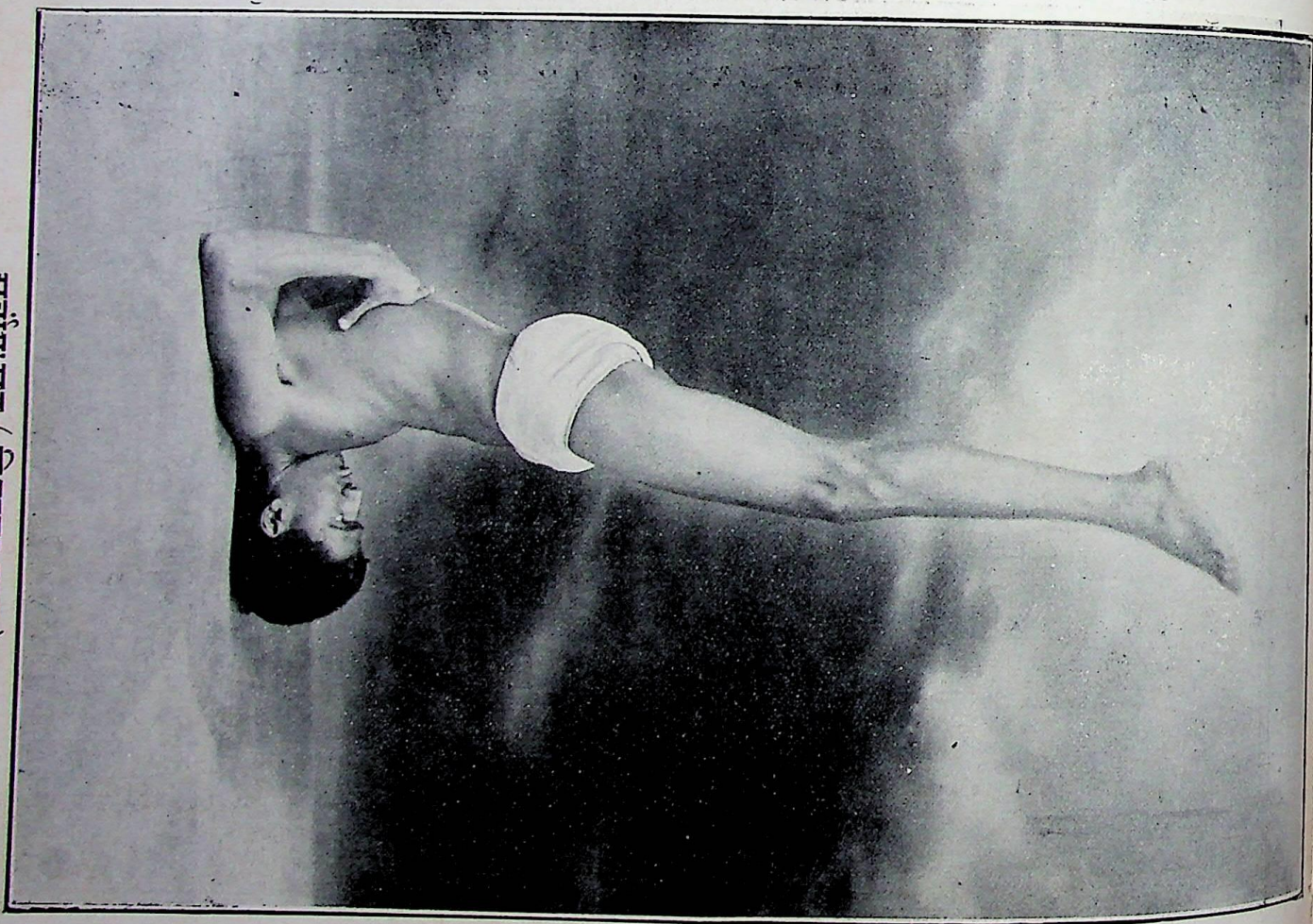
सर्वांगासन (तिरच्छा दृश्य)

मनोरंजन प्रेस, मुंबई ४.
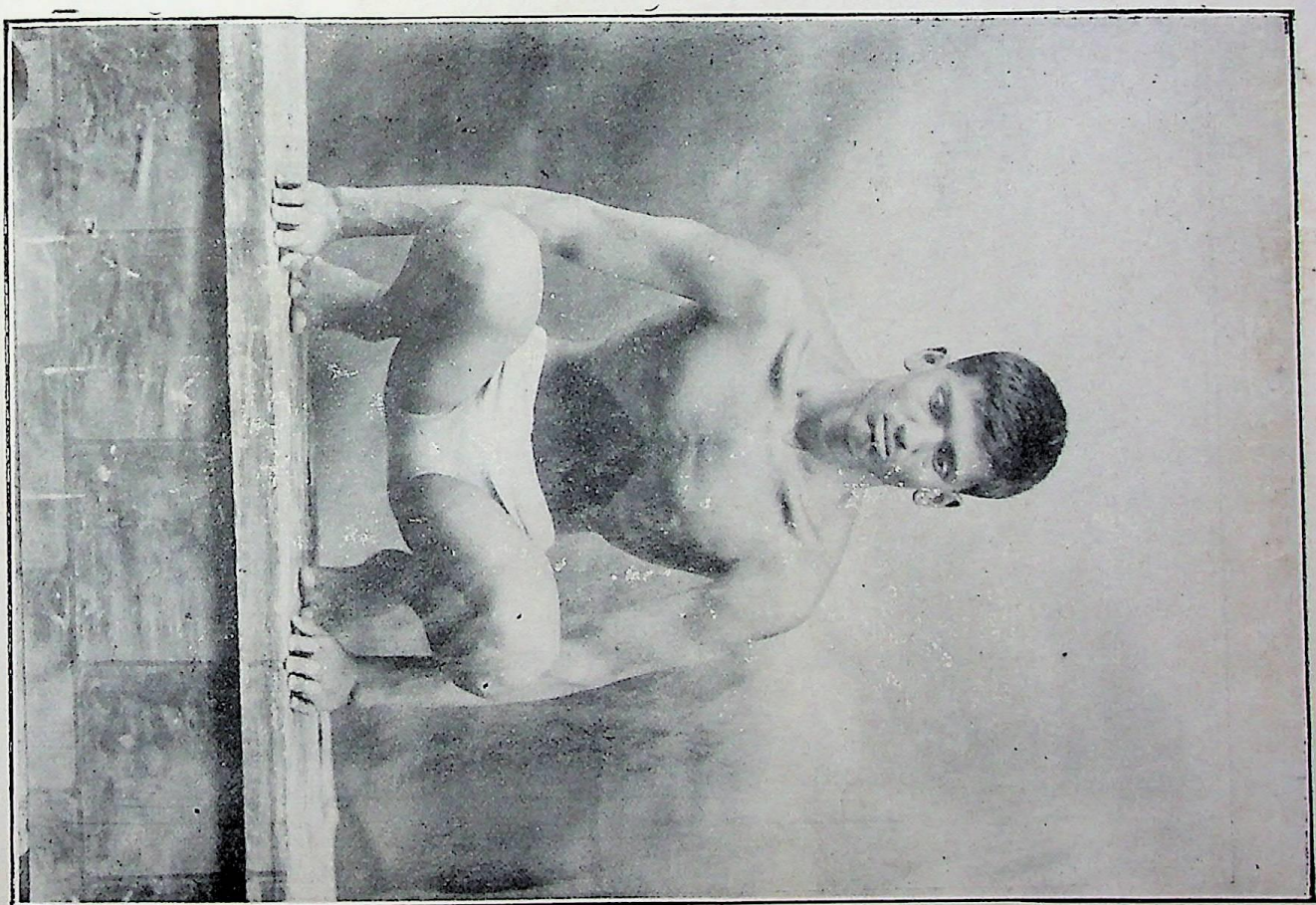
उड्डियान (पालथी मारकर)
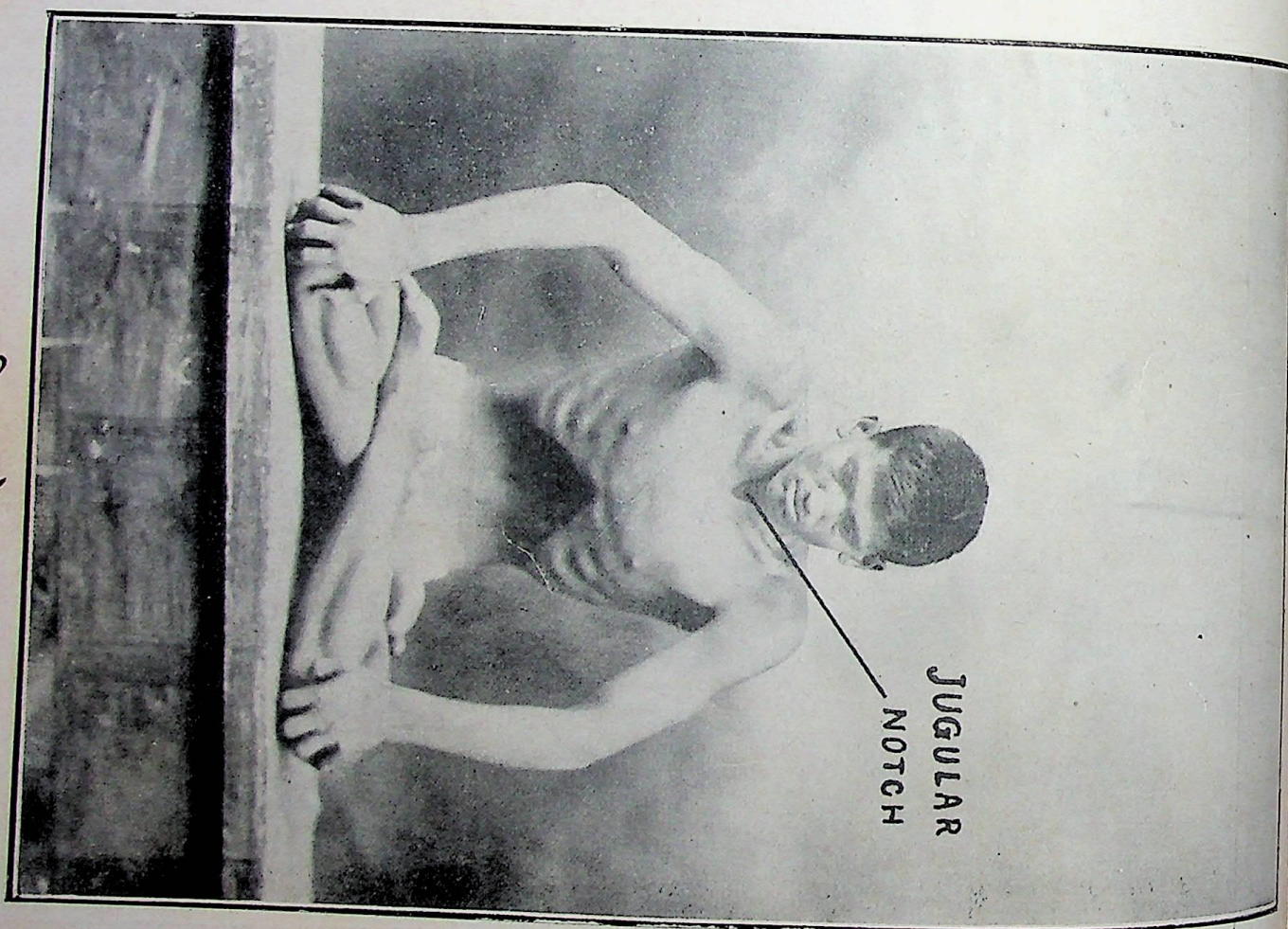
उड्डियान (बैठकर)

मनोरंजन प्रेस, मुंबई ४.
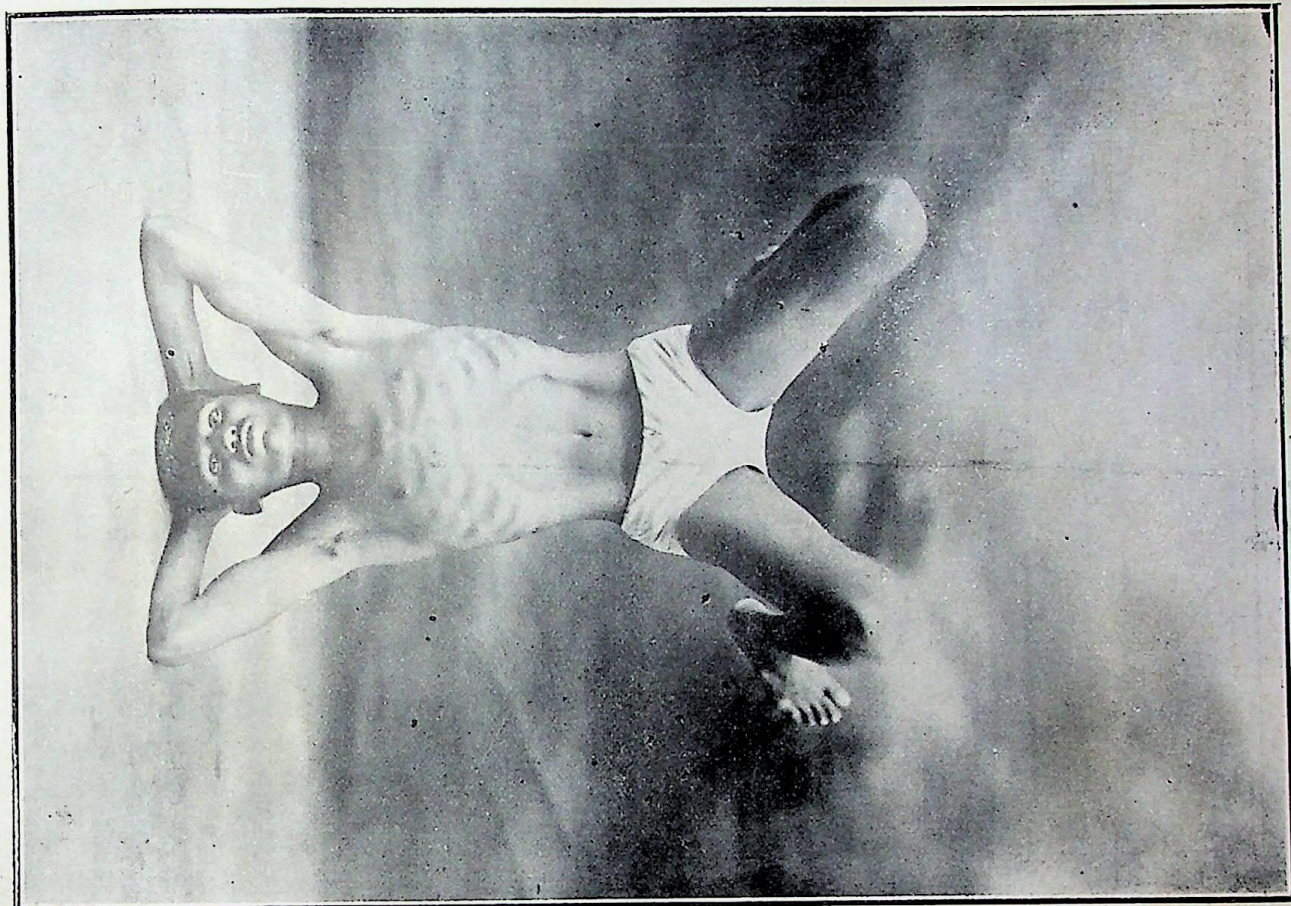
उड्डियान (शीर्षासनमें)

उड्डियान (खडे होकर)
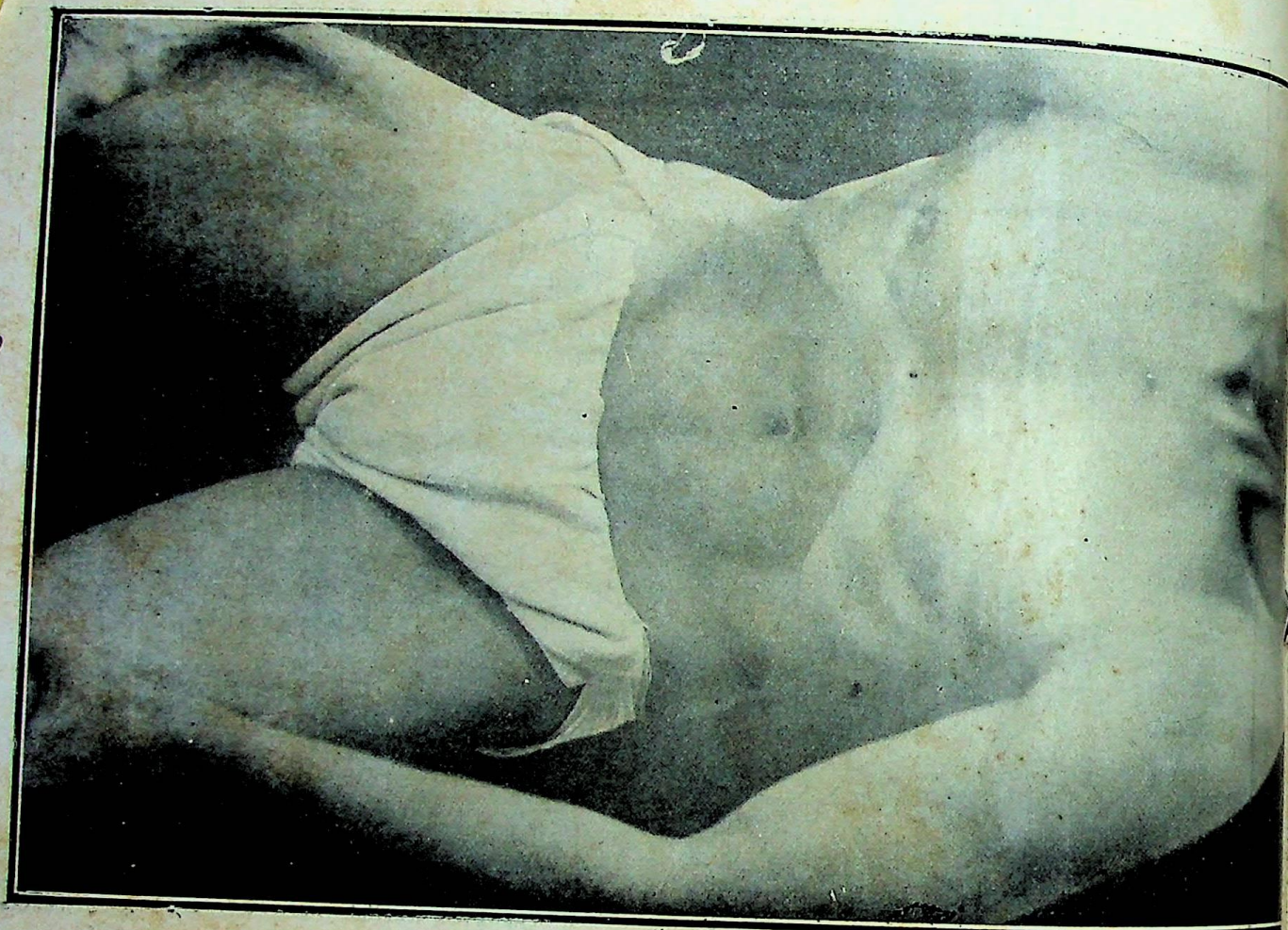
(सीतावृत्त)

मातृभूमी म बस ज्ञानी तथा जो शूरवा ।
और जो व्यापारप्रेमी शिल्पमें हो दक्ष वो ॥
हो न ईर्षा द्वेष का औ शत्रुताका लेशभी ।
उच्च हूँ मैं नीच है वो भाव ऐसे हों नहीं ॥ १ ॥
हीनता क दीनता के औ घृणाके भावको ।
राष्ट्र में रक्खो नहीं ये बात सच्ची मानलो ॥
जो बनेगा राष्ट्र ऐसा वो सदा फूले फल ।
हों यशस्वी देशवासी शान्तिका साम्राज्य हो ॥ २ ॥

दीर्घायु

ॐ इंद्रजीव, सूर्यजीव, दवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ अ० १९ । ७० । १

अर्थ ।

हे इंद्र ! तू जीवन शक्तिसे युक्त है । सूर्य ! तू जीवनसे युक्त है। हे देवता आ ! आप जीवनसे युक्त हैं ।अतएव मैं जीवित रहूंगा । अर्थात्–मुझे पूर्णायु प्राप्त हो, मैं पूर्ण आयुतक जीवित रहूँगा ।

(सोरठा)

तुमहो जीवन–युक्त, इंद्र सूर्य अरु देवगण ।
दीर्घायुसे युक्त, आप हमें भी कीजिये ॥

योग मीमांसा ।

श्री० कुवलयानंद जी, कुंजवन, लोणावला (जि. पूना) से " योग मीमांसा " नामक त्रैमासिक पत्र निकाले रहे हैं । योग साधन का शास्त्रीय विचार और प्रचार करनेके उद्देश्यसे यह त्रैमासिक प्रारंभ हुआ है । इसका प्रथम अंक हमारे सन्मुख है । इस एक अंकमें करीब ८० पृष्ठ हैं और योगासनों के १६ सुंदर चित्र हैं, इन सोलह चित्रों मेंसे आठ चित्र इसी मासिक में इसी समालोचनाके साथ दिये हैं, इनको देखनेसे पाठकों को पता लग जायगा कि, चित्रोंकी सुंदरता कितनी उत्तम है ।

अब इस लेखमें " योगमीमांसा " के

लेखोंका परिचय हम पाठकों के साथ कराना चाहते हैं। मुख्य लेख उड्डियान बंध पर है। जो पाठक योगसाधनसे परिचित हैं उत्तमतासे जानते हैं कि योगमें "उड्डियान" का महत्व कितना है। योगके अनेक साधनोंमें साक्षात् अथवा परंपरासे उड्डियान का संबंध आता है।

(१) उड्डियान ।

पेट और आंतोंको पसलियोंके अंदर ऊपर और पीछे की ओर ले जानेसे उड्डियान सिद्ध होता है। इसको करनेके लिये घुटनोंपर हाथ रखके, सिर आगे झुकाकर, श्वास बाहर छोडकर पेटको आंतों के साथ पसलियों में ले जाना चाहिये। साथ वाले चित्रोंसे इसके करने का विधि ठीक प्रकार ज्ञात हो सकता है।

श्वास जबतक बाहर रुका रहता है तब तक ही यह उड्डियान हो सकता है। यह बलसे अधिक करना भी नहीं चाहिये, क्यों कि इससे हृदयपर विशेष दबाव पडता है। इस लिये जो हृदय के कम जोर हैं उनको इसका थोडा अभ्यास करना चाहिये, अर्थात् प्रारंभ में दिनमें इसका अभ्यास केवल एक दोवार ही करना चाहिये। अधिक नहीं।

इसका परिणाम पेटपर तथा आंतों पर बहुत ही अच्छा होता है और इसी लिये पेटके तथा आंतोंके बहुतसे दोष इसके करनेसे दूर हो जाते हैं।

(२) उड्डियान का दूसरा प्रकार।

पालथी लगाकर भी उड्डियान किया जाता है, योगकी बस्ति विधिके लिये इसका अभ्यास अपूर्व लाभ कारी है, यह यहां स्मरण रखना चाहिये कि, डाक्टरी बस्ती (एनिमा) आंतों को कम जोर बना देता है और योगबस्ति आंतोंको बलवान् बना देता है। इस लिये आरोग्य साधन की दृष्टिसे योगबस्ति अत्यंत उत्तम है। इस योगबस्तिकी सिद्धता के लिये पालथी लगाके उड्डियान करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

उड्डियान करनेसे आंतोंके नीचेके भागमे निर्वात प्रदेश बनता है, और जहां निर्वात स्थान होता है वहां जल का संचार हो सकता है। यही कारण है कि योग बस्तिके द्वारा यंत्रादिकी सहायता के विनाही आंतोंमें जल प्रविष्ट होता है। इतनाही नहीं, प्रत्युत डाक्टरी यंत्रसे भी जलकी पहुंच जहां नहीं है, वहां तक भी जलप्रवेश योगबस्तिसे हो सकता है। और यह सब उड्डियानसे सिद्ध होता है। इससे पाठकोंके मनमें उड्डियान का महत्त्व आजायगा।

(३) शीर्षासनमें उड्डियान।

शीर्षासन में भी उड्डियान बंध किया जाता है, इस समय पांव सीधे न रखते हुए घुटनोंमें मोड कर ही रखने होते हैं, जैसा कि तस्वीर में बताया है। इस में युक्तिसे तथा मनकी प्रेरणासे आंतों

का निचला गुदाके पास का भाग खुला किया जाता है। थोडे दिनोंके अभ्याससे यह भाग खुला करना सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार यह आंतोंका भाग खुला करनेसे पेट का दुर्गंध वायु सुगमतासे बाहर निकल जाता है। इस कारण वायुके प्रकोपसे होने वाले कई रोग इसके अभ्याससे दूर हो जाते है। इस ढंगसे उड्डियानका वर्णन "योगमीमांसा" में किया है।

(४) सर्वांगासन।

पहिले पीठकेबल भूमिपर (कंबलपर) लेट जाइये। पश्चात् सब शरीरके पट्टे ढीले करके शनैः शनैः पांव ऊपर करके हाथ के सहारेसे चित्रमें बतायी रीतिके अनुकूल अपने शरीर की स्थिति कीजिये। प्रारंभ में थोडे समय तक अभ्यास प्रारंभ करके जसा जसा अभ्यास होगा वैसा वैसा अभ्यास बढाइये। हाथों का सहारा छोडकर भी यह आसन हो सकता है, परंतु उसके लिये कुछ अभ्यास होना आवश्यक है। इसमें मुख्य बात जो विशेष ध्यानसे करनी चाहिये वह यह है कि, छाति पर ठोडी लगनी चाहिये। आंख का लक्ष्य पांवके अंगूठों पर रखना भी उचित है।

इस आसन का शुभ और आरोग्य वर्धक परिणाम संपूर्ण शरीरपर होता है, विशेषतः रक्त संचार करने वाली धमनियों, मज्जा केंद्रों, और पृष्ठवंशके अस्थियोंपर भी होता है और इसी कारण सब शरीर पर इसका विलक्षण आरोग्य वर्धक और हितकारक परिणाम होता है।

गलेकी ग्रंथी जिसके द्वारा शुद्ध रक्त का संचार होता है उस की निर्मलता इस आसनसे होती है, इसीलिये इस आसनका विशेष महत्व है। वीर्यक्षीणता, अति कामसंबंध तथा अन्यान्य संसर्ग रोगोंके कारण इस ग्रंथीकी शक्ति क्षीण होती है। इस ग्रंथी (Thyroid gland) की निर्मलता के कारण पोषक रक्त प्रवाह कम होनेसे अनेक व्याधि उत्पन्न होते हैं। इन सब का निर्मूलन इस आसनसे होता है। इस लिये जो मनुष्य इस सर्वांगासन का अभ्यास नियम पूर्वक करते हैं उनका शरीर पुष्ट बनता जाता है।

हमेशा हृदयके रक्ताशयसे रक्त ऊपर जाता है अथवा ठीक रीतिसे कहा जाय तो रक्त ऊपर भेजा जाता है। भेजन के लिये परिश्रम पडते हैं और यदि गलेकी ग्रंथी दूषित रही तो रक्त ऊपर जानेमें बडी रुकावट होती है, इस लिये इस ग्रंथीकी निर्मलता तथा कार्यक्षमता रहनेका आरोग्य के साथ कितना संबंध है यह बात यहां स्पष्ट हो जाती है।

सर्वांगासनसे यह चमत्कार होता है कि, उक्त ग्रंथी शुद्ध होती है और साथ साथ गलेका भाग हृदयसे निम्नस्थानमें

होनेके कारण रुधिर स्वयं ही निम्न भागमें चला जाता हे और चाहिये उतना हृदयसे रक्त मिलनेके कारण सिर के तथा गलेके भाग निर्दोष और पुष्ट होते हैं। मस्तिष्क का पोषण होने से सब शरीर की निरोगता होने में सहायता होती है। यही कारण है कि जिससे सर्वांगासनसे सब शरीर पर उत्तम परिणाम होता है।

(५)सर्वांगासनसे चिकित्सा।

रोग जंतुओंसे शरीर पर बारंवार हमले होते हैं। शहरों में रोग जंतुओं की गिनतीही नहीं है, ये रोग जंतु हरएक शरीर पर हमला चढाते हैं, परंतु हरएक आदमी रोगी नहीं होता। कई लोक रोगी होते हैं, कई मरते हैं, कई बचते हैं, परंतु कई बिलकुल बीमार होते ही नहीं। इसके अनेक कारणोंमें एक कारण यही है कि जिनकी पूर्वोक्त ग्रंथि ठीक कार्य करती है वे नीरोग रहते हैं, परंतु जिनकी ग्रंथी क्षीण हुई होती है, वे रोगजंतु ओंका हमला होते ही बीमार हो जाते हैं। क्योंकि रोगोत्पादक विषका प्रतिबंध करनेका रस इसी ग्रंथी से निकलता है। आजकल योरोपके डाक्टरोंने इस ग्रंथीका सत्त्व निकाल कर रखा है और वे कई रोगोंपर, कि जो इसकी क्षीणतासे होते हैं, इसी ग्रंथीके सत्त्वका (Thyroid treatment) प्रयोग करते हैं। योगियों को यही बात कई शताब्दीयों के पूर्व विदित हो गई थी और इस आसनसे उक्त ग्रंथीकी शुद्धता संपादन कर के पूर्ण आरोग्य प्राप्त और रोगचिकित्सा भी वे करते थे। इससे पाठक जान सकते हैं कि, योगचिकित्सा की जो अपूर्व बातें शताब्दियों के पूर्व आर्य योगियोंको विदित थी, उनका पता इस समय भी युरोपके डाक्टरोंको नहीं लगा है। वे ग्रंथियोंका रस निकालने तक ही पहुंचे हैं, परंतु प्राण शक्तिद्वारा ग्रंथिशुद्धीकरण की बात भी उनको इस समय तक बिलकुल विदित नहीं हुई है।

(६) कुष्टरोगकी चिकित्सा।

दूध का ही केवल भोजन लेकर यदि सर्वांगासन प्रतिदिन किया जाय तो कालांतर से कुष्ट रोगी, महारोगी, भी इस भयानक रोगसे मुक्त होता है। योगचिकित्सा में यह अनुभव की बात है। जिस रोगमें हाथ पांवकी अंगुलियां सडजाती हैं, वह रोग कितना भयानक है, यह पाठक जानते ही होंगे। क्यों कि बडे शहरोंमें ये रोगी रहते ही हैं। दुग्धाहार के साथ सर्वांगासन करनेसे इस भयानक रोग की निवृत्ति होती है। जब ऐसे भयानक रोग दूर करने की शक्ति इस सर्वांगासनमें है, तो अन्यान्य क्षुद्र रोग क्यों नहीं दूर हो सकेंगे ?

एक कुष्ट रोगी (leper) था, जिसके हाथ और पांव की अंगुलियां करीब सड चुकी थी और वह अंगुलियों

को हिला भी नहीं सकता था । यह रोगी नर्मदा के किनारे एक योगीके पास रहकर पूर्वोक्त चिकित्सा करता था । एक वर्ष के अभ्यासमे हाथ और पांव की सडावट दूर होगई और वह अपनी अंगुलियां हिला सकने योग्य दुरुस्त भी होगया । परंतु न जाने उसके मनमें क्या बात आगई, वह उस योगीके आश्रमको छोड कर सरकारी इस्पीताल में दाखल हुआ !! योग चिकित्सा छोडतेही फिर वह रोग एकदम ऐसा बढ गया कि, इस्पीतालमें ही वह कई मासके बाद मर गया ।

(६) सर्वांगासन का चमत्कार ।

एक नवयुवक सोलह वर्षकी आयुका था । उसका चालचलन बिगडनेसे उसके अंडकी दोनों गुठालियां बिगड गई और उससे तारुण्य जाता रहा । यह देख कर उसने अपना चालचलन सुधर दिया, परंतु छः मासमेंभी अंडकी सुधार नहीं हुई । पश्चात् वह सर्वांगासन करने लगा, छः मासमें उसके अंड सुधर गये !! यह चमत्कार सर्वांगासन का है ।

सर्वांगासनसे गलेकी ग्रंथी सुधरती है, उससे पुठे और मज्जा केंद्र ठीक होते हैं और उसका परिणाम संपूर्ण शरीर पर होता है । तरुण मनुष्योंको विविध बुरी संगतियों के कारण धातु विकार तथा अण्डदोष हुआ करते हैं । इन दोषों के लिये सर्वांगासन अपूर्व लाभकारी है । परंतु यदि रोगीकी अवस्था बिकट हुई हो तो योगी के सन्मुख ही चिकित्सा होनी आवश्यक है ।

(७) सर्वांगासनसे स्त्रियोंका लाभ ।

सर्वांगासनसे जैसे पुरुषोंके अंडगोलक ठीक होते हैं उसी प्रकार स्त्रियों का गर्भाशय भी इसीसे दुरुस्त होता है । दोनों के ठीक होनेका कारण एक जैसा ही है ।

(८) प्लीहा और यकृत ।

हिम ज्वरादि के कारण प्लीहा बढ जाती है और नाना प्रकार के क्लेश होते हैं । इस प्लीहा को ठीक करनेके लिये यह सर्वांगासन अत्यंत उत्तम है । एक सोलह वर्षका नवयुवक प्लीहाके बढ जानेसे रोगी होगया था । अनेक वैद्यों और डाक्टरों के इलाज करनेपर भी ठीक नहीं हुआ । परंतु छः मास सर्वांगासन करनेसे उसकी प्लीहा बिलकुल और विना औषध ठीक होगई । और वह बिलकुल तन्दुरुस्त होगया । यकृत् भी इस सर्वांगासनसे बिलकुल ठीक होता है । एक मनुष्य यकृत के बिगाडसे रोगी हुआ था । नाना प्रकारके औषधिप्रयोग करने पर भी वह आरोग्य प्राप्त न कर सका । परंतु इस सर्वांगासनके करनेसे उस का सब दोष दूर हो कर वह पूर्ण आरोग्य संपन्न हो गया ।

इस प्रकार उत्तम लेख इस त्रैमासिक में आते हैं इसलिये जो अंग्रेजी जानते हैं और योगसाधनसे अपना शारीरिक मानासिक और आत्मिक सुधार करना चाहते हैं वे इस को खरीद लें। क्यों कि इस प्रकार का कोई पुस्तक इस समय छपा नहीं है।

व्रताचरणम् ।

(श्री. कवि-वैदिक धर्मविशारद श्री सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार)

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ यजु० १–५.

(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

हे अग्ने! श्रुतिज्ञानदा व्रतपते, संपूज्य संसार में।
लेता हूँ व्रत आज एक यह मैं, तेरे दया-द्वारमें ॥
ऐसी दे दृढ शक्ति भक्ति भगवन्, हो सिद्धि आचार में।
मिथ्याभाषणभावकर्म तज दूं, सत्यव्रताधारै में।

विष्णु का परमपद ।

ॐ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ यजु ३४—४४.

अर्थः— (यत्) जो (विष्णोः परमम् पदम्) विष्णु, विश्व व्यापक प्रभुका परमपद है (तद्) उसको (विप्रासः) वेदज्ञ ज्ञानी, (विपन्यवः) योगिजन तथा ईश्वर भक्त (जागृवांसः) तथा कर्मशील मनुष्य ही (सं इन्धते) सुप्रकारेण प्रकाशित करते हैं ।

भावार्थ— इसमंत्रद्वारा मुक्ति प्राप्तिके तीन प्रमुख साधन बतलाये गये हैं: (१) ज्ञान, (२) ईश्वर भक्ति, (३) कर्म, यही तीन ज्ञानकाण्ड, कर्मकांड और उपासनाकांड के नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इन तीनों का समन्वय हुये विना, केवल ज्ञान वा कर्मसे मोक्ष मिलना असम्भव है ।

रोलाछन्दः– मेधावी विद्वान, विप्र जो श्रुति गाते हैं ।
योगी योगनिधान, ब्रह्मलय हो जाते हैं ॥
तज निद्रा अज्ञान, कर्मपरता लाते हैं ।
प्रभु का पन्थ महान्, वही मानव पाते हैं ॥

सरस्वती के उपासकों का दर्शन।

१ गोपथ ब्राह्मण—आर्य भाषानुवाद भावार्थ सहित। भाषांतरकार — श्री. पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदीजी लश्कर गंज प्रयाग। मू. ७।)

श्री. पं-क्षेमकरणदासजी अथर्ववेद भाष्यकार होनेसे वैदिक सारस्वत के साथ परिचय रखनेवाले विद्वानों में पूजनीय और आर्षविद्या प्रेमियों में सुप्रसिद्ध हैं। इन्होंने अथर्ववेद का भाष्य अत्यंत दुष्कर होने पर भी संपूर्ण किया और गोपथ ब्राह्मण का भी अनुवाद प्रसिद्ध किया है। अर्थात् अथर्ववेद संहिता और अथर्ववेद ब्राह्मण इन दोनों ग्रंथोंका आर्य भाषामें अनुवाद इन्होंने पूर्ण किया है। धन्य है इनकी विद्वत्ताकी और विशेषतः इनके परिश्रम की। इनका भाष्य तथा अनुवाद विशेष गवेषणासे और परिशीलनसे किया होता है। आशा है कि आर्ष विद्या के प्रेमी इनके पुस्तक खरीदकर इनके ग्रंथोंका आदर करेंगे। इनके पुस्तकों के लिये हरएक आर्य भाईके घर में स्थान अवश्य मिलना चाहिये।

२ हिंदु धर्म ममींसा —। लेखक-डा. शि. ग. पटवर्धन अमरावती (वैदर्भ) मू. १)

डा. पटवर्धन जैसे बिरारमें वैसे महाराष्ट्रमें सुप्रसिद्ध हैं। इनके त्याग वृत्तिके कारण ये "तपस्वी" कहे जाते हैं। और इनके अंदर विलक्षण तपस्विता है इसमें कोई संदेह नहीं। राजकीय कार्य क्षेत्रमें इनका कार्य महाराष्ट्रमें हरएक जानता ही है। आपके विचार बडे गंभीर और भावपूर्ण होते हैं। इस लिये इनके कलमसे यह पुस्तक लिखी गई है यही इसकी विशेषता सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है। इस पुस्तकमें हिंदुधर्मकी व्यापकता, साहित्य और संप्रदाय, वर्णाश्रम धर्म, उपासना, दर्शन, गीता, सिद्धांत विचार, इतने शीर्षकों के अंदर लेख हैं और प्रत्येक शीर्षक के अंदर मननीय विचारों का संग्रह किया है। पुस्तक प्रश्नोत्तर रूपसे लिखीगई है इसलिये अत्यंत सुबोध हो गई है। श्रुतिस्मृत्यादि सब ग्रंथोंके प्रमाण इसमें हैं इस लिये यह एक ही पुस्तक पढनेसे कई शास्त्रों के सिद्धान्तों का ज्ञान होना संभव है। पुस्तक की योग्यता बडी है परंतु मूल्य अत्यंत अल्प है इससेभी ग्रंथ लेखक की तपस्वी उदारता ही व्यक्त होती है।

३ बलिवैश्वदेव यज्ञ— (लेखक. श्री. हरिशरण श्री वास्तव तथा श्री. शिवदयालु जी, मेरठ, मू. ।|=)

इस पुस्तकमें यज्ञका भाव स्पष्ट करनेका यत्न कियाहै। इस प्रयत्नमें लेखक सफल हुए

हैं । इस व्याख्यानमें अनेक उपयोगी बातोंका वर्णन है जिस कारण यह पुस्तक विशेष मननीय बनी है । यज्ञ विषय में शंका करने वाले अपनी शंका ओंका उत्तर इस पुस्तक में देख सकते हैं ।

४ **कुरान** -- (अनुवादक -- श्री० पं. रामचंद्रशर्मा, तथा श्री. प्रेमशरण आर्य । प्रकाशक -- प्रेमपुस्तकालय आग्रा । मू. ॥।)

मूल कुरान और उसका सरल भाषानुवाद का यह प्रथम भाग है । इसी प्रकार संपूर्ण कुराण शरीफ् का अनुवाद प्रसिद्ध करने से केवल हिंदी जानने वाले लोग कुरान को पढ सकते हैं और कुरान का विचार कर सकते हैं ।

५ **कठोपनिषद का स्वरूप**— (ले० श्री. पं. प्रियरत्न विद्यार्थी, आर्ष विद्यासदन काशी, मू. ≡) पं० प्रियरत्न जीके लेखों के साथ पाठक परिचित ही हैं । इनके लेख नवीन विचारों के दर्शक होते हैं । इस में " मौत की कहानी " विशेष गंभीरता के साथ बताई है । पुस्तक अवश्य पढने योग्य है । पं. प्रियरत्न जी " आर्ष " नामक मासिक जन्म शताब्दीके उपलक्ष्य में शुरू करने वाले हैं । आर्ष विद्याके प्रेमी अवश्य ग्राहक बनें ।

वेद और पशुयज्ञ—(ले० पं० चौधरी काव्यतीर्थ काशी । मू. ।) एक इसाईने " ऋषियोंके खानपानमें मांस आता था " इस विषयकी एक पुस्तक लिखी, उसका सप्रमाण उत्तर इस पुस्तकमें ग्रंथकारने दिया है ।

७ गुरुशिष्य संवाद । मू. ।)

८ शुद्धिसंगठन । मू. ।)

लेखक पं० गोवर्धनदास अध्यापक, सांख, मथुरा । दोनों पुस्तक बोधप्रद और पढने योग्य हैं ।

९ नायी वर्ण निर्णय —(ले०-पं० रेवतीप्रसाद शर्मा रोटीगोदाम, कानपुर । मू. ॥≈) इस पुस्तकमें लेखक महोदयने यह सिद्ध करनेका यत्न किया है कि "नाई (नापित) ब्राह्मण है ।" लेखक सफल हुए हैं वा नहीं इसकी परीक्षा पाठक अवश्य करें ।

१० वेद ईश्वरीय ज्ञान है। (ले. श्री. प. राधाकृष्ण जी मुरादाबाद । मू. ⁄) नामसे ही पुस्तक का विषय ज्ञात हो सकता है । पुस्तक वेदोंपर विश्वास दृढ करने के लिये उपयोगी है ।

११ वर्णाश्रम धर्म । मू. ⁄) ।।।

१२ शुद्धि और संगठन । मू. ⁄) ।।।

१३ भोजन तथा छूतछात । मू. ⁄)

(लेखक श्री पं. जनमेजय विद्यालंकार, आयुर्वेदशास्त्री वैद्यशिरोमणि, नईसडक, कानपुर) पुस्तक सामायिक उपयोग के है और आजकल प्रचलित विषयोंपर निः संदेह उत्तम प्रकाश डालेंगे ।

१४ सनातन वैदिक वर्णव्यवस्था– (**श्री. पं. चौधरी, काव्यतीर्थ काशी । मू. ≡**) वर्णव्यवस्था विषयका विचार इसपुस्तकमें है और वह प्रमाणोंके साथ किया है ।

ईश्वरसंकीर्तन। (आरती)

(श्री. भिषगाचार्य डा॰ईश्वरदत्त विद्यालंकार)

जय जगदीश ! हरे !
निर्विकार! दुःखनाशक!दुःख सब दूर करे।ध्रुव॥

(१)
निराकार ! हे दयामय !,सुखसम्पत्सिन्धो !
करुणाकर ! कर करुणा-हम पर हे बन्धो !।

(२)
सर्वेश्वर ! जगपावन !, सारे पाप हरो।
अनुपम ! अन्तर्यामिन् ! - वैदिक भाव भरो ॥

(३)
मेधामय ! जगदीश्वर !, तुम को गुरुमाना।
मेधावी हम सब हों--तज पातक नाना ॥

(४)
तेजोमय ! हो भगवान् ! तेजस्वी कर दो ।
मातृभूमि सेवाहित -- भुजबल पौरुष दो ॥

(५)
सर्व व्यापक स्वामी, घट घट रमा हुवा ।
"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव "॥

(६)
भजन करें ईश्वर का, प्रातः नित सप्रेम ।
"अग्ने नय" सुपथोंमें--"नम उक्तिं विधेम" ॥

(७)
परमानन्द पिता हम, मिलकर विनय करें ।
ईश्वर ! आनन्दामृत--सुखसे पान करें ॥

वेदमें सेनाध्यक्षोंके नाम।

(लेखक--प्राणपुरी)

वेदमें सर्व शब्द योगिक हैं अथवा योगरूढी हैं इस बातको छोडकर आज मैंने वैदिक धर्मके पाठकों के संमुख एक और बात रखनी है वह यह है कि वेदमें सेनानायकों के नाम क्या हैं और क्या वेदमें किन नामों से कहीं उनका वर्णन है यदि है तो किस रूपमें है ।

यह विषय अत्यन्त कठिण है जहां वेदका यथायोग्य प्रचार न होने से वेदके भावों को समझनेमें कठिनाई है वहां युद्ध विद्या का भी भारत वर्ष में प्रचार नहीं है यह सत्य है जो कई लक्ष भारतीय सेनामें काम करते हैं तोभी इनका स्थान सेनाओं में क्या है इसके लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है इतना ही लिखना पर्याप्त है " सेना संचालन में उन का कोई स्थान नहीं है ।"

वर्तमान काल के शब्दों में भारतवासी सुभेदार के पदतक पहुंच सकते हैं और गतयुद्धमें इसमें कुछ वृद्धि होकर वह लैफटीनेंट तथा कप्तान के पद को भी छू सकते हैं किंतु छूने वालों की संख्या नाममात्र है इस लिये मझे इस लेखमें यह दूसरी कठिनाई

है जो बाहरसे भी मुझे कोई सहायता नहीं मिल सकती है तो भी मैं साहस करता हूं जो पाठकों के सामने इस विषय को ले आऊं, ता कि पाठक वेदका स्वाध्याय करते समय इस विषयका भी ध्यान रखें और यदि किसी को सौभाग्य वश इस विषयका बोध हो अथवा उनके कोई परिचित व्यक्ति इस विषयसे अभिज्ञ हों, तो इस विषय पर अधिक प्रकाश डाल कर मुझे अनुग्रहीत करें मेरा यह लेख इस विषयका शीर्षक मात्र होगा।

वेदकी यह एक शैली है वह एकही शब्दसे भिन्नभिन्न प्रकरणों में भिन्न भिन्न भाव वर्णन करता है और इसीको अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत के नामों से लिखा है और मनुष्य के अंगों से ब्रह्माण्ड का वर्णन करना अथवा इसके विपरीत बाह्य वस्तुओंको लेकर मनुष्यके अवयवों का वर्णन एक स्थानपर नहीं अनेक स्थानों पर आता है। उदाहरणार्थ जहां विराट रूपसे वर्णन है वह इसी प्रकार और पुरुषसूक्त ऋग्वेदमें और अध्याय ३१ यजुर्वेदमें तथा इसी प्रकार दूसरे वेदों में वर्णन है इसके अतिरिक्त अथर्व वेद कांड १५ सूक्त १८ में लिखा है —

यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥ योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥ ३ ॥ अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो इसकी दक्षिण आंख है वह आदित्य है और सव्य चक्षु चन्द्रमा है और दक्षिण कर्ण अग्नि तथा सव्य कर्ण पवमान है और दिति अदिति शीर्षक कपाल हैं और संवत्सर सिर है। इसी भांति—

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यम्।

अ. १०।७।३३

'सूर्य तथा चन्द्रमा चक्षु हैं और अग्नि मुख है' इसी प्रकार और भी प्रमाण उद्धृत किये जा सकते हैं इसी पर सन्तोष करके मैं अपने प्रयोजन की ओर आता हूं। इस समय हम सुनते हैं सेनामें सेनापति भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं। कमांडर-इन चीफ, जरनैल, करनैल, मेजर, कंपनी कमांडर, कप्तान, लैफटीनैन्ट और कावनीयों में कृगती पर भी एक होते है इनके क्या क्या काम होते यह कोई फौजी ही बतावे और मुझे वह किस ढंगसे नियुक्त किये जाते हैं और कौन कौन विशेष काम इन्हें करने होते हैं मुझे इसका भी पता नहीं परन्तु वेदमें युद्धका वर्णन अनेक स्थानों पर आता है उसमें से पाठकों का ध्यान केवल एकादश काण्डके सूक्त ९ तथा १० की ओर आकर्षण करता हूं। सूक्त नवम की देवता अर्बुद है, और दशम की त्रिषंधि है नवम सूक्त के अंतमें 'इमं संग्रामं संजित्य' पाठ पढा गया है और दशम के दूसरे मंत्र में ही 'अरुणैः केतुभिः सह' पाठ है। युद्धमें इस समय भी लोहित पताका ही होती है यदि कोई युद्ध बन्द

करना चाहे उस समय श्वेत पताका दिखाई जाती है। और दशम सूक्त का १६ मंत्र है ।

वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु । इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् । आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम्॥ अ. ११।१०।१६

भावार्थ—'वायु अमित्रों को इष्वग्रों से मारे, इन्द्र इनको पार्श्व भागसे दबाए ताकि वह पुनः आक्रमण(counter attack)न कर सकें, आदित्य इनके अस्त्रोंको विनाश करें और चन्द्रमा मिलकर आने वालों के मार्गको विनाश करें ।'

इस मन्त्रमें वायु, इन्द्र, आदित्य और चन्द्रमा युद्ध के नायक हैं और चारों के भिन्न भिन्न काम बताए हैं। पता नहीं इस समय जो सेनापति यह काम करते हैं उन्हें किन नामों से कहते हैं। वेद की परिभाषामें यही शब्द अनेक स्थलों में भिन्न भावोंसे पढे गए हैं। वेद प्रायः भिन्न भिन्न प्रकरणों में इन्हीं शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं और इसी लिये कई सज्जन कह देते हैं कि वैदिक धर्मी खींचातानी करते हैं यह उन का भ्रम है। वेदमें शब्द ही इस ढंगके हैं जो यौगिक वा योगरूढि से उन अर्थों के वाचक हैं।

प्रायः इस समय लोगों का विचार है कि युद्धविद्या केवल क्षत्रिय ही जानते थे यह भी ठीक नहीं है इतना तो ठीक है जो सामान्यावस्था में राज्य प्रबंध का काम अथवा सेना का काम वही वर्ण करता था, परंतु दूसरे सर्वथा अनभिज्ञ न थे जैसे पश्चिम में कई देशों में युद्धविद्या प्रत्येक व्यक्ति को सीखनी होती है वैसे वेदमें —

"विशं विशं युद्धाय संशिशाधि"
अथ० ४।३१।४

'प्रत्येक को युद्ध के लिये शिक्षा दो' विश शब्दके अर्थ प्रजाके हैं क्यों कि वेदमें ही 'त्वां विशो वृणते राज्याय' आपको प्रजा राज्य के लिये स्वीकार करती है इस प्रतीक से प्रतीत होता है कि युद्ध के लिये प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा मिलनी चाहिये ताकि किसी विपत्ति के समय में सर्वजन अपने देश वा जाति की रक्षा कर सकें ।

वेदमें युद्ध का अनेक स्थानों पर वर्णन है। युद्ध के उपयुक्त पदार्थ दुन्दुभि, पताका, शलाकिका भी वर्णन आता है जैसे मैंने पूर्व लिखा इस समय भारतीयों को इस विद्या में जैसे योग्य होना चाहिये वैसे नहीं हैं। यदि कोई स्वाध्यायी इस विषय की परिभाषाओं को संग्रह करके कुछ वर्तमान समय के शब्दों द्वारा समझाने का यत्न करें तो यह विषय भी पाठकों के सामने आजावे जो आर्यजाति इस समय भीरु बन रही है उनके धर्म पुस्तक उन्हें शूरता का नाद सुना रहे हैं यदि वह दुकध्यान से इस नाद को सुने तो उनमें भी शूरता का संचार होजाय ।

इस विषय का विशेष विचार कभी फिर किया जायगा ।
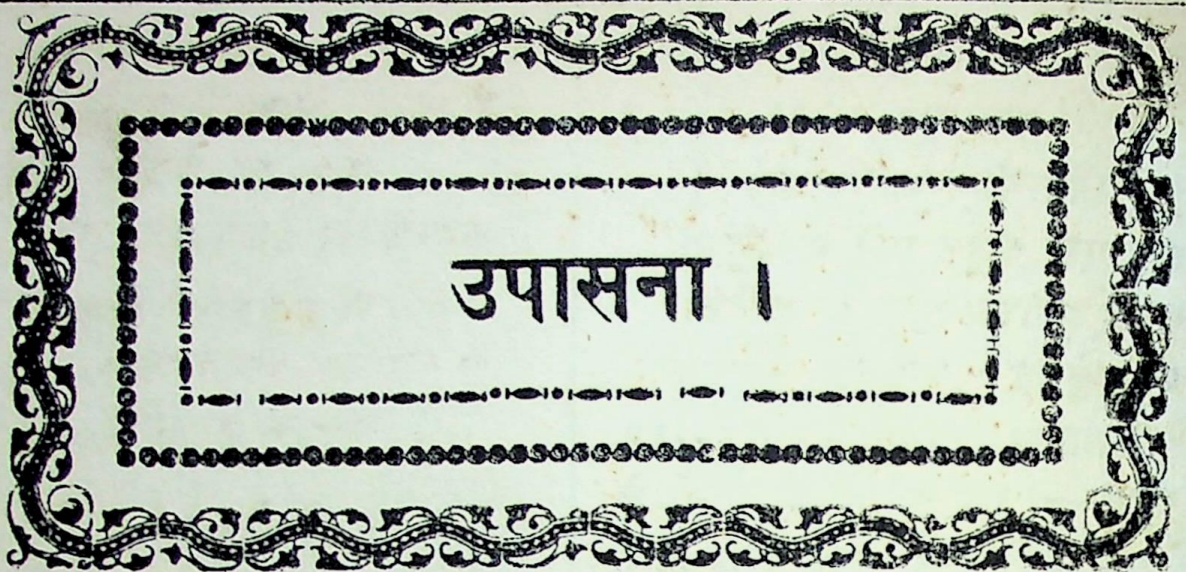
(कवि- श्री० पं० मुनशी राम शर्मा विशारद)

॥ हमारा अभीष्ट ॥

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पी-
तये । शंयोरभिस्रवन्तु नः । यजु० ३६-१२।

॥हरिगीतिका छंद ॥

" कल्याणकारी, विश्व-वासी,
दिव्य-गुण-धारी प्रभो !
शंकर ! करो कल्याण, ईप्सित-
ध्येय पूरा हो विभो !
हो तृप्ति पूर्णानन्द की
हे सौख्य सागर सर्वदा।
सुख-वृष्टि चारों ओर से
करते रहो हम पर सदा ॥ "

॥ प्राणसंयम ॥

ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ स्वः । ॐ
महः । ॐ जनः । ॐ तपः । ॐ सत्यम् ।

॥ हरिगीतिका छंद ॥

" भूः प्राण का भी प्राण, सारे
विश्व का आधार है ।
दुख-पाप-मल- हारी भुवः,
स्वः सौख्य का भाण्डार है ।
महनीय, पूज्य, महः, जनः
जिसने रचा सं-सार है ।
तप पूर्ण, तेजस्वी, तपः
सत एकरस अविकार है ॥"

॥ ससार-निर्माण ॥

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्य-
जायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः
॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजाय-
त । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो
वशी ॥ २ ॥ सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा
पूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षम-
थो स्वः ॥ ३ ॥ ऋ० १० । १९० ।

॥ रोला छन्द ॥

"सत्य-नियम-आधार वेद जिसने प्रगटाये ।
सततरूपा, अक्षरा प्रकृति से लोक बनाये ॥
प्रलय-रात्रि, जल-पूर्ण सिंधु का जो निर्माता ।
"वही तपोमय, शक्तिमान, सबका है ज्ञाता १ ॥

"संवत्सर, दिन-रात, समय-संख्या का स्रष्टा।
जो स्वभावतः विश्व-दर्शी, जग-द्रष्टा ॥ २ ॥
सूर्य, चन्द्र, नभ, अन्तरिक्ष, भू, स्वर्ग समीहित।
पूर्वकल्पवत रचे उसी प्रभुने सबके हित ३ ॥

॥ परमपिता की प्रार्थना ॥

ओ३म् जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ऋ० १।९९।१

अर्थः-हे (जातवेदसे) वेद-विद्या के प्रोत्पादक प्रभो ! (सोमम्) हम सब सोम- शांत्यादि गुणों को अपने अन्दर (सुनवाम) उत्पन्न करें। (अरातीयतः) हमारे शत्रु-कामक्रोधादि षड्रिपुओं की (वेदः) शक्ति (निदहाति) नष्ट होजावे। (स नः) वह आप हमारी सब (विश्वा-दुर्गाणि) विघ्न बाधाओं को, कठिनाइयों को (पर्षदति) नष्ट कीजिये। हे (अग्निः) प्रकाश स्वरूप प्रभो ! (दुरित सिंधुं) दुश्चरित्रता-पाप-रूपी सागर से पार करने के लिये आपही हमारे लिये (नावेव) नाव के समान हो।

॥ हरिगीतिका छंद ॥

"हे जातवेदस ! सर्वदा हम
सोम का प्रसवन करें।
हो शान्त ' अमृतमय विलासी!
ध्यान सब निशदिन करें ॥
कामादि रिपु - सब काम क्रूर
सब विघ्न बाधायें हरें।
हा आप रूपी नाव भगवन् !
पापसागर को तरें ॥ "

॥ जीवनोद्देश ॥

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।
यजु. २०।२१।

" हमें जाना वहाँ है, है
जहां पर ज्योति उजियाली।
प्रभाके पुंज सविता से
जहां फैली ललित लाली।
हमारा देव, देवाधार,
देवाराध्य सुखशांति।
जहाँ पर, आत्म आभासे
मिटाता है निशा काली ॥
प्रकृति से पार होकर उत्त-
तर निज तेज को देखें।
जहाँ है ज्योति उत्तम हम
वहीं परमेश को पेखें ॥ "

॥ प्रभुकी पहिचान ॥

ओ३म् उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम्। यजु. ३३।३१।

" वेद--विज्ञान का ज्ञाता,
वही सविता पिता प्यारा।
विश्वरथ का रथी, स्वामी,

सकल जग का सृजन द्वारा ॥
उसी देवेश का, सबको
दिखाने के लिए, जगमें
बनावें—सृष्टि, श्रुति, विद्वान,
देवे ज्ञान मम मग में ॥ "

॥ व्यापक आत्मा ॥

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥यजु. ७ । ४२ ।

"अद्भुत-देव-त्राता, अग्नि-
विधु-रवि का प्रकाशक है ।
हृदय–अविवेक–तम का ज्योति
के सम जो विनाशक है।
पृथिवि, नभ, स्वर्ग में सर्वत्र
ही वह ईश व्यापक है ।
अचर –चर-विश्व का आत्मा,
क्षमा-परिपूर्ण पालक है ॥ "

॥ अभय याचना ॥

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् । यजु. ३६ । २४।

" सकल संसार के द्रष्टा,
तुम्हीं हो देवहितकारी ।
उपस्थित सृष्टि के भी पूर्व
हे प्रभु ! शुद्ध संचारी।
विभो ! दो दृष्टि-बल,शतवर्ष
तक जीवें, सुनें, बोलें ।
अधिक सौ वर्ष से भी हम रहें.
भय-हीन हो डोलें ॥ "

॥ बुद्धिकी प्रार्थना ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमही धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु. ३६-३ ।

" प्रभो प्राणेश ! मलहारी !
तुम्ही आनन्द-सागर हो ।
प्रकाशक देव, सविता, विश्व-
नाटक नाटचनागर हो ।
तुम्हारे श्रेष्ठ व्यापक तेज
का हो ध्यान नित हमको ।
करो प्रभु ! प्रेरणा ऐसी
बना दो बुद्धियुत हमको ॥ "

॥ प्रभु को नमस्कार ॥

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ यजु. १६।४१

नमस्ते शंभु सुख-दाता,
नमस्ते शान्ति के कर्ता ।
नमस्ते नाथ ! धन-धाता,
नमस्ते दैन्य-दुख हर्ता ।
प्रभो ! कल्याणमय ! तुमको
नमः निसदिन हमारा हो ।
तुम्हारे दिव्य चरणों में
नमः शिरसा हमारा हो ॥ "

वैदिक सभ्यताके पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द ।

(लेखक—श्री. पं. धर्मदेव सिद्धान्तालंकार)

ऋषि दयानन्दके जीवनपर हम जिस भी दृष्टि से विचार करें हमें उसके अन्दर स्पष्ट तौर पर बडी महत्त्व पूर्ण विशेषताएं प्रतीत होती हैं। त्यवादिता, निर्भयता, निष्कप टता, रल हृदयता, अभिमानशून्यता इत्यादि द्गुण आदित्य ब्रह्मचारी, भारत माता के ख को उज्वल करने वाले, वैदिक धर्म के नरुद्धारक, आचार्य ऋषि दयानन्द के विन का एक आदर्श अनुकरणीय निष्क-क जीवन बना रहे थे। देशभक्ति का व ऋषि की नस नस में कूट कूट कर ा हुआ था, पर उस के साथ ही—'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का भी उस आदर्श संन्यासी ने ज्वलन्त उदाहरण रखा था। वस्तुतः उसका जीवन इतना उच्च था कि बडे बडे कट्टर विरोधियोंको भी उसका महत्व स्वीकार करना ही पडता है। इस छोटेसे लेखमें ऋषि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन और कार्यपर प्रकाश डालना सर्वथ असम्भव है केवल वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धारके रूप में ऋषि ने क्या कार्य किया और वह वैदिक सभ्यता क्या है इस विषय का दिग्दर्शन यहां कराया जाता है।

मेरे विचार में यदि कोई सबसे बडी बात ऋषि दयानन्दको गत शताब्दीके अन्यसमाज-सुधारकों से भिन्न करती है तो वह यही है कि वे वैदिक सभ्यता के पूर्ण मर्मज्ञ थे और इसी के पुनरुद्धारार्थ इनकी सब चेष्टाएं थीं। श्रीयुत राजाराम मोहनराय, बा. केशवचन्द्र

सेन, पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, मनोनचन्द्रराय इत्यादि अनेक समाज सुधारकों ने अपनी अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार गतसदी में भारतीय समाजमें प्रचलित बुराइयों को दूर करने का यत्न किया, पर बिना किसी पक्षपातके इस बातको कहा जा सकता है कि उनमें से कोईभी वैदिक धर्म और सभ्यता का मर्मज्ञ नहीं था और उन्हों ने बहुत अंशों में पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता से ही विचार ग्रहण किये थे। यही कारण है कि वे थोडे बहुत सुधार करने में समर्थ हुए किन्तु जनता के अन्दर धर्म देश तथा आत्मानुराग पैदा करनेमें वे बहुत ही कम सफल हुए। ऋषि दयानन्द पाश्चात्य विचार पद्धति तथा सभ्यता से बिल्कुल भी प्रभावित न थे। उनके लिये वेद ही सर्वस्व और प्राणों से भी बढकर प्रिय थे, अतः उन्होंने जिन भावों का प्रचार किया वे विशुद्ध वैदिक भाव थे इसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता। वैदिक सभ्यता का ऋषि दयानन्दने किस प्रकार पुनरुद्धार किया यह जानने से पहिले हमें वैदिक सभ्यता के तत्त्व स्पष्ट करने वाले निम्नलिखित सूत्रों को भली भान्ति समझ लेनी चाहिये।

(१) 'सत्येनोत्तभिता भूमिः' अर्थात भूमि का धारण सत्य पर ही निर्भर है। ऋ. १०।८५।१

(२) 'सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्' अर्थात् सत्य यश और ऐश्वर्य तीनों उपादेय हैं जिनकी प्राप्ति के लिये प्रत्येक आर्य को यत्न करना चाहिये पर उनमें से सत्य ही सबसे प्रधान है अतः आवश्यक हो तो उसके संरक्षण के लिये शेष दो का त्याग करने को उद्यत रहना चाहिये।

(३) 'सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति॥ अथर्व १२।१ अर्थात् सत्य, विस्तृत ज्ञान, क्षात्र बल, ब्रह्मचर्यादिव्रत, धर्ममार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंका प्रसन्नतासे सहन, ब्रह्म ज्ञान्य इत्यादि तथा यज्ञ—देवपूजा संगतिकरण (एकता) दान अथवा स्वार्थत्याग इन सब गुणों और शुभ भावों से ही मातृभूमिका यथार्थ धारण हो सकता है अन्यथा नहीं।

(४) 'स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्' ऋ. अर्थात् प्रकृति और प्रयत्न करनेवाला आत्मा इन दोनों ही की तरफ ध्यान देना चाहिये — प्राकृतिक आत्मिक दोनों उन्नतिके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये पर इन दोनों में से स्वधा वा प्रकृति का स्थान नीचे है और आत्मा का स्थान ऊपर है अतः प्राकृतिक उन्नति करते हुए आत्मिक उन्नति का उससे अधिक ख्याल रखना चाहिये कहीं ऐसा न हो कि प्रकृति सागर के अन्दर हम अपने को ऐसा डुबो डालें कि फिर निकलनेकी आशा ही न रहे।

(५) पुरुषो वाव यज्ञः। छा. उपनि० अर्थात् पुरुष का सारा जीवन यज्ञमय होना चाहिये। निष्काम सेवाके आदर्श को रखते हुए प्रत्येक व्यक्तिको यथाशक्ति स्वार्थत्याग पूर्वक पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिये।

(६) तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् । य० ४०। २ अर्थात् जगत् के पदार्थों का उचित उपभोग अवश्य करो किन्तु यह सब कुछ परमेश्वरका है जो उस की कृपासे हमें प्राप्त हो रहा है यह जान कर लोभ के अन्दर न फँसो।

वैदिक सभ्यता के यथार्थ तत्वको समझने के लिये ऊपर जिन सूत्रों का उल्लेख किया गया है उनपर मनन करना अत्याव-श्यक है। ऋषि दयानन्द के सारे जीवन का रहस्य इन तत्वों को समझने पर खुल जाता है। बाल्य तथा यौवन काल में भोगविलास में भोगविलासमय सामग्री पर लात मारते हुए जो मूलशङ्कर पहाड़ों और जंगलोंमें योगी महात्माओं की तलाशमें भटकते रहे वे केवल सत्य के ज्ञानके लिये, जिसके विना वेद भगवान् बताते हैं भूमिका धारणतक असम्भव है। स्वयं सच्चा ज्ञान प्राप्त करके ऋषि दयानन्दने अपने जीवन को यज्ञरूप बना दिया दिन रात सोती हुई आर्य जाति को जगा कर उसके अन्दर धर्मदेशानुराग पैदा करने में उन्होंने लगा दिये। दीक्षा अर्थात् ब्रह्मचर्यादि व्रत और तप के विना मातृभू मिका संरक्षण असंभव है इस वैदिक तत्त्वको ध्यानमें रखते हुए ऋषिने प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को आकर्षित किया जिसकी जड़में दीक्षा और तप काम करते थे। ऋषि दयानन्दने उस पाश्चात्य सभ्यता के विरुद्ध जिसके चका चौंधसे प्रभावित होकर उस समयके बहुत से प्रसिद्ध समाज सुधारक समझ रहे थे कि इसी के अवलम्बन से देशका कल्याण होगा जोरदार आवाज उठाई क्योंकि केवल प्राकृतिक सभ्यता जिसमें आत्मा और परमात्मा के लिये कोई स्थान नहीं और जो नास्तिक होने में अपना गौरव समझती है जगत् का सत्यानाश कर सकती है न कि वास्तविक कल्याण। उन्होंने जिस वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार के लिये प्राणार्पण से प्रयत्न किया उस में प्राकृतिक उन्नति को भी उचित स्थान दिया गया है यद्यपि उसे आत्मिक उन्नति को दबानेका अवसर नहीं दिया गया। इस सारे को एक ही वाक्य में यों कहा जा सकता है कि ऋषि दयानन्दने भारतीय जनताको ही नहीं बल्कि जगत् मात्रको फिरसे वेदों के मार्ग पर चलनेका आदेश किया। वैदिक सभ्यता के प्रचार से ही जगत् का कल्याण हो सकता है यह ऋषि दयानन्द का मुख्य सन्देश है। क्या हम ऋषि के अनुयायियों ने वैदिक सभ्यता के तत्वों को भली प्रकार समझ लिया है! क्या हमने उन्हें अपने जीवनों में पूर्ण रूप से ढाल दिया है। यदि नहीं तो दूसरों को हम किस मुख से उपदेश कर सकते हैं! ऋषि जन्म शताब्दि समारोह के पुण्यावसरसे लाभ उठाकर हम में से प्रत्येक आर्य को वैदिक सभ्यता के उपर्युक्त तत्त्वों को जीवन के अन्दर पूर्णरूप से परिणत करते हुए उनके यथाशक्ति प्रचारार्थ उद्युक्त हो जाना चाहिये केवल बातें बनाने से कुछ न बनेगा।

दयानन्द शताब्दिके उपलक्षमें पं. अभय द्वारा संगृहीत

वैदिक उपदेश माला।

(११)
अहिंसा

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥
ऋ. १।५०।१३

यह वेद मंत्र ऋग्वेद के प्रथम मंडल के ५० वें सूक्त का अन्तिम मंत्र है। इसका अर्थ यह है। यह आदित्य परिपूर्ण बल के साथ उदय हुवा है। क्या करता हुवा? मेरे लिये द्वेषी शत्रु का नाश करता हुवा। इसलिये मैं द्वेष करने वाले का कभी नाश मत करू। इस मंत्र का अन्तिम पद तो सब उन्नति चाहने वाले आर्य पुरुषोंको कण्ठाग्र याद कर लेना चाहिये। मो अहं द्विषते रधम्। (अहं) मैं (द्विषते) द्वेष करने वाले का (मा उ) कभी मत (रधम्)नाश करूं। परन्तु मनुष्यके चित में शंका पैदा होती है, कि मैं द्वेषी का क्यों नाश न करूं? जब वह मुझ से द्वेष करता है, मुझे कष्ट देता है तो मैं उसे कष्ट क्यों न दूं? । इसी बातका उत्तर पहिले तीन पादों में दिया है।

मैं इसलिये नाश न करूं क्योंकि संसार में एक आदित्य उदय हुवा हुवा है। पूर्णबल के साथ उदय हुवा हुवा है और वह द्वेष करने वाले का नाश कर रहा है। यह बतलाने की तो जरूरत नहीं कि इस प्रकरण में वह आदित्य परमात्मा है और उसका पूर्ण बल (विश्वसह:) उसकी सर्व शक्तिमत्ता है। वह हिंसा करने वाले का नाश करता है। यह उसका स्वाभाविक गुण है तो मैं क्यों व्यर्थ में द्वेषी के नाश करने में लगूं? क्यों कि यदि उस द्वेष करने वाले का नाश होना चाहिये तो वह होरहा है, मैं उस का दण्ड विधाता बनने के लायक नहीं हूं। परन्तु बदला लेना प्रति हिंसा करना, केवल इस कारण अनुचित नहीं है, इतना भारी पाप नहीं है। यह तो अपना नाश करने वाला है इस लिये घोर पाप है। नाश कारकता साफ है क्यों कि वह सर्व शक्ति

मान् उदित हुवा आदित्य द्वेष करनेवाले का नाश करता है। "द्विषन्तं रन्धयन्" वह सदा है। हम द्वेष करेंगे — चाहे हम बदले में करें या स्वयं शुरू करें — वह अपने स्वाभाविक गुण के अनुसार नाश करेगा। यह समझना कि यदि मैं द्वेष करूंगा तो मेरा नाश नहीं होगा बडे अंधेरे में रहना है। अतः हमें प्रति हिंसा इसी लिये नहीं चाहिये क्यों कि इससे हमारा नाश होता है। परन्तु हमने यह बात नहीं समझी है इस लिये हमें जो कोई गाली देता है हम और बढ कर गाली देते हैं जो हमें दुःख देता है हम दांत पीस कर उसे और दुःख देना चाहते हैं। जो हमारी कुछ हानी करता है हम उसे जानसे मार डालने का यत्न करते हैं। किसी पूर्ण न्याय कारी को अपने ऊपर न देख कर व्यक्ति व्यक्ति का बदला ले रहा है, ईश्वर के पुत्रोंका एक समुदाय दूसरे समुदाय से लड रहा है, और फिर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का नाश करना चाह रहा है। कभी भारत में हिन्दु और मुसलमान आपस में प्रति हिंसा कर रहे हैं और कभी बडे बडे राष्ट्र प्रति हिंसा की इच्छा से इस वसुंधरा को शत्रु रुधिर से प्लावित करने की तय्यारी कर रहे हैं। यह सब दुनियामें क्यों हो रहा है, इस लिये कि हमें इस बेद वचन पर विश्वास नहीं। यह विश्वास नहीं कि दुनिया पर कोई सर्व शक्तिशालिनी सत्ता राज्य कर रही है और वह द्वेष करने वाले का सदा नाश कर रही है। इस लिये हम स्वयं ही द्वेषी को दण्ड देने के बहाने से प्रति हिंसा में लग जाते हैं और यह भूल जाते हैं कि हम ही इस कार्य द्वारा उस सच्चे शासक के दण्डनीय बन रहे हैं और अपना नाश कर रहे हैं। सच तो यह है कि इस विश्वास के बिना अहिंसक बनना असंभव है। जिसे परमात्मा के न्याय पर विश्वास नहीं वह कभी 'अहिंसा' धर्म का पालन नहीं कर सकता। इस हिंसा बहुल संसार में जो कुछ 'अहिंसा' के उज्वल पवित्र दृश्य दिखायी देते हैं उनके मूल में यही सत्य विश्वास होता है। संसार ग्रस्त लोग कहते हैं ऐसे कष्ट सहन मे कुछ लाभ नहीं है, परन्तु जो उस आदित्य को उदय हुवा देख रहे हैं वे इनकी बात को कैसे मानलें। उन्हें तो दीखता है कि जो मनुष्य प्रति हिंसा नहीं करता — हिंसा को सहता जाता है वह अपने को परमात्मा की छत्र छाया में लेजाता है- उस सर्व शक्तिमान की सर्व रक्षक शरण में हो जाता है और जो बदले से तलवार चलाता है वह केवल उस तुच्छ तलवार की शरण में जाता है और उस परमात्मा का अपराधी भी साथ साथ बनता है। उन्हें तो इतना भारी भेद दिखाई देता है इसलिये वे 'शत्रु के प्रहार को सहना' ही अपने लिये अति कल्याण कर समझते हैं।

इसी लिये संसारके उस वर्तमान महा पुरुष ने जो कि जगत् में अहिंसा धर्म की स्थापना के लिये आया है अथवा संसार की

बढी हुई हिंसा ने जिसे बुलाया है उस गांधीने सन १९२३ में चाहा था कि यदि बारडोलीके भारत वासी निहत्थे खडे हों और उनके चित्तमें अंग्रेजों के प्रति द्वेषका लेश तक न हो बल्कि वे हृदय से उनकी मंगल कामना कर रहे हों और उनपर अंग्रेजी सरकार की गोलियां बरस कर उनके सिर ऐसे फोडती जांय जैसे कि फटा फट कच्चे घडे फूटते जाते हों तो यह दृश्य भारत के लिये-- बल्कि जगत् के लिये—परम परम सौभाग्य का होगा। ऐसा दृश्य चाहने का बल उसी में आसकता है जो कि जगत में सर्व शक्तिमान् आदित्य को काम करता हुवा साक्षात् देख रहा है। सचमुच ऐसा द्रष्टा थोडे से तोप बन्दूकों की सहायता के प्रलोभन को छोड कर सर्व शक्तिमान की ही अक्षय सहायता को चाहता है। भगत प्रल्हाद को इतने दुःख सहने का साहस था — लगातार अहिंसक रहने का साहस था-तो इसी कल्याण कारी विश्वास के बल पर था। ऋषि दयानन्द को जब जगन्नाथ ने जहर खिलाया, तो उन्हें उसपर करुणा उत्पन्न हुई, अंदर से दया का स्रोत बह निकला उन्होंने उसे कहा कि खैर जो कुछ तूने किया अब तू यहां से चला जा नहीं तो मेरे भक्त तुझे तंग करेंगे। भाग जाने के लिये उसे अपने पास से रुपये दिये। जहर खाकर उन्हें चिन्ता यह हुई कि जिसने उन्हें मारा है उस की रक्षा कैसे हो, इसमें अपने मरने को भी भुला दिया। उस वेद वचन को समझने वाला ही ऐसा कर सकता है यह एक कदम और आगे है। कि जो हमारी हिंसा करे, हम उसकी हिंसा न करें यही नहीं किन्तु उसकी भलाई करें। यह ऋषि दयानन्द का उपदेश है। क्रोधके स्थान पर करुणा, मारने वाले पर भी दया। सारे जीवन भर जो उन्होंने गालियां सुनीं, पत्थर ईंटें खायीं, और न जाने क्या कष्ट सहे यह सब बातें हमें और क्या उपदेश देती हैं। तो क्या दयानन्द के शिष्य 'हिंसक' होने चाहिये, दूसरे का बदला लेने वाले होने चाहिये। दयानन्द का स्मरण कर हमें अपने हृदयों को इतना विशाल बनाना चाहिये कि हम अपने दुःख देने वाले पर दया के अतिरिक्त और कुछ कर ही न सकें। अवश्य ही यह जानकर कि मेरी हिंसा करने वाला अज्ञानी परमात्मा के अटल नियमों का शिकार होगा, उस विचारे पर दया ही आनी चाहिये, कि स्वयं क्रोध कर दण्ड के भागी बनना चाहिये। इस लिये इस मास हमें यही वेद का उपदेश है कि—

' हिंसा मत करो '

अपनी हिंसा करने वाले को परमात्मा पर छोड दो हम तो अल्पज्ञ हैं। बहुत वार अपनी भलाई को भी हम तो हिंसा समझ लेते हैं और यदि ऐसे समय भी बदला लेने लगते हैं तो कितनी घोर मूर्खता में पडे होते हैं। वह सर्वज्ञ परमात्मा ही सब को ठीक जानता और सब को सदा ठीक दण्ड देता है। यह उसी का काम है। हमें तो अपने

हिंसक को परमात्मा पर छोड अपनी रक्षा के लिये भी परमात्मा ही की शरण पानी चाहिये। पर आप शायद कहेंगे कि हमें तो विश्वास नहीं होता कि परमात्मा पाप का दण्ड देता है, दयानन्द जैसे महात्माओंको यह विश्वास था अतः वे अहिंसा कर सकते थे'। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि विश्वास यूंही किसी को नहीं हो जाता। महात्माओं को भी कर्म करने से ही धीरे धीरे विश्वास पैदा हुवा होता है। आप भी अहिंसा का पालन शुरू कीजिये जो आपकी हिंसा करे उसका जबाब मत दीजिये, कुछ समय में यदि यह सत्य है तो इस पर अवश्य विश्वास हो जायगा। मैं तो कहता हूं कि 'मो अहं द्विषते रधम्' यह वेद की आज्ञा हैं, इसे स्वतः प्रमाण मान कर अहिंसा का व्रत लीजिये तो थोडासा अहिंसा पर आचरण करने से आपमें इसके लिये थोडी सी श्रद्धा अवश्य उत्पन्न होगी, उस श्रद्धा से आप और अधिक अधिक अहिंसक बनेंगे और तब और आधिक अधिक श्रद्धा बढेगी। असल में परमात्माकी दृष्टिकी तरफ चलते हुवे हमें दिनों दिन अहिंसक ही होना होगा क्योंकि और सब गुणोंकी तरह अहिंसा की भी भगवान् पराकाष्ठा हैं। और धर्मोंमें अहिंसा तो परम धर्म है। योग शास्त्र में यम नियमों पर व्याख्या करते हुवे व्यास भगवानने कहा है कि अहिंसा इन सबका मूल है, अन्य सब धर्म तो अहिंसा को पुष्ट करने के लिये ही बताये जाते हैं असल में एक धर्म अहिंसा हैं इसकी सचाई अहिंसा के पालन करने वाले को ही पता लग सकती है। आशा है हम इस परम धर्म को आजसे अपने जीवन में लाने का सतत यत्न करते हुवे अपने जीवन को कृत कृत्य बनायगें।

विश्व प्रेम।

१२

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। य० ३६।१८

'हे अज्ञानान्धकार के निवारक देव! मुझे सब भूत मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सब भूतों को मित्र की दृष्टि से देखूं। एवं

हम सब परस्पर मि। दृष्टि से देखा करें इस प्रकार हमें आ। दृढ कीजिये।'

इस मंत्र में जिस धर्मका प्रतिपादन किया गया है यदि हम अब अन्तमें इसे अपने जीवन में चरितार्थ करेंगे तो हम निःसन्देह कृत कृ। हो जांयगें। पिछली बार अहिंसाधर्म का उल्लेख हुआ है। 'अहिंसा' श। जिस बातका निषेधात्मक रूपमें वर्णन करता है उसी का भावात्मक रूप विश्वप्रेम है। यदि हम स। भूतों को, सब प्राणिओं को मित्र दृष्टिसे देखने लगें तो हमारे और बहुत से पाप भी स्वयमेव दूर हो जांय। क्यों कि तब हम ऐसे ही सब कर्म करेंगे जो कि एक मित्र के साथ करने चाहिये। मित्र अपना होता है और उस के साथ आत्मदृष्टिसे भी अधिक प्रेमदृष्टि से व्यवहार किया जाता है। इस लिये तब हम सुवरणीय नियम के अनुसार दूसरे से वैसा ही बर्ताव करेंगे जैसा कि हम अपने लिये बर्ताव चा ते हैं इस प्रकार तब हम किसी को भी (सभी हमारे मित्र हैं) कष्ट नहीं पहुंचायेंगे, क्यों कि हम स्वयं कष्ट नहीं पाना चाहते- किसी को धोखा नहीं देवें क्यों कि हम धोखा खाना नहीं चाहते, किसी का माल नहीं चुरावेंगे क्यों कि अपना माल चोरी होना नहीं चाहते। इसी प्रकार मित्र दृष्टि प्राप्त कर लेने पर अन्य सब धर्म के अंग भी अपने आप पाले जांयगें। यही इस धर्मका माहात्म्य है। अब जरा अपनी कल्पनामें एक छोटे समुदाय को ही चित्रित कीजिये जहां कि सब परस्पर मित्र-दृष्टिसे देखते हों, मतभेद रखते हुवेभी प्रेम करते हों, परोपकारमें रत हों, परस्पर दूसरे के अधिकारों की चिन्ता रखते हों, तो आपके सामने सच्चे स्वर्ग का दृश्य आजायगा। क्या आप इस स्वर्गको नहीं लाना चाहते? शायद आपका विचार एक दम बाहर जायगा और आप कहेंगे कि हम तो इस स्वर्ग को लाना चाहते हैं किन्तु अन्य लोग इसे नहीं लाने देते। यह शिकायत तभी तक है जब तक कि स्वयं इसके लिये यत्न नहीं किया जाता। एक ही जगत् एक आदमी के लिये स्वर्ग और दूसरे के लिये नरक हो सकता है। यह अपने हाथमें है। इसी लिये इस वेद मंत्रमें चाहागया है कि सब मुझे मित्रदृष्टिसे देखें और फिर उसका उपाय बताया गया है कि मैं सब को मित्र दृष्टि से देखूं। सब स्वयं मित्रदृष्टिसे देखना शुरू कीजिये, सब आपके मित्र हो जायंगे। और आपको स्वर्ग मिल जायगा। पतंजलि मुनि तो कहते हैं तब आपके चारों ओर के प्राणी भी आपस में वैर नहीं कर सकेंगे। क्या उन्होंने यह यूं ही कह दिया है। नहीं हम अपने प्रेमसे सचमुच संसार को नया बना सकते हैं। यही योग है, यही परमात्मा की प्राप्ति है। सब जगत् में अपने प्रेम को फैला देना ही परमात्मप्राप्ति है। क्यों कि परमात्मा का सब जगत में– जगत के क्षुद्रसे क्षुद्र प्राणीमें – पुत्रवत् प्रेम है वात्सल्य है, वे सब के पिता हैं।

यदि हम सब को अपना भाई समझें,प्राणिमात्र में मित्र दृष्टि रखें, तो हम परमात्मा के अपने आपको अनुकूल करते हैं, परमात्मा के पितृस्वरूप को साक्षात देखते हैं। एवं भक्त पुरुष हरएक वस्तु में परमात्मा को ही देखते हैं और हरएक वस्तु से प्रेम करते हैं। इसलिये मैं कहता हूं कि सब प्राणियों में प्रेमदृष्टि करना परमात्मा के पास पहुंचना है। सब महापुरुष इसी प्रकार पहुंच चुके हैं। ऋषिदयानन्द ने अपना प्रेम सब जगत में फैला दियाथा। वे प्राणिमात्र के बन्धु थे। वह इसी लिये। यदि आप भी कहीं पहुंचना चाहते हैं तो 'विश्व प्रेम' को अपना आदर्श बनाइये।

प्रेम का सूर्य हरएक जीव के अन्दर छिपा हुआ है। वह कभी अपने सहस्रों किरणों में जगमगा उठ सकता है। परन्तु उसके मार्ग में एक बाधा है, रुकावट है। यदि यह रुकावट दूर हो जाय तो फिर किरणों के फैलने में क्या देर लगती है। यह है स्वार्थ खुदगर्जी जो कि हमारे मार्ग में एक मात्र बाधा है। इसे ही अस्मिता, अहंकार, अविद्या आदि में बर्णन किया जाता है। वही वृत्र है जिसने इस सूर्य को ढांप रखा है। इसी पर जय प्राप्त करने के लिये वेदों में इतनी युद्ध वर्णनायें हैं। हमें यह समझ लेना चाहिये कि 'स्वार्थ ही हमारा एकमात्र शत्रु है'। जितना जितना हम स्वार्थ के आवरण को हटायंगे उतना उतना ही हमारा प्रेम का सूर्य फैलता जायगा। हम अपने स्वार्थ को ही हटाते हुवे अपना स्वार्थ स्थापित कर सकते हैं— और कोई बाधा इस में नहीं है। इस लिये आइये अब देखें कि हम स्वार्थ ग्रस्त पुरुष किस क्रमसे बढते हुए अपने प्रेम सूर्य को पूर्ण विकासित कर सकते हैं।

पहिला कदम है अपने परिवार में यह स्वर्ग का राज्य स्थापित करना। माता पिता पत्नी पति भाई बहीन आदि सब परिवार के सभ्य परस्पर स्नेह दृष्टि से देखें, मधुर वाणी बोलें, एक दुसरे की सहायता करते हुए मिल कर रहें। परिवार में सबसे पहिले मनुष्य 'मुझे शारीरिक स्वार्थ में ही ग्रस्त नहीं रहना चाहिये' यह सीखता है। परन्तु परिवार के लिये स्वार्थ त्याग करना कुछ कठीन नहीं है। जो लोग अपने परिवार में ही वह प्रेम का राज्य नहीं ला सकते वे आगे समाज या देश की क्या सेवा कर सकेंगे यह बात अनुभव करनी चाहिये। यदि परिवार में शान्ति नहीं है तो पहिले अपने प्रेममय और स्वार्थत्यागमय व्यवहारसे परिवार को यह पाठ पढाना होगा। यदि शान्ति है तो आप आगे देखें।

अब अपने समाजमें या अपने नगर में आप के सब मित्र होने चाहिये। हर एक मनुष्यके साथ आपका मित्र सदृश स्नेहका बर्ताव होना चाहिये। यदि आप अपने नगर या अपने समाज के लिये अपने स्वार्थ त्यागने के लिये तैय्यार हैं तो आपके लिये वहां कोई अमित्र नहीं रहेगा। इससे अपने दिलसे पूछियें कि अपने नगरमें या अपने

समाज में मेरी किसीसे शत्रुता तो नहीं है। यदि है उसे त्यागिये और अपने स्वार्थ त्यागसे शत्रुको भी अशत्रु बनाइये। परन्तु मैं यहां आगे चलने से पूर्व एक स्पष्ट प्रश्न पूछ लेना चाहता हूं। कहीं आप पुराने संस्कारों के वश या उनमें बह कर यह तो नहीं भूल गये कि जिन्हें आज कल 'अछूत' कहा जाता है वे भी आपके नगर के और समाज के भाई हैं !! क्या वे भी आपके साथ मित्रवत् एक चटाई पर बैठ सकते हैं ? कुवें पर चढ सकते ? यदि नहीं तो सोचो कि क्यों ? । क्य ये भाई नहीं ? । यदि भंगी का कार्य मलिन है तो क्या यह कार्य हमारी मातायें नहीं करती, डाक्टर लोग नहीं करते ? फिर क्या बात है। यदि वे मलिन रहते हैं तो यह तुम्हारे स्वार्थ के कारण है। पुराने ग्रंथों में पाखाना कमाने का पेशा करने वालों का कहीं जिकही नहीं है, इस के लिये 'शब्द' ही नहीं है। यदि वे हमारे लिये सफाई का इतना उपयोगी कार्य करते हैं तब तो हमें उनका बडा एहसानमन्द होना चाहिये, उन को दुतकारना किस तर्क से सिद्ध होता है। यदि आप इन बातों को बहुत सुन चुके हैं तो पहिले स्वार्थ को धोकर अपने को पवित्र कीजिये तो तुरन्त आपका प्रेम इन परम उपकारी किन्तु पीडित जीवों तक फैल जायगा। आप पश्चात्ताप कर इन्हें अपनायगें। आपके मित्रवत व्यवहार को देख ये स्वयमेव अपने को स्वच्छता से भी रखेंगे। समझ नहीं आता कि जो इनमें से स्वच्छ रहते हैं उन्हें भी स्पर्श करने तक भी झिझक क्यों होती है। क्या उनमें आत्मा नहीं है ? । उनमें आत्मा और परमात्मा का वास यदि उन्हें हमारे लिये छूने तक पवित्र नहीं बना देते तो निःसन्देह हम ही अपवित्र हैं । क्या आर्यसमाज में भी ऐसे व्यक्ति हैं जो इन्हें छू नहीं सकते, जिनके बच्चे इनके बच्चों के साथ पढ नहीं सकते, जिनके कुओं परसे ये बिचारे जल नहीं भर सकते। यदि ऐसा है तो इस खाई को बिना भरे आगे नहीं चल सकते। जब तक हम अपने समाज में अपने एक एक भाई को मित्रका स्वाभाविक हक नहीं देदेंगे तब तक हम समाज ही नहीं बना सकते और इसी लिये हमारे दुःख भी नहीं टल सकते। इस प्रश्न को विना हल किये हमारे लिये कुछ और चारा नहीं है। यदि हम अपने क्षुद्र स्वार्थों की बाल देनेसे न डरें तो आर्य समाज एक झटके में अस्पृश्यताको दूर कर सकती है। क्या यह दयानन्द स्मरण का शुभ अवसर यूं ही देखते देखते बीत जायगा और हमसे इतना भी न करा सकेगा। यदि हर एक आर्य आज से इन्हें मित्र की तरह स्पृश्य बना ले तो ही अच्छा है। तब कहा जा सकता है कि उसने दयानन्द जन्म शताब्दि कुछ मनाई है और वेद का उपदेश सुना है। अस्तु। एवं समाज के एक एक व्यक्ति में हमारा मित्र भावका प्रेम फैल जाना चाहिये।

आगे हमारा कुटुंब देश बनता है। इस कुटुम्ब का अनुभव पाठक देशभक्ति के प्रकरण

में कर चुके हैं। मातृभूमि के सब पुत्र हमारे भाई हैं। सब हिन्दु, सब मुसलमान, सब ईसाई, सब सिक्ख हमारे भाई हैं। प्रायः हम लोगों का प्रेमविस्तार अभी अपनी छोटी कौमों और फिरकों से ऊपर नहीं उठा है इस लिये इस कदम के बढानेमें हमें विशेष यत्न की जरूरत है। हमारा प्रेम सम्पूर्ण देशमें फैल जांय और देशके लिये अपने सब स्वार्थों को बलिदान करदें। मातृभूमि की सेवा करने के लिये बेशक हमें बहुत अधिक स्वार्थहीन होना पडेगा, परन्तु इस स्वार्थ हीनता वा प्रेम विस्तार से ही हमें सुख मिलेगा, क्यों कि ऐसा करने से हम परमात्मा के अधिक नजदीक पहुंचेंगे। देशके सब बासिंदों के सुख में हम अपना सुख समझें, उन के दुःखसे हम दुःखित होजांय। देश भाइओं की ऐश्वर्य वृद्धि में हम अपने को धनी समझें और उनकी निर्धनता में अपनी निर्धनता। सारे देश में अपना प्रेम फैलाने का यही अर्थ है। और इस प्रेम विस्तार द्वारा हम अपने देशमें स्वर्ग ला सकते हैं यह कोई कठिन काम नहीं है, क्यों कि संसार के बहुतसे देश अपने इस देश प्रेमके बलसे सुख भोग रहे हमारे सामने विद्यमान हैं। परन्तु इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व भी अपने आर्य भाइओं का एक बात की तरफ ध्यान आकर्षित करना जरूरी है यह प्रायःकहा जाता है और इसमें सचाई भी जरूर है कि हममें 'परमतसाहिष्णुता की कमी होती है। हम कई बार अपने देश भाइओंसे केवल मजहबी मतभेद के कारण घृणा करने लगते हैं और लडने झगडने तक लगते हैं। यह त्रुटि बडी आसानी से दूर की जा सकती है और हमें जरूर दूर कर डालनी चाहिये। 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' का वैदिकसन्देश रखने वालों को क्या यह भी बतलाने की जरूरत है कि धर्म का प्रसार प्रेम से ही होता है। अस्तु। हम देशके सब भाइओं को अपनी मातृभूमि के लिये प्रेम संबंध कर मिलजाना चाहिये और इसे लिये अपना सब कुछ बलि चढा देना चाहिये तथा और बलि की जरूरत हो तो उसे चढाने के लिये भी तैय्यार करना चाहिये।

अगला कदम है सार्वभौम प्रम+संसार के सब मनुष्योंसे प्रेम मनुष्य - जातिसे प्रेम॥ हमारी देशभक्ति दूसरे देशों से द्वेष के लिये नहीं। इस समय जो जगत् में एक देश भक्ति के नाम पर दूसरे देश को हानि पहुंचा रहा है, दूसरी जाति को पीडित कर रहा है इस द्वेष भाव को दूर करनेका सामर्थ्य भी इसी वेदाज्ञा के पालन में है, और इसकी महान जिम्मेवारी वैदिक धर्मों के मानने वाले पर है। हमारा देशप्रेम जगत्प्रेम के विरुद्ध न होवे यह हमें ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये हमें और भी अधिक बलिदान करने की जरूरत होगी, पर इससे संसार का परम लाभ होगा। यह आर्यसमाज का कर्तव्य है कि वह अपनी देशभक्ति में परदेशद्वेष न आने पावे। अंग्रेज फ्रेंच या जापानी भी हमारे भाई हैं, वे मनुष्य जाति-

में होने से हमारे भाई हैं, जगन्माता के पुत्र होने की हैसियत से हमारे भाई हैं । तभी हम वैदिक धर्म को सार्वभौम कह सकेंगे और कुछ महत्त्व के साथ यह प्रार्थना कर सकेंगे कि " मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।"

परन्तु मनुष्यमात्र तक पहुंच कर भी कोई प्रेमविस्तार की अवधि नहीं होजाती । वेदने तो कहा है ' भूतानि ' अर्थात् सब प्राणी, केवल मनुष्य नहीं । सब प्राणिमात्र में हमारा प्रेम होना चाहिये । पशु पक्षी आदि की जानको भी अपने जैसा समझना चाहिये । यहां तक अनुभव करना ' वैदिक धर्म ' की ही विशेषता है । कहते हैं कि एक योरोपीय पुरुषने बंगाल के बडे दुष्काळ में आश्चर्यसे देखकर कहा था, कि ये लोग भूखे मरते जाते हैं, परन्तु पशु पक्षिओं को मारकर खाकर अपना जीवन बचाने की चेष्टा तक नहीं करते । यह घुसे हुए वैदिक धर्मके अवशेष का ही चिन्ह था । जहां पशुओं का मारना दैनिक कार्य है वहां के लोगों को आश्चर्य होना स्वाभाविक है । परन्तु वेद में तो सब जगह ' द्विपाद चतुष्पाद' के भले की इकट्ठी प्रार्थनायें होती हैं । बिचारे पशु-पक्षी हमसे लडकर भिडकर कुछ नहीं ले सकते, बहुत कुछ हमारी दयापर हैं अत एव इन्हें प्रतिदिन हमें ही देना चाहिये यह वेद हमें सिखाता है । गोरक्षा के धर्म होने में यही रहस्य है । वहां गौ सब इन दीन प्राणिओं की प्रतिनिधि होती है । कहते हैं कि स्वामी दयानन्दजी को एक बार एक आदमीने देखा कि उनके कलम पर मक्खी बैठगयी तो उन्होंने लिखना बन्द रखा जब तक कि वह स्वयं उड न गयी । स्वामी रामतीर्थ सांपको भी भाई कह के पुकारते थे । अमेरिकन एमर्सन भिडों के छत्ते के पास रहता था । मतलब यह है कि प्राणमात्र के अन्दर मित्रदृष्टि होनी चाहिये । अपने प्रेम से जगत् को भर देना चाहिये । प्राणी ही क्यों कोई भी वस्तु (भूत) ऐसी नहीं होनी चाहिये जहा कि हम प्रेम से न देख सकें । भूत का असली अर्थ तो उत्पन्न हुई हुई एक वस्तु है । महात्मा गण संसार की एक घटनामें भी, सुखमें भी प्रेम ही करते हैं । उन्हें हरएक वस्तुमें हरएक बातमें परमात्मा ही दिखायी होते हैं — और वे सदा प्रेम ही करते हैं । यह स्वार्थ को, कामना को सर्वथा त्याग देनेसे स्थिति प्राप्त होती है । जब कि सब स्वार्थों की बाधाओं को दूर कर प्रेम का सूर्य जब जगत् में व्याप जाता है उस अवस्था का ही वर्णन वेद में किया है कि—

तत्र को मोहः कः शोक एकत्व-
मनुपश्यतः ।

आशा है हम भी स्वार्थ को नष्ट करते हुवे जहां तक पहुंच चुके हैं उसके आगे प्रेम को विकसित करनेका यत्न करेंगे । और इस आदर्श को कभी नहीं भूलेंगें कि—

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

ऋषि-तर्पण।

१ आज ऋषि तर्पण करने की प्रतिज्ञा कीजिये।

२ वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदोंका पढना पढाना और सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है।

३ जो द्विज वेदका अध्ययन छोड कर अन्य कार्यमें परिश्रम करता है, वह जीता हुआ ही, अपने वंशजोंके साथ, शूद्रत्वको प्राप्त होता है। (मनु. २।१६८)

यदि आपको वेदका अध्ययन करना है तो निम्नलिखित पुस्तक आजही लीजिये—

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य ।

(लेखक ' राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति ' आत्मारामजी अमृतसरी)

संस्कारचन्द्रिका । शताब्दी संस्करण बहुत उत्तम छपकर तय्यार है। मनुष्य मात्र के उपयोगी ग्रन्थ है । इस में हमारे जीवन में जो महत्व पूर्ण संस्कार होते हैं उनकी वैज्ञानिक खोज उनको कहां तक करने के लिए बाधित करती है यह सविस्तर बताया है । महर्षि दयनान्द प्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या है । प्रत्येक संस्कार की फिलासफि युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा बडी विद्वत्ता से सिद्ध की है। मू. सजिल्द ४) डा. व्यय ॥।)अजिल्द ३॥)

सृष्टिविज्ञान पुरुषसूक्तका स्वाध्याय तथा वेदोत्पत्ति संबंधी मंत्रोंकी व्याख्या मू. २)

तुलनात्मक धर्म विचार १)ब्रह्मयज्ञ ॥।) शरीरविज्ञान ।≡) आत्मस्थान विज्ञान-) नीति विवेचन १।) गीतासार ।=)

गुजराती हिन्दी शब्द कोष ६) समुद्रगुप्त ॥=) आरोग्यता॥।) श्रीहर्ष॥) मजहबेइस्लामपर एक नजर =) ऋषिपूजा की वैदिक विधि-) विज्ञापकके ग्राहकों को =) रुपया छूट। वा. मूल्य २)

विज्ञापक, बडोदा । अपने ढंग के अनूठ मासिक में प्रति मास **वैदिक समाजान्तर्गत** आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् राज्यरत्न आत्मारामजी, कुंवर चांदकरणजी शारदा, रावसाहब बाबु रामविलास जी, पं. आनन्द प्रिय जी, प्रोफेसर आर्ते एम.ए. के लेखों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रोचक विषय भी। वा. मू. ३) नमूना ।-) प्रकाशक)

जयदेव ब्रदर्स बडोदा ।

" आर्य्यों को सिद्धान्तरक्षाकी सूचना "

वैदिक वेदान्त का सारगर्भित अपूर्व ग्रन्थ **" माण्डूक्योपनिषद् स्वरूप "** अर्थात् " माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, ओंकाररहस्य, ओंङ्कार दर्शन ओंकारोपासना " जिसमें " सृष्टि-विज्ञान, शरीर विज्ञान और शब्द विज्ञान भी आगया है " जिसकी उत्तमता को श्री० म० नारायण स्वामीजी, श्री. पं. आर्य्यमुनिजी श्री. मास्टर आत्मारामजी राजरत्न (अमृतसरी) बडोदा आदि विद्वानों ने वर्णन किया है । मूल्य॥≡)तथा " कठोपनिषद का स्वरूप " अर्थात् "**कठोपनिषदभाष्य,** यमगाथा, श्राद्ध मीमांसा तथा उसका **वैदिक** स्वरूप और रहस्य या मौतकी कहानी।" मूल्य) ≡ मिलने का पता—

सञ्चालक आर्ष विद्यासदन
(लखीचबूतरा) काशी

संस्कृत पाठ माला।

स्वयं संस्कृत सीख कर रामायण महाभारतादि ग्रंथों का पाठ तथा अन्यान्य आर्ष ग्रंथोंका पाठ स्वयं करनेकी प्रबल इच्छा पाठकों के मन में उत्पन्न होगई है। इस लिये पाठकों की प्रेरणासे ही यह—

संस्कृत पाठ माला

मुद्रित करनेका कार्य हमने प्रारंभ किया है।

एक वर्षमें बारह पुस्तक प्रसिद्ध किये जांयगे और यदि पाठक प्रतिदिन घंटा अथवा आधघंटा इन पुस्तकों का क्रमपूर्वक अध्ययन करेंगे तो एक वर्षके अंदर उनको पर्याप्त संस्कृत आ जायगा।

बारह पुस्तकों का मूल्य म. आ. से ३) तीन रु. है
और वी. पी. से ४) चार रु. है।
प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ।-) पांच आने और डाकव्यय -) एक आना है

विद्यार्थियोंके लिये

विशेष सहूलियत है। जो गरीब हैं वे इनका अध्ययन विनामूल्य भी कर सकते हैं।

अपने सब मित्रोंको इसकी सूचना दीजिये। जो ग्राहक प्रारंभसे होंगे उनको ही सहूलियतसे लाभ होसकता है। पीछेसे मूल्य भी बढेगा।

मंत्री—स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक ३
क्रमांक ६३

फाल्गुन सं. १९८१
मार्च स. १९२५

वैदिकधर्म.

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-सचित्र-मासिक-पत्र ।

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

महाभारत ।

(१) आदि पर्व तैयार हुआ है। पृष्ठ संख्या ११६५ मूल्य म. आ. से ६) और वी० पी० से ७) रु० है।

(२) सभा पर्व प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक छपकर प्रसिद्ध होता है।

(३) १२अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म०आ० से ६) और वी० पी० से ७) रु० है।

(४) हरएक ग्राहक को प्रारंभसे सब अंक मिलते हैं।

म० आ० से मूल्य भेजनेसे ग्राहकोंका लाभ है, वी० पी० मंगवानेमें नुकसान है।

शीघ्र ग्राहक बन कर महाभारत जैसे आर्योंके दिग्विजय के इतिहासिक काव्यका पाठ कीजिये।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ मातृभूमिकी सेवा ७३
२ बाह्य स्थितिपर अपना अधिकार ... ७४
३ पद्मासन ८४
४ समवृत्ति प्राणायाम ८५
५ वैदिक वर्ण विभाग ९०
६ तूष्णीं शंस सूक्त ९८
७ देवताओंकी मित्रता १०२
८ भगवद्भक्त की भावना १०४
९ पुस्तकपरिचय १०४

वैदिक धर्मके पिछले अंक।

क्रमांक २३, २४, २६ से ४४, ४६ से ६०, तक सब अंक की थोडी प्रतियां हैं। जो लेना चाहते हैं शीघ्र लिखें।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

महाभारत।

[सुंदर चित्रोंके साथ]

आर्योंका प्राचीन इतिहासिक महाकाव्य।

हम प्रतिमास १०० सौ पृष्ठों का एक अंक छाप रहे हैं।

इस समय तक आदिपर्व पृष्ठसंख्या ११२५ छप चुका है।

सभापर्व छप रहा है। यह भी दो मासमें संपूर्ण होगा।

आप शीघ्र ग्राहक बन जाइये।

१२०० बारह सौ पृष्ठोंका मूल्य म०आ०से ६) छह रु० और वी.पी. से ७) रु० है। आप म० आ० से रु० भेजेंगे तो आपका लाभ है, वी.पी. से आप का नुकसान है।

पीछेसे मूल्य बढेगा।

मंत्री —स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वर्ष ६
अंक ३

क्रमांक
६३

फाल्गुन
सं० १९८१
मार्च
स० १९२५

वैदिक तत्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मातृभूमिकी सेवा ।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं
धर्मणा धृताम् । शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा ॥
अथर्व. १२।१।१७

औषधियोंकी (मातरं) उत्पत्ति करनेवाली, (शिवां) कल्याण कारिणी, (स्योनां) सुखदायिनी, और (धर्मणा धृतां) धर्मसे धारण की हुई (ध्रुवां पृथिवीं भूमिं) स्थिर और विस्तृत मातृ भूमिकी (विश्वहा) सर्वदा (विश्व-स्वं) सर्वस्व अर्पण करके (अनु चरेम) सेवा करेंगे ।

अनेक औषधियां उत्पन्न करनेवाली, कल्याण करके सुख देनेवाली और हमारे धर्माचरणसे जिसका धारण होता है उस हमारी मातृभूमिकी हम सर्वदा सर्वस्व अर्पण करके सेवा करेंगे ।

बाह्य परिस्थितिपर अपना अधिकार ।

योगसाधनमें अपनी आत्मिक शक्तिपर अचल विश्वास, बुद्धिमें सद्भावनाओंकी स्थिरता, मन का संयम, इंद्रियोंका दमन,तथा शरीर की शुद्धि करना अत्यंत आवश्यक है, इस विषयमें किसीका भी मतभेद नहीं हो सकता; क्योंकि सब धार्मिक ग्रंथ इस विषयमें साक्षी देरहे हैं, और साधन करने वालोंका अनुभव भी यही है। परंतु अपनी बाह्य परिस्थितिपर भी योगीको अपना अधिकार जमाना चाहिये, अपनी बाह्य परिस्थिति अपने योग्य करनी चाहिये;इस विषयमें बहुत थोडे लोगोंने विचार किया है, और इसविषय पर अत्यंत अल्प लिखा गया है । बाह्य परिस्थितिपर अपना अधिकार जमानेके विषयमें योग के ग्रंथोंमें जो स्थान स्थानपर उल्लेख आते हैं, वे इतनी गुप्त रीतिसे और गुह्य सांकेतिक शब्दोंसे आते हैं, कि उनका स्पष्ट ज्ञान साधारण पाठकोंको होना अत्यंत कठिन है, इसलिये इसविषयमें थोडासा वर्णन इसलेखमें करना है । वेद कहता है कि—

अहमिंद्रो न पराजिग्ये ।

ऋ. १०।४८।५

"मैं इंद्र हूं, मेरा पराजय नहीं होगा।" यह सत्य सिद्धांत है। आत्मा ही इंद्र है, और उसका पराभव नहीं होसकता। जिस समय यह अंदरका इंद्र अपने सब इंद्रियोंको अपने आधीन करके शत्रुओंके साथ युद्ध करेगा, तब निःसंदेह आत्माकाही विजय होगा। परंतु इस समय इंद्रियां प्रमत्त हैं, और उनके जेलखानेमें इंद्र पडा है, उसके मनमें जो आता है उस भावसे वही काम आत्माको करना ही पडता है।यह आत्माकी परतंत्र

परिस्थिति है; उसके नौकरोंने ही उसको बंदिगृहमें रखा है, वे जैसा चाहे वैसा इसको नचाते हैं, और आत्मा इंद्रियोंके पूर्ण आधीन होकर उनकी आज्ञाका पालन कर रहा है!!! इसके अंदर जब आत्म विश्वास उत्पन्न होगा, और वह अपनी शक्ति को जानकर अपने शत्रुओंका पराजय करनेके उद्देश से जिस दिन खडा होगा; उसी दिन उसकी स्वतंत्रता होगी, यही मुक्ति है। हरएक को इसी मार्गसे जाना है।

"इंद्र" वह होता है कि, जो "(इन्) शत्रुओंका (द्र) विदारण करता है।" अर्थात् जो अपने शत्रुओंका पराभव करनेकी शक्ति रखता है, वही इंद्र है। इंद्र अंदर है, और उसके शत्रु उसके बाहिर हैं। शत्रुओंने उसको घेरा हुआ है, शत्रओंका आवरण इसके बाहिर से है; इसीलिये इंद्रके शत्रुका नाम "वृत्र" (अर्थात् घेर कर लडनेवाला) है। जो प्रतिकूलता करते हैं, वे शत्रु और जो अनुकूल होते हैं, वे मित्र कहे जाते हैं। वास्तविक देखा जाय, तो इंद्रका कोई शत्रु नहीं है, तथापि जबतक इंद्र अपनी शक्तिसे अपरिचित होता है, तब तक सब अन्य शक्तियां उसके विपरीत कार्य करतीं हैं। इसलिये अपनी शक्तिकी पहचान होना चाहिये। योगसे ही अपनी शक्ति जानी जा सकती है। वस्तुतः सब इंद्रियां आत्माकी उन्नतिके लिये ही उत्पन्न हुई हैं, परंतु येही इंद्रियां आत्मोन्नतिके विरुद्ध कार्य में रमतीं हैं, और इसी कारण शत्रुवत् बन जातीं हैं। इससे आत्माके शत्रुओंका पता लग सकता है। (१) विपरीत बुद्धि, (२) हीन मन, (३) कुत्सित इंद्रियां, (४) पराधीन शरीर, (५) विपरीत कुटुंब स्थिति, (६) जातीकी हीन अवस्था, (७) राष्ट्रकी अधोगति, (८) प्रतिकूल गृह स्थिति, (९) हीन समाज स्थिति, (१०) अधार्मिक वायुमंडल; ये सब आत्माके शत्रु हैं। इन पर अपना प्रभाव जमाना अत्यंत आवश्यक है। आसनोंके अभ्याससे शरीर स्वाधीन हो जाता है, प्रत्याहार के अभ्याससे इंद्रियां अनुकूल होतीं हैं, । एकाग्रताके अभ्याससे मन आधीन होता है, वारंवार शुद्ध भावना के चिंतन करनेसे बुद्धि भी अनुकूल हो जाती है अर्थात शरीर की आंतरिक शक्तियों की स्वाधीनता करनेका कार्य उक्त प्रकार सिद्ध होता है। इसका

वर्णन स्थान स्थान पर है। इससे जो बाहिरकी परिस्थिति है, उसपर अपना अधिकार जमाना और उस परिस्थिति को अपने आधीन करनेका विचार इस लेखमें करना है।

शीत उष्ण का विचार इसमें पहिला है। हरएक का अनुभव है कि, थोडीसी सर्दी हुई तो जुकाम हो जाता है, और थोडीसी उष्णता होनेसे खुष्की हो जाती है। इसलिये हवा की न्यूनाधिक उष्णतापर अपना स्वास्थ्य अथवा रोगीपन रहता है। यह अवस्था बहुत बुरी है। शरीरको शीत, उष्ण और वृष्टि सहन करनेका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। थोडीशी सर्दी हवाके बढनेसे, किंचित् उष्णता बढजाने से अथवा थोडीसी वृष्टि होनेसे शरीरपर कोई बुरा परिणाम नहीं होना चाहिये। शीत उष्ण,आर्द्रता खुष्की, आदि द्वंद्व अनेक हैं। इन द्वंद्वोंको जीतना चाहिये। शीत सहन करनेकी शक्ति बढानी चाहिये, इसी प्रकार उष्णता सहन करनेकी शक्ति भी बढानी चाहिये। इसी रीतिसे अन्य द्वंद्वोंके विषयमें समझ लीजिये। प्रायः मनुष्य थोडीसी सर्दी लगने लगी, तो कंबल पहनते हैं; थोडीसी धूप लगने लगी, तो छायामें जाते हैं; इसलिये शरीरकी त्वचा अत्यंत कोमल हो रही है। अपनी परिस्थितिके अनुसार शीतोष्णादि द्वंद्व सहन करनेका अभ्यास बढानेसे शरीरमें ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है कि, उस को हवामान बदलनेसे कष्ट नहीं होते। कई मनुष्य हमने ऐसे देखे हैं कि, जो बडी सर्दीमें नंग शरीर फिरते रहते हैं; तथा बडी धूपमें भी दिनभर काम करते रहते हैं, तोभी इनको कोई कष्ट नहीं होता। पाठक इस शीतोष्णादि द्वंद्व सहन करनेका तप अपनी परिस्थितिके अनुसार करके इस बाह्य परिस्थितिपर अपना प्रभुत्व जमालें। और शरीरको ऐसा सख्त बनावें कि, सर्दीगर्मीसे कोई बुराई उसपर न हो। सर्दी गर्मीमें रहनेका अभ्यास करनेसे इस प्रकार की शक्ति शरीरमें आजाती है।

शीतोष्णता की अर्थात् आब हवा की परिस्थिति पर उक्त प्रकार प्रभुत्व स्थापित करनेके साथ साथ गृहपरिस्थितिको भी अपने अनुकूल करना चाहिये। इसविषयमें पहिली बात अपने घरकी और घरके बाहिर की स्वच्छता रखने की है। आप अपने कमरेसे स्वच्छता का प्रारंभ कीजिये; इसमें

आप स्वयं अपनी, अपने कपडे लत्तोंकी, तथा अपने कमरेकी स्वच्छता रख सकते हैं। अपने पहनने के कपडों की स्वच्छता स्वयं की जा सकती है, गरमीके दिनों में पसीनेकी बदबू कपडोंको बडी दूरसे आती रहती है; तथापि उसका विचार न करते हुए वैसेही अमंगल कपडे कई लोग पहनते हैं!! वस्तुतः कपडे प्रतिदिन धोये हुए पहनने चाहिये। प्रतिदिन कपडे धोनेके लिये कोई अधिक व्यय करना नहीं पडता। स्वयं ही धोये जा सकते हैं। इसी प्रकार अपने कमरे की स्वच्छता ऐसी रखनी चाहिये कि, उसमें थोडाभी कचरा किसी स्थानपर न रहे। कई लोग अपने सब जूते अपने कमरे में लाते हैं, और जमीन को कभी झाडूका स्पर्श न कहीं करने!! जूतेके नीचे सब मार्गपरका मैला लगता है, और वही घरमें आता है; इससे अनेक बीमारियोंके कृमी घरमें आते हैं और घरमें अनेक बीमारियां होतीं हैं। शुद्धता करनेसे बीमारियां दूर हो सकतीं हैं। इस लिये योगके यमनियमोंमें (शौच) शुद्धताकी इतनी प्रशंसा की है। अपने कमरेकी सब चीजें ऐसी योग्य रीतिसे व्यवस्थित लगानी चाहिये कि, जो व्यवस्था देखनेमें सुंदर भी दीखे और समयपर बिना आयास आवश्यक पदार्थ मिल भी जांय। प्रत्येक पदार्थके लिये स्थान नियत रहे और नियत स्थानमें ही निश्चित पदार्थ रखा जाय। ऐसा करने से समय की बहुत बचत हो सकती है। जो विचार अपने कमरे के विषयमें है वही अपने घरके और घरके बाहिरके स्थानके विषयमें है।

अपने कमरेमें और घरमें सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु विपुल आनेका प्रबंध चाहिये। सूर्य प्रकाशसे और शुद्ध वायुसे आयुष्यकी वृद्धि होती है, ऐसा वेदमें अनेक स्थानपर कहा है; उसका अनुसंधान यहां करना उचित है, देखिये—

दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥
अ. १४।१।४७

वात आवातु भेषजं शंभु
मयोभुवो हृदे। प्र ण आयूंषि
तारिषत् ॥
ऋ. १०।१८६।१

"(१) सविता तेरी आयु दीर्घ करे। (२) वायु औषध लावे, वह शांतिदायक और कल्याण कर्ता है, वह हम सबकी आयु बडी दीर्घ करता है।" इस प्रकार सूर्य-प्रकाश और वायुका दीर्घ आयु

तथा आरोग्यके साथ संबंध है। इसलिये अपने घरमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि, जहांकी स्वच्छता सूर्य प्रकाश और वायु प्रतिदिन किया करे।

अपने घरमें एक कमरा कमसे कम ऐसा रखना चाहिये कि, जहां शांति के साथ " परमेश्वरकी उपासना " करना संभव हो। उस कमेरे में सब पदार्थ ऐसे ही हों, कि जो शांतिके सूचक हों। तथा किसी प्रकारका उपद्रव होने की संभावना न हो। यह स्थान स्वाध्याय के लिये और ईश्वर उपासना के लिये आप अलग रखिये। इस कमरेमें जाते ही बाह्य अशांति बाहेर ही रहे, और शांति के वायु मंडलमें प्रवेश होनेका अनुभव आजाय। इस प्रकारके शांतिपूर्ण स्थानमें ईश्वर उपासना अच्छी हो सकती है, और स्वाध्याय भी बहुत ही अच्छा हो सकता है। उपासना के पश्चात् स्वाध्याय करनेके लिये आवश्यक योग्य पुस्तकें तथा इतर साधन इस कमरेमें ठीक प्रकार रखिये; ताकि स्वाध्याय समाप्त होने तक बाहिर जानेकी आवश्यकता उत्पन्न न हो। अत्यावश्यक कोश, लिखनेका सामान आदि सब इसलिये रखिये कि, उपासनाके पश्चात् के स्वाध्यायमें कई ऐसीं नवीन कल्पनायें सूझतीं हैं, उनको उसीसमय न लिखनेसे फिर स्मरण रखना कठिन हो जाता है,और आया हुआ आत्मिक संदेसा भूल जाता है। समय समय पर ऐसे शांत अवसर पर बहुत ही उच्च विचारों का स्फुरण हो जाता है, इसलिये उक्त सूचना लिखी है।

बाह्य परिस्थितिपर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकेलिये ईश्वरउपासना और स्वाध्याय की आवश्यकता अत्यंत है। स्वाध्याय क अर्थ केवल पुस्तकों का अभ्यास नहीं है, प्रत्युत (स्व+अध्याय) अपना निरीक्षण और परीक्षण है। अपने अंदर जो गुण दोष होंगे, उनका विचार करना, और उनको दूर करना, इसी समय होता है। जो उत्तम ग्रंथ पढा जाय, उसके विचारोंको अपने जीवनमें ढालना चाहिये। कहांतक इस विषयमें कार्य हुआ है, और कहांतक अपनी उन्नति हो सकती है; इसका विचार करना और अधिक श्रेष्ठ बननेके लिये किस प्रकार आचरण करना चाहिये, इसका विचार करके; जो निश्चय होगा उसी प्रकार आचरण शुरू करना चाहिये। अपना समय,

अपने साधन, अपनी बुद्धि और अपने मित्रोंकी सहाय्यता इन सब का यथा योग्य उपयोग करके उन्नति अति शीघ्र, योग्य रीतिसे परंतु सुगम रीतिसे करनेकी उत्सुकता धारण करना योग्य है।

ईश्वर भक्ति, धर्म निष्ठा, सत्य परायणता, पापभीरुत्व, आत्माकी स्फूर्ति, अपनी महत्वाकांक्षा, उत्साह, आनंदी स्वभाव, आत्मविश्वास, सतत उद्योग करने की सिद्धता, यश न आनेपर भी पुनः पुनः प्रयत्न करके सिद्धितक पहुंचनेका दीर्घोद्योग आदि सद्गुण, जो विजय प्राप्तिके लिये अत्यंत आवश्यक हैं, आपके अंदर कितने हैं, और आप उनको किस प्रकार उपयोगमें ला रहे हैं, उनका अच्छा से अच्छा उपयोग किस रीतिसे हो सकता है, इसका विचार आप वारंवार कीजिये; और अपने गुण का यथायोग्य उपयोग करके अभ्युदय का साधन कीजिये। यह समझ लीजिये कि, आपके आत्मा में तथा मन आदि आपकी शक्तियों में स्वभावतः कोई दोष नहीं है; परंतु उनका उपयोग जैसा चाहिये, वैसा योग्य मार्गसे आप नहीं कर रहे हैं, इस ~~होता~~ लिये आपको यश विलंबसे प्राप्त होता है। इसीलिये अपने साधनों की उत्तम योजना कीजिये, तो आपकी सिद्धि आपके पास ही मिल जायगी।

कोई कार्य करना हो, तो आनंद के साथ उत्साह से कीजिये। एकही कार्य आनंदसे करनेसे परिणाम उत्तम होता है; परंतु दुखी मनके साथ किया जाय, तो वही हानि करता है। इसलिये "सब अवस्था में आनंद मय उत्साह अपने पास सदा रखिये।"

अपने कार्य के लिये आपको साधनों की अत्यंत आवश्यकता होती है, कोई साधक योग्य साधनों के विना कोई साध्य प्राप्त करही नहीं सकता है। इसलिये अपने अभ्युदयके लिये आपको चाहिये कि, आप सबसे उत्तम साधन— जितने उत्तम आपकी परिस्थितिमें प्राप्त हो सकते हैं—अपने पास कीजिये। साधनों की उत्तमतासे सिद्धि भी उत्तम प्राप्त हो सकती है। इसलिये उत्तम साधन पास करनेके लिये थोडासा अधिक व्यय कीजिये। वह अधिक व्यय अंतमें हानिकारक सिद्ध नहीं होगा। जो उत्तम सुतार अपने शस्त्र उत्तम रखता है, वही उत्तम कार्य कर सकता है। इसी प्रकार अन्य

कारीगरों तथा अन्य व्यवसायियों की बात है और वही योगादि साधनों के लिये भी उसी प्रकार लगती है।

कई कहते हैं कि, हमारे से यह नहीं हो सकता। ऐसा पहिले ही न कहिये। "अभ्यास और वैराग्य" से सिद्धि होती है। जो करना प्राप्त है, उसका निरंतर योग्य अभ्यास और उस से भिन्न व्यवसायोंकी ओर पूर्ण उदासीनता रखनेसे कार्य सिद्धि जलदी हो जाती है। कोई कार्य आपको पहिले न आता हो तो भी निरंतर अभ्यास करनेसे, अपना सब लक्ष्य उसीमें पूर्ण तथा अर्पण करनेसे, तथा अनावश्यक अन्य व्यवसायों की ओर प्रवृत्ति न रखनेसे, वही कार्य सुकर होता है। " अभ्यास और वैराग्य " के ये मूल भाव स्मरण रखिये, इनके अनुसार आचरण करनेसे बडा लाभ होगा।

किसी समय कार्य करके आप थक गये तो वैसाही कार्य न कीजिये। दो चार मिनिट आप दूसरे स्थान पर जाइये, एक दो आसन कीजिये, चार पांच प्राणायाम कीजिये तथा एक दो मिनिट मनको निर्विचार कीजिये। ऐसा करनेसे आपके अंदर नवजीवन उत्पन्न होगा, और आप-का कार्य अच्छा होगा। ऐसा आप न करते हुए, यदि आप उसी निरुत्साहमें रहेंगे, और जबरदस्ती काम चलायेंगे, तो आपका आलस्य बढेगा, और आपसे योग्य कार्य नहीं होगा।

अपनी मानसिक मनन शक्ति को वारंवार चालना देनी चाहिये। नहीं तो मन ठीक प्रकार कार्य कर नहीं सकता। यह चालना सद्ग्रंथ पठनसे मिलती है। जो श्रेष्ठ पुरुष हुए हैं अथवा हैं, उनके विचारोंके पठनसेही अपनी विचार शक्ति को संचालन मिलता है। प्रत्येक मनुष्यके व्यवसायके अनुसार उसका मार्गदर्शक भिन्न हो सकता है। जैसा ब्राह्मणके लिये तत्त्व ज्ञान के ग्रंथ पठन करना, क्षत्रिय के लिये वीरोंके ग्रंथ पढना, वैश्यों के लिये श्रेष्ठ वणिग्वरों के विचार देखना, और शूद्रोंके लिये कारीगरोंके अनुभव देखना योग्य है। प्रत्येकको अपने स्वकीय कर्म में प्रवीणता संपादन करना योग्य है; इस लिये अपने व्यवसायका विशेष प्राविण्य और अन्योंका सामान्य ज्ञान प्राप्त करना योग्य है। अपने विचारोंको चालना देना भी इसी प्रकार करना चाहिये।

प्रत्येक ग्रंथ पढनेके समय तथा

प्रत्येक कार्य करने के समय इस का अवश्य विचार कीजिये कि, अपनी अवनति नहीं होगी, और निःसंदेह अपनी उन्नति होगी। इसलिये " आप ऐसे ग्रंथ पढिये कि, जो अपना आत्मिक बल बढा सकेंगे और अपनी वासनाओंको गिरायेंगे नहीं " तथा ऐसे मित्रोंके साथ रहिये कि जो उच्चविचार के वायुमंडलमें सदा रहते हैं, और उच्च विचार ही बोलते हैं। इतना ही नहीं, परंतु आप अपने नोकर भी ऐसे ही रखिये कि, जो आपके उत्साही विचारोंको द्विगुणित करेंगे, परंतु गिरायेंगे नहीं।

अपनी अवस्थामें जितना करना चाहिये उतना आप कर रहे हैं वा नहीं, तथा आपको जहां पहुंचना चाहिये, वहां आप पहुंच रहे हैं वा नहीं, इसका आप विचार कीजिये और योग्य दिशासे प्रयत्न कीजिये। यह स्मरण रखिये कि, आपको अपनी परिस्थितिका गुलाम रहना नहीं है; परंतु " आपको अपनी परिस्थितिका स्वामी बनना है। " गुलाम बननेसे उन्नति नहीं होगी परंतु स्वतंत्र स्वामी और प्रभु बननेसे ही उन्नति होती है। " धर्मका ध्येय स्वातंत्र्य है, " यह कभी न भूलिये।

" धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष " ये चार पुरुषार्थ आपके सामने हैं। (१) कर्तव्य पालन योग्य रीतिसे करना धर्मसे बोधित होता है, (२) योग्य रीतिसे धर्मानुकूल व्यवहार करके द्रव्यसंग्रह करनेका नाम अर्थ प्राप्ति है, (३) धर्मानुकूल और अपने प्राप्त धनके अनुसार सुखोपभोग लेना काम कहलाता है, और (४) इस प्रकार बंधनोंसे अपने आपको छुडवाकर अपने आपको स्वतंत्र करना मोक्ष होता है। मोक्ष, मुक्ति, स्वतंत्रता ही बंधसे मुक्त होने का नाम है।

यह मुक्ति जैसी वैयक्तिक है, उसी प्रकार सामाजिक, जातीय, राष्ट्रीय, प्रांतिक, औद्योगिक आदि प्रकारसे अनेक प्रकारकी है। मनुष्यको वैय्यक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त करके ही चुपचाप बैठना उचित नहीं है; परंतु वह जिस समाज जाति, या राष्ट्रका अवयव है, उसकी सार्व भौमिक स्वतंत्रताके लिये उसको अवश्यही प्रयत्न करना चाहिये। " अवयवकी इतिकर्तव्यता अवयवीके उत्कर्षके कार्यमें अपने आपको समर्पित करनेसे होती है, " अन्यथा नहीं। इस लिये वैयक्तिक पूर्णता प्राप्त

करनेके पश्चात् सार्वजनिक कार्य करनेकी आवश्यकता है। क्यों कि समाजकी पूर्णता के विना वैयक्तिक पूर्णता का प्रकाश नहीं हो सकता। इसलिये इस समय बाह्य परिस्थितिके ऊपर प्रभुत्व संपादन करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

घरकी परिस्थितिपर प्रभुत्व रखनेके उपाय पूर्व स्थलमें दिये हैं। घरकी अंदर और बाहिरकी स्वच्छता रखनेसे स्थानका प्रभुत्व सिद्ध होता है। अपनी सदा संतोषवृत्ति रखनेसे और दूसरोंके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेसे परिवारके सब आदमी अनुकूल होते हैं। शीतोष्ण सहन करनेके अभ्याससे और विपरीत अवस्थामें भी परमेश्वर निष्ठापूर्वक आनंदवृत्ति रखनेसे, जलवायु की अनुकूलता रहती है, तथा अपनी चित्तवृत्ति सब प्रकारकी अवस्थामें समानतासे प्रसन्न रहती है। प्रतिसमय अपनी सुधारणा, अपनी उन्नति, अपनी पवित्रता और संघके समेत अपना कल्याण करनेके विचारसे उन्नतिके नवीन विचार और नूतन मार्ग प्रतिदिन अपने पास आते हैं। कर्तव्य करनेका अधिकार अपना है, फल देने वाला समर्थ ईश्वर है, वह न्यायी दयालु और सर्वद्रष्टा है; वह सबका भलाही करता है, ऐसा विश्वास मनमें रखनेसे श्रद्धा का तेज अपने अंदर बढता है, और विपरीत परिस्थितिमें भी उसको अनुपम धैर्य प्राप्त होता है।

गृहपरिस्थितिका इस प्रकार वशीकरण करनेके पश्चात् ग्रामपरिस्थिति आती है। ग्राम की सहकारिसंस्था बनाकर उसमें सबप्रकारके अभ्युदयके कार्य करनेसे, तथा पूर्वकी अपेक्षा ग्रामकी सुधारणा करनेसे सब ग्राम एक विचारसे बांधा जाता है। इस प्रकार ग्रामका अभेद्य संघ बनाना और सबकी संघोन्नतिके लिये यथा योग्य प्रयत्न करनेसे ग्रामकी अवस्थापर प्रभुत्व प्राप्त होता है। केवल वैयक्तिक विचार के ही दिन अब चले गये हैं, और संघ के विचार के दिन आगये हैं; इसलिये प्राप्त परिस्थिति के अनुसार हरएक को प्रतिदिन संघकी सेवा अधिकसे अधिक करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। जितना संघका बल बढेगा, उतना समाज शक्तिका प्रभुत्व प्राप्त होता है। इसी प्रकार जातीय और राष्ट्रीय परिस्थितिके विषयमें समझना उचित है। अपनी जातीय और

राष्ट्रीय अवस्था सबसे श्रेष्ठ करनेका विचार हरएक मनुष्य के मन में उत्पन्न होना चाहिये, और हरएक से उचित कार्य भी उक्त दिशासे होने चाहिये।

इस रीतिसे विचार करके अपनी परिस्थितिका प्रभुत्व संपादन करना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, निर्लोभता, स्वच्छता, संतोष वृत्ति, तप, अध्ययन और परमात्मभक्तिसे सब परिस्थितिका प्रभुत्व संपादन किया जाता है। सारांश रूपसे यही एक नियम है, इससे वैयक्तिक और सामाजिक परिस्थितिपर अपना अधिकार रखना सुकर होता है। यही योग का प्रारंभ है। इससे पता लग सकता है कि, योगसाधन का बाह्य परिस्थितिके साथ संबंध कितना व्यापक है। पाठक यह न समझें कि, योगसाधन का संबंध केवल एक व्यक्तिके साथ ही है। परंतु राष्ट्रकी जातीय परिस्थितिके साथ भी उसका वैसा ही दृढ संबंध है। इसीलिये योगके ग्रंथोंमें कहा है कि "धार्मिक देश" में ही योग साधन हो सकता है। इस कारण योग साधन करने वालोंको आवश्यक है कि, वे अपने देशकी परिस्थिति ऐसी उच्च बनावें, कि भविष्यमें जानेवाले जनोंको योग साधन करना अधिक सुगम हो जाय। देशमें धार्मिक वायु मंडल उत्पन्न होनेसे अन्यभी बहुत लाभ हैं। इस लिये इस दृष्टिसे पाठकोंके प्रयत्न होने आवश्यक हैं।
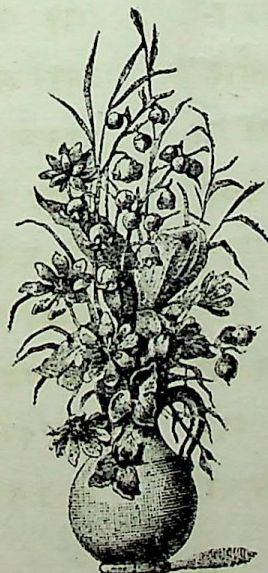
पद्मासन।

पद्मासन ।

दाहिना पांव बाईं जंघापर और बांयां पांव दाहिनी जंघापर रखिये। दोनों पांव दोनों जंघाओंपर ठीक प्रकार आजांय। पश्चात् बांयां हाथ बांये घुटनेपर और दांयां हाथ दांये घुटनेपर रखिये। पीठ, कमर, गला, सिर, पृष्ठवंश सीधा समरेखामें रखिये, चाहे अपनी दृष्टि भ्रूमध्यपर अथवा नासिका के अग्रपर रखिये, किंवा किसी बाह्य बिंदुपर भी रख सकते हैं। इसको पद्मासन, किंवा कमलासन कहते हैं।

कई यों की जंघायें इतनी मोटी होतीं हैं कि, उनके दोनों पाव दोनों जंघाओंपर किसी प्रकार भी आनहीं सकते। ऐसे लोग आरंभमें इस आसनको कर नहीं सकते। इनको उचित है कि, वे निम्न रीतिसे " अर्ध पद्मासन " ही करें और पश्चात पद्मासन करनेका यत्न करें।

एकही पांव दूसरे पांवकी जंघापर रखनेसे अर्ध पद्मासन होता है। इसमें दूसरें पांवकी एंडी गुदा और अंडकोशके बीचमें लगाना

अच्छा होता है।

पांवोंके हेरफेरसे दोनों ओर के आसन उक्त प्रकार ही बन सकते हैं। इस आसनसे पांवोंकी नस नाडियां शुद्ध होती हैं, और ध्यानादिके लिये एक ही आसनपर अधिक देरतक बैठना सुगम होता है। पद्मासन में बैठकर पेट को पसलियोंमें ऊपर खींचनेसे और कुछ देर वहां ऊपर ही रखनेसे पचन शक्ति बढ जाती है और पेट के दोष दूर होते हैं। इसप्रकार पांच मिनिट तक करनेसे भूख अच्छी लग जाती है और पेट का आम वायु दूर होता है। पद्मासनमें बैठ कर कंठ मूलमें ठोढी लगानेसे और पृष्ठवंश सीधा रखनेसे मास्तिष्क का मज्जा प्रवाह ठीक होनेमें सहायता होती है, इसी कारण इससे विचार शक्ति बढ जाती है।

कई लोग इस पद्मासनको करनेके समय हाथ बीचमें भी रखते हैं, और कई अपनी छातीके साथ भी रखते हैं। कई तीसरे अपने हाथोंको ऊपर करके सिरके सीधे ऊपर लेजाकर ऊपर एक दूसरेसे मिलाकर हाथ जोड कर नमस्कार करते और वैसे ही हाथ वहां ही रखते हैं;ऐसा करने से पेट और छातीके स्नायु ओं में अच्छी प्रकार ऊपरका खिंचाव आता है और उक्त स्नायुओंको लाभ होता है।

समवृत्ति प्राणायाम।

प्राणायामके विघ्नोंको दूर करनेका सुगम उपाय।

आज कल नाना प्रकार के दुष्ट व्यसनोंके कारण लोगोंके शरीर ऐसे अशक्त और कमजोर हुए हैं कि, वे कुंभक के साथ थोडेसे भी प्राणायाम कर नहीं सकते !! कुंभक प्राणायाम करनेसे कई लोग नाना प्रकारकी शिकायतें करते रहते हैं, वास्तवमें इसका दोष प्राणायाम के साथ बिलकुल नहीं है; परंतु उनके दुर्व्यसनों के साथ अथवा उनके माता पिता ओंके दुर्व्यसनाधीनता के साथ संबंध रखता है। दस पंध्रह वर्षोंके सूक्ष्म निरीक्षणसे जो बातें अनुभव में आचुकी हैं, उनका सारांश रूपसे वर्णन यहां करता हूं, जिससे प्राणायाम करनेवाले अपनी पूर्ण तैयारी करके ही प्राणायाम का अभ्यास कर सकेंगे।

जो स्वयं जन्मसे मांसाहारी हैं

और विशेषतः जिनके बापदादा भी मांसाहारी-अर्थात् अधिक मांसाहारी रहे हैं, उनको कुंभक प्राणायाम से विविध प्रकारके कष्ट होते हैं। छातीमें, पसलियोंमें दर्द होता है, पेटकी गडबड उत्पन्न होती है, सिरमें कई दोष होने का ख्याल हो जाता है। विशेषतः श्वास-दमा-आदि का प्रकोप होता है। इसका कारण इतना ही है कि, मांसाहारी कुलमें जन्म होनेके कारण अथवा अपने शरीरके सब परमाणु मांस-भोजन के ही होनेके कारण खून, मज्जातंतु तथा फेंफडोंमें विशेषतः और सब शरीरमें साधारणतः प्राणशक्तिको धारण करनेका बल ही नहीं रहता है। प्राणशक्ति का बल सबसे अधिक है, इस लिये जब उसको स्वाधीन करनेका यत्न किया जाता है, वह शक्ति क्रोधित होकर प्रतिबंधको तोडना चाहती है। प्राण स्वयं "बीरभद्र" होनेसे उसके सामने अन्य शक्तियां कमजोर ही होतीं हैं। मांसभोजी लोग मसाले आदि उत्तेजक पदार्थ बहुत खाते हैं, इसलिये उनके शरीरके परमाणुओंमें प्राण धारक शक्ति कम ही होती है। मांसके साथ मद्यसेवन करनेवालोंमें, और जिनमें आनुवंशिक मद्य पान शुरू है, उनमें तो बहुत ही, प्राणधारक शक्ति अत्यंत हीन अवस्थामें रहती है। ऐसे लोग जिस समय अपने प्राणरूपी "बीरभद्र" को रोकना चाहते हैं, उस समय वह उनको ही ताडन करता है और जो शरीरका भाग अत्यंत कमजोर होता है, उसीमें बिगाड होने लगता है। इसलिये ऐसे लोगोंको प्रारंभमें उत्तम पथ्य करना चाहिये और पश्चात् प्राणायाम शुरू करना चाहिये।

मांस भोजनसे यद्यपि शरीर बडा पुष्ट होता है तथापि सौमें ३६ ऐसी बीमारियों की स्वभावतः संभावना उनके शरीरमें रहती है, कि जो रोग कदापि फल भोजियों को होते ही नहीं। इसलिये दौडना, तैरना अथवा दीर्घ काल तक कोई कार्य करना, जिसमें कि प्राणशक्तिकी स्थिरताकी आवश्यकता रहती है, ऐसे कार्योंमें मांस भोजी लोग फलभोजियोंके पीछे हमेशा रहते हैं। यही कारण है कि, इनसे कुंभक नहीं होता और बलसे किया जाय तो हानि करता है। मद्यपियोंके लिये तो यह भय अत्यंत अधिक है।

भंग, गांजा, अफीम, चरस आदि भयंकर व्यसन करनेवालोंके

लिये तो कुंभक प्रायः अशक्य ही है। तमाखू खाने पीने वालोंके शरीरमें रक्त दोष बहुत होता है, तथा तमाखुके व्यसन जन्मभर करनेवालों की संततिमें खूनकी बिमारी, मज्जातंतुओंकी कमजोरी और हृदयकी निर्बलता जन्मसे ही रहती है। इस कारण इन लोगोंसे कुंभक प्राणायाम करना कठिन हो जाता है, तथा बलपूर्वक करने से हृदयकी कमजोरी बढ जानेकी संभावना होती है। न्यूनाधिक व्यसनके कारण न्यूनाधिक परिणाम होता है इसका विचार पाठक भी कर सकते हैं। अर्थात् यदि मातापिता बहुत बलवान हुए, तो उनपर व्यसनोंका बुरा परिणाम उतना नहीं होता है, जितना कि कमजोर मनुष्योंपर होता है; इसलिये संतानों में भी उसी प्रमाणसे दोष उतरते हैं। तमाखुके व्यसनमें विशेष यह बात है; कि, इसके सेवन करने वाले पर थोडासा बुरा परिणाम होता ही है, परंतु उसके वीर्य में बहुत ही दोष उत्पन्न होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि, उनकी संततिमें जन्मसे वीर्य दोष और हृदयकी कमजोरी रहती है तथा खूनकी खराबी और मज्जातंतुओं-की शिथिलता जन्मसे ही रहती है। इस लिये तमाखू आदि व्यसन किसी गृहस्थीको करने नहीं चाहिये। परंतु आजकल सिगरेट आदि पीना बडा सभ्यताका द्योतक समझा जाता है, और बडे बडे अखबारोंमें तमाखूके विज्ञापन भी कम नहीं होते हैं। इस दुष्ट सभ्यता के साथ "वैदिक धर्म" को अवश्य युद्ध करना चाहिये, और निर्व्यसनता की सर्वत्र स्थापना करनी चाहिये।

इससे और सभ्य व्यसन हैं, जो चाय काफी आदि रूपमें हमारे चूले तक घुस गये हैं!!! ये व्यसन मज्जातंतु ओंको ऐसा बिगाडते हैं कि उस से बचनेका उपाय आगे की आयुमें कोई भी नहीं होता है। चाय कापी पीने वाले माता पिताओंके बाल बच्चोंमें जन्म से मज्जातंतु ओंकी निर्बलता रहती है और उसमें अधिक दोष इस कारण उत्पन्न होता है कि, जब स्वयं पीते हुए माता पिता अपने छोटे छोटे बालबच्चों को भी चा कापी पिलाते हैं! कई पुत्रद्रोही पिता हमने ऐसे देखे हैं कि, जो स्वयं बिडी पीकर अपने चारपांच वर्षके लडके को पीने देते हैं !!! इसी प्रकार चा काफी भी पिलाते ही

हैं !! बचपन से जो बच्चे चा काफी पीते हैं, उनको आगे दूध भी हाजम नहीं होता, और अंतमें पेट का बिगाड निःसंदेह होजाता है। ये सब व्यसन "सभ्यता" के नामसे अपने देशमें फैले हैं !!! जिन लोगोंमें विचार का कार्य कम किया जाता है, उन जाति-योंमें इन व्यसनोंका बुरा परिणाम कम दिखाई देता है; परंतु जिन लोगोंके पीछे पढने पढाने का काम बडा होता है, अर्थात् जो दिमागी कार्य बहुत करते हैं, उनमें तथा उनकी संततिमें इन दुष्ट व्यस-नोंके परिणाम भयानक रीतिसे दिखाई देते हैं। नाश कम हो या अधिक हो इन व्यसनोंसे नाश निःसंदेह होता है; इस लिये सुवि-चारी धार्मिकोंको इन व्यसनोंसे बहुत दूर रहना चाहिये।

"हुक्का पानी" शुरू करना या बंद करना जिन लोगोंमें संपानके साथ संबंध रखता है, उन जाति-योंकी हीन अवस्थाका वर्णन नहीं हो सकता। इस लिये सब पाठ-कोंसे प्रार्थना है कि, वे उक्त व्यस-नोंसे अपने आपको तथा अपने इष्टमित्रों, अपने परिवारके लोगों और अपनी जातिके लोगोंको दूर रखनेका यत्न करें।

जो लोग ऐसी हीन परिस्थितिमें जन्मे हैं, उनको कुंभक प्राणायाम के पूर्व पथ्य करना चाहिये और पश्चात् अभ्यास का प्रारंभ करना उचित है। पथ्य यह हैं, (१) मांसभोजन छोडदेना, (२) म-साले कम करते करते बिलकुल न्यून करने और अंतमें छोडना अथवा अतिन्यून उपयोग करना, (३) खटाई, मिर्च आदि पदार्थ कम खाना, (४) वीर्यदोष हुआ होगा, तो उसका उपाय-जो "ब्रह्म-चर्य" पुस्तक में लिखा है-करना और उस दोषसे निवृत्त होना, (५) सात्विक भोजन करना, फलोंका सेवन अधिक करना, (६) विशे-षतः 'गायका दूध पीना," असंभव हुआ तो बकरी का पीना, ये दूध बिलकुल न मिलनेकी अवस्थामें भैंसका पीया जा सकता है। "गाय-के दूधमें प्राण धारक शक्ति सबसे अधिक होती है।" प्राणायाम करने-वालोंको गायका दूध अवश्य पीना चाहिये, आजकल गौवें कम होती जाती हैं। यह एक धार्मिक आपत्ति है, इस लिये गोरक्षण और गो—वर्धन का प्रयत्न अव-श्य करना चाहिये। गोदुग्धके अभावमें भैंस का दूध लेना पडेगा। अन्य रहने सहनेमें सात्विक भाव

अधिक लाना चाहिये। इस प्रकार शरीरदोष की न्यूनाधिकताके अनुसार एक वर्षसे तीन वर्ष तक पथ्य करना चाहिये। जिनके शरीर बहुत दोषोंसे युक्त हों उनको कदाचित् अधिक भी करना पडे। इस प्रकार देहशुद्धिका उपाय करते करते निम्नलिखित "समवृत्ति प्राणायाम" का अभ्यास करनेसे बडा लाभ होता है।

"समवृत्ति प्राणायाम" वह होता है कि जिसमें आंतरिक और बाह्य कुंभक नहीं होता। समगतिसे तथा मंद वेगसे श्वास और उच्छ्वास चलते रहते हैं। पहिले आप श्वासकी गति मंद कीजिये और पश्चात् श्वासको जितना समय लगता लगता है, उतना ही उच्छ्वासको लगाइये। श्वासोच्छ्वासको गति आप अंकोंकी गिनतीसे नाप सकते हैं, अथवा ॐ कारके जपसे अथवा किसी अन्य मंत्रके जपसे नाप सकते हैं। यदि आपका श्वास आठ अंकोंसे अंदर जाता है, तो आठ ही अंकोंसे उसको बाहिर छोडिये। फिर उतने ही अंकोंसे अंदर लेकर उतने ही समयसे बाहिर छोडिये। किसी प्रकार प्राणशक्तिपर बलका दबाव न डालते हुए जितना आसानीसे हो सकता है उतना ही करते जाइये। इस प्रकार दो सप्ताह करनेके पश्चात् एक अंककी संख्या बढाइये। फिर प्रति पंद्रह दिन के पश्चात् एक अंककी संख्या बढाइये। बीसकी संख्या होने तक श्वास और उतनेही समयका उच्छ्वास होने तक ही कीजिये। कईयोंके मतसे २४ की संख्या तक भी बढाया जासकता है। बढाया तो इससे भी अधिक जा सकता है, परंतु यह सब प्रत्येक प्रकृतिके अनुसारही बढाना योग्य होता है। इसलिये हमारा ख्याल यह है कि जिनका विचार हम इस लेखमें कर रहे हैं, उनके शरीर के बलके अनुसार बीस अथवा चोवीस की संख्यातक बढाना पर्याप्त है।

श्वास तथा उच्छ्वास इतनी मंदगतिसे हो कि उसका बिलकुल आवाज न हो, श्वासोच्छ्वासका आवाज न तो दूसरेको सुनाई दे और न अपने आपको सुनाई देवे। नहीं तो कईयोंके श्वासका आवाज बडा दूर तक सुनाई देता है, ऐसा श्वास लेना ठीक नहीं है। शब्द रहित श्वास और उच्छ्वास चलने चाहिये और नियत गतिसे होने चाहिये।

उच्छ्वास छोडनेके समय पूरा छोडना चाहिये, अर्थात् फेंफडोंको

निःशेष खाली करना चाहिये । तथा श्वास लेनेके समय भी फेंफडोंके निचला भाग जो पेटके पास होता है, उसमें श्वास पहिले पहुंचे और पश्चात् क्रमशः ऊपर के भागोंमें श्वास भरना चाहिये । और श्वास भरनेके समय अथवा उच्छ्वास छोडनेके समय किसी प्रकार का धक्का लगना नहीं चाहिये । भरना भी ऐसा चाहिये और खोलना भी ऐसा चाहिये कि जो समझमें भी न आवे ।

दमा और श्वास के रोगी, तथा जिन के फेंफडे बडे कमजोर होते हैं, यदि अपनी शक्तिके अनुसार इस प्राणायामको गर्मी के दिनोंमें शुरू करेंगे, तो उनके दोष दूर हो सकते हैं। किसी प्रकार की बीमार अवस्थामें इस प्राणायाम को करना हो, तो गर्म हवा का स्थान पसंद करना योग्य है । जिस हवामें आर्द्र सर्दी है उस हवामें बैठकर करना अच्छा नहीं है । वायु शुद्ध हो परंतु गीला और सर्द न हो । इस लेखके प्रारंभमें जिनका वर्णन किया है, उन लोगोंमें प्राणका बल बढानेके लिये यह " समवृत्ति प्राणायाम " बडा उपयोगी है । बीमार अवस्थामें इसको शक्तिसे कम करना योग्य है, योग्य शक्ति आनेपर बढाया जा सकता है। आशा है कि इस विधिके अनुसार करके साधारण लोग इससे लाभ उठायेंगे ।

वैदिक-वर्ण-विभाग ।

(लेखक- श्री० रामचरण विद्यार्थी ।)

प्राचीन तथा आधुनिक सम्पूर्ण संसार के समस्त विज्ञान वेत्ताओं और विद्वानों ने वेदों को संसार के साहित्य में सबसे प्राचीन पुस्तक माना है । आर्य्यावर्तीय ऋषि महर्षिजन वेदों को ईश्वरीय वाक्य समझ कर उनको स्वतः प्रमाण मानते हैं । वेदेतर समस्त पुस्तकें उनको परतः प्रमाण हैं । वेद विरुद्ध किसी विषय की प्रामाणिकता ऋषियोंने स्वीकार नहीं की । वेद इस विषय में अपने स्वयं साक्षी हैं । वेद का ज्ञान नित्य है । न तो वह नष्ट होता है और न पुराना । उसको जान कर मनुष्य अमर हो जाता है, उससे भिन्न कोई मार्ग भी विवेकी-जनोंके लिए श्रेयस्कर नहीं है । अतः सब मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर के काव्य रूप वेदों को देखें, वेदों का स्वयं पढकर उनका मनुष्य मात्र में प्रचार करें । सब एक ही पिता के अमृत पुत्र हैं अतः सब मनुष्य परस्पर

प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तें।

जिस समय संसार में वेदों का प्रचार होगा, संसार आनन्द का आकर और शान्ति का सागर बन जायगा। विवेकी जन जिस आदर्श संसार का सम्प्रति स्वप्न देखा करते हैं, वेदों में उस आदर्श को प्राप्त करने की क्रियात्मक विधि का वर्णन है। सांसारिकाभ्युदय और निश्रेयससिद्धि को उपलब्ध करने का सन्मार्ग जैसा वेद ने दर्शाया है, संसार का अन्य कोई धर्म पुस्तक उसकी समानता नहीं कर सकता। वैयक्तिक और सामाजिकोन्नति के विषय में यदि वैदिक मन्तव्य का अन्वेषण किया जाय, तो उत्तर साररूपेण दो शब्दों में प्राप्त होता है।

(१) वर्ण।

(२) आश्रम।

वैदिक सभ्यता का सर्वोत्तमरत्न वर्णाश्रम धर्म है। वर्णाश्रम धर्म सामाजिक तथा वैयक्तिक समविकास और सामञ्जस्य की सुन्दर शिक्षा प्रदान करता है। वर्ण विभाग का सबन्ध मुख्यतया सामाजिक अभ्युत्थान से है तथा आश्रम व्यवस्थाका सम्बन्ध वैयक्तिक उन्नति से है। संसार के सामाजिक इतिहास का अनुभव वैदिक सभ्यता के इस वर्ण विभाग विषयक पक्ष का प्रबल पोषक है। आश्रम धर्म की ओर संसार का ध्यान अभी तक आकर्षित नहीं हुआ और न संसार ने अभी तक इस के रहस्य को ही जान पाया है।

सामाजिक शास्त्र के इतिहास में सामाजिक अभ्युत्थान में हम को दो नियम मुख्यतया कार्य करते दिखाई देते हैं।

(१) श्रम विभाग।

(२) अन्योन्याश्रय।

श्रम विभाग और अन्योन्याश्रय-यह दो नियम समाज शास्त्र के इतिहास में समाजोन्नति के मूल मन्त्र दिखाई देते हैं। समाज का कार्य सुरूपेण सञ्चालित करने के लिए, वेदों के स्वाध्याय से प्रकट होता है, कि वेदों ने श्रम विभाग का आदेश दिया है। यजुर्वेद का तीसवाँ अध्याय इसी श्रम विभाग के वर्णन से परिपूर्ण है। इस अध्याय के अनुसार कार्य सञ्चालनार्थ समाज का सौ से अधिक भागों में विभाग किया गया है। वेदों ने इस अध्याय के अनुसार मनुष्य समाज के सौ से अधिक वर्ण और उन वर्णों के गुण कर्मादि गिनाये हैं।

> **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।**
> ऋग्वेद १०।९०।१२ यजु० ३१।११
>
> **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्। मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥** अथर्व० १८।६।६

इन मन्त्रोंसे यह भाव प्रकट हो सकता है कि इन सौ से अधिक वर्णों के विभागों को चार प्रकार के विभागोंके अन्तर्गत विभक्त कर सकते हैं। व्यापक रूप से सौ से अधिक मनुष्य जाति के वर्ण अपनी अपनी

योग्यता के अनुसार चार विभागों में विभक्त हो सकते हैं। एक बात इस चतुर्विभाग के विषय में स्मरणीय यह है कि इस इन चारों विभागों की उन्नति, हित, तेज और प्रियता के लिए वेदों में अनेक स्थलों पर प्रार्थना की गई है। इन चारों विभागों को समानाधिकार दिए गये हैं।

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन। ऋ० १।५१।८

इस में मनुष्य समाज को दो विभागों में विभक्त किया गया है। इस मनुष्य समाज के दो विभागों के विषय में एक बात यह स्मरण रखने योग्य है कि उक्त दो विभाग करते समय एक विभाग के मङ्गल और इष्ट की वेदों के अनेक स्थलों में प्रार्थना है, परन्तु द्वितीय विभाग के अमंगल, नाश, और अनिष्ट की प्रार्थना है। द्वितीय विभाग के दमन करने, दण्ड देने और जाति-च्युत करने की प्रार्थना है। समाज के इन विभागों का नाम आर्य तथा दस्यु और चार विभागों का नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र है।

आर्य तथा दस्यु–दो विभागों मे आर्य का मङ्गल और दस्यु का अमङ्गल करना वेदादेश है। आर्यों के मङ्गल और दस्युओं के अमङ्गल के विषय में कुछ मन्त्र यह दिये जाते हैं।

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्। हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्॥ ऋ० ३।३४।९

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा। अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय। ऋ० १।११७।२१॥

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय। अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः। ऋ० ६।१८।३

यहां पर आर्यों के लिए "ज्योतिश्चक्रथुः" और "आर्यं वर्णं प्रावत्" आदि शब्द आये है, जिनसे प्रकट होता होता है कि आर्यों के लिए प्रकाश और रक्षा का विधान वेदों में आया है। उपरि लिखित वेद मंत्रों में ही "हत्वी दस्यून्," "दस्युं बकुरेणा धमन्तः" "अदमायो दस्यून्" आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनसे प्रकट होता है कि दस्यु को हनन करने, अग्निदत्त अस्त्र से भस्म करने तथा दमन करने की वेदों में आज्ञा दी है। आर्य, दस्यु के इस सम्बन्ध को अधिक व्यक्त करने के लिए कुछ वेद मंत्र और लिखे जाते हैं।

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र। धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः॥ ऋ० १।३३।४॥

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे। अवादहो दिव

आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ऋग्वेद १ । ३३ । ७॥

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत । त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र-ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ऋग्वेद १ । ५१ । ५

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथार-न्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् । महा-न्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादे-व दस्युहत्याय जज्ञिषे॥ ऋ.१।५१।६

उपरि लिखित तथा अन्य वेद मन्त्रो में दस्यु को दमन करने की स्पष्ट आज्ञा विद्यमान है। आर्यों की रक्षा चाहने वाले वेद मन्त्रों को पूर्व देख चुके हैं। आर्य तथा दस्यु से किन पुरुषों का ग्रहण करना चाहिए। इसके लिए उपरि लिखित वेद मन्त्रों में प्रयुक्त हुए दस्यु तथा आर्य शब्द के विशेषण और दस्यु तथा आर्य शब्द के यौगिक अर्थ यदि देखे जांय तो दुष्ट पुरुषों का नाम दस्यु तथा श्रेष्ठ पुरुषों का नाम आर्य है । वेद का ज्ञान नित्य और सार्वभौमिक है, अतः यह सिद्ध है कि आर्य तथा दस्यु सब संसार में, मनुष्य अच्छे या बुरे होने के कारण कहाते हैं। दस्यु के विशेषण और पर्य्याय वाची अयज्वान, अव्रत, दासादि शब्दों का वेदों में अनेक स्थलों पर प्रयोग आया है । उक्त प्रयोगों से स्पष्ट है कि दस्यु अपराधी को कहते हैं ।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् । अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ऋ. ९ । ६३ । ५

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रु-तूर्याय बृहतीममृध्राम् । यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ ऋ. ६। २२ ।१०

इन मंत्रों में संसारस्थ दुष्ट अपराधी पुरुषों को आर्य बनाने की प्रेरणा की है। इस से यह अभिप्राय व्यक्त होता है कि मनुष्य जाति में आर्य तथा दस्यु- दो प्रकार के अच्छे और बुरे मनुष्य होते हैं। दस्यु को दण्ड देकर, समाज से बाहर निकाल कर या अन्य विधियों से आर्य बनाना चाहिए । समाज के अन्दर दस्यु न रहने पावे-यह यत्न करना चाहिए। दस्यु अर्थात् दास, अव्रती आदि पुरुषों की विद्यमानता में समाज की उन्नति होनी असम्भव है । समाज में तो सब आर्य ही होने चाहिए । जिस समाज में दस्यु होंगे उसकी अवश्य अवनति होगी ।

समाज की उन्नति के लिए चार प्रकार की योग्यता से पूर्ण पुरुषों की आवश्यकता है। इसी लिए वेद में इन चार विभागोंके मंगल और अभ्युत्थान की समान रूपसे प्रार्थना है।

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् ॥ यजुर्वेद ३० । ५॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु

नस्काधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥
यजु. २० । १७

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ य. २०।१९

प्रिय मां दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च । यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते॥
अ. १९ ।३२ ।८

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥अ. १९ । ६२ । १

आदि मन्त्रोंमें चारों विभागों को प्रीति पूर्वक वर्तने का सदुपदेश है । चारों प्रकार के जन समुदायों की मंगल कामना, तेज वृद्धि आदि के लिए प्रार्थना और उपदेश है । किसी का अमङ्गल नहीं चाहा और न किसी को दुष्ट अथवा अव्रती ही कहा गया है । इतना ही नहीं, वरन् सब को समानाधिकार प्रदान किया गया है । इस समानाधिकार और सममंगलकामना के आधार पर कहा जा सकता है कि इस चतुर्विभाग के अन्तर्गत दास, दस्यु तथा अव्रती आदि अपराधी मनुष्यों की गणना नहीं है ! हाँ, मङ्गल कामना के आचार पर यह स्पष्ट है कि यह चतुर्विभाग आर्यों के अन्तर्गत है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र योग्यता सम्पन्न कोई भी अनार्य नहीं, क्योंकि यदि कोई भी अनार्य होता तो उसके दण्ड और दमनादि का विधान वेदों में होता । ऐसा विधान कहीं नहीं प्रत्युत चारों की उन्नति और रक्षाका विधान विद्यमान है । संसार के सब पुरुष परमात्मा के अमृत पुत्र हैं ।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।
ऋ० १० । १३ । १.

उनमें से जो दुष्ट हो जाय उनको आर्य बनाना चाहिए । आर्यों के भिन्न व्यक्तियों को चाहिए कि समाज के धारणार्थ चार योग्यता ओं में से किसी एक योग्यता को धारण करें जिससे वह समाज की चार आवश्यकता ओं में से एक आवश्यकता की पूर्ण प्रकार से पूर्त्ति कर सकें । चारों योग्यता ओं में कुशल होकर पूर्ण पुरुष होना तो कठिन है अतः किसी एक अंश में ही विशेष योग्यता प्राप्त करनी उचित है। वह चार योग्यता यें (ब्रह्मणे) ज्ञान (क्षत्राय) शौर्य वीर्य और रक्षण (मरुद्भ्यः) दूकानदारी आदि और (तपसे) अधिक शारीरिक परिश्रम, शिल्प हैं । मनुष्य को योग्य कि उक्त चारों में से किसी एक में विशेष योग्यता प्राप्त करे ।

उपरि लिखित प्रमाणों के आधार पर हम मनुष्य जाति का निम्न लिखित रीति से विभाग कर सकते हैं

मनुष्य समाज ।

(विश्वे अमृतस्य पुत्राः । यजु. ११।५)

आर्य, व्रती, यज्वानः (प्रावत = रक्षाके लिये। ऋग्वेद१।१३०।८)	दस्यु, अनार्य, अव्रती (हत्याय = दण्डके लिये। ऋग्वेद१।५१।६)

ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र

आर्यों के चतुर्विभाग की श्रेष्ठता, समानता और आवश्यकता को व्यक्त करने के लिए वेद में इसका अति सुन्दर प्रश्नोत्तर रूपेण आलङ्कारिक वर्णन आया है । आलङ्कारिक रूपसे आर्यों के इस पद विभाग को व्यक्त करने के लिऐ वेदों में एक प्रश्न आता है जिससे इस समस्या की पूर्ति के-लिए प्रश्न उठाया गया है कि समाज में मुख के समान काय करने की योग्यता रखने वाले को क्या समझना उचित है ? बाहू, ऊरू (मध्यभाग) और पादों के समान कार्य करने की योग्यता से सम्पन्न पुरुष को क्या समझना चाहिए । जिस प्रकार मनुष्यशरीर में शिर, बाहू, मध्यभाग और पाद मिलकर शरीर का सम्पूर्ण कार्य करते हैं, इसी प्रकार समाजरूपी शरीर में शिर, बाहू आदि के कार्य करने वाले को क्या समझना चाहिए और उसको किस योग्यता से सम्पन्न होना चाहिए ॥ शरीर की नाई समाज इन चारों विभागों की विद्यमानता में पूर्ण कहावेगा ।

गर्दन से ऊपर के भाग का नाम यहां इस आलंकारिक वर्णन में मुख शब्द से प्रकट किय है । मुख शब्द से यहां शिर का अभिप्राय है । इस शिर में नेत्र, कान, घ्राणादि इन्द्रियाँ निवास करती हैं । मनुष्य इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा श्रवण, मनन, निदिध्यासन विवेकादि सब कुछ इसी से करता है । मनुष्य समाज रूपी शरीर में इस प्रकार कार्य करने वाले को क्या समझना चाहिए ?

मुख भला बुरा सब कुछ निर्णय करके शरीर के शेष अंगों की सहायता से

स्वकार्य को पूर्ण करता है । हाथ समस्त शरीर की रक्षा करते हैं । अतः बाहुवत् समस्तसमाज रूपी शरीर की रक्षा करने की योग्यता रखने वाले पुरुष को क्या समझना चाहिए ?

ऊरू से उक्त आलङ्कारिक वर्णन में शरीर के मध्यभाग का ग्रहण किया गया है । गर्दन से नीचे और जंघा के ऊपरि भाग को मध्यभाग कहते हैं । शरीरस्थ इस भाग का यह कार्य होता है कि इस भाग में प्रत्येक भुक्त पीतादि वस्तु सञ्चित होकर पुनः वहां से सुन्दर पुष्ट रस बन कर मस्तिष्क से पाद पर्यन्त समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग को पुष्ट करती है । मनुष्य समाज रूपी शरीर का इस प्रकार पालन पोषण यदि कोई करें, तो उनको समाज में क्या समझना चाहिए ?

पैर के विना शरीर कुछ भी नहीं कर सकता । सर्वत्र आना जाना पैर के बल पर ही होता है । समस्त शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग का आश्रय पैर ही है । यदि पैर न हो तो मनुष्य पंगु हो जाय । इस समाज धारणार्थ समाज रूपी शरीर में पैर का काम करने वाले व्यक्तियों को क्या समझना चाहिये ?

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्यते ॥

यजु० ३१।१०, ऋग्वेद १०।९०।११ अथर्व० १८ । ६ । ५ ॥

(यत्) जब (पुरुषं) पुरुष परमात्मा को (वि+अदधुः) विविधप्रकार से धारण किया, (कतिधा) कितने प्रकार से (वि+अकल्पयन्) विशेष करके कल्पना की । (अस्य) इसका (मुखम्+किम्+आसीत्) मुख कौन है ? —वेद में लिट् लङ् और लुङ् सभी काल होते हैं । " छन्दसि लुङ् लिङ् लिटः ॥ ३ । ३ । ६ । धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः । (किम्+बाहू, किम्+ऊरू, पादौ+उच्यते) दोनों बाहु कौन है, दोनों ऊरू कौन है और इसके दो पैर कौन हैं ?

यह चार प्रश्न हैं जिन का उत्तर अगले वेद मन्त्र में दिया गया है ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

ऋ. १०।९१।२ य. ॥३१।११

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्। मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।अथ. १९।६।६

(अस्य+मुखं+ब्राह्मणः+आसीत) इसका मुख ब्राह्मण है ।(बाहू+राजन्यः कृतः) दोनों बाहू क्षत्रिय है ! (यद्+वैश्यः, तद्+ऊरू) जो वैश्य है वही ऊरू अर्थात मध्यभाग है। (पद्भ्याम्+शूद्रः+अजायत) दोनों पैर शूद्र हैं।

"पद्भ्यां शूद्रोऽजायत" का शब्दार्थ "पैरों से शूद्र पैदा हुए" होता है । वह शब्दार्थ युक्तियुक्त और बुद्धिपूर्वक न होने से ग्राह्य नहीं । अतः इसका पूर्वापर सम्बन्ध के अनुसार भाव ही ग्रहण करना चाहिए।

यदि 'पद्भ्याम्' पद में आई पञ्चमी

विभक्ति का निमित्त अर्थ किया जाय तब भी सब शंका दूर हो जाती है। तब इसका अर्थ 'पैर के कार्य के निमित्त' होगा। इसी प्रकार का अर्थ "चन्द्रमा मनसो जातः" आदि वाक्यों का "मनो विनोद के लिए चन्द्रमा" अर्थ किया जाता है॥

उपरि लिखित वेद मन्त्रोंसे स्पष्ट प्रकट होता है कि उक्त चारों विभागों का क्या अभिप्राय है? जिस प्रकार शरीर का संरक्षण इन चार प्रकार की योग्यता धारण करने वाले अङ्गों से होता है। इसी प्रकार समाज का संरक्षण भी ज्ञान, रक्षा, व्यापार, शिल्पादि विद्याओं में कुशल पुरुषों के द्वारा होता है।

शरीर के उक्त अलङ्कार से एक भाव यह भी व्यक्त होता है कि जिस प्रकार शरीर के चारों भाग अन्योन्याश्रित हैं, इसी प्रकार समाज में भिन्न भिन्न योग्यता रखने वाले पुरुषों के विषय में समझना उचित है। यही भाव समाज शास्त्र में कार्य करने वाले श्रमविभाग और अन्योन्याश्रय—इन दो नियमों से विदित होता है। जङ्गली और असभ्य जातियों में प्रायः यह देखा जाता है कि प्रत्येक पुरुष अपने सब काम कर लेता है और किसी एक कार्यमें उसे कुछभी विशेषत्व प्राप्त नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि समाज के अङ्ग प्रत्यङ्ग सब पृथक् पृथक् होते हैं। किसी प्रकार का सङ्गठन नहीं होता। परस्पर युद्ध होता रहता है। सभ्य समाज में सङ्गठन होता है और इसके प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। सब में प्रेम होता है और कोई युद्धादि नहीं हो पाता। एक दूसरेपर आश्रित होने के कारण एक वर्ग दूसरे वर्ग को घृणा दृष्टिसे नहीं देखता और न छोटा बड़ा समझा जाता है।

अतः वेद मंन्त्रों से यह प्रकट है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन सब प्रकार की योग्यता धारण करने वाले पुरुषों को समानाधिकार है। वे अपनी अपनी योग्यता के अनुसार कार्य कर सकते हैं। कोई भी पुरुष चारों योग्यता ओं मे से किसी एक योग्यता का धारण करने वाला अपनी उस योग्यता के कारण घृणित, मूर्ख या पतित नहीं। ब्रह्मविद्याध्ययन के कारण ब्राह्मण रक्षादि की योग्यतासे सम्पन्न होने के कारण क्षत्रिय, व्यापारादि की योग्यता धारण करने के कारण वैश्य तथा कठिनतर शारीरिक परिश्रम और कारीगरी आदि की योग्यता धारण करने के कारण शूद्र आदि समझना चाहिये। आर्यों के यह विभाग है और भिन्न भिन्न योग्यता के धारण करने वालों को भिन्न भिन्न योग्यतासे सम्पन्न ब्राह्मणादि समझ सकते हैं। यह विभाग संसार व्यापी है। सारे सभ्य तथा उन्नत समाजों में स्थित भिन्न भिन्न व्यवसायी पुरुषोंको इन चार विभाग में विभक्त कर सकते हैं और भिन्न भिन्न योग्यता के अनुसार उनको ब्राह्मणादि पुकार सकते हैं। यही भाव वेद के उस प्रसिद्ध मन्त्रसे प्रकट होता है, जोकि यजुर्वेद अ० ३० में ५ वां मन्त्र है।

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं
मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् ॥
यजुर्वेद ३० । ५ ।

(ब्रह्मणे ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान के लिए ब्राह्मण, (क्षत्राय राजन्यं) शौर्य वीर्य के लिए क्षत्रिय, (मरुद्भ्यः वैश्यम्) मनुष्योंके लिए वैश्य, (तपसे शूद्रम्) कष्टके कठिन कर्मों के लिए शूद्र। इस प्रकार से यह विभाग सार्व भौमिक है ।

जो पुरुष वैदिक कर्तव्य और समाज शास्त्र के नियमों का उल्लंघन करते हैं अर्थात अनाचारी, अन्य का पदार्थ छीनने वाले, यज्ञादि शुभ कर्मों से विहीन और अज्ञानी आदि दुष्ट पुरुष हैं, उन अनार्य पुरुषों को वेदों में दस्यु, दास, अव्रत, अयज्वान, अनाभुवादि नामों से पुकारा गया है और उन को सुधारकर आर्य बनाने की प्रेरणा की गई है । इसी प्रकार चारों वेदों में अनेक मन्त्र हैं परन्तु कुछेक वेद मन्त्रों के स्वाध्याय से वेदों का भाव व्यक्त हो सकता है ।

(क्रमशः)

तूष्णीं शंस सूक्त ।

(लेखक .-श्री. पं. परमानन्दजी उपदेशक)

ब्राह्मणस्य मंत्रव्याख्यानरूपत्वात्
मंत्रा एवादौ समाम्नाताः ।
(तैत्तिरीय संहिता सायणभाष्य भूमिका)

ब्राह्मण मंत्रों के व्याख्यानरूप हैं अतः मंत्रों का ही पहले उपदेश हुआ था, वेदका व्याख्यान होने की दशा में यह वेद और ब्राह्मण दोनों के लिये गौरव युक्त नहीं प्रतीत होता, कि उनमें यज्ञ ही यज्ञ भरा हुआ हो और फिर जैसे जैसे बीभत्स शब्द इस प्रकरण में आए हैं उनको देखकर तो (यदि उनका अन्त्येष्टि, नरमेध आदि विज्ञानपरक अर्थ न लिया आए) वेद और ब्राह्मण दोनों से घृणा हो जाती है, निरुक्तकार महर्षि यास्क भी इसी सम्मतिके प्रतीत होते हैं क्यों कि वह भी नहीं किसी ब्राह्मण

ग्रन्थकी प्रतीक धरते हैं वहां अन्तमें ' इति ह विज्ञायते ' यह शब्द लिखते हैं, और यह आश्चर्य भी होगा यदि यजुर्वेद के अतिरिक्त (जो यज्ञ और कर्मपर होना ही चाहिये जैसा कि उसके नामसे प्रगट है) ऋग्वेद और उसका ब्राह्मण, सामवेद और अथर्ववेद अपने अपने ब्राह्मणों सहित सभी यज्ञका ही द्योतन करते हो, ' ऋच् स्तुतौ ' ऋक् शब्द स्तुतिवाचक है, ऋग्वेद और उसके ब्राह्मणों में पदार्थों की स्तुति (लक्षणा) होना चाहिये, अथर्ववेद में [अ+थर्व (अहिंसा)] वह विद्याएं होना चाहिये, जिनसे मनुष्य समाज विनाश को नहीं प्राप्त होता, उसका ब्राह्मण भी तदनुरूप होना चाहिये ! गायन और शान्ति सामवेद और उसके ब्राह्मण के आवश्यक अंग होने चाहियें ।

ब्राह्मण ग्रंथों में विज्ञान होना ही उनकी सार्थकता है ।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथोंमें विज्ञान बहुत भरा पडा है तथापि उनके अप्रचार और उनकी लेखशैली की क्लिष्टता और संकेतात्मता के कारण यह कहना बडा कठिन है, कि कहां किस विज्ञान का उपदेश है, कुछ विज्ञानों का ब्राह्मण ग्रंथोंमें सद्भाव ऊपर दिखाया जाचुका है परंतु यह कहना वक्ता का दुःसाहस होगा, कि ब्राह्मणोंमें केवल अमुक अमुक विज्ञान है । सबसे अधिक कठिनाई इन विज्ञानों को खोजनेमें यह पेश आती है, कि पहले संकेतों का समझाना बडा कठिन होता है फिर जहां इन संकेतों को कहीं आगे जाकर खोला भी जाता है तो उसको चरितार्थ करना और उसकी संगति लगाना बडा कठिन कार्य होता है । शतपथमें तो यह कठिनाई बहुत ही अधिक है क्यों कि वहां संकेतों का ढूंढना बडा दुष्कर कार्य है ।

इतना होते हुए भी कहीं कहीं संकेत इतने स्पष्ट हैं कि इनके द्वारा अनेक विज्ञान अपने आप ही स्फुरित हो जाते हैं । आज तूष्णींशंस सूक्त के विषयमें ऐतरेय ब्राह्मण का लेख पाठकोंके आगे प्रस्तुत किया जाता है । और इस का भावार्थ जो कुछ लेखक की अल्प बुद्धि में आया है त्यूं का त्यूं भेंट किया जाता है । यदि यह भावार्थ ठीक है तो कहना पडेगा कि यहां भी एक अतीव महत्वयुक्त विज्ञान का उपदेश है, जिसको याज्ञिक भाष्यकार अपने याज्ञिक भाष्यों के अन्दर छिपाकर ब्राह्मणग्रंथों और उनके पाठक संसारके साथ अन्याय करते हैं ।

ऐतरेय ब्राह्मण की द्वितीय पंचिका के चतुर्थ अध्यायका सातवां खंड इस प्रकार आरम्भ होता है:-

देवा वै यदेव यज्ञेऽकुर्वंस्तदसुरा अकुर्वंस्ते समावद्वीर्या एवासन्न व्यावर्तन्त ततो वै देवा एतं तूष्णींशंसमपश्यंस्तमेषामसुरानान्ववायंस्तूष्णीं सारो वा एष यत्तूष्णींशंसो देवा वै यं यमेव वज्रमसुरेभ्य उदयच्छंस्तं तमेषामसुराः प्रत्यबुध्यन्त ततो वै देवा एतं

तूष्णींशंसं वज्रमपश्यंस्तमेभ्य उद-यच्छंस्तमेषामसुरा न प्रत्यबुध्यन्त तमेभ्यः प्राहरंस्तेनैनान्प्रतिबुद्धेनाघ्नंस्ततो वै देवा अभवन् परासुरा भवत्यात्मना परास्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद "

अर्थः—" देवता लोग जो कुछ यज्ञ में करते हैं वही असुर करते हैं, समान बल होने के कारण असुर पीछे नहीं हटते फिर देवता तूष्णींशंस विधिको देखते हैं यहां असुर उनके पीछे नहीं चलते, तूष्णींशंस में मौन व्रत ही सार है, जिस जिस साधनरूप वज्र को देवता उठाते हैं उस उस को असुर लोग जान जाते हैं इसी लिये इस (तूष्णींशंस) का असुरोंपर प्रहार करते हैं, यह असुरोंसे जाना नहीं गया अतः इससे उनको मार डालते हैं, फिर देवता ओं की जय होती है और असुर पराजित हो जाते हैं। जो इस तत्त्व को जानता है उसकी अपनी जय होती है और इसका द्वेषी पापी शत्रु दूर होता है "

" ते वै देवा विजितिनो मन्यमाना यज्ञमतन्वत तमेषामसुरा अभ्यायन् यज्ञवेशसमेषां करिष्याम इति तान्त्समन्तमेवोदारान् परियत्तानुदपश्यंस्तेऽब्रुवन् संस्थापयामेमं यज्ञं यज्ञं नोऽसुरा मा वाधिषुरिति तथेति तं तूष्णींशसे संस्थापयन् .... । "

अर्थः—" वह देवता अपने आपको विजेता मानकर (फिर) यज्ञका आरम्भ करते हैं असुर फिर उपस्थित हो जाते हैं हम इनका यज्ञ खण्डित करेंगे यह संकल्प करते हैं, देवता उनको चारों ओरसे घिरे हुए ऊपर खडे होकर देखते हैं फिर निश्चय करते हैं, कि हम इस यज्ञ कोही समाप्त कर देंगे हमारा यज्ञ कहीं असुर न बिगाड दें ऐसा ही मानकर वह यज्ञ को तूष्णींशंस पर समाप्त कर देते हैं । "

ऊपर जहां जहां लङन्त पद आए हैं वहां वहां हमने वर्तमान अर्थमें उन्हें लिया है क्यों कि महर्षि जैमिनि और तद्भाष्यकार शबरस्वामी के अनुसार वेदकी आख्यायिकाएं सब असत्य हैं । ' गुणवादस्तु ' इस पूर्वमीमांसा सूत्र पर श्री शबरस्वामी का भाष्य इस प्रकार है:—

"असदृत्तांताख्यानम्, स्तुत्यर्थेन प्रशंसाया गम्यमानत्वात् । इहान्वाख्याने वर्तमाने द्वयं निष्पद्यते यच्च वृत्तान्तज्ञानम्, यच्च कस्मिंश्चित्प्ररोचना द्वेषो वा, तत्र वृत्तान्तान्वाख्यानं न प्रवर्तकं न निवर्तकं चेति प्रयोजनाभावादविवक्षितं, प्ररोचनया तु प्रवर्तते द्वेषान्निवर्तते इति तयोर्विवक्षा।।"

अर्थः- न हुए (अथवा असत्य) वृत्तान्त की कथा, गुणवाद होती है । प्रशंसा का प्रयोजन स्तुति होता है, कथा के वर्तमान होने पर दो बातें सिद्ध होती हैं एक तो वृतांत का ज्ञान दूसरे किसी विषयमें रुचि अथवा

द्वेष, इन में से वृत्तान्त का ज्ञान तो न प्रवृत्ति कराता है और न निवृत्ति कराता है इस कारण प्रयोजन के अभावसे विवक्षित नहीं, रुचि से मनुष्य प्रवृत्त होता है और द्वेष से निवृत्त होता है अतः रुचि और द्वेष की विवक्षा है। "

अब विचारना यह है, कि तूष्णींशंस क्या है जिसे देवता अपना अन्तिम शस्त्र बनाते हैं और असुर अन्य सब देवता ओंके शस्त्रों को जानते हुए भी इसको न जानने के कारण मारे जाते हैं, इसके साथ ही देव और असुर क्या हैं यह प्रश्न भी उठता है? प्रकरण पर और पौर्वापर्य पर विचार करने से प्रतीत होता है कि देव मनुष्य की दैवी वृत्तियां हैं और असुर मनुष्य की पाप वृत्तियां हैं, प्रायः इस ऋग्वेद (पदार्थ स्तुति लक्षण) के ब्राह्मण में देव और असुर शब्द इन्हीं अर्थों में आते हैं, तूष्णींशंस मौनभाव (जप) का दूसरा नाम प्रतीत होता है, और इसका संगति करण यूं होगा कि प्रत्येक दैवी वृत्तिके मुकाबलेमें आसुरी वृत्ति है परन्तु तूष्णींशंस (मौनभाव अथवा इंद्रियों का उपरम) एक ऐसा शस्त्र है जिसको असुर नहीं पहुचानते और इसी से मारे जाते हैं, वानप्रस्थ पुरुष इसीसे अपनी आसुरी शक्तियोंका संहार करते हैं, और मुनि भी मौनभाव धारण करके ही मुनि बनते हैं, अंग्रेजी में एक कहावत है कि **"भाषण चांदी है और मौन सोना है,"** हमारे शरीर में भी ऐसा ही प्रबंध है, ज्ञानोपार्जन के लिये दो आंखें, दो कान, दो नासिका के छिद्र, रसना और त्वचा बनाए गए हैं परन्तु ज्ञानदान, वाणी विसर्जन के लिये केवल एक ही द्वार रक्खा गया है और उस पर भी दातों का पहरा बिठाया गया है। जरा वाणी अपने मार्ग से इधर उधर हुई नहीं कि दातों ने उसे काट खाया और आगे के वास्ते चैतन्य कर दिया। फिर यह वाणी होटों के किवाडों में बन्द रक्खी गई है। जपादि सर्व मौन क्रिया द्वारा होते हैं, मौन में एक आकर्षणशक्ति है, कविकुलगुरु कालिदास भी कहते हैं:—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः। स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति ।

अर्थः— तपस्वी लोगों में जो शान्ति प्रधान होते हैं एक दग्ध करने वाला तेज होता है, सूर्यकान्त मणि छूने में बडी सुखद होती है परन्तु जहां दूसरे किसी प्रकाश की टक्कर लगी त्यूंही उसने अपना तेज प्रकट किया। तपस्वी लोगों का मौन उस राख के समान होता है जो अग्नि के ऊपर आई हुई हो, हाथ लगाने की देर है कि उसका प्रभाव झट प्रकट हो जाता है, इसी भावको दृष्टिमें रख कर रघुवंश में राम को मित वादी कहा है।

' सत्याय मितभाषिणाम् '

सत्य की रक्षा के लिये रघुकुल के भूषण

थोडा बोला करते थे, पिछले दिनों जब महात्मा गांधी हमारे मध्यमें थे तो उनका सप्ताह में एक दिन मौनव्रत का होता था जब वह अपनी बाहर बखेरी हुई शक्तिका संग्रह किया करते थे।

खण्ड के शेष भाग में तूष्णींशंस की और महिमा गाई गई है:—

" तमेवं तूष्णींशंसे संस्थापयन् तमेवं तूष्णींशंसे संस्थाप्य तेनारिष्टेन (यज्ञसे) य उदृचं (अच्छी यज्ञसमाप्ति को) आश्नुवत (प्राप्त होते हैं) स यदा वाव यज्ञः सन्तिष्ठते यदा होता तूष्णींशंसं शंसति य एवं शस्ते तूष्णींशंसं उप वा वदेदनु वा व्याहरेत्तं ब्रूयादेष एवैतामार्तिं (विनाशको) आरिष्यति (प्राप्त होगा) प्रातर्वाव वयमद्येमं शस्ते तूष्णीं शस्ते संस्थापयामस्तं यथा गृहानितं (अतिथिको) कर्मणा नु समियात् (प्राप्त होते, परिचरण करते हैं)एवमेवैनमिदमनुसमिम इति सह वाव तामार्तिमृच्छति य एवं विद्वान् संशस्ते उप वा वदति अनु वा व्याहरति तस्मादेवं विद्वान् संशस्ते तूष्णींशंसेनोपवदेन्नानु व्याहरेत्॥

अर्थात् " इस तूष्णींशंस कर्मसे यज्ञ भली भांति समाप्त होता है यदि जप करने वाले मौन बैठे हुए पुरुष की कोई निन्दा करे या उसे शाप दे (यह सायण का अर्थ है, हमारे विचारमें ' इसके पास आकर बोले अथवा इसका अनुकरण करे') तो वही विनाश को प्राप्त होता है ! प्रातःकाल कुछ बोलनेसे पूर्व मौन भावसे कुछ मनन करना चाहिये । "

इससे अगले खण्डमें तूष्णींशंस को सवनों की आंखें बतलाया है। और इससे पूर्व खण्डमें प्रातरनुवाक को यज्ञ का शिर और धीरे धीरे बोलने और अन्तर्याम (मनन ?) को यज्ञ के प्राण और अपान ठहराया है और लिखा है कि इस धीरे (मनन) बोलने और अन्तर्ध्यान होनेसे पूर्व जो होता (=ऐतरेय ब्राह्मणमें सर्वत्र जीवात्मा) वाणी का विसर्जन करता है वह वज्ररूप हो जाता है। वज्र के द्वारा यजमान के प्राण चले जाते हैं। फिर आगे चुपचाप अनुमंत्रण (मनन) करके ऊपरको सांस लेना लिखा है। उसके लिये मंत्र यह है 'प्राणं मे यच्छ' फिर अन्तर्याम अनुमंत्रण का वर्णन है जिस का मंत्र यह है:—

'प्राण प्राणं मे यच्छेत्यपानं यच्छ स्वाहा'

इस पर श्वास को नीचे उतारा जाता है। फिर वाणी का विसर्जन किया जाता है। अन्त में स्वयं ऐतरेय ऋषिने अपना सिद्धान्त यह ठहराया है कि आत्मा ही उपांशुसवन है आत्मा में ही होता (जीवात्मा) प्राणोंको धारण करके वाणी का विसर्जन करता है; फिर वह मृत्युसे रहित हो जाता है। जो इसको जानता है वह भी सर्वायुको

प्राप्त होता है ।

इस (अन्त्योक्त) खण्डमें कुछ प्राणायाम और योगाभ्यास का विज्ञान स्पष्ट उपदिष्ट प्रतीत होता है । अतः इस विषयमें योगी लोग कुछ अधिक प्रकाश डाल सकते हैं और स्वयं इसका भावार्थ खूब समझ सकते हैं । पाठकों को आश्चर्य होगा कि यहां भी सायण अपना प्रिय अभीष्ट लाता है और तीनों खण्डों को यज्ञ परक लगाने का व्यर्थ प्रयत्न करता है ।

आज यह तूष्णींशंस सूक्तका थोडासा ब्राह्मणोक्त वर्णन पाठकों के आगे इस आशासे धरा जाता है कि वह और हमारे संपादक महाशय इसपर विशेष विचार करें और उक्त विचारक्रम में जो त्रुटि हो वह दूर कर दें उसकी मुझको सूचना दे दें ।

देवताओं की मित्रता ।

(ले. वैदिक-धर्म-विशारद सूर्य देव शर्मा साहित्यालंकार ।)

(१)

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥

॥ यजु. २५।१४

(गीतिका)

हे दयामय ! विश्वमें शुभ, कर्म हम करते रहें ।
भव्य भावोंको हृदयमें, हम अभय भरते रहें ॥
वृद्धि हित जिससे दयाकर देव कर धरते रहें ।
रात्रि दिन रक्षक रहें, वे भूत दुख हरते रहें ॥ १ ॥

(२)

ॐ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥

यजु. २५।१५

अर्थः—

हे दयामय ! देव जन की बुद्धि मङ्गलकारिणी ।
सरल सुयश उदारता आवे हमें दुखहारिणी ॥
देवगणकी मित्रता पावें अबोध-निवारिणी ।
आयु जीवन–हित बढावें देवगण सुख-सारिणी ॥

भगवद्भक्त की भावना ।

(शार्दूलविक्रीडितवृत्त)

पाऊँ प्रेम-पुनीत-पाथ-पृथु मे, प्रेमी पिता ! आपका ।
मारूँ मत्सर मोहमान ममता, मानी मितालापका ॥
द्वेषी दम्भदुरीहता दुखदका, द्वारा दरूं दापका ।
तेरी तन्मयतानतातरणि में, त्यागूँ तनू तापका ॥

होऊँ मीन तथापि भक्तिजलमें, आमोद पाता रहूँ।
पक्षी होकर पुण्यप्रेम-तरु पै, मैं गान गाता रहूँ ॥
भूभृत ऊपर सिन्धुमध्य अथवा, आकाश जाता रहूँ ।
हे त्रैलोक्य पिता ! सदैव तुमको, सर्वत्र ध्याता रहूँ ।

हो आवश्यक ना उपाधिपदवी, वा ख्याति संसारमें ।
एकाकी विचरूँ अरण्य अगमें, तेरे प्रभो ! प्यारमें ॥
निन्दा कीर्तिकलाप शाप सुनके, बोलूँ न व्याहारमें ।
ऐसी दे दृढ शक्ति भक्ति भगवन् ! डोलूँ निराधार मैं॥

तू है चन्द्र, चकोर जान मुझको, ज्योत्स्ना दयादान दे।
तू है अमृतबिन्दु, चातक बना, माँगू मुझे प्राण दे ॥
तू है "सूर्य" सरोज रोज मुझको, आलोकदे, त्राण दे।
तू स्वामी, लघु भक्त प्रेमि जनको, सर्वत्र कल्याण दे ॥

पुस्तक परिचय ।

१ आर्योद्देश रत्नमाला — (ले. श्री. देवीदत्तशर्मा मिश्र आर्य शास्त्री । प्राप्ति स्थान-पं लक्ष्मीशंकर मिश्र आर्य समाज हैदराबाद द. मू.।) आर्योद्देश रत्नमाला का पद्यानुवाद । पुस्तक अत्यंत उत्तम है और हरएक आर्यको संग्राह्य है ।

२ बाल प्रश्नोत्तरी ।मू.-)
३ कन्याप्रश्नोत्तरी । मू.-)
(प्रकाशक---प्रेम पुस्तकालय आग्रा)
प्रश्नोत्तरसे बालकों को बोध करानेके लिये ये पुस्तक हैं ।

४ तार दर्पण । मू. ।≡ (ले. कुमार स्वरूप बंसारू, जयपूर)

५ गोमाता (विनामूल्य) म. टहलराम गिरधारी सामंत, ७३ नागदेवी मुंबई नं ३ यह पुस्तक गोरक्षा के संबंधमें लिखी है इसका सर्वत्र प्रचार होना चाहिये ।

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य ।

(लेखक ' राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति ' आत्मारामजी अमृतसरी)

संस्कारचन्द्रिका ।

शताब्दी संस्करण बहुत उत्तम छपकर तय्यार है। मनुष्य मात्र के उपयोगी ग्रन्थ है । इस में हमारे जीवन में जो महत्व पूर्ण संस्कार होते हैं उनकी वैज्ञानिक खोज उनको कहां तक करने के लिए बाधित करती है यह सविस्तर बताया है । महर्षि दयनान्द प्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या है । प्रत्येक संस्कार की फिलासाफि युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा बडी विद्वत्ता से सिद्ध की है । मू. सजिल्द ४) डा. व्यय |||)अजिल्द ३||)

सृष्टिविज्ञान पुरुषसूक्तका स्वाध्याय तथा वेदोत्पत्ति संबंधी मंत्रोंकी व्याख्या मू. २)

तुलनात्मक धर्म विचार १)ब्रह्मयज्ञ |||) शरीरविज्ञान ।≥) आत्मस्थान विज्ञान-) नीति विवेचन १।) गीतासार ।=) **गुजराती हिन्दी शब्द कोष** ६) समुद्रगुप्त ||=) आरोग्यता।।) श्रीहर्ष।।) मजहबइस्लामपर एक नजर =) ऋषिपूजा की वैदिक विधि-) विज्ञापकके ग्राहकों को =) रुपया छूट। वा. मूल्य २)

विज्ञापक, बडोदा । अपने ढंग के अनूठे मासिक में प्रति मास **वैदिक समाजान्तर्गत** आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् राज्यरत्न आत्मारामजी, कुंवर चांदकरणजी शारदा, रावसाहब बाबु रामविलास जी, पं. आनन्द प्रिय जी, प्रोफेसर आर्ते एम.ए. के लेखों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रोचक विषय भी । वा. मू. २) नमूना ।-) प्रकाशक)

जयदेव ब्रदर्स बडोदा ।

" आर्य्यों को सिद्धान्तरक्षाकी सूचना "

वैदिक वेदान्त का सारगर्भित अपूर्व ग्रन्थ **" माण्डूक्योपनिषद् स्वरूप "** अर्थात् " माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, ओंकाररहस्य, ओंङ्कार दर्शन ओंकारोपासना " जिसमें " सृष्टि-विज्ञान, शरीर विज्ञान और शब्द विज्ञान भी आगया है " जिसकी उत्तमता को श्री० म० नारायण स्वामीजी, श्री. पं. आर्य्यमुनिजी श्री. मास्टर आत्मारामजी राजरत्न (अमृतसरी) बडोदा आदि विद्वानों ने वर्णन किया है । मूल्य||≥)तथा " कठोपनिषद् का स्वरूप " अर्थात् " कठोपनिषद्भाष्य, यमगाथा, श्राद्ध मीमांसा तथा उसका वैदिक स्वरूप और रहस्य या मौतकी कहानी।" मूल्य) ≥ मिलने का पता—

सञ्चालक आर्ष विद्यासदन

(लक्खीचबूतरा) काशी

स्वयं संस्कृत सीख कर रामायण महाभारतादि ग्रंथों का पाठ तथा अन्यान्य आर्ष ग्रंथोंका पाठ स्वयं करनेकी प्रबल इच्छा पाठकों के मन में उत्पन्न होगई है। इस लिये पाठ कों की प्रेरणासे ही यह—

संस्कृत पाठ माला

मुद्रित करनेका कार्य हमने प्रारंभ किया है।

एक वर्ष में बारह पुस्तक प्रसिद्ध किये जायंगे और यदि पाठक प्रतिदिन घंटा अथवा आधघंटा इन पुस्तकों का क्रमपूर्वक अध्ययन करेंगे तो एक वर्षके अंदर उनको पर्याप्त संस्कृत आ जायगा।

बारह पुस्तकों का मूल्य म. आ. से ३) तीन रु. है और वी. पी. से ४) चार रु. है।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य।≈) पांच आने और डाकव्यय ≠) एक आना है।

विद्यार्थियोंके लिये

विशेष सहूलियत है। जो गरीब हैं वे इनका अध्ययन विनामूल्य भी कर सकते हैं।

अपने सब मित्रोंको इसकी सूचना दीजिये। जो ग्राहक प्रारंभसे होंगे उनको ही सहूलियतसे लाभ होसकता है। पीछेसे मूल्य भी बढेगा।

मंत्री—स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक ४ क्रमांक ६४ चैत्र सं. १९८१ एप्रिल स. १९२५

छपकर तैयार है।

महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग

मूल्य ॥) डाकव्यय ≡)

वी. पी. से ॥।≈)

मंत्री.— स्वाध्यायमंडल औंध
(जि. सातारा)

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ मातृभूमिसे प्राणका बल............१०५
२ औंधमें पशुयाग....................१०६
३ मैं १११
४ दलितोद्धार........................१२१
५ ग्रंथ परिचय.......................१२५
६ आयुवृद्धि और श्वास..............१२७
७ वैदिक वर्ण व्यवस्था...............१३०

वर्ष ६
अंक ४
क्रमांक
६४

चैत्र
सं०१९८१
एप्रिल
स०१९२५

वैदिक तत्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मातृभूमिसे प्राणका बल।

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीन्वन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः॥
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा
पृथिवी कृणोतु ॥

अथर्व. १२।१।२२

हमारी मातृभूमिमें देवता ओंके लिये सुसंस्कृत हव्य पदार्थोंका यज्ञ करते हैं। इसी भूमि पर मरण धर्मवाले (मर्त्याः मनुष्याः) मनुष्य (स्वधया) अपनी धारणा शक्तिसे और (अन्नेन) अन्नसे (जीन्वान्ति) जीवित रहते हैं। वह हमारी विस्तृत मातृभूमि हमारे लिये (प्राणं) प्राणका बल और (आयुः) दीर्घ आयु (दधातु) देवे। तथा मुझे (जरदष्टिं) वृद्ध (कृणोतु) करे।

मातृ भूमिकी भक्ति करते हुए अन्नसे शरीरकी पुष्टि, प्राण साधनसे प्राणबल की वृद्धि और दीर्घ आयुकी प्राप्ति करनी चाहिये ॥

औंध में पशुयाग ।

गत माघ कृष्ण अमावास्या के दिन औंध में श्री. पं. आहिताग्नि श्री. धुंडिराज गणेश बापट दीक्षित महोदयजीने सोमयाग प्रारंभ किया, जिसकी समाप्ति फाल्गुन शुक्ल अष्टमीके दिन होगई। इस में दो बकरोंका बलिदान होगया।

यह यज्ञ वाई क्षेत्रमें होनेवाला था और इसकी तैयारियां गत वर्षसे हो रहीं थी। परंतु ऋग्वौत्र करने का अधिकार श्री. दीक्षित महोदय जी को नहीं है और उनको याजुष हौत्र करना चाहिये, ऐसी वहांके सब पंडितों की संमति हुई, अतः श्री. दीक्षित जी वहां सोमयाग कर नहीं सके, क्योंकि इनके मनमें ऋग्वौत्र करने का विचार निश्चित हुआ था। इनके पिता और पितामह ने भी ऋग्वौत्र करके ही सोमयाग किये थे। इस लिये इनका आग्रह था कि, ये भी वैसा ही याग करें। इस बात पर पुराण मताभिमानी पंडितों में और श्री. दीक्षित में मतभेद होगया और उसका परिणाम यह हुआ कि श्री. दीक्षित जी वहां अपना याग न करसके।

इस कारण इन्होंने सांगलीमें अपना याग करनेकी तैयारी की। परंतु वहां पशुहिंसा करके यज्ञ करनेके विरुद्ध जनता होनेके कारण वहांसेभी इनका भागना पडा। पश्चात् ये औंध में आगये और उन्होंने अपना याग यहां प्रारंभ किया।

अन्य स्थानोंमें जो विघ्न आगये थे वैसे विघ्न यहां उत्पन्न होना संभव ही नहीं था। क्यों कि यहां किसी को पता भी नहीं लगा, कि ये क्या कर रहे हैं। यहां इन्होंने इतनी शीघ्रतासे याग प्रारंभ किया कि पक्ष प्रतिपक्ष बननेके लिये समय ही नहीं था। अन्य स्थानोंमें मास दो मास का समय मिलाथा, जिस कारण वहां विवाद बढ गया था। परंतु यहां दो तीन दिनोंमें ही यागका प्रारंभ होगया और प्रतिपक्ष के लिये कोई समय ही नहीं मिला।

इस कारण अन्य स्थानोंके समान

यहां विवाद होनेकी संभावना ही नहीं थी। तथापि किसी बाह्य कारण से कोई विघ्न उत्पन्न न होवे इस लिये यज्ञ मंडप पर संगिनी धारण करने वाले पहारेदार भी रखे गये थे। और यज्ञ समाप्ति तक यह पहारा रहाथा।

यह कोई नयी बात नहीं है। विश्वामित्र ऋषिके यज्ञ मंडप का संरक्षण श्रीरामचंद्र और लक्ष्मण किया करते थे, यह वर्णन हम रामायणमें पढते हैं। उसी प्रकार का दृश्य किसी कारण किसी स्थानपर हुआ, तो कोई आश्चर्य नहीं है। परंतु यहां आश्चर्य इतना ही था कि, रामायणकाल में यज्ञका विघ्न करनेवाले राक्षस थे और इस समय पुराण मतानुयायी तथा नवीन मतानुयायी विघ्न कर्ता थे।

यज्ञका प्रारंभ करनेके पूर्व श्री. दीक्षित महोदयजीने एक दो व्याख्यान भी यहां दिये और उन व्याख्यानों में कहा कि, यज्ञमें पशुवध करना वैदिक आज्ञाके अनुसार योग्य ही है। इस समय स्वाध्याय मंडल के संचालक श्री० पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर जी यहां नहीं थे, इस लिये इन व्याख्यानों के विरुद्ध कोई आवाज उठा नहीं सके। वास्तव में ये व्याख्यान जनता को अपने अनुकूल करनेके लिये ही दिये गये थे, परंतु जब लोगोंने सुना कि, यहां ये बकरोंका बलिदान देने वाले हैं, तो सब जनता इनके विरुद्ध हुई! अर्थात् यहां भी दीक्षित महोदय जीने स्वयं अपने ही प्रयत्नसे विरोधी पक्ष को खडा कर दिया। परंतु यह विरुद्ध पक्ष मूक था, क्यों कि शास्त्र प्रमाणोंसे युक्ति वाद करने के लिये कोईभी तयार नहीं था।

पूर्वोक्त समयपर यज्ञका प्रारंभ हुआ। इस समय श्री० पं० श्रीपाद दामोदर जी मथुरा शताब्दी के महोत्सव के लिये गयेथे। यज्ञके तृतीय दिन ये यहां स्वाध्याय मंडलमें लौट आये। जिस समय उनको इस याग का पता लगा। सब वृत्तांत के पता लगने पर श्री० दीक्षितजीको आव्हान दिया गया। परंतु शास्त्रार्थ करने के लिये उसी समय वे सिद्ध नहीं हुए। " यज्ञ समाप्त करने पर शास्त्रार्थ होगा " यह उत्तर यज्ञकर्तासे मिला। इस प्रकार शास्त्रार्थ की आशा नहीं रही।

यज्ञमें दिनके समय हवनादि होता था और रात्रीके समय " धर्म चर्चा " होती थी। इस धर्म चर्चा में अपना मत प्रतिपादन करनेके लिये अवसर मिलनेकी प्रार्थना की गई, परंतु वैसा अवसर भी दिया नहीं गया। आज्ञा देना या न देना यह पूर्णतासे श्री० दीक्षितजीके आधीन था, इस लिये उनकी आज्ञा ही इस मंडपमें अंतिम प्रमाण थी।

अंतमें छठे दिन सायंकाल को एक बकरेका बलिदान हो चुका। उस रात्री

को वास्तवमें धर्म चर्चा बंद ही थी, परंतु प्रयत्न करनेपर इस रात्रीके समय अपना मत सभाके सन्मुख रखने के लिये श्री० पं. श्रीपाद दामोदर जी को अवसर प्राप्त हुआ। सब सभासद, नागरिक और अन्य स्त्री पुरुष उपस्थित होनेपर उनका जो व्याख्यान हुआ उसका आशय यह है —

यज्ञका महत्व।

आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

यजुर्वेद. २२। २२

याजक यह प्रार्थना यज्ञमें करता है, इसका अर्थ यह है कि--" हे (ब्रह्मन्) परमात्मन्! हमारे राष्ट्रमें ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण उत्पन्न हों, हमारे राष्ट्रमें उत्तम शूर क्षत्रिय हों, तथा अधिक दूध देनेवाली गौवें, बलवान बैल, ज्ञानी स्त्रियां विजयी तथा सभामें पंडित युवक बनें। योग्य समयमें हमारे राष्ट्रमें वृष्टि होती रहे, औषधियां फलयुक्त हों और हम सबका योगक्षेम उत्तम रीतिसे चले।"

इस याजक की प्रार्थनासे ही यज्ञके महत्व का पता लग सकता है। यज्ञका संबंध जनताके साथ है, राष्ट्रके साथ उसका संबंध है, तात्पर्य यज्ञ संस्था वैयक्तिक अथवा खानगी नहीं है। यहां जिस समय मैंने शास्त्रार्थ के लिये आव्हान किया था, उस समय श्री० दीक्षित महोदयजीने कहा कि " यह यज्ञ मेरा खानगी यज्ञ है, इसमें मेरे अनुकूल जो होंगे वेही आसकते हैं, अन्य नहीं।" इस के उत्तर में निवेदन है कि यह यज्ञ हमेशा सार्वजनीन अथवा राष्ट्रीय यज्ञ है, न कि खानगी। उक्त मंत्र की प्रार्थना ही देखिये कि उसमें सार्वजनिक भाव कितनी गंभीरतासे भरा है। इस लिये कोई यह न समझे कि यज्ञ खानगी है और इस में मैं किसीको प्रतिबंध कर सकता हूं। वेदमें अन्यत्र—

पंचजना मम होत्रं जुषन्ताम्॥

यजु.

" ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और निषाद भी मेरे यज्ञमें आवें " ऐसा ही कहा है। अर्थात् धर्मचर्चा करने की इच्छासे यदि कोई विद्वान इस यज्ञमें आना चाहता है तो उसको कोई प्रतिबंध कर नहीं सकता।

मैं जो यहां अब वक्तृत्व करना चाहता हूं वह यज्ञसंस्थाके रक्षणार्थ बोलना चाहता हूं। यज्ञसंस्था वैदिक धर्म

का प्राण है । यह प्रायः लुप्त हो चुकी है। कोई कोई किसी किसी समय यज्ञ करने के लिये प्रवृत्त होते हैं । ऋषिकालमें ये यज्ञ हमेशा हुआ करते थे और इन यज्ञोंसे उनको लाभ भी होता था। राष्ट्र-का हित साधन करनेके लिये ये यज्ञ प्राचीन कालके आर्यलोग किया करते थे । आज भी ये यज्ञ राष्ट्रहित साधक रीतिसे किये जा सकते हैं । परंतु इनकी विधिमें देश काल वर्तमान के अनुसार संशोधन होना आवश्यक है ।

तथा वैदिक यज्ञ कर्ममें सूत्र कालमें जो यज्ञ प्रक्रियाओं की वृद्धि होगई है, उनका योग्य विचार होना चाहिये कि इन में योग्य कौनसा विधि है और अयोग्य विधि कौनसा है । यह यज्ञसंस्था जिनके आधीन इस समय है वे लोक अंधपरंपरा के अभिमानी होने के कारण ही यह संस्था प्रायः लुप्त होने तक अवस्था पहुंच चुकी है ।

यह यज्ञ संस्था प्राचीन कालमें अनेक आवश्यक कार्योंके लिये प्रयुक्त की जाती थी। अपना और नागरिकों का आरोग्य वर्धन, रोगोंका दूरीकरण, अभीष्ट पुत्र की प्राप्ति, बल वर्धन, योग्य समय में योग्य वृष्टि करनी, राष्ट्र की उन्नति आदि अनेक महत्वपूर्ण कार्यों के लिये ये यज्ञ किये जाते थे । इतना ही नहीं प्रत्युत शत्रुका पराजय करनेके लिये भी विशिष्ट यज्ञ रचे जाते थे । तथा शत्रु राष्ट्रमें बीमारियां फैलानेके लिये भी यज्ञका प्रयोग किया जाता था । अर्थात् अपना हित और शत्रुकी हानि करनेके कार्य में यज्ञका उपयोग भी किया जाता था ।

इस समय यज्ञका शास्त्र बहुतही बढ गया था और पूर्ण हो चुका था, इसका एक अंश भी इस समय रहा नहीं है । जो वैदिक धर्म के प्रेमी हैं उनको इस विषयकी खोज इस दृष्टिसे करनी चाहिये ।

यज्ञसंस्था अत्यंत प्रभाव शाली है, इसी लिये उसका उपयोग बडी साव-धानतासे होना चाहिये । जो शस्त्र अत्यंत तीक्ष्ण और प्रभाव शाली होता है उसका उपयोग भी बडी चतुरता से करना चाहिये अन्यथा हानि होने में कोई शंकाही नहीं ।

इस समय जो यज्ञ यहां चलरहा है उस विषयमें भी हम यही कह सकते हैं कि यदि इसमें त्रुटी होगई तो बडा अनर्थ होना संभव है । इस लिये इस विषय की विशेष चर्चा होना अत्याव-श्यक है ।

यज्ञ विधिमें कई बातोंका विचार करना आवश्यक है, परंतु इस समय हम यज्ञमें पशुवध करने की आवश्यकता है वा नहीं, इसी विषयका विचार करना चाहते हैं। अन्य प्रसंगों में अन्य बातोंका विचार करेंगे। श्री. दीक्षित जी जो इस यज्ञके यजमान हैं उनका यह पक्ष है कि सोमयागमें

पशु बलि आवश्यक है । हमारा इस विषयमें मतभेद है ।

वैष्णव संप्रदाय के बडे बडे आचार्योंने पशुबलि का खंडन और पिष्ठपशु का मंडन किया है । पिष्ठपशु विधिमें केवल आटेका ही हवन होता है । अर्थात् जितना वैष्णव संप्रदाय प्राचीन है उतना ही पशुबलिका खंडन प्राचीन है । इस लिये यज्ञीय पशुहिंसा निषेध करनेवाला पक्ष आज का नहीं है परंतु सहस्रों वर्षोंके पूर्व कालका यह पक्ष है । कई श्रौतकर्म करनेवाले इस विचारको स्वीकारते नहीं और यज्ञमें पशुका वध करते हैं । इस लिये इस का विचार अधिक सूक्ष्म दृष्टिसे होना चाहिये ।

यज्ञके नाम ।

संस्कृत में हरएक नाम सार्थ होता है । यदि यज्ञमें पशुहिंसा आवश्यक होगी तो पशुवध का अर्थ बतानेवाला नाम यज्ञके पर्याय नामोंमें होना चाहिये । परंतु वैसा नहीं है देखिये "यज्ञ" शब्द-

(१) देवपूजा, (२) संगति करण और (३) दान, ये तीन इस शब्दके अर्थ हैं । देवताओंका सत्कार करना, जनतामें संगति अर्थात् एकी करण करना, और परोपकार करना ये इस शब्दके अर्थ हैं । जनता के संगति करण का भाव राष्ट्रीय दृष्टिका महत्त्व पूर्ण भाव है और यह सूचित करता है कि यज्ञसंस्था सचमुच राष्ट्रीय संस्था है ।

दूसरा यज्ञ वाचक शब्द "प्रजा-पति" है । प्रजा पालनका कर्तव्य यह बता रहा है । संपूर्ण जनता के पालन का संबंध होनेसे यह शब्द राष्ट्रीय भावना ही प्रबलतासे बता रहा है ।

यज्ञके पर्याय शब्द निघण्टु ३।१७ में दिये हैं । यहां यज्ञनामों में "अ-ध्वर" शब्द है । इसका अर्थ "अ-हिंसा" ही है । "ध्वर" शब्द हिंसा वाचक है उसका निषेध करनेवाला अध्वर है । इसी "अध्वर" शब्दसे "अध्वर्यु" शब्द बनता है और यह अध्वर्यु यज्ञके याजकों में प्रमुख है । अहिंसामय कर्मोंको जो करता है वही अध्वर्यु होता है । यजुर्वेदका नाम भी अध्वरवेद है अर्थात् अहिंसामय कर्मका उपदेश करनेवाला वेद। ये शब्द देखने से यज्ञमें हिंसा का अभाव ही प्रतीत होगा ।

यज्ञ वाचक शब्द वेदमें बहुत हैं, उन में "मेध" एक शब्द है जिसमें "हिंसा" का अर्थ अल्प अंश से है । नरमेध, अश्वमेध, गोमेध, अजमेध इन शब्दोंमें उक्त प्राणियोंकी हिंसा अभीष्ट है ऐसा श्रौत कर्म करने वालों का पक्ष है परंतु-

नृयज्ञो अतिथिपूजनम् ॥

मनुस्मृति ।

"नृयज्ञ, नरमेध का अर्थ अतिथि पूजन ही है" यदि नरयज्ञ अतिथिपूजन है तो अश्वयज्ञ, गोयज्ञ, अजयज्ञ ये भी

अश्व, गो और अज के पूजन रूप ही होना संभव है। इनमें बलिकी कल्पना सर्वथा अनुपपन्न है। "गृहमेध, पितृ-मेध" आदि शब्द भी "गृह पूजा, पितृ-पूजा" आदि भाव ही बता रहे हैं।

तात्पर्य यज्ञवाचक शब्दोंका भाव बलिदानमें नहीं है प्रत्युत उनके सत्कार में है।

हिंसाका प्रतिकार।

हिंसाका प्रतिकार करनेके लिये पंच महायज्ञ किये जाते हैं यह सब जानते ही हैं, देखिये—

पंच सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्यु पस्करः। कण्डनीचोदकुंभश्च बध्यते यासु वाहयन् ॥ ६८ ॥

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः। पंच कॢप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ६९ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञःपितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥

मनुस्मृति अ. ३

"गृहस्थको ये पांच वस्तु हिंसामूल हैं चूल्हा, चक्री, बुहारी, उलूखल मुसल, उदक का घडा, इन पांचोंके कारण जो हिंसा होती है उसकी निवृत्ति करने के लिये (ब्रह्मयज्ञ) अध्यापन, (पितृयज्ञ) पितरों की तृप्ति, (देवयज्ञ) होम हवन, (भूतयज्ञ) अन्न का बलि अर्थात् प्राणियोंके लिये अन्नदान, (नृयज्ञ) अतिथि सत्कार ये पांचयज्ञ करने चाहिये।"

चूल्हा चक्की आदि आवश्यक कर्मों में भी जो हिंसा होती है उसका निराकरण करनेके लिये पूर्वोक्त पंच महायज्ञ करनेका उपदेश धर्मग्रंथ कर रहे हैं, इस से स्पष्ट होता है कि जहांतक हो सके वहांतक हिंसा न करने का उद्देश ही वैदिक धर्मशास्त्र मनुष्योंके सन्मुख रखता है। इस लिये भूतयज्ञ के बलि शब्दसे पशुवध करना अथवा अजमेधादिमें पशु-हिंसा की कल्पना करना सर्वथा असंगत है। जो लोग चक्की की हिंसा दूर करनेके लिये उपाय मानकर एक यज्ञ करेंगे उसमें भी फिर हिंसा की कल्पना करनी युक्ति-युक्त कदापि नहीं है। मूल वैदिक धर्मका तत्व अहिंसा सिद्धि के लिये ही साधक है यह बात यहां स्पष्ट हो जाती है। देखिये श्रुतिका उद्देश्य क्या है—

यजमानस्य पशून् पाहि। यजु. १।१
गां मा हिंसीः ॥ ४३ ॥ इमं मा हिंसीः द्विपादं पशुं ॥ ४७ ॥ इमं मा हिंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदद्वाजिनं वाजिनेषु ॥ ४८ ॥ घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः ॥ ४९ ॥ गवयं मा हिंसीः ॥ इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्। मा हिंसीः ॥ यजु. १२

"यजमानके पशूओंका रक्षण कर। गाय, द्विपाद पशु, घोडा, बकरा आदि

की हिंसा न कर " तथा—

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनः हिंसीः ॥ यजु. ४

" हे घास ! तू इसको बचा और हे शस्त्र ! तू इसकी हिंसा न कर । " इत्यादि मंत्र स्पष्टतासे अहिंसा का ही उपदेश कर रहे हैं । ये यजुर्वेदके मंत्र यजुर्वेद का भाव ही व्यक्त कर रहे हैं । अतः इन मंत्रोंके तात्पर्यसे ही अन्य मंत्रों का तथा ब्राह्मणोक्त विधिका अर्थ देखना योग्य है । ब्राह्मणग्रंथभी यही अहिंसाका भाव कंठरवसे कह रहे हैं ।—

पुरुषं ह वै देवा अग्रे पशुमालेभिरे। तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम । सोऽश्वं प्रविवेश । तेऽश्वमालभन्त। तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम । स गां प्रविवेश । ते गामालभन्त। तस्यालब्धाया मेधोपचक्राम । सोऽविं प्रविवेश। तेऽविमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम । सोऽजं प्रविवेश। तेऽजमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम। स इमां पृथिवीं प्रविवेश । तं खनन्त इवान्वीषुः । तं अन्वविंदन् । तौ इमौ व्रीहियवौ।। स यावद्वीर्यवद्ध ह वा अस्य एते सर्वे पशव आलब्धाः स्युः तावद्वीर्यवद्धास्य हविरेव भवति । य एवमेतद्वेद । अत्रो सा संपद्यदाहुः पांक्तः पशुरिति ।

शतपथ ब्रा. १।२।३।६-९॥

" (१) प्रारंभमें देवोंने पुरुषका बलिदान दिया । उसी समय उससे पवित्र भाग चलागया और वह घोडेमें प्रविष्ट हुआ । (२) उन्होंने घोडेको मारा, मारते ही उसमे पवित्र भाग चला गया और वह गौ में प्रविष्ट हुआ । (३) उन्होंने गौका बलिदान किया, उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया, और वह मेंढमें चला गया, (४) उन्होंने मेंढको मारा, उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और वह बकरे में प्रविष्ट हुआ। (५) उन्होंने बकरेको मारा, उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और वह इस पृथ्वी में प्रविष्ट हुआ। (६) वे देव खोदने लगे भूमि खोदनेसे उनको चावल और जौ प्राप्त हुए ।(७) इन चावल और जौ से जो हवि किया जाता है । उसका वीर्य और बल उतना ही होता है कि जितना वीर्य पूर्वोक्त हवियोंका होता है । "

यह शतपथ का कथन स्पष्ट है। पहिले देवोंने मनुष्य, घोडा, गाय, मेंढा और बकरा ये पांच पशु बलिरूपमें अर्पण किये । परंतु उनमेंसे हवनीय भाग चला गया और वह अंतमें भूमिमें स्थिर रहा। यही भाग धान्य रूपसे ऊपर आगया । इसलिये बीजोंका अर्थात् धान्योंका हवन करना चाहिए ।

धान्योंका हवन करनेसे हवनीय भाग काही हवन हो सकता है, परंतु पूर्वोक्त

पशुओंका हवन करनेका यत्न करनेसे उनमें हवनीय भाग प्राप्त ही नहीं होता। जो हवनीय भाग पशुओंके वधसे देवोंको प्राप्त नहीं हुआ वह साधारण मनुष्य पशु-शरीरसे प्राप्त कर सकते हैं ऐसा कहना अयोग्य ही है, क्यों कि ऐसा होनाही असंभव है। तात्पर्य उक्त शतपथ वचन का भाव यही है कि इसके पश्चात् धान्य, आटा आदिका ही हवन होना योग्य है।

ऐतरेय ब्राह्मण में भी यही वचन है, इस लिये वह वचन फिर यहां देनेकी आवश्यकता नहीं है। पशुके अंगोंकी परिभाषा भी आटेके गोलेके भागोंके साथ बताई है वह यहां देखिये-

पारिभाषिक शब्द ।

यदा पिष्ठान्यथ लोमानि भवन्ति। यदाप आनयति अथ त्वग्भवति। यदा संयौत्यथ मांसं भवति। संतत इवहितर्हि भवति संततमिव हि मांसं। यदाशृतोऽथास्थि भवति। दारुण इवहि तर्हि भवति। दारुणमित्यास्थि। अथ यदुद्वासयन्नभिधारयति तं मज्जानं ददाति। एषो सा संपद्यदाहुः पांक्तः पशुरिति ॥

शत. ब्रा. १।२।३।९

१ जो आटा होता है वह लोम किंवा रोम हैं।

२ जब उसमें पानी मिलाते हैं तब वह चमडा होता है क्यों कि चमडेके समान वह नरम होता है।

३ जब गूंदा जाता है तब वही मांस होता है क्योंकि वह बहुत चिकनासा होता है।

४ जब वह तपाया जाता है तब उसका नाम अस्थि है। क्योंकि हड्डी सख्त होती है।

५ जब उसमें घी डाला जाता है तो उसका नाम मज्जा होता है।

इस प्रकार पशुके पांच भाग आटेसे ही होते हैं। यज्ञ की विधिमें जहां लोम, त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा ये पांच नाम आवेंगे वहां वहां पशुके भाग अभीष्ट नहीं हैं, परंतु आटेके इस प्रकार बनाये हुए भाग अभीष्ट हैं। यह परिभाषा ब्राह्मण ग्रंथोंमें प्रारंभ में ही दी है। यह प्रारंभमें इसी लिये दी है कि आगे यज्ञ विधिके समय इन पारिभाषिक शब्दोंका उपयोग करके ही यज्ञ विधि बनाया जावे। जो लोग यह परिभाषा नहीं देखेंगे, उनका विधि ठीक नहीं होगा। क्यों कि ब्राह्मण ग्रंथोंमें स्पष्ट कहा है-

पशवो वा इळा॥ ऐ. ब्रा. १।२।१०।
पशुभ्यो वै मेध उदक्रामंस्तौ व्रीहिश्चैव यवश्च भूतावजेयाताम् ॥

ऐ. ब्रा. २।२।११

(१) भूमि ही पशु है क्यों कि
(२) पशुओंसे मेध्य हवनीय भाग चला गया जो भूमिसे ही चावल और जौ के रूपसे ऊपर आगा है।

यह ब्राह्मण ग्रंथोंमें इसलिये कहा होता है कि अब पशुका बलिदान कोई न करे और चावल तथा जौ के आटेका ही बली दिया करें। प्राचीन लोगोंने मनुष्य, घोडा, गाय, मेंढा और बकरा इन पांचोंका बलिदान करके अनुभव लिया, उस परीक्षण के समय उनको यह अनुभव हुआ कि प्राणियोंका वध करनेके पश्चात् उनके शरीरसे मेध्यभाग प्राप्त नहीं होता। अतः उनका वध व्यर्थसा हो जाता है। जो मेध्य भाग हवन में अभीष्ट है वह उक्त धान्य में प्राप्त होता है। धान्यमें मेध्य भाग अनायाससे प्राप्त होता है और पशुके शरीरसे मेध्य भाग प्रयत्न सेभी प्राप्त नहीं होता। इसलिये पशुबलिसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। जो अभीष्ट है वह सब धान्यके हवन सेही होता है।

हरएक यज्ञकर्ताको यह ब्राह्मण ग्रंथका उपदेश वचन विचार करके देखने योग्य है।

यज्ञका उद्देश्य।

भैषज्ययज्ञा वा एते। तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसंधिषु व्याधिर्जायते॥ गो. ब्रा. उ प्र. १।१९॥ ओषधीष्वेव यज्ञं प्रतिष्ठापयति। गो. ब्रा. उ. प्र. २।१३ ॥पशवो वै धानाः॥ गो. ब्रा. उ. प्र. ४।६

(१) ये यज्ञ औषधियोंके ही यज्ञ हैं, इसी लिये ऋतु के संधिसमयमें किये जाते हैं क्यों कि ऋतुके संधिसमयमें ही व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

(२) औषधियोंमें ही यज्ञ प्रतिष्ठित होता है।

(३) धान्य ही पशु है।

इस गोपथ ब्राह्मण के वचन में यज्ञ का उद्देश्य स्पष्ट बताया है! ऋतुसंधिके समय व्याधि उत्पन्न होती है और जनता को बडा कष्ट भोगना पडता है, इसलिये राष्ट्रके हितके लिये ऋतु संधियोंमें यज्ञ किया जाता है। यज्ञ विधिमें पशु शब्द का अर्थ एक प्रकारका धान्य ही है। अर्थात् कोई इस भ्रममें न रहे कि यज्ञविधिमें पशु और उसके अंगोंके नाम आगये इस लिये वहां पशुही अभीष्ट है। गोपथ ब्राह्मण में स्पष्ट ही कहा है कि एक प्रकारका धान्य ही पशु शब्दसे लेना चाहिये। अस्तु। इस प्रकार यह बात अब स्पष्ट होगई। अब इतिहास ग्रंथोंकी साक्षी देखिये—

महाभारतकी साक्षी।

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृशरौदनम्। धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ॥ १० ॥ मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्। विष्णुमेवाभिजानन्तिसर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः ११ पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम् यज्ञियाश्चैव ये वृक्षा वेदेषु परिकल्पिताः।१२

म. भारत. शांति.

" सुरा, मत्स्य, मद्य, मांस, आसव आदि सब व्यवहार धूर्तोंका किया हुआ है। यह वेदोंमें नहीं है। मान, मोह, लोभ, अथवा जिह्वाकी लुब्धता आदिसे यह बनाया गया है। वास्तव में सच्चे ब्राह्मण संपूर्ण यज्ञोंमें एक (विष्णु) व्यापक परमात्माकी ही पूजा करते हैं और मनोहर पायससे उसका यजन करते हैं तथा वेदोंमें कहे यज्ञीय वृक्ष जो हैं उनकी समिधाओंका उपयोग करते हैं।

यह महाभारतकी साक्षी है। व्यास भगवान् वेदका आशय यहां बताते हैं कि यज्ञमें पायस का हवन है, न कि मांसादिक का हवन इष्ट है। तथा और देखिये—

> बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वा वैदिकी श्रुतिः। अजसंज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ ॥ नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः ॥
>
> म. भारत. शांति. ३३७

"(१) बीजोंसे यज्ञमें यजन करना चाहिये यह वेदकी श्रुति है। (२) अज संज्ञक बीज होते हैं इसलिये बकरेका हनन करना योग्य नहीं है (३) जिस कर्ममें पशुका हनन हो वह सज्जनों का धर्म नहीं है। "

इस वचनमें व्यास भगवान् का स्पष्ट तात्पर्य है कि सज्जन जो यज्ञ करते हैं उसमें पशुवध करना अभीष्ट नहीं है। वैदिक श्रुतिका आशय यह है कि बीजों और धान्योंका हवन यज्ञमें होवे, पशुमांसके हवन के लिये वेदकी श्रुतिमें प्रमाण नहीं है। महाभारत स्पष्ट शब्दों में यज्ञमें पशुवधका निषेध कर रहा है। तथा और देखिये—

> तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः ॥३३॥ बृहस्पतिरुपाध्यायस्तत्र होता बभूव ह। प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्याश्चाभवंस्त्रयः ३४ ऋषिर्मेधातिथिश्चैव ताण्ड्यश्चैव महानृषिः। ऋषिः शांतिर्महाभागस्तथा वेदशिराश्च यः ॥३६॥ ऋषिश्रेष्ठश्च कपिलः शालिहोत्रपिता स्मृतः। आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च एते षोडश ऋत्विजः ॥ ३७ ॥ संभृताः सर्वसंभारास्तस्मिन् राजन्महाक्रतौ ॥ न तत्र पशुघातोऽभूत् स राजैवास्थितोऽभवत् ॥ ३८॥
>
> म० भारत शांति०

" उस राजाका बडा भारी अश्वमेध हुआ। उसमें बृहस्पति उपाध्याय होता था, प्रजापतिके पुत्र सदस्य बने थे, मेधातिथि, ताण्ड्य, शांति, वेदशिराः, कपिल, कठ, तैत्तिरि, आदि बडे बडे ऋषि उस यज्ञमें ऋत्विज बने थे। उस यज्ञमें सब सामग्री विपुल इकठी की थी, परंतु वहां एक भी पशुका वध नहीं हुआ था। " अर्थात् पशुवध के विनाही यह अश्वमेध हो गया था। यदि अश्वमेध पशुवधके विना हो सकता है तो क्या अजमेध नहीं हो सकता ?

देवी भागवत की साक्षी ।

पशुहीनाः कृता यज्ञाः पुरोडाशादिभिः किल ॥ ३४ ॥

देवी भा. १ । ३

" केवल पुरोडाश से ही अर्थात्, पशुघात न करते हुए ही, अनेक यज्ञ किये गये थे ।"

यह देवी भागवत का कथन यहां मनन करने योग्य है । महाभारत के कथन के साथ इसकी संगति लगानेसे पशुवध रहित यज्ञ का भाव स्पष्ट प्रतीत होता है ।

हिंसाकी संतति ।

अब हिंसा की संतति भी प्रसंगसे यहां देखने योग्य है

हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे तथाऽनृतम् । कन्या च निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च ॥ २९ ॥ माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः । तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥ ३० ॥ वेदना स्वसुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ॥ मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥ विष्णु पु. १ । ७

इसका चित्र यह है—

अधर्म. हिंसा.
↓
अनृत निकृति
↓
भय माया → मृत्य → व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा, क्रोध
नरक वेदना → दुःख
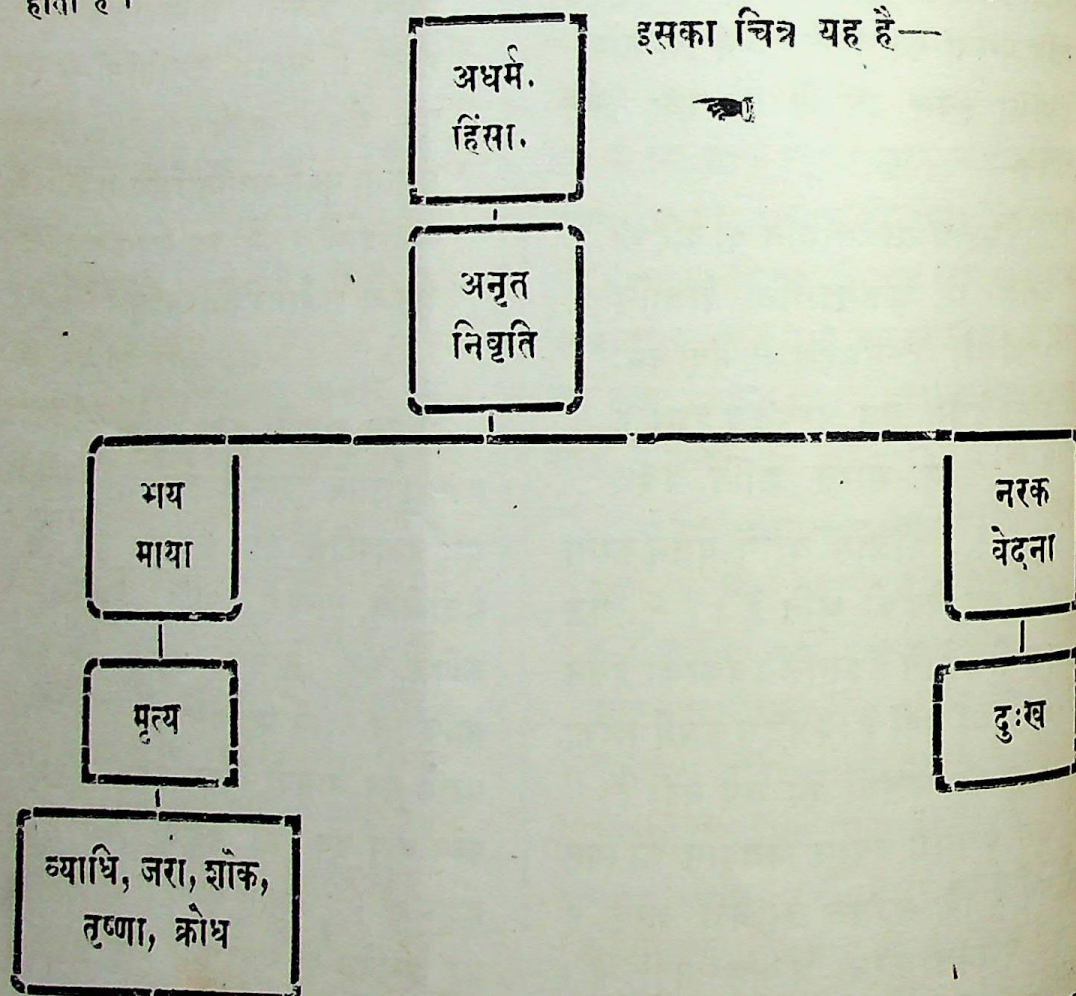
यह अधर्म और हिंसाकी संतति हैं । यज्ञमें जो हिंसा करते हैं उनकी यही गति होगी इस लिये इनको इस भयानक परिणाम का ख्याल रखना योग्य है ।

यज्ञमें प्रतिनिधि ।

प्रायः इस समय प्रतिनिधि सेही यज्ञ किया जाता है। जो यज्ञ यहां हो रहा है उसका नाम 'सोमयाग' है, परंतु आश्चर्य की बात यह है कि इसमें "सोमवल्ली" ही नहीं है, सोमकी उपस्थिति जहां नहीं और उसके स्थानपर जो दूसराही पदार्थ लिया गया है, तो इस यागको "सोमयाग" किस प्रकार कहा जाता है। और यदि मुख्य सोमवल्ली का कार्य प्रतिनिधिसे ही लिया जाता है, तो क्या पशुके स्थानपर प्रतिनिधि जो पूर्वस्थलमें कहा है नहीं लिया जा सकता ?

इसी यज्ञ में कई इष्टियां संक्षेपसे, कई प्रतिनिधिसे और कई संकेतसे की गई हैं। यदि यह अवस्था है तो केवल बकरा मारनेका ही आग्रह क्यों किया जाता है? पशुके स्थानपर पुरोडाश का हवन ब्राह्मण ग्रंथमें स्वीकारित हो चुका है, इसलिये यदि आप वही करेंगे तो किसी प्रकार भी अनुचित नहीं होगा।

इसलिये सब उपस्थित पंडितों विद्वानों और शास्त्रियोंको मेरा अह्वान है कि वे इसका विचार करें अथवा यदि उनका आग्रह है तो शास्त्रार्थ करनेके लिये सिद्ध हों। मैं यहां इस विषयपर शास्त्रार्थ करनेके लिये सिद्ध हूं।।"

इस प्रकार श्री० पं. श्रीपाद दामोदर जीका व्याख्यान हुआ। व्याख्यानका परिणाम श्रोताओंपर अच्छा होगया व्याख्यानके अंतमें आह्वान देनेके कारण उपस्थित पुराणमताभिमानी विद्वानोंको उत्तर देना अत्यावश्यक हुआ। इस लिये उपस्थित विद्वानोंकी संमतिसे श्री. पं. श्रीधर शास्त्रीजी पाठक, डेक्कन कालज पूनाके शास्त्राध्यापक, उत्तर देनेके लिये खडे हुए। उन्होंने कहा कि—

"यह पूर्व पक्ष उत्तम प्रकार से किया गया है। इसमें कोई दोष नहीं है। यद्यपि मैं इनके हरएक प्रमाणका उत्तर दे सकता हूं तथापि इसी समय हममेंसे कोईभी शास्त्रार्थ करनेके लिये तैयार नहीं हैं। इसकी तैयारी करनी चाहिये। अध्यक्ष की योजना करनी चाहिये और नियम बनाकर तदनुकूल शास्त्रार्थ करना चाहिये शेष मैं इतना कहता हूं कि इतने प्रमाण सुननेपर भी पशुयाग के विषयमें मेरा अपना मत वैसा ही स्थिर है जैसा कि पहिले था। क्यों कि इनके दिये सब प्रमाणोंसे हमारा पशुयागका ही मत सिद्ध होता है, न की पूर्वपक्षकर्ता का, इसलिये हम इनका आह्वान स्वीकार करते हैं और अवश्य शास्त्रार्थ करेंगे।"

इस उत्तर के पश्चात् पं० श्रीपाद दामोदरजीने कहा कि, 'यदि अध्यक्ष केवल सभाका नियमन करनेवाला ही होगा, तो एक अध्यक्ष पर्याप्त है, परंतु यदि निर्णय करनेवाला अध्यक्ष निश्चित करना हो, तो तीन अध्यक्षों का निर्वाचन होना चाहिये। और तीन अध्यक्ष मिल

जो संमति देंगे, वही सबको माननी होगी। दूसरी बात यह है कि यह सब शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो और शास्त्रार्थ समाप्त होनेके पश्चात् उपस्थित विद्वानों के हस्ताक्षर होकर सब का प्रकाशन किया जावे।"

उपस्थित सज्जनोंने इस बातको एकमत से स्वीकृत किया। दूसरे दिन पुनः शास्त्री और पंडितों की सभा हुई। इसमें निश्चय यह हुआ कि, "काशी, कलकत्ता, प्रयाग, पंजाब, काश्मीर, गुजराथ, म्हैसुर, तैलंग, मद्रास, त्रावणकोर, महाराष्ट्र और मुंबई प्रांतोंसे अच्छे विद्वान यहां बुलायें जांय और इनके द्वारा यह शास्त्रार्थ निभाया जाय आगामी चैत्र अथवा वैशाख में शास्त्रार्थ शुरू किया जाय और तबतक पूर्वोक्त स्थानोंसे विद्वान बुलानेका तथा अन्य आवश्यक कार्य किया जाय। तथा इस कार्यके लिये पांच सहस्र रु० का व्यय मंजूर किया जाय।"

इस शास्त्रार्थ सभाके मंत्री श्री. दीक्षित जी होंगे कि जिन्होंने यह यज्ञ किया। अर्थात् ये इसी समयसे इस कार्य को प्रारंभ करेंगे।

अब अपना विचार ।

अब अपना विचार करना चाहिये। स्वाध्यायमंडलके प्रतिनिधि श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर जी ने शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। और आह्वान स्वीकृत भी हो चुका है। भारतवर्षके संपूर्ण विद्वान इस औंध नगरमें थोडेही समयमें उपस्थित होंगे और प्रतिपक्षसे शास्त्रार्थ की तैयारी ऐसी होगी कि जैसी किसी समय नहीं हुई होगी। कार्यव्यय के लिये ही करीब पांच सहस्र रु० व्यय करना मंजूर हुआ है। काशी आदि स्थानके प्रसिद्ध विद्वान यहां पधारेंगे। यह सब अब निश्चित हो चुका है। इस महान कार्यके लिये स्वाध्यायमंडल कोभी तैयार होना चाहिये।

परंतु धनहीन स्वाध्यायमंडल कहांतक इसमें कृतकार्य हो सकता है? जहां पैसेका व्यय आवश्यक है वहां केवल बुद्धिसे कार्य चलना असंभव है। दूसरे पक्ष के विद्वानोंने कितने बडे युद्धकी तैयारी की है इसका पता पूर्व लेखसे ही पाठकोंको लग सकता है।

इस समय यदि पाठक गण स्वाध्याय मंडल की आर्थिक सहायता करेंगे तो ही यह कार्य अंततक पहुंचाया जा सकता है। अन्यथा स्वाध्यायमंडल का मत शुद्ध होनेपर भी इतने बडे प्रतिपक्षके सन्मुख फीका ही रहेगा। इस समय हमें निम्नलिखित बातोंकी तैयारी सबसे प्रथम करनी चाहिये। इनके लिये व्यय आदिका अंदाजा नीचे दिया जाता है—

कार्य और व्यय।

१ वैदिक यज्ञ पद्धति के विषयमें एक विस्तृत और परिपूर्ण

पद्धति तयार करनी।
पुस्तक लिखने का व्यय रु० ६००)
२ उक्त पुस्तक की छपाई १५००)
३ पांच पंडित पंजाब और
युक्त प्रांत से बुलानेका व्यय ५००)
४ यहां वैदिक यज्ञपद्धतिसे बृहत्
यागका अनुष्ठान करनेके लिये घृत
हवन सामग्री आदिके लिये व्यय ५००)
कुलव्यय ३१००)

करीब तीन हजार रु. का व्यय होग इसमें पुस्तक की लिखाई छपाईका व्यय पहिले इकट्ठा होना चाहिये क्यों कि यह पुस्तक शास्त्रार्थके पूर्व ही तैयार होनी चाहिये। देरी लगनेसे उतना लाभ नहीं होगा। इस कारण जो लोग इसमें सहायता देना चाहते हैं अतिशीघ्र भेज दें। अन्य व्यय पीछेसे आवश्यक है। कार्यकी महत्ता देखकर पाठक गण इसमें अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करेंगे ऐसी हमें पूर्ण आशा है।

हमारा शास्त्रार्थ विषयक ग्रंथ लिखनेका कार्य प्रारंभ होगया है। आवश्यक श्रौतग्रंथ मंगवाये गये हैं। प्रतिदिन व्यय हो रहा है। इसलिये सहायता जितनी शीघ्र आ जायगी उतनी अधिक उपयोगी है।

जो जो कार्य होगा और जो जो सहायता आवेगी वह सब वृत्रपत्रों में प्रसिद्ध की जायगी और प्रतिमास इस वै. धर्म में भी प्रसिद्ध की जायगी।

आशा है कि अब पाठक वर्ग इस जिम्मेवारीको समझकर यथा समय शीघ्रही उचित सहायता करेंगे और यशके भागी होंगे।
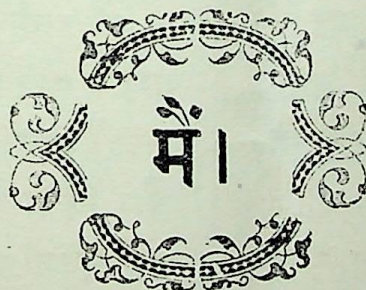
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ इंद्रियाणि हयान्याहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्॥

कठ. उ. ३ । ३

मैं कौन हूं, मैं कैसा हूं, मेरी योग्यता किस उपायसे उच्च हो सकती है, यह विचार हरएक को करना चाहिये।

यह विचार करनेके लिये कठ उपनिषदमें जो सुगम उपाय बताया है वह ऊपर के श्लोक में दिया है। यदि पाठक
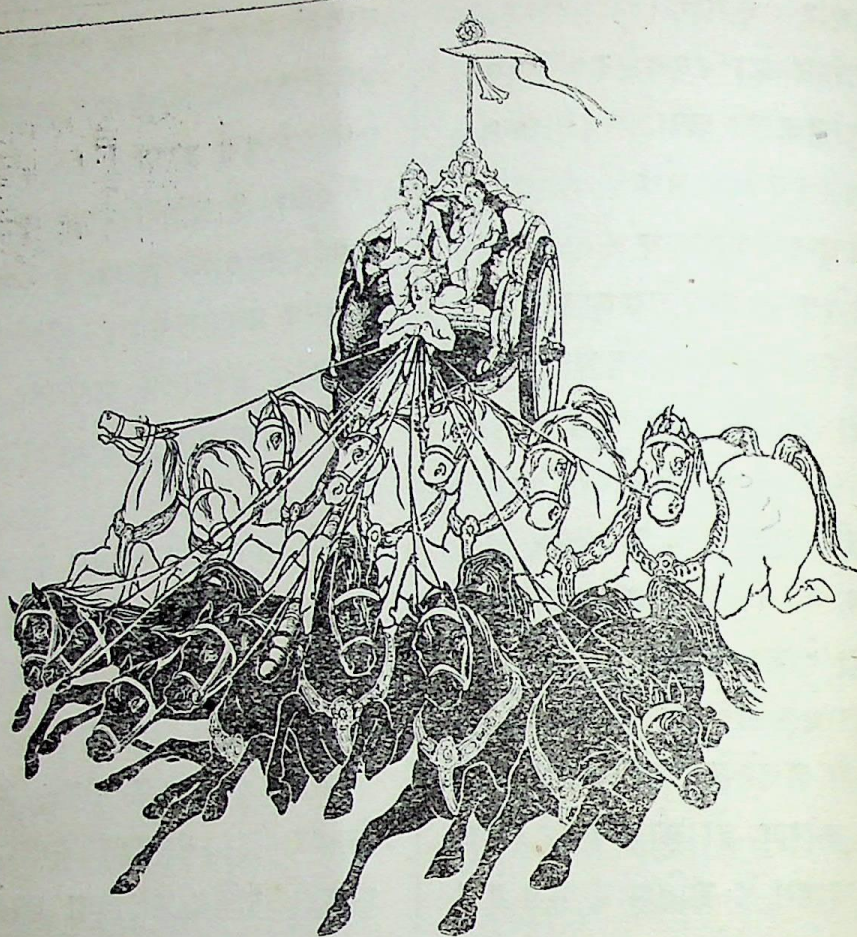
इसका विचार और मनन करेंगे तो उनकी उन्नति निःसंदेह शीघ्र ही हो सकती है ।

उक्त उपनिषद् मंत्र का अर्थ यह है—

(१) अपने आत्माको रथी अर्थात् रथमें बैठने वाला वीर समझ,

(२) शरीर को रथ मान,

(३) बुद्धि को सारथि जान,

(४) मनको लगाम अनुभव कर,

(५) इंद्रियों को घोडे कह, जो घोडे अपने अपने विषयों की ओर दौडते हैं ।

कितना गंभीर उपदेश है । जितना आप इसका अधिक मनन करेंगे उतना अधिक आनंद आपको प्राप्त होगा ।

यह आत्मा अपने शरीररूप रथमें बैठकर जीवन युद्धमें उपस्थित है । इसको युद्ध क्षेत्रमें युद्ध करना है ।

दो हाथ, दो पांव, गुदा, शिस्न और मुख ये सात कर्मेंद्रियां स्थूल सात घोडे हैं।

दो कान, दो आंख, जिव्हा, नासिका, और त्वचा ये सात ज्ञानेंद्रियां सूक्ष्म और बडे चपल सात श्वेत घोडे हैं ।

इनकी दौड अपने अपने विषयक्षेत्रमें हो रही है और इनको पता नहीं कि जिसके रथको हम जोते हैं, उस महारथी वीरको कहां जाना है और क्या करना है।

मन लगाम हैं परंतु वह किसके आधीन है?

बुद्धि सारथी है परंतु क्या वह अपने आधीन है? अपने ही रथमें अपनी आत्मशक्ति

बैठी है, क्या वह अपना बल बढा रही है?

पाठको ! विचार तो कीजिये कि यहां हो क्या रहा है ? और करना क्या चाहिये ?

इस विषयमें अधिक लिखना नहीं चाहिये । हरएक अपना विचार करे और जाननेका यत्न करे कि मैं कहां और किस अवस्थामें हूं ।

विचार करते ही पता लग जायगा । और उपाय भी सूझेगा ।

यही आत्मोन्नतिका सीधा मार्ग है—
विचार , मनन और ध्यान ।

दलितोद्धार ।

(ले.-कुंवर चांदकरण शारदा, अजमेर)

मानव पथ प्रदर्शक वेदों में कहा है:—

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्य्ये॥

१ मुझे देवों, मनुष्य देवों, अर्थात ब्राह्मणों में प्रिय बना, मुझे क्षत्रियों में प्रिय बना, मुझे सब प्राणियों का प्रिय बना, मुझे शूद्र तथा वैश्यों में प्रिय बना ।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ऋग्वेद ॥

सहृदयं सांमनस्यं अविद्वेषं कृणोमि वः ॥ अन्योऽन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

समानी प्रपा सह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभि-मिवाभितः ॥ सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नु ष्टीन्त्सं-वननेन सर्वान् । देवाः इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ अथर्ववेद ॥

यह सब वेद मन्त्र हैं । परमात्मा आज्ञा देते हैं कि संगठन के लिए सब मनुष्यों को चाहिए कि "इकठे चला करें, इकठे बोला करें, एक समान विचार किया करें. जिस प्रकार समझदार लोग सदा प्रेम से रहते हैं, वैसे ही सदा रहा करें !

"हे मनुष्यों ! तुम सबके दिल मिले हुए हों, तुम्हारे मन मिले हुए रहें,तुममें कभी आपस में लडाई झगडा न हो. तुम सब एक दूसरे को ऐसा प्यार करो जैसे गौ अपने नये नये पैदा हुए बछडे को प्यार करती है । "

" तुम सब इकठे पानी पिया करो, इकठे बैठकर भोजन खाया करो, इकठे मिल कर बडे बडे काम किया करो, और प्रातः सायं इकठे होकर सन्ध्या हवन किया करो।"

सब इकठे ही रहा करो, मकान सबके एकसे हों, जिस प्रकार देवता लोग अमृत की रक्षा करते हैं उसी प्रकार तुम एक

दूसरे की रक्षा किया करो । "

दलितोद्धार पर शास्त्राज्ञायें।

दलितोद्धार पर शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों में सैंकडों प्रमाण हैं । और सब प्राचीन विद्वानों की सम्मति में वर्णव्यवस्था गुण कर्म से ही मानी गई है, जन्म से नहीं।

(१) सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा । दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र, स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

महा० वन० १८० अ० ॥

सच्चाई, दान, क्षमा, सुशीलता मृदुता, तप, दया, यह गुण जिन लोगों में हो उनको ब्राह्मण कहना और मानना अन्य को नहीं ।

(२) तावच्छूद्रसमो, ह्येषो यावद्वेदे न जायते

महा० वन० १८० अ० ॥

जबतक मनुष्य वेद नहीं पढता तबतक वह शूद्रसम ही रहता है ।

३ न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् । ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि, कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥

महा० शांति १८६ अ०

चारों वर्णों में कोई भेद नहीं है, सभी के भीतर परमात्मा व्याप्त है, परमात्माने ही सब को बनाया है । जो जैसे जैसे कर्म करता है वैसा वैसा वर्ण पाता है, वर्ण कर्म के द्वारा पाता है जन्म के द्वारा नहीं ।

(४) हिंसानृतप्रियाः लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः। कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टाः ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥

महा. शान्ति १८६अ.

निरपराध प्राणियों की हिंसा, झूंठ, लालच अपवित्रता आदि दुर्गुणों के होने से, हृदय में कपटी होने से, और अपनी जीविका प्राप्ति के लिये खराब से खराब अधर्म का काम भी कर डालने से, अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग शूद्र बनगए हैं ।

(५) "न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥ "

महा. शान्ति. १८६ अ.

शूद्रोंकी सन्तान शूद्र ही हों और ब्राह्मण की सन्तान ब्राह्मण ही हों यह कोई जरूरी बात नहीं है किन्तु बदल भी सकते हैं ।

(६) राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा, ब्राह्मण्यं केन भवति ब्रूहि मे तत्सुनिश्चितम् ॥ शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम् । कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु केवलम् ॥

महा० उद्योग १८०अ०

हे राजन ! जन्म, कुल, स्वाध्याय विद्या और सदाचार में से किससे आदमी ब्राह्मण होता है । उत्तर यह है कि जन्म से वा कुल से कोई ब्राह्मण नहीं होता और नहीं किसी और कारण से होता है, केवल सदाचार से आदमी ब्राह्मण होता है ।

(३) शूद्रोप्यागम संपन्नो द्विजो भवति संस्कृत , ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकर भोजनः। स ब्राह्मण्यं

समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ।
ब्रह्मपुराण २२३ अ.

विद्या पढ़कर और सदाचारी बनकर शूद्र का पुत्र भी ब्राह्मण हो जाता है और इसीप्रकार विद्या और सदाचार छोड़ देने से तथा अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने से ब्राह्मण का पुत्र भी शूद्र होजाता है ।

(८) शूद्रोऽपिद्विजवत्सेव्यः स्वयं ब्रह्माब्रवीदिदम् ।
ब्रह्मपुराण अ० २२३

यह ब्रह्मा ने कहा है कि सदाचारी होने से शूद्र भी शुद्ध होता है और ब्राह्मण की तरह पूजनीय होता है ।

(६) कर्मणा क्षत्रियत्वं च वैश्यत्वं च स्वकर्मणा ।
दे. भा. स्कं ६ अ. २८.

क्षत्रिय और वैश्य भी कर्म से होते हैं जन्म से नहीं,

(१०) न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न । न शूद्रो नापि वै म्लेच्छो भेदता गुणकर्मभिः ।
शंकरनीति ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ अपने जन्म से कभी कोई नहीं होता । किन्तु गुणकर्मानुसार लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व म्लेच्छ हुआ करते हैं ।

(११) जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते । वेदाभ्यासाद् भवेद्विप्रो ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः ॥

जन्म से सभी शूद्र पैदा होते हैं, परन्तु पीछे से संस्कार वेदाभ्यास और ब्रह्मज्ञान के द्वारा मनुष्यक्रमशः द्विज, विप्र और ब्राह्मण बनता है ।

(१२) धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरि बृंहणः । ते शिष्टाः ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥
मनु० १२-१०६

जिन्होंने धर्माचरणपूर्वक वेद का अध्ययन किया है वे ही सदाचारी पुरुष ब्राह्मण कहाते हैं और कोई अन्य नहीं ।

(१३) शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च । मनु १०-६५॥

अच्छे काम करने तथा पढ़ने से शूद्र कुलोत्पन्न पुरुष भी ब्राह्मण हो सकता है और बुरे काम करने तथा विद्या आदि को न पढ़ने से ब्राह्मण कुलोत्पन्न पुरुष भी शूद्र हो जाता है । इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्यों को भी जान लेना । अर्थात् पुरुष चाहे किसी भी कुल में पैदा हुआ हो वह जिस जिस वर्ण के अनुकूल काम करता है उसे उसी वर्ण में गिनना और मानना चाहिए ।

(१४) अधर्मचर्यया पूर्वो पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृतौ । धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृतौ।

यह महर्षि आपस्तम्ब की आज्ञा है कि अधर्म का आचरण करने से ऊंचे कुल में पैदा होने वाले भी नीचे नीचे

वर्ण के हो जाते हैं । और वह उसी वर्ण में गिने जावें जिसके कि वे योग्य हों । इसी प्रकार उत्तम विद्या और धर्माचरण द्वारा शूद्र आदि कुल में पैदा होने वाले भी ब्राह्मण आदि ऊंचे वर्ण को पा सकते हैं, और अपने योग्य वर्ण ही में गिने जावें । इस प्रकार शास्त्रों में इसके लिए हजारों प्रमाण भरे पडे हैं, जिनसे स्पष्ट विदित होता है कि जो जो विद्या-वान् और सदाचारी हों, उन उन मनुष्यों को ब्राह्मण मानना । जो बहादुर योद्धा हों उन उन मनुष्यों को क्षत्रिय समझना । जो किसी तिजारत व्यापार तथा दुकानदारी आदि द्वारा अपना और अपने देश का धन का बढाने में लगे हों उन उन आदमियों को वैश्य कहना । इसीप्रकार जो लोग अपने शरीर के श्रम द्वारा ही जनता की सेवा करते हों उन्हें शूद्र जनना ।

चारों वर्णों को सदाचारी बनाना चाहिए। चारों ही परमात्मा के पुत्र होने के कारण परस्पर सगे भाइयों की तरह प्यार से रहें । कोई किसी को छोटा न समझे । समाज में चारों की अत्यन्त आवश्यकता है । कोई अछूत नहीं है । सभी को छूना चाहिए । किसी से घृणा करना महा पाप है । सब सडकों पर चलने का सबको अधिकार है । सब कुओं पर चढने का सबको अधिकार है। सब मन्दिरों में जाने तथा वहां पूजा पाठ दर्शन आदि करने का सबको अधिकार है । वेद पढने यज्ञ हवन करने का सबको अधिकार है । किसी क छ लेने से रोटी और पानी भ्रष्ट नहीं होजाता । खाना पीना चारों वर्णों को इकट्ठे होना चाहिए । शूद्र के साथ बैठकर खाने व उसके हाथ का भोजन व जल खाने पीने से कोई शूद्र नहीं हो जाता ।

अवश्यं भरणीयो हि वर्णानां शूद्र उच्यते ।

महा० शान्ति पर्व

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, और वैश्यों, को चाहिए कि शूद्रों (केवल शारीरिक श्रम कुलीगीरी आदि करने वालें)के लिए जीविका का उत्तम प्रबन्ध करें। उनको वेतन अछा मिलना चाहिये ताकि वह और उनका परिवार आनन्द से खा पी सकें, क्योंकि अन्य लोग तो तरह तरहके अन्य काम भी कर सकते हैं पर निर्बुद्धि होने से जो शूद्र है वह बेचारा और कौन काम करेगा! अतः द्विजों का परम कर्तव्य है कि अपने सेवकों की रक्षा और पालन का पूरा प्रबन्ध करें । और दलितोद्धार में दत्तचित्त होकर लगें और दलितोद्धारक यह व्रत लें कि हम कभी भी दलितों से घृणा नहीं करेंगे ।

कवि ने क्या ही अछा कहा है: –

वही है वीर जो पूरा करे इकरार दुनियां में । नहीं तो सैकडों होते जलीलोख्वार दुनियां में ॥ क्या हुआ गर मर गये अपने वतन के वास्ते । बुलबुलें होती फिदा अपने चमन के वास्ते ॥ घटने न देना मान, करना मोह मत धन धामका । मान ही जाता रहा तो

धन रहा किस काम का ॥

इसवास्ते प्रिय भाइयों और बहिनों! यदि आप प्राचीन आर्य्य गौरव और चक्रवर्ती साम्राज्य पुनः स्थापित करना चाहते हैं तो सारी हिन्दू जाति को एक संघठन में बांधों, सब कुप्रथाओं को हटावो और व्यायाम कर ब्रम्हचर्य का पालन कर सबसे प्रेम और भ्रातृभाव से मिलकर दलितोद्धार में पूर्ण सहायता दो और विघ्नबाधाओं को झेल कर धर्म पर कुर्बान हो।

ग्रंथ परिचय।

१ सामवेद संहिता [आग्नेय पर्व] —(संपादक—श्री सत्यचरण राय देव शर्मा। प्रकाशक—श्री. ब्रजेश्वर राय, बीडन स्केअर कलकत्ता। मू. १॥)

सामवेदके प्रत्येक मंत्र का पदपाठ, अन्वय तथा छंद ऋषि आदि देकर तत्पश्चात आधियाज्ञिक और आध्यात्मिक अर्थ दिये हैं। विशेष शब्दों की निरुक्ति तथा व्याकरण भी स्पष्ट करके बताया है। सब ग्रंथ सुगम संकृतमें है और सामवेदाभ्यासी के लिये विशेष उपयोगी है। कागज और छपाई उत्कृष्ट है। इस पुस्तक से सामवेदका अध्ययन निःसंदेह सुगम होगा। मूल्य भी ग्रंथ के महत्वकी दृष्टिसे अत्यंत अल्प है।

२ प्राचीन हिंदी शिल्प शास्त्र सार—(लेखक और प्रकाशक—श्री. रा. सा. कृ. वि. वझे. इंजिनियर नासिक। मू. १॥)

(मराठी) इस ग्रंथमें ग्रंथ लेखक ने प्राचीन हिंदी शिल्प शास्त्र को सार संगृहित किया है। यह ग्रंथ हिंदी भाषामें उल्था करने योग्य है कोई प्रकाशक यह कार्य करेगा तो हिंदी जनतापर बडा उपकार होगा।

३ पुनर्जन्म—(लेखक और प्रकाशक—श्री. पं नंदकिशोर विद्यालंकार, हेस्टिंगस्ट्रीट, कलकत्ता).

पुनर्जन्म का सिद्धांत युक्ति प्रमाणोंसे जैसा इस पुस्तकमें सिद्ध किया है वैसा किसी अन्य पुस्तकमें किया हुआ देखा नहीं। प्रत्येक वैदिक धर्मी मनुष्य को यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है। पुनर्जन्म विषयक प्रमाण जैसे अर्थशास्त्र के

दिये हैं वैसेही पाश्चात्य वैज्ञानिक ग्रंथोंके भी प्रमाण इस पुस्तकमें दिये हैं । इस लिये यह पुस्तक अधिक उपयोगी हो गई है ।

४ आर्य पर्वावली — (लेखक-श्री. पं. भवानी प्रसाद जी, हल्दौर जि. बिजनौर । मू. ।॥)

इस पुस्तकमें हनुमान, सूरदास, शिवराज, शंकराचार्य, बुद्धदेव, गंगावतार, व्यासपूजा, तुलसीदास, विरजानंद, शरत्पूर्णिमा, दम्पति चतुर्थी, भ्रातृतृतीया, गोपाष्टमी, भीष्माष्टमी गुरुदत्तदिन, इनके पर्वोंका वर्णन है । पुस्तक अढाई सौ पृष्ठोंकी है और बडी उपयोगी है।

५ दयानंद दर्शन — (लेखक- श्री. पं. सत्यदेवजी सिद्धान्तालंकार. सिताबर्डी नागपुर । मू. ।ं)

इस पुस्तकमें लेखकने वैदिक राष्ट्रीय भावना को पुष्ट कर प्रजातंत्र राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य आदि व्यवस्थापर प्रकाश डाला है और ऋषि दयानंद के लेखोंका यथास्थान उद्धरण देकर सिद्ध कर दिया है कि राजनैतिक क्षेत्रमें भी उनके आदेश कैसे उत्तम मार्ग दर्शक हो सकते हैं ।

६ शुद्धि —(ले०-श्री. कुं. चांदकरण शारदा, अजमेर) शुद्धिके विषय में यह पुस्तक अत्यंत महत्वके विचार बता रही है ।

७ हिंदुस्तान—(संस्कर्ता—श्री. पं. सूर्यनारायण शर्मा आचार्य, जयपुर राजपुताना। मू. ।=) प्रकाशक—जय देव ब्रदर्स बडोदा)

श्री. मैथिली शरण गुप्तजी का "भारत भारती" ग्रंथ सब जानते ही हैं । इस पुस्तकके "वर्तमान खंड" में जो चित्र भारत दशाका वर्णित है, उसको थोडे भावना के परिवर्तन के साथ प्रकाशित करनेका कार्य श्री. पं. सूर्यनारायणजीने किया है । शुभ संकल्प की भावनासे भारत की दशाका चित्र जैसा लिखना चाहिये वैसा इस पुस्तक में लिखा है । यदि पाठक दोनों पुस्तक तुलनात्मक दृष्टिसे पढेंगे तो विशेष लाभ उठा सकेंगे । इस अपूर्व पुस्तक के लिये हम, पं. जीका विशेष धन्यवाद करते हैं ।

इनके अतिरिक्त(१) **वेदका स्वाध्याय**-श्री रामचंद्र शर्मा एम्, ए. म. जलंधर मू. ।)(२) **चित्रकूट चित्रण**-श्री विद्याभूषण विभु, कलाकार्यालय, प्रयाग मू. ।=) (३) दलितोद्धार--श्री. कुंवर चरण शारदा, अजमेर मू. ।) (४) **वैदिक संध्या** (विनामूल्य) ला. लब्भूराम नय्यड, आनंदाश्रम लुधियाना पंजाब । (५) सच्ची पाठविधि श्री. पं. युद्धिष्ठिर विद्यालंकार आचार्य गुरुकुल, हरियाना मू.~) (६) **ब्रह्मयज्ञ**-पं वंशीधर पाठक, बरेली । (७) **महिला-कर्तव्य**—ले०- श्री. विद्यावती शारदा, सहारनपुर मू. ।=) (८) अलंकार शताब्दी अंक, अलंकार कार्यालय गुरुकुल कांगडी. जि. बिजनौर मू. ।।।) (९) शताब्दी अंक— आर्य लाहौर, आर्यमित्र आग्रा । इत्यादि पुस्तकोंका साभार स्वीकार है ।

आयु--वृद्धि और श्वास ।

(लेखक—श्री. पं. ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य अमृतधारा लाहौर)

इस प्रश्न पर हिन्दुस्तान में भी बहस हुआ करती है कि आयु वृद्धि हो सकती है या नहीं? दूसरे देशों के लोग इस पर बहस नहीं करते। क्योंकि वे माद्दि लोग हैं। जितने मुसलमानी देश हैं उनमें साधारणतया यह ख्याल है कि जीवन का घटना बढना कठिन है। हिन्दुओं में भी दो ख्याल हैं, कोई यह समझते हैं कि आयु जो निर्धारित हो चुकी उससे पलभर भी घट बढ नहीं सकती। बाज यह ख्याल करते हैं कि ईश्वर ने हमको पैदा करके स्वतंत्र किया है। आयु घटाने बढाने का भी हमको अधिकार है। इस प्रश्न पर यदि हम विस्तार के साथ विचार करें तो बडा स्थान चाहिये। इतना अवश्य कहेंगे कि यदि ध्यान से देखाजाय तो भी मालूम होता है कि मनुष्य अपने आचरणों से अपनी आयु को घटा भी सकता है और बढा भी सकता है। जो लोग यह मानते हैं कि परमेश्वर ने हमको एक निर्दिष्ट समय तक के लिये इस संसार में भेजा है वे भी ९९ फीसदी ऐसा मानते हैं कि 'अवधि' सालों में निर्धारित नहीं है बल्कि श्वांसों के साथ सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन के सांस निर्दिष्ट हैं। यही कारण है कि योगी लोग प्राणायाम द्वारा अपने सांस बहुत कम खर्च करते हैं और सैंकडों वर्ष तक जीते रहते हैं। इस बात से मालूम हुआ कि यदि कोई मनुष्य अपनी सांस जल्दी जल्दी खर्च करता है तो अपेक्षाकृत कम समयों में अपने सांस पूरे कर लेता है, परन्तु यदि वह अपने सांस थोडे खर्च करता है तो वह अपनी आयु को बढा सकता है भारत वर्ष के योगी इस प्रकार कथन करते हैं। इसमें कुछ कुछ मत-भेद भी है। बाज योगी ख्याल करते हैं कि जितनी देर सांस बंद रहता है, केवल वही कमी है। यदि सांस आता रहता है परन्तु वैसे ही लम्बा हो जाने से दिन भर में उनकी संख्या कम हो जाती है। तब यह जीवन की दीर्घता पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सकता है। मनुष्य को साधारणतः दिन भर में २१६०० श्वास आते हैं। यदि कोई आदमी गहरे सांस लेने की आदत डाले तो यह संख्या दस, पन्द्रह तक आजाती है। योगी लोग कहते हैं कि इससे यद्यपि तन्दुरुस्ती बढती है, बुढापा नहीं आता है, परन्तु इससे आयु पर प्रभाव नहीं पडता है, क्योंकि चाहे लम्बी सांस हो, हर समय जारी तो है। हां, यदि सांस को बिल्कुल बंद कर लिया जाय तो उतने समय में जितने सांस आने चाहिये थे, उतनी बचत उसकी होगी। सांस के साथ आयुका सम्बन्ध इस प्रकार भी माना जाता है कि सांस जितना लम्बा बाहर निकलता है उतनी ही आयु घटती है इसी

वास्ते बाज योगी जो 'ओ३म्' या 'सोहं' का जप करते हैं सांस को इतना सूक्ष्म कर लेते हैं कि वह बाहर जाता हुआ मालूम नहीं होता है। कहते हैं इससे भी आयु बढती है और जीवन स्थिर हो जाता है, अर्थात् बुढापा नहीं आता है।

साधारणतः मनुष्य जो सांस लेता है वह १२ अंगुल बाहर जाता है और १० अंगुल भीतर जाता है। बीमारी में, निद्रामें अधिक बोलने में और ऐसे ही स्त्री प्रसङ्ग आदि के समय उसकी लम्बाई बढ जाती हैं, इसलिए ये सब चीजें आयु को घटाने वाली हैं॥

व्यायाम के समय भी सांस लम्बा हो जाता है। यद्यपि ऐसी विधियां भी हैं जिससे व्यायाम करने पर भी उसको वश में रक्खा जा सकता है। परन्तु व्यायाम को इस वास्ते आवश्यक कहा गया है कि इससे यद्यपि उस समय सांस तेज हो जाता है परन्तु बाकी रात दिन के वास्ते सांस नियमित और सूक्ष्म हो जाता है, इससे स्वास्थ्य बढता है जिसका असर सारे जीवन पर रात दिन रहता है। इस वास्ते व्यायाम के समय थोडा ज्यादा खर्च करके भी पीछे खजाना जमा होता रहता है॥

वास्तव में भारतवर्ष के योगियों ने श्वास विद्या को बहुत अच्छी तरह जाना है। विलायत के लोग हिन्दुस्तान में आकर जंगलों और बनों में वर्षों तक फिरते हैं और ऐसी बातें यहां के योगियों से सीख कर घर जाकर बडी बडी पुस्तकें लिखते हैं। और लाखों रुपया कमाते हैं, और हमारे यहां के लोग उन्हीं पुस्तकों को पढकर वाह वाह करते हैं, मगर सोचते नहीं हैं कि जिन योगियों से उन्होंने सीखा है, वे हमारे ही देशमें रहते हैं, कभी हम उनको ढूंढने का विचार भी नहीं करते।

मनुष्य जो सांस लेता रहता है, वह दोनों नथुनों से नहीं बल्कि एक नथुने से आता रहता है।

जब कभी कोई मनुष्य देखे उसका एक नथुना चलता होगा। दूसरे नथुने से न मालूम सांस आता है। जब एक नथुने से दूसरे नथुने में सांस बदलने लगता है, तब थोडी देरके लिये दोनो नथुनों से चलता है, उस समय सांस सूक्ष्म होता है, और सांसारिक कार्यों की अपेक्षा ईश्वर की याद में उस समय मन अधिक लगता है।

दाईं तरफ से जब सांस चलता है, तब उससे शरीर के भीतर गरमी पैदा होती है, जब बाईं तरफ से आता जाता है, तब उससे सर्दी पैदा होती है।

इस लिये शरीर की गर्मी और सर्दी को योगी सांस बदलकर घटा बढा लेते हैं।

अगर किसी आदमी को एकही तरफसे सांस चलता रहे तो वह जिन्दा नहीं रह सकता है।

मुझे एक आदमी की बाबत मालूम है जिसके केवल दायां सांस अज्ञातरूप से चलता रहा होगा। अब उसकी हालत

यह है कि दायें नथुने में हर वक्त रूई रख कर उसको अपना बायां सांस ही चलाना पड़ता है। चंद दिनों की बात है कि रात को दायें नथुने की रूई निकल गई,न मालूम कितनी देर दायें से सांस लिया होगा । उसके शरीर में आग लग गई । उसी वक्त उठ बैठा । दो दिन तक ऐसी बुरी हालत रही कि वर्णन नहीं कर सकते । सुबह उठ कर तो दो सेर बीह का मुरब्बा खाया, लेकिन फिर भी शरीर के भीतर शान्ति न होती थी, भूख बंद न होती थी, दाह इतना अधिक था कि कभी किसी ने इसकी कल्पना भी न की होगी। वह बीमार कहा करता है कि यदि दैव योग से मेरा दहिना नथुना पक जाय और मैं उसमें रूई दाब कर न दे सकूं तो फिर शायद मैं मर जाऊं । अब मुद्दतों से इसी हालत में है । साधारण चिकित्सक सांस की इस ताकत को समझ ही न सके । उनके पास ऐसा रोगी हजारों ठंडी दवाइयां खाकर भी राजी नहीं हो सकता ।

योगी लोग इस सांसको अपने वश में कर लेते हैं । वह जिस तरफ का सांस चाहे, उसी तरफ का चलता है और उसको खूब काबू करके वे बीमारियों से सुरक्षित रह सकते हैं और आयु को बढाते हैं ।

भोजन करने, पाखाना जाने और नहाने वगैरह के समय वे दायां सांस चलाते हैं । पानी पीने और पेशाब करने वगैरह के समय बायां सांस चलाते हैं ।

उनका यह कथन है कि अगर कोई मनुष्य स्वाभाविक रूपसे घंटे घंटे बाद बदलते रहने की बजाय, सांस को वश में कर के, दिन भर बायां सांस चलाये, और रात भर दायां चलावे, तो इससे उसकी आयु बढ जाती है और तन्दुरुस्त रहता है ।

रातको यदि केवल बाईं करवट सोया जाय, तब दायां सांस चलता रहता है । रात को ज्यादा देर चलने के कारण, दिन को ज्यादा देर बायां निसर्गतः चलता रहता है ।

योगी लोग थोडा सोते हैं, मगर जितनी देर सोते हैं बायें करवट सोते हैं । सांस वश में लाने की एक विधि है, जिस से जो सांस चाहो फौरन चलने लगेगा । इसके वास्ते एक महीना तक सांस का एक अभ्यास ४ बार दिन रात में करना चाहिये, हर वक्त लगभग आध घंटे के लगेगा ।

अभ्यास की रीति संक्षेप में यह है कि सुबह, दोपहर, साम आधी रात चार बार दिन में १०–१० प्राणायाम किये जावें । वह इस तरह कि एक तरफ से सांस लेकर अंदर रोक कर दूसरी तरफ से निकाल दिया जावे । फिर उस तरफ से लेकर अंदर रोक कर पहली तरफ से निकाल दिया जाय । जो प्राणायाम विधि से अवगत हैं वे इतने से समझ जावेंगे ।

दूसरों को शुरू करने से पहले, किसी गुरु से समझ लेना चाहिये ।

वैदिक वर्ण व्यवस्था।

(लेखक -श्री. रामशरण विद्यार्थी.)

(पूर्व अंकसे समाप्त.)

जो पुरुष आर्य नहीं है अर्थात व्रत का पालन नहीं करते, वह दस्यु, दासादि हैं। जिन पुरुषों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र- इन चारों योग्यताओं में से किसी योग्यता को भी धारण नहीं किया वह पतित, अनार्य और दण्डनीय हैं। (यहां पर एक बात हमारी समझ में नहीं आती कि अनेक विद्वानों ने शूद्र को किस प्रकार अनार्य, अनपढ और पतित कह दिया। वास्तव में यह बात विचारने योग्य है। यह बात भी हमारी बुद्धि से बाहर है कि पतित ब्राह्मण को अनेक विद्वानों ने शूद्र कैसे कह दिया। शूद्र का भाव पतित से कैसे लिया जाने लगा, जब कि शूद्र के लिये भी निश्चित कर्म शिल्पविद्या पाकविद्यादि का अध्ययन और सेवन वर्णित है। शूद्र की उन्नति के लिए प्रार्थना अनेक वेद मन्त्रों में की गई है। जहां तक हमारा स्वाध्याय सीमित है, शूद्र को दण्डनीय कहीं भी नहीं कहा गया, अतः उसको आर्य मानना चाहिए। वैदिक धर्मावलम्बी विद्वानों को इस विषय पर अवश्य विचार करना चाहिए) यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र योग्यता सम्पन्न पुरुष अपनी योग्यताके अनुकूल कार्य नहीं करता, तो वह दस्यु, अव्रती आदि होनेके कारण दण्डनीय है। इस प्रकार ब्राह्मणादि योग्यता धारण करने वाला पुरुष अपना अपना वर्ण (choice of profession) स्वयं चुन लेता है। यथा यदि किसी ने युद्धविद्यामें कुशलता प्राप्त की है तो वह अपनी योग्यता के अनुसार सेनापति, राजा, और उपसेनापति आदि अपनी योग्यता की परीक्षा देकर हो सकता था। वह राजा, सेनापति उपसेनापति नाम से पुकारा जाता था। अपनी 'क्षत्रिय' योग्यता के कारण लोग उसे क्षत्रिय कहते थे और समझते थे कि इसका स्थान समाजशरीरमें बाहु का स्थान है। वास्तव में ऐसा विदित होता है ब्राह्मणादि वेदों में वर्ण (profession) सूचक शब्द नहीं है, उनसे तो योग्यता का ग्रहण करना उचित है। जैसे

कि पश्चिम में संप्रति B. A. B. com. आदि कोई वर्ण नहीं किन्तु योग्यतानुसार पदवियां हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण वैश्यादि भी पदवियाँ अर्थात् योग्यता के सूचक शब्द हैं। B. A. बी. ए. की योग्यता वाला जैसे आजकल अध्यापक, राजमन्त्री, और क्लार्क आदि हो सकता है इसी प्रकार ब्राह्मण योग्यता वाला भी अध्यापक, राजमन्त्री आदि हो सकता है। व्यापार, बैङ्क आदि के कार्यों में जैसे (B.com) बी. कॉम. पदवी प्राप्त पुरुष अपनी अपनी न्यूनाधिक योग्यता के कारण व्यापारी, बैङ्क का प्रबन्धकादि वर्ण (profession) चुन लेता है ! इसी प्रकार वैश्य पदवी प्राप्त अर्थात् वैश्ययोग्यता वाला पुरुष व्यापारी, श्रेष्ठि—प्रबन्धकादि हो सकता है। मुख्यवर्णों (profession) की संख्या एक यजुर्वेद के तीसवे अध्याय में ही १०० से ऊपर दी है। इस प्रकार विचार करने से यह समझ में नहीं आता कि ब्राह्मणक्षत्रियादि वर्ण किस प्रकार कहे जाने लगे। विद्वानों ने इनसे व्यवसायात्मक शब्दों का भाव किसप्रकार ग्रहण कर लिया। विद्वानों को इस पर विचार करके यथेष्ट समाधान करना चाहिए। यदि कोई वर्ण शब्द का अर्थ देखे तो इसके लिए निरुक्त "वर्णो वृणोतेः" अ. २ खं. ३ देखना उचित है जिससे प्रकट होता है कि चुनने अर्थ में वर्ण शब्द आया है अर्थात् व्यवसाय का चुनना (choice of profession or occupation)

उक्त सारे वर्णों के मनुष्यों को चाहिए कि थोडी बहुत विद्या अवश्य पढें। विद्या विना मनुष्य पुच्छविषाण हीन पशुके तुल्य होता है। किसी को विद्या पढने का अधिकार नहीं देना, घोर पाप करना है। वेदों में अनिवार्य शिक्षा (compulsory education) देने का उपदेश है। यदि यह कहो कि दुष्टों को विद्या नहीं पढानी चाहिए, तो यह समझ में नहीं आता कि वे भला वह अपना उपकार कैसे कर सकते हैं। वेदों में तो अनिवार्य शिक्षा का ही उपदेश दिखाई देता है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दाक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ यजुर्वेद २६। २॥

(यथा+इमाम्+कल्याणीं+वाचं+जनेभ्यः आवदानि) जैसे इस कल्याणकारी वाणी रूप वेद को सब मनुष्यों के लिए उपदेश करता हूं, वैसे आप भी करें (ब्रह्म+ राजन्याभ्याम् शूद्राय च+आर्याय च+स्वाय च+ अरणाय च) ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य अपने प्यारे, और दस्युओं को भी विद्या पढाओ। (अदः मा× उपनमतु) यह मेरा वाक्य वृथा न जाय। (इह+ इयं+मे+कामः) इस लोक में मेरी यह इच्छा पूर्ण हो। (देवानां+प्रियः+भूयासम्) तुम में से बडे बडे विद्वानों में मैं प्रिय होऊं और (दक्षिणायै दातुः) दक्षिणा देने वाले धनाढ्यों में भी।

इस मन्त्रसे निम्न लिखित भाव व्यक्त होते हैं।

(१) वेद ईश्वर ने सब मनुष्यों को दिये हैं।

(२) लोगों को चाहिए कि अपने प्रिय तथा अप्रिय सब को विद्या पढावे।

(३) इस प्रकार विद्या पढाना ईश्वरीय नियम है।

(४) जो विद्या नहीं पढाता वह अपराधी और ईश्वर की इच्छाके विरुद्ध आचरण करता है।

(५) मनुष्य मात्र में स्थित सब विद्वानों को अपनी अपनी योग्यता के अनुसार विद्या पढानी चाहिए।

(६) धनवानों को विद्या पढाने के लिए बहुत धन देना चाहिए। विद्यादान सब दानों में उत्तम है।

विद्याभ्यास करने का सब मनुष्यों को अधिकार है क्यों कि विद्या के प्रकाश और अविद्या के नाश से ही वास्तविक उन्नति होनी सम्भव है। वैदिक धर्मावलम्बी समस्त समाजों का यह नियम होना चाहिए। परन्तु क्या केवल विद्या के पढने से ही मनुष्य उन्नति को प्राप्त कर सकता है? नहीं, वेदों में स्पष्ट आज्ञा दी है कि विद्याभ्यास के साथ अन्य नियमों के पालन की भी आवश्यकता है। वेद के एक मन्त्र में बताया गया है कि वेद का यथार्थ लाभ और विद्याके बल से वही मनुष्य अभ्युदय (rise) निश्रेयससिद्धि (salvation) प्राप्त कर सकता है जो (१) द्विज हो और (२) सांसारिक ऐश्वर्य को त्याग भाव से भोगने वाला हो।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्त्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ अ. १९।७१।१।

(मया + स्तुता × वरदा + पावमानी वेदमाता) मेरे द्वारा स्तवन की गई इष्ट काम प्रदात्री पाप से सुधारने वाली वेदवाणी रूप माता (द्विजानाम्+आयुः+प्राणं+ पशुं द्रविणं+ब्रह्मवर्चसं) द्विजों को आयु, प्राण, सन्तान, पशु, कीर्ति, धन और ब्राह्मतेज को देवे। (मह्यं दत्वा) मुझको देकर अर्थात् इनको त्याग भाव से भोग कर (ब्रह्मलोकं+ व्रजत) ब्रह्मलोक अर्थात निश्रेयससिद्धि को प्राप्त हो जाओ।

इस वेद मन्त्र से निम्न लिखित भाव प्रकट होते हैं।

(१) वेद ईश्वरीय वाक्य हैं।

(२) इससे लाभ केवल द्विज ही उठा सकते हैं।

(३) द्विज होनेसे ही अभ्युदय होता है।

(४) अभ्युदय के पदार्थ आयु, प्राण, पशु, कीर्ति, धन और ब्राह्मतेज हैं।

(५) इन अभ्युदय के पदार्थों को त्याग भाव से भोगना चाहिए।

(६) त्याग भाव से भोगने वाला ही ब्रह्मलोक अर्थात निश्रेयससिद्धि को प्राप्त होता है।

इस स्थानपर वेदादेशानुसार द्विज शब्द पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

यह लोक में प्रसिद्ध है कि द्विज उसको कहते हैं कि जिसका दो वार जन्म हो। यदि द्विज शब्द का यौगिकार्थ भी किया जाय तो भी इसके विपरीत नहीं होगा। इन दो जन्मों के विषय में एक जन्म तो मातापितादि से सिद्ध है और दूसरा जन्म वह होता है जब आचार्य उसको सुशिक्षादि से सम्पन्न कर देता है। प्रथम जन्म माता के गर्भ से और द्वितीय जन्म आचार्य के गर्भ से होता है। आचार्य के गर्भ से द्वितीय जन्म का होना, एक वैदिक भाव है। माता के गर्भ में अपनी अवधि समाप्त करके आनेपर वह एक जन्मा कहा जा सकता है। आचार्यके पास पूर्ण विद्याध्ययन करके आने पर वह द्विज कहा जा सकता है।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥

अथर्व वेद का० ११।५।३॥

(आचार्यः) विद्याध्यापक (ब्रह्मचारिणम् + उपनयमानः) पढने के लिए लाए हुए को (अन्तः + गर्भ + कृणुते) अपने अन्दर गर्भ में करता है। (तं + रात्रीःतिस्र उदरे बिभर्ति) तीन रात पर्यन्त अपने उदर में रखता है। (जातं + द्रष्टुं) उत्पन्न हुए की परीक्षाके लिए (देवाः+अभिसंयान्ति) विद्वान् लोग सब प्रकार के इकठे होते हैं।

इस मन्त्र से निम्न लिखित भाव प्रकट होते हैं।

(१) विद्याध्यापक को आचार्य कहते हैं।

(२) पढने के लिए सब मनुष्य उसके पास जाते हैं।

(३) वह उनका उत्तर दायी है।

(४) विद्यार्थी आचार्य से प्रभावित होते हैं।

(५) आचार्य विद्यार्थियों को आत्म-विद्या, जगद्विद्या, और कर्म विद्या विषयक अज्ञान से दूर करता है

(६) सब विद्यार्थी समान योग्यता को प्राप्त नही होते। भिन्न भिन्न योग्यता प्राप्त करते हैं।

(७) यदि कोई आचार्य के गर्भ में न रहे अर्थात् आज्ञापालनादि न करे तो वह गर्भसे बीच में पतित हो जाता है, अर्थात् पाठशालासे दण्ड का भागी होता है।

(८) पूर्ण विद्वान् होकर जात, अर्थात् द्विज कहलाता है।

(९) जो पूर्णतया गुरु के गर्भ में नहीं रहा वह द्विज कैसे हो सकता है?

(१०) द्विज अर्थात् आचार्य से यथा-वत् पढे हुए विद्वान् की परीक्षा होती है।

(११) परीक्षा केवल आचार्य ही नहीं लेता।

(१२) परीक्षा बडे बडे विद्वान् लेते हैं।

इसका प्रासङ्गिक फल यह होगा कि परीक्षा पश्चात् विद्वान् लोग उनको उनकी योग्यता के अनुसार पद आदि से विभूषित

करेंगे। संसार में चार प्रकार की योग्यता होती है। यह वैदिक भाव है। विद्वान् लोग यथायोग्य ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र पद देंगे। अपनी अपनी योग्यता के अनुसारही वे अपना अपना वर्ण (Choice of profession.). कर लेंगे। वैदिक धर्मावलम्बी आर्यों को चाहिए कि अपने विश्वविद्यालय बना कर उनमें प्रदत्त पदवियों के नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र रखें। यदि इस प्रकार का कोई विश्वविद्यालय न हो तो व्यवस्था के अभाव में वैदिकादर्श का पूर्ण होना कठिन जान पडता है। तथा इन पदोंसे किसी को सम्बाधित करने में गडबड होनेकी आशङ्का है।

ब्राह्मणादि पदवी से सम्पन्न आर्य जन अपनी अपनी योग्यता के अनुसार व्यवसाय चुन सकते हैं। अनेक वर्णों का विवरण यजुर्वेद में दिया है, जिसका सम्पूर्ण ३० अध्याय इसी वर्णन से भरा पडा है। बुद्धि और युक्ति के अनुसार उन सब वर्णोंको भिन्न भिन्न पदवीके अन्तर्गत विभक्त कर सकते हैं। कुछ ऐसे कार्य भी हैं जिनको सभी योग्यता के पुरुष प्राप्त कर सकते हैं। इस अध्याय में २२ मन्त्र हैं। विद्वान् पुरुषों को चाहिए कि उक्त अध्याय पर विचार करें! (स्वाध्यायमंडल प्रणीत इस अध्याय की व्याख्या देखिए) इस अध्याय में वर्णित वर्णों के आधार पर हम अपनी बुद्धिके अनुसार ब्राह्मणादि योग्यता प्राप्त पुरुषों को निम्न लिखित विभागों से सम्बन्ध रखने वाले वर्ण (occupation) अपने अपने लिए निश्चित करने चाहिए।

(१) ब्राह्मण.

(क) शिक्षाविभाग (Educational Department).

(ख) न्याय विभाग (Legal Department).

(ग) नियम विभाग (Department of Legislature).

(घ) योग विभाग (Department of physico-spiritual culture).

(ङ) नागरिक शासन विभाग (Civil administration).

(२) क्षत्रिय.

(क) सेना तथा नगर पालन विभाग (Militari and Police Department).

(ख) राजनीति विभाग (Political diplomacy).

(ग) अरण्य विभाग (Forest department).

(३) वैश्य.

(क) व्यापार विभाग (Commercial department).

(ख) कृषि विभाग (Agricultural department).

(ग) श्रेष्ठि विभाग (Banking department).

(घ) गोरक्षा विभाग (Department for protecting domestic animals).

(ङ) स्वास्थ्य विभाग (Department of public health).

(च) कोष विभाग (Department of

account & treasury)

(४) शूद्र

(क) शिल्प विभाग (Architecture).

(ख) मजदूर विभाग (Labourer).

(ग) पाक विभाग(Food cooking).

(घ)कौशल्य विभाग (Arts men & Craftsmen, goldsmith etc)

उपरिलिखित विभाग केवल सङ्केत-मात्र विचार के लिए लिखा गया है । विद्वान् लोग इस पर विचार करें। इस प्रकार चारों प्रकार की भिन्न भिन्न योग्यता वाले भिन्न भिन्न पुरुष वा जन-समुदाय अपनी अपनी योग्यता के अनुसार अपने अपने वर्ण (choice of profession को) यदि अपनी योग्यता का ध्यान नहीं देंगे तो अवश्य समाज से दण्डनीय होंगे। उनके लिए जो न्याय के नियम हैं उन के अनुसार उनको दण्ड दिया जाना चाहिए। यदि कभी मनुष्य ने अपना एक वर्ण निश्चितकर लिया है उसको उचित है कि वह अपने वर्ण का ही कार्य करता रहे जिससे वह उस कार्य में पूर्ण कुशल हो जावे। वह चाहे तो अपना वर्ण परिवर्तन कर सकता है परन्तु उसको अपनी योग्यता का ध्यान अवश्य करना होगा। यह नहीं कि ब्राह्मण योग्यता वाला क्षत्रिय हो जाय अर्थात जिसने युद्ध विद्या सीखी नहीं, वह सेना में भर्ती हो जाय। सेना में भर्ती होने के लिये उसको योग्यता प्राप्त करनी होगी। यदि समाज में कभी विशेष आवश्यकता आ पडे तो सभी योग्यता के पुरुष क्षत्रिय योग्यता को न्यूनाधिक प्राप्त कर सेना में कार्य कर सकते हैं, किन्तु अनावश्यकता के समय ऐसा करना दण्डनीय होना चाहिए इस प्रकार के नियम का उल्लङ्घन करने वाला वर्णसङ्कर और अव्रती होगा, जिसके लिए वेद में दण्ड देने का विधान है। समाज की सामान्य दशा में अपने अपने वर्णों को एक बार चुन कर उनमें ही कुशलता प्राप्त करनी चाहिए.

वर्णाय अनुरुधम् ॥ यजुर्वेद अ० ३०।९

अपने वर्णों के अनुकूल काम करने से उन्नति होगी। आज कल भी यदि कोई फौज का सिपाही व्यापार करने लगता है तो वह दण्डनीय होता है। इसका यह कारण है कि अपना ध्यान दो ओर कर के समाज को हानि पहुंचाता है। यदि उसका ध्यान एक ही केन्द्रपर होगा तो वह उसमें अति कुशलता प्राप्त कर सकता है।

मनुष्यों को उचित है कि वैदिक धर्मानुसार अपना अपना आचरण कर उन्नति करें। वर्ण—विभाग के कारण कोई छोटा बडा नहीं है अतः सब मनुष्यों को चाहिए कि भेद भाव तथा वैर को छोड कर पारस्परिक द्वेष को दूर कर दें ब्राह्मण के विषय में यह कहना उचित है कि पूर्णविद्वान् को ही ब्राह्मण पदवी मिलेगी।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णस्थ आर्य विद्वान् और साधारण पढे, लिखे भी हो सकते हैं। शिक्षा की अनिवार्यता में यह तो समझना ही चाहिए. कि सभी थोडे बहुत पढे लिखे होंगे। दूसरों की रक्षा करने

वाला अपने गुण, कर्म की योग्यता के कारण सेनापति और साधारण चौकीदार भी होता है। वैश्य योग्यता वाला बडा श्रेष्टि विभाग में निपुण और साधारण व्यापार, कृषि और गोरक्षा करने वाला भी हो सकता है। कठिन तपस्या के कार्यों को करने वाला शूद्र योग्यता प्राप्त मनुष्य बडे बडे तोपादि शस्त्रों का बनाने वाला, विद्युत् के अनेक आविष्कार करने वाला गगना रोही प्रासाद निर्माण करने वाला बडा विद्वान् भी हो सकता है और न्यून विद्या के कारण साधारण लोहकार, चर्मकार और मिट्टी ढानेवाला भी हो सकता है।

ब्राह्मण पदवी तो उसे ही मिलेगी जो पूर्ण विद्वान् हो। ब्राह्मणों में कोई भी विद्याविहीन नहीं होना चाहिए क्यों कि उस समस्त विभागों में विद्या का काम पडता है। विशेष विद्यासे रहित कोई भी ब्राह्मण नहीं हो सकता। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र योग्यता धारण करने वालों में बडे बडे विद्वान् और साधारण पढे लिखे भी हो सकते हैं। वेद के इस अभिप्राय को यदि समझा जावे तो सारे संसार की उन्नति हो सकती है अनेक विद्वानों ने शूद्र उसको कहा है जो अनपढ है। यह बात समझ में नहीं आती। विद्वानों को इस पर विचार करना चाहिये। पढानेसे सभी कुछ न कुछ पढ जाते हैं।

शूद्र शब्द का अर्थ एक विद्वान् ने किया है "(शु) क्षिप्रं उन्दति" (शु) अर्थात् पसीने से जो 'क्षिप्रं' शीघ्र भीग जावे वह शूद्र है! इस अर्थ के ग्रहण करने में कुछ आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि 'शु' शब्द निघण्टु २। १५ में क्षिप्र नामों में लिखा है। श्रुति वाक्य "तपसे शूद्रम्॥ ॥ यजु० ३०।५॥" से भी यह अर्थ सङ्गत विदित होता है। "शुचा प्रवति" दुःख से गमन करता है—यह भी अर्थ विद्वानों ने किया है, परन्तु वेद में शूद्रका महत्त्व बडा भारी लिखा है, अतः शोक दुःख के साथ उसका सम्बन्ध बताना ठीक नहीं मालूम होता।

(शु + उत + द्रा) शीघ्रता के साथ उन्नति के लिए प्रयत्न करता है इस शूद्र शब्द के अर्थ परभी विद्वानों को विचार करना चाहिए। लौकिक संस्कृत के कोशोंमें अवरवर्ण, वृषल, जघन्यज आदि शब्द शूद्र के पर्याय वाची दिये हैं। इन अर्थों में कोई वैदिक भाव दिखाई नहीं देता।

चारों प्रकार के मनुष्यों को समानाधिकार है। ब्राह्मणादि चारों प्रकार के मनुष्य अपनी न्यूनाधिक विद्या के कारण परस्पर एक दूसरे का मान करेंगे और उनमें आत्मिक बलभी न्यूनाधिक होगा। यह वैदिक व्यवस्था विदित होती है। हे विद्वानो! इस प्रकार परस्पर वेदाशय को विचार कर संसार में मनुष्यों का कल्याण कर उनको उन्नति के पथ की ओर ले चलो। हे ईश्वर! हम सब एक दूसरे के सहायक बन जांय।

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य।

(लेखक ' राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति ' आत्मारामजी अमृतसरी)

संस्कारचन्द्रिका।

शताब्दी संस्करण बहुत उत्तम छपकर तय्यार है। मनुष्य मात्र के उपयोगी ग्रन्थ है। इस में हमारे जीवन में जो महत्व पूर्ण संस्कार होते हैं उनकी वैज्ञानिक खोज उनको कहां तक करने के लिए बाधित करती है यह सविस्तर बताया है। महर्षि दयानन्द प्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या है। प्रत्येक संस्कार की फिलासाफि युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा बडी विद्वत्ता से सिद्ध की है। मू. सजिल्द ४) डा. व्यय ॥।) अजिल्द ३॥)

सृष्टिविज्ञान पुरुषसूक्तका स्वाध्याय तथा वेदोत्पत्ति संबंधी मंत्रोंकी व्याख्या मू. २) **तुलनात्मक धर्म विचार** १) ब्रह्मयज्ञ ॥।) हिरिज्ञान ।≥) आत्मस्थान विज्ञान≈) नीति विवेचन १।) गीतासार ।≈) **गुजराती हिन्दी शब्द कोष** ६) सद्गुरुग्रस ॥≈) आरोग्यता॥।) श्रीहर्ष॥) मजहबेइस्लामपर एक नजर ≈) ऋषिपूजा की वैदिक विधि≈) विज्ञापकके ग्राहकों को ≈) रुपया छूट। वा. मूल्य २)

विज्ञापक, बडोदा। अपने ढंग के अनूठे मासिक में प्रति मास वैदिक समाजान्तर्गत आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् राज्यरत्न आत्मारामजी, कुंवर चांदकरणजी शारदा, रावसाहब बाबु रामविलास जी, पं. आनन्द प्रिय जी, प्रोफेसर आर्ते एम.ए. के लेखों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रोचक विषय भी। वा. मू. २) नमूना ।≈) प्रकाशक)

जयदेव ब्रदर्स बडोदा।

" आर्य्यों को सिद्धान्तरक्षाकी सूचना "

वैदिक वेदान्त का सारगर्भित अपूर्व ग्रन्थ ' माण्डूक्योपनिषद् स्वरूप " अर्थात् " माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, ओंकाररहस्य, ओंकार दर्शन ओंकारोपासना " जिसमें " सृष्टि-विज्ञान, शरीर विज्ञान और शब्द विज्ञान भी आगया है " जिसकी उत्तमता को श्री० म० नारायण स्वामीजी, श्री. पं. आर्य्यमुनिजी श्री. मास्टर आत्मारामजी राजरत्न (अमृतसरी) बडोदा आदि विद्वानों ने वर्णन किया है। मूल्य॥≥) तथा " कठोपनिषद का स्वरूप " अर्थात् " कठोपनिषद्भाष्य, यमगाथा, श्राद्ध मीमांसा तथा उसका वैदिक स्वरूप और रहस्य या मौतकी कहानी।", मूल्य) ≥ मिलने का पता--

संचालक आर्य विद्यासदन
(लक्ष्मीचबूतरा) काशी

संस्कृत पाठ माला।

स्वयं संस्कृत सीख कर रामायण महाभारतादि ग्रंथों का पाठ तथा अन्यान्य आर्ष ग्रंथोंका पाठ स्वयं करनेकी प्रबल इच्छा पाठकों के मन में उत्पन्न होगई है। इस लिये पाठकों की प्रेरणासे ही यह—

संस्कृत पाठ माला

मुद्रित करनेका कार्य हमने प्रारंभ किया है।

एक वर्षमें बारह पुस्तक प्रसिद्ध किये जायंगे और यदि पाठक प्रतिदिन घंटा अथवा आधघंटा इन पुस्तकों का क्रमपूर्वक अध्ययन करेंगे तो एक वर्षके अंदर उनको पर्याप्त संस्कृत आ जायगा।

बारह पुस्तकों का मूल्य म. आ. से ३) तीन रु. है
और वी. पी. से ४) चार रु. है।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य।=) पांच आने और डाकव्यय -) एक आना है।

विद्यार्थियोंके लिये

विशेष सहूलियत है। जो गरीब हैं वे इनका अध्ययन विनामूल्य भी कर सकते हैं।

अपने सब मित्रोंको इसकी सूचना दीजिये। जो ग्राहक प्रारंभसे होंगे उनको ही सहूलियतसे लाभ होसकता है। पीछेसे मूल्य भी बढेगा।

मंत्री—स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :– श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि.सातारा)

विषयसूची।

१ मातृभूमिका आदर ...... पृ. १३७

२ यज्ञका क्षेत्र.................. १३८

३ बडा गुरु.................... १५२

४ शास्त्रार्थ........................ „

५ आसनोंके साथ मल्ला.......... १५३

६ जीव और ईश्वर १५८

७ साहित्य मंदिर .... „

८ शुद्धि................................ १६०

संपादक-- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मातृभूमिका आदर।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि॥

अथर्व. १२।१।२७

जिसमें वृक्ष और वनस्पतियां (विश्व-हा)सर्वदा (ध्रुवाः) स्थिर (तिष्ठन्ति) रहती हैं, उस (विश्व-धायसं) सबका धारण करनेवाली और स्वयं (धृतां) धारण हुई (पृथिवीं) भूमिका (अच्छावदामसि) मुख्यतासे हम वर्णन करते हैं।

अपनी मातृभूमिके विषयमें आदर व्यक्त करना हरएक मातृभूमिके भक्तका आवश्यक कर्तव्य है।

यज्ञ का क्षेत्र ।

वैदिक धर्ममें "यज्ञसंस्था" प्रधानपद रखती है । वेदमें यज्ञके वर्णनपर जितने मंत्र हैं उतने किसी अन्य विषयके वर्णन के लिये नहीं आये हैं । इस कारण यज्ञ क्या है और उसका कार्यक्षेत्र कितना विस्तृत है इसका विचार होना अत्यावश्यक है । इस बातका विचार इस लेखमें करनेका संकल्प किया है । भगवद्गीतामें जहां यज्ञका प्रकरण चला है वहां यह यज्ञ प्रजाओंके साथ उत्पन्न होनेका वर्णन है—

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्व-मेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥
देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावय-न्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

भ. गीता अ. ३

"प्रारंभमें यज्ञके साथ साथ प्रजाको उत्पन्न करके ब्रह्माने उनसे कहा इस यज्ञके द्वारा तुह्मारी उन्नति हो, यह यज्ञ मनोवांछित फल देनेवाला तुम्हारे लिये होवे । तुम इस यज्ञसे देवताओं को संतुष्ट करते रहो और वे देवता तुम्हें संतुष्ट करते रहें । इस प्रकार परस्पर एकदूसरेको संतुष्ट करते हुए दोनों परम श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त कर लें ।

इसमें स्पष्ट बताया है कि (१) यज्ञ प्रजाके साथ उत्पन्न हुआ है, (२) यज्ञमें देवताओं और मनुष्योंका घनिष्ट संबंध होता है, (३) और परस्परकी सहायता परस्परको प्राप्त होकर उन्नति होती है ।

"अदेव" जो हैं वे "देवों" की सहायतासे अपनी उन्नति कर सकते हैं । इसीलिये "अदेवों" को आवश्यक होता है कि वे देवोंकी पूजा करें, देवोंके साथ संगति करें और देवोंके लिये आत्मसमर्पण करें । यज्ञ शब्दका भी यही अर्थ है । अस्तु । उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि यज्ञ उतना प्राचीन है कि जितनी मनुष्यजाति प्राचीन है । मनुष्यका जीवन ही यज्ञमें होता है और उन्नति भी उसीसे होती है । यज्ञ मनुष्यके साथ उत्पन्न हुआ है और वह उसके साथ

सदा रहता है, जो मनुष्य यज्ञको ठीक प्रकार करता है, उसकी उन्नति और जो ठीक प्रकार नहीं करता उसकी अवनति होती है।

यज्ञमें ब्रह्म।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।

भ. गीता. ३। १५

"सर्वव्यापक ब्रह्म यज्ञ में नित्य रहता है।" यह सर्वव्यापक ब्रह्मका प्रतिष्ठान जो यज्ञमें है, वह हर एक को देखना चाहिये। यज्ञकी सिद्धता उत्तम रीतिसे प्राप्त होनेके लिये इस ज्ञानकी विशेष ही आवश्यकता है। इस ज्ञानके विना यज्ञकी फल प्राप्ति पूर्णतासे नहीं हो सकती। यज्ञसे कर्मके बंधका नाश होता है इस विषयमें निम्न लिखित वचन देखिये—

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

भ. गीता ४

"आसक्ति रहित, रागद्वेषसे मुक्त, ज्ञानमें स्थित, और यज्ञके लिये ही जो कर्म करते हैं उनका सब कर्म विलीन होजाता है, अर्थात् कर्मकी बाधा उनको नहीं होती।" परंतु यह कर्मबन्ध तब छूट सकता है कि जब यजमान निष्कामभाव से युक्त हो, रागद्वेष उसमें न हो; ज्ञानमें ही चित्तको स्थिर करनेवाला हो, और केवल यज्ञके लिये ही कर्म करे। आज कल जो यज्ञ कर्म होते हैं वे स्वर्ग कामना, सुख की इच्छा आदिके कारण होते हैं और इस वचनके अन्य भाव भी याजकों में नहीं होते, इस लिये ये यज्ञ कर्म कर्मकर्ताको अवश्य बाधक होते हैं।

ब्रह्म भावनासे यज्ञ।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ॥

भ. गीता. अ. ४

"अर्पण अथवा हवन क्रिया ब्रह्म है, हवि ब्रह्म है, ब्रह्म रूप अग्निमें हवन किया जाता है और ब्रह्म ही हवन कर्ता है। इस प्रकार जिसकी बुद्धिमें सभी कर्म ब्रह्मरूप हो जाते हैं वह ब्रह्मको ही प्राप्त होता है।"

इसका तात्पर्य यह है कि सर्वत्र ब्रह्मका चमत्कार जो अनुभवता है वही यह भावना मनमें धारण करके यज्ञ कर सकता है। अन्योंसे यह ब्रह्मयज्ञ नहीं हो सकता। ब्रह्मयज्ञ ही सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ यज्ञ है और वह करनेके लिये उक्त प्रकार भावना यज्ञ कर्ताके मनमें स्थिर होनी आवश्यक है। यही भाव अन्य रीतिसे निम्न श्लोकमें बताया है।

सर्वात्मभाव से यज्ञ।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम्। मंत्रोऽहमहमेवाऽऽज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

" क्रतु मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा मैं हूं, औषधि मैं हूं, मंत्र, घी, अग्नि और हवन भी मैं ही हूं । "

भ. गीता. ९

पूर्व श्लोकमें "ब्रह्म" शब्द का प्रयोग है और इस श्लोकमें " अहं " अर्थात् " मैं " शब्दका प्रयोग है । ब्रह्मशब्द व्यापक आत्माका वाचक है और "अहं" शब्द देहमें कार्य करनेवाले आत्मा का वाचक है । भगवद्गीताको अभीष्ट है कि दोनों दृष्टियोंसे यज्ञका स्वरूप ऐसा आत्ममय होना चाहिये । ब्रह्मदृष्टि हरएक के समझमें और अनुभवमें नहीं आसकती, परंतु " अहं " दृष्टिसे देखना हरएक के समझमें आसकता है । योगीराज श्रीकृष्ण कहते हैं कि यज्ञके संपूर्ण पदार्थ "मैं हूं" इस भावनासे देखें कि इस दिव्य दृष्टिसे क्या फल निकलता है । इसका प्रयोग ऐसा है—

"यह सोमयाग मैं हूं, इस में प्रयुक्त होनेवाली हवन सामग्री, औषधियां, समिधाएं सब मैं हूं, सब ऋत्विज मैं हूं, यज्ञ कुंडका अग्नि मैं हूं, घी आदि पदार्थ भी मैं हूं । यज्ञीय पशु भी मैं हूं । "

पाठक यही भगवद्गीता की भावना मनमें क्षणमात्र धारण करें और उसीपर विचार करें कि इस भावना का परिणाम क्या होगा । यह " सर्वात्मभाव" की भावना है । यह भावना मनमें आतेही "कौन किसको क्यों मारे?" यज्ञिय पशुकी आत्मा और मेरी आत्मा समान या एक है, "मैं ही वह पशु हूं" यह भावना जिस समय मनमें स्थिर होगी उस समय "पशुका वध" करना "आत्मघात" करनेके समान ही होगा और इसी कारण इस भावनाके पश्चात् यज्ञमें पशुवध असंभव होता है । जिन जिन महा पुरुषोंने पशुहीन यज्ञ किये थे, जैसा कि महाभारत में वर्णन है, वे इस भावनासेही किये थे ।

"पशुका आत्मा अपने आत्मा के समान ही है " यह भाव उत्पन्न करके श्रीमद्भगवद्गीता यजमानको पशुवधसे निवृत्त कर रही है । यह युक्ति पाठक अवश्य देखें । पूर्वोक्त दोनों वचनोंका फलित यही है । भगवद्गीताका उद्देश्य यहां स्पष्ट हो रहा है । व्यापक ब्रह्मभाव अथवा व्यापक अहंभाव (आत्मभाव) अर्थात् "सर्वत्र आत्मवत् भाव रखना" यज्ञ प्रक्रियामें कितना क्रांतिकारक है इसका यहां पाठक विचार कर सकते हैं । सौ शास्त्रार्थ जो कार्य कर नहीं सकते वह कार्य श्री. भगवद्गीताके सर्वात्मभावके उपदेशसेही सिद्ध किया गया है । हरएक यज्ञकर्ता इसका मनन करें ।

दैवी संपत्तिका यज्ञ ।

भगवद्गीतामें दैवी संपत्तिका वर्णन है उसमें यज्ञ का परिगणन है देखिये—

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥२॥ अहिंसा सत्यमक्रो-

धस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ॥ दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं हीरचापलम् ॥३॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता । भवंतिसंपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥४॥

" दैवी संपत्तिमें ... दम, यज्ञ, अहिंसा, भूतदया, निर्लोभवृत्ति .... शुद्धता ये गुण हैं। (भ. गी. १६)"

कौनसा यज्ञ दैवीसंपत्तिमें आता है इसका इन गुणों के साहचर्य से पता लग सकता है (१) इंद्रियसंयम (२) अहिंसा (३) भूतदया, (४) निर्लोभवृत्ति, (५) शुद्धता ये गुण जिसके साथ रहते हैं वह यज्ञ दैवीसंपत्तिमें आता है, इसके विरुद्ध आसुरी संपत्तिका यज्ञ है जिसमें (१) विषयी इंद्रिय वृत्ति, (२) हिंसा, (३) भूतदयाका अभाव , (४) लोभ , (५) मलीनता ये गुण होते हैं। देखिये—

(१) दैवी संपत्तिका यज्ञ = इसमें यजमान इंद्रिय संयम करेगा, अहिंसा, भूतदया आदि भावोंके साथ वह दूसरोंके साथ व्यवहार करेगा, लोभको छोडेगा और पवित्रता रखेगा।

(२) आसुरी संपत्ति का यज्ञ— इसमें यजमान इंद्रिय दमन नहीं करता, भूतदया छोडकर अन्योंकी हिंसा करता है, स्वर्गादिका लोभ धारण करता है, तथा पशु मांस रक्तादिका संबंध होनेसे अपवित्र भी रहता है।

अब भगवद्गीता की दृष्टिसे इन दो यज्ञों का फल भी यहां देखिये—

दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायाऽऽसुरी मता ॥ भ. गीता. १६.५

" दैवी संपत्तिसे मोक्ष व आसुरी संपत्तिसे बंधन होता है। "

अर्थात् हिंसारहित धान्यहवन करनेसे दैवी संपत्तिका यज्ञ होकर वह मोक्षतक पहुंच सकता है। परंतु आग्रहसे पशुहिंसा करके यज्ञ करनेसे वह आसुरी संपत्तिका कर्म होनेके कारण वह यजमान को बंधन कारक होता है। पशुयज्ञ करनेवाले इसका अवश्य विचार करें। भगवद्गीता यज्ञ करनेकाही उपदेश कर रही है, यज्ञ संस्थाका खंडन नहीं करती, यह देखने के लिये निम्न श्लोक देखिये—

अवश्यकर्तव्य।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् । यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥ एतान्यपि तु कौंतेय संगं त्यक्त्वा फलानि च । कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

भ. गी. १८

"यज्ञ, दान, तप और कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये, इनको करना ही चाहिये। बुद्धिमानों को ये यज्ञ दान तप पावन करते हैं। इस लिये इन कर्मोंको विना आसक्ति, फलोंका त्याग करके करते रहना चाहिये।"

यह गीताका उपदेश योग्य ही है।

परंतु जो यज्ञ करना चाहिये वह हिंसा रहित दैविसंपत्तिवाला यज्ञ होना चाहिये, इस विषयकी स्पष्ट आज्ञा पहिले आचुकी है। अब स्वर्ग चाहने वाले लोग पशु-यागादि हिंसा प्रधान कर्म जो करते हैं उनकी निम्न प्रकार निंदा भगवान् करते हैं-

आवागमन का भय।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञै-रिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। ते पुण्य-मासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दि-व्यान् दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ॥ एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥

भ. गीता ९

" तीन विद्याओंके जानने वाले, सोम पान करने वाले, यज्ञ करके स्वर्गकी इच्छा करते हैं। वे स्वर्गके भोगको भोगते हैं। पुण्य क्षीण होनेके पश्चात् फिर जन्म लेकर मृत्युलोकमें आते हैं। इसप्रकार इनको वारंवार आवागमन भोगना पडता है।"

इन श्लोकोंका यह तात्पर्य है, स्वर्ग भोगनेकी इच्छासे जो पशुयागादि कर्म किये जाते हैं, उनका परिणाम आवागमन में अर्थात् यातनामें ही होता है। इससे यह सिद्ध है कि यजमान पूर्वोक्त दैवी संपत्तिवाला अहिंसा मय यज्ञ करके मोक्षका भागी बने और हिंसाप्रधान यज्ञ करके आवागमनमें न फसें। इतने वर्णनसे यह स्पष्टही सिद्ध होता है कि यज्ञ अनेक हैं दैवीसंपत्तिवाले यज्ञ मोक्ष देनेवाले और आसुरी संपत्तिके यज्ञ बंधन करने वाले होते हैं यह ऊपर बताया; अब अन्यान्य यज्ञोंका भी विचार करना चाहिये। इसका विचार करनेके लिये निम्न लिखित श्लोक देखिये—

अनेक यज्ञ।

दैवमेवाऽपरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥ श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति। शब्दादीन्विषयानन्य इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥ सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥ अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥ अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति। सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥ यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥ नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥ एवं

बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥ ३२ ॥ श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥ ३३ ॥

भ. गीता. अ. ४

इन श्लोकोंमें जिन यज्ञोंका वर्णन आया है वे ये यज्ञ हैं —

(१) योगियोंका दैवयज्ञ = इस यज्ञमें अग्नि सूर्य आदि देवताओं के साथ अपने वाक् चक्षु आदिका संबंध अनुभव करके दैवी शक्तिके द्वारा अपनी शक्तियोंकी उन्नति करनेका योगानुष्ठान करना होता है।

(२) ब्रह्मयज्ञ = ब्रह्माग्निमें यज्ञ का यज्ञ करना होता है। ज्ञानाग्निमें कर्मका हवन, अर्थात ज्ञानाग्निसे सब कर्मोंका भस्म करना। इसीका नाम ज्ञानयज्ञभी है।

(३) संयमयज्ञ = संयम रूप अग्नि में श्रोत्रादि इंद्रियों का हवन। इंद्रियों का संयम करना और भोग बढानेकी इच्छा कम करनी।

(४) इंद्रिय यज्ञ = शब्दादि विषयों का अर्पण योग्य मर्यादा तक इंद्रियोंमें करना अर्थात् जितना भोगनेसे हानि नहीं होगी उस मर्यादा तक विषय भोग भोगकर आत्म उन्नतिका साधन करना।

(५) आत्म संयम योग यज्ञ = आत्म संयम के योगाग्निमें इंद्रियों और प्राणोंके कर्मोंका हवन। अर्थात् संपूर्ण कर्मोंका संयम करना।

(६) द्रव्य यज्ञ = द्रव्यका परोपकार के शुभ कार्योंमें सद्व्यय करना।

(७) तपोयज्ञ = शीत उष्णादि द्वंद्व सहन करनेका अभ्यास बढाना।

(८) योगयज्ञ = योगसाधनके सब प्रकार इसमें आते हैं। योगसाधन द्वारा आत्मोन्नति।

(९) स्वाध्याय यज्ञ = अपना अभ्यास करना, सत्य विद्याके ग्रंथोंका अध्ययन तथा अध्यापन करना।

(१०) ज्ञान यज्ञ = ज्ञान प्राप्त करना, और उसका उपदेश करना।

(११) अपान यज्ञ = अपानमें प्राणका यज्ञ।

(१२) प्राण यज्ञ = प्राणमें अपान का अर्पण।

(१३) कुंभक यज्ञ = प्राण और अपान की गति स्तब्ध करके केवल कुंभक का अभ्यास बढाना।

(१४) प्राणाग्नि होत्र = आहार का नियम करके प्राणोंका प्राणमें अर्पण। ये सब प्राण यज्ञ योग शास्त्रसे संबंध रखते हैं।

" इन यज्ञों से पाप दूर होते और ब्रह्म प्राप्ति होती है। यज्ञके बिना इस लोकमें उन्नति नहीं हो सकती फिर परलोकमें सद्गति कैसी हो सकती है। इस प्रकार अनेक यज्ञ हैं, परंतु द्रव्य यज्ञसे ज्ञानयज्ञ ही श्रेष्ठ है। "

इस प्रकार अनेक यज्ञोंका वर्णन भग-

वद्गीतामें कहा है, परंतु किसी स्थानपर पशुवध करके उसके मांसका हवन करने का उल्लेख तक नहीं है । हिंसामय यज्ञों से अधोगति होनेकी सूचना दी है, परंतु उन यज्ञोंका नामनिर्देश भी नहीं किया है । इसका तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता हिंसामय यज्ञोंको सर्वथा तिरस्करणीय समझती है और इसीलिये उसके वाचक शब्दोंका उच्चारतक नहीं करती । जहां सबसे श्रेष्ठ यज्ञके वर्णन का प्रसंग आगया है वहां भगवान् कृष्ण ने कहा है--

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ॥

भ. गीता १० । २५

"यज्ञों में मैं जपयज्ञ हूं।" ओंकारादि मंत्रोंका जप करना यह जपयज्ञ है और यही यज्ञ संपूर्ण यज्ञोंमें श्रेष्ठ है । विभूतियोगमें यह वाक्य है, यदि परमेश्वर की विभूति किसी यज्ञमें प्रकट हो सकती है तो विशेष कर जपयज्ञमें ही हो सकती है। पशुका घात पात करके जो यज्ञ होता है उसमें दयाका अभाव होनेके कारण उसमें परमेश्वर की विभूति प्रकट नहीं हो सकती । यह वाक्य इस दृष्टीसे अत्यंत महत्त्व रखता है ।

इस रीतिसे श्रीमद्भगवद्गीताके यज्ञ विचारोंका निरीक्षण किया, जिससे स्पष्ट होगया है कि जिसमें भूत दया, अहिंसा, पवित्रता, संयम आदि हैं, वह दैवीसंपत्तिवाला यज्ञ ही करना मनुष्यके लिये हित कारक तथा उन्नति कारक है। जिसमें भूतदया नहीं और हिंसा प्रधान है वैसा आसुरी संपत्तिका यज्ञ करना मनुष्य की अधोगति करनेका हेतु है, इस लिये ये आसुरी यज्ञ करना किसी को भी योग्य नहीं है ।

उपनिषद् में यज्ञका वर्णन ।

यहांतक हमने भगवद्गीताका आशय देखा, अब भगवद्गीता जिस आधारपर बनी है उन उपनिषदोंमें यज्ञकी कल्पना किस ढंगसे वर्णन की है यह यहां देखना चाहिये । सब से पहिले मुंडक उपनिषद् का वचन हमारे सन्मुख आता है जिसमें इस यज्ञ कर्मकी कंठरवसे निंदा ही की है । देखिये—

हीन कर्म ।

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनंदन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥ ७ ॥ अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितंमन्यमानाः । जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ८ ॥ अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत्कर्मिणो न प्रवेदयान्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ ९ ॥

मुंडक उप. १।२

" जिसमें अठारह ऋत्विजोंका (अवरं कर्म) हीन कर्म है वह यज्ञ रूप नौका दृढ नहीं है अर्थात् उससे मनुष्य पार नहीं हो सकता । इसी को जो मूढ लोग श्रेय अर्थात् कल्याण कारक समझते हैं, वे वारंवार मृत्युके ही आधीन होते हैं । स्वयं अविद्यामें रहते हुए भी जो अपने आपको बडे पंडित और ज्ञानी समझते हैं वे मूढ अंधेके पीछेसे चलने वालों के समान गिरते ही जाते हैं । अविद्यामें रहते हुए भी बाल अर्थात् मूढ लोग अपने आपको कृतार्थ समझते हैं, परंतु वे अंतमें दुःखी होकर हीन अवस्थामें गिरते हैं । "

पशुबंधादि यज्ञयाग करने वालोंका यह उपनिषद् में किया हुआ वर्णन हरएक यज्ञकर्ताको देखना चाहिये। इस वर्णन में-

मूढाः = मूर्ख,

अविद्यायां वर्तमानाः = अविद्यामें रहने वाले,

पंडितमन्यमानाः = पंडिताईकी घमंड करनेवाले,

अंधेन नीयमानाः अंधाः = अंधेके पीछे जाने वाले अंधे,

बालाः = बालक, मूर्ख,

ये शब्द कितने सख्त हैं, इसका पाठक ही विचार करें । इस प्रकार कठोर शब्द आजकल कोई प्रयुक्त भी नहीं करता, ऐसे कठोर शब्दों द्वारा उपनिषद्कार इनकी निंदा करते हैं । इनके पशुबंधादि यज्ञ कर्मोंकी भी कम निंदा नहीं की है, देखिये-

यज्ञरूपाः अदृढाः प्लवाः = यज्ञ रूप नौका सुदृढ नहीं है। टूटा हुआ बेडा,

अवरं कर्म = हीन कर्म,

अविद्या = अज्ञानमय कर्म,

ये भी शब्द बडे कठोर हैं। उपनिषद्कार इतने कठोर शब्दोंसे इस पशुबंधादि यागोंका खंडन करते हैं । इसको देखने से स्पष्ट पता लगता है कि उपनिषत्कार इनके बडे भारी विरोधी हैं । इस प्रकार पशुबंध यज्ञका खंडन करते हुए उपनिषत्कार बताते हैं कि यज्ञकर्ता ऋत्विजलोग कैसे होने चाहिये-

देवताका ज्ञान ।

प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥ उद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ १० ॥ प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ११ ॥

छांदोग्य उ० १। १०

" हे प्रस्तोता, हे उद्गाता तथा हे प्रतिहर्ता! जिन देवताओंका स्तवन तुम करते हो, उन देवताओंके स्वरूपको न जानते हुए यदि तुम अपना कर्म करोगे, तो तुम्हारा मस्तक टूट जायगा । "

इसका तात्पर्य यह है कि यज्ञमें जो ऋत्विज होते हैं उनको उचित है कि वे यज्ञीय देवताओंका ठीक प्रकार स्वरूप विज्ञान प्राप्त करें और पश्चात् यज्ञका अनुष्ठान करें। उस देवतास्वरूप विज्ञान के विना किया हुआ अनुष्ठान यज्ञकर्ताओंकी हानि करता है। यह यज्ञशास्त्रका तत्त्व है। यह तत्व आजकल कितने लोग जानते हैं? और यदि नहीं जानते तो उन के यज्ञ से निःसंदेह लाभ होगा इस विषयमें प्रमाण क्या है?

जगत्की शक्तिसे आत्मशक्तिका उद्धार।

योग साधनमें एक आत्मोन्नतिका यह विधि है कि जिसमें अपने शरीरके अंतर्गत शक्तियोंका संबंध बाह्य देवताओंके साथ देखना, जानना, और अनुभव करना होता है और बाह्य देवता शक्ति से अपनी इंद्रिय शक्तिकी वृद्धि करनी होती है। यही विषय पूर्वोक्त छांदोग्य उपनिषद के वचन में कहा है, यज्ञविधि में भी इसी ज्ञानकी अत्यंत आवश्यकता है। इस ज्ञानके विना किया हुआ यज्ञ सफल और सुफल नहीं हो सकता। इस प्रकारके देवता ज्ञानसे ज्ञानी बने हुए ऋत्विज जहां होते हैं वह यज्ञ पवित्रता करनेवाला होता है इसविषयमें उपनिषद कहता है—

आसां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति। भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति॥

छांदोग्य उप. ४।१७।८

"इन देवताओंके और त्रयीविद्याके वीर्य से यज्ञका दोष दूर होता है। जिस यज्ञमें ऐसा ज्ञानी ब्रह्मा होता है वह यज्ञ औषधरूप होता है।" अर्थात् जिस प्रकार औषधियां शरीरके दोषोंको दूर करती हैं, उसी प्रकार ऐसे ज्ञानी ऋत्विजों से किये हुए यज्ञ संपूर्ण दोषोंको दूर करते हैं। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि यदि ऋत्विज इसप्रकार ज्ञानी नहीं होंगे तो वे यज्ञ विविध दोषोंसे दूषित होनेमें कोई शंकाही नहीं हो सकती। अतः इस विषयमें यज्ञ कर्ता को सावधान होना चाहिये।

स्वशरीरमें यज्ञका अनुभव।

उपनिषत्कारोंके मतसे यह बाह्य यज्ञ केवल इसी लिये है कि आंतरिक यज्ञ की बात उपासकोंके मनमें स्थिर होजाय। उपनिषत्कार सब पाठकोंका मन आंतरिक आत्मयज्ञ की ओर आकर्षित करना चाहते हैं देखिये—

स्वे शरीरे यज्ञं परिवर्तयामीति। तत्र सूर्योऽग्निः .... एक ऋषिर्भूत्वा मूर्धनि तिष्ठति॥ ... दर्शनाग्निर्नाम चतुराकृतिराहवनीयो भूत्वा मुखे तिष्ठति। शारीरोऽग्निर्नाम जराप्रणुदा हविरवस्कंदति। ... दक्षिणाग्निर्भूत्वा हृदये तिष्ठति तत्र कोष्ठाग्निरिति।
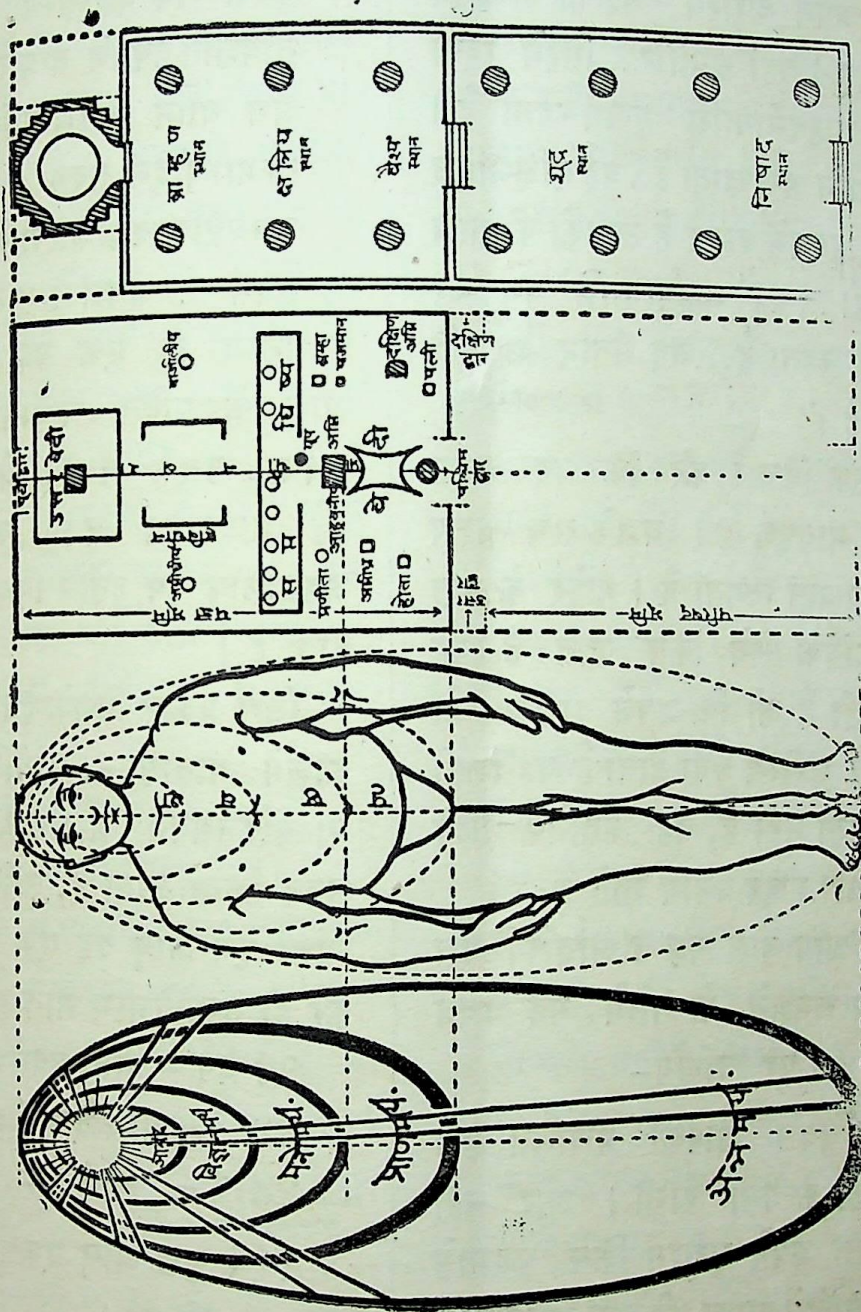
यज्ञ पुरुष, मुख्य आंतारक यज्ञ और उस सत्य यज्ञका बाह्य स्वरूप।

गार्हपत्यो भूत्वा नाभ्यां तिष्ठति ।
......प्रजननकर्मा।

प्राणाग्निहोत्र २

" अपने शरीरमें यज्ञका परिवर्तन करता हूं । वहां सूर्याग्नि....सिरमें रहता है..../आहवनीयाग्नि मुखमें रहता है । शरीराग्नि अन्न खाता है.. वह दक्षिणाग्नि हो कर हृदयमें रहता है उसीको कोष्ठाग्नि कहते हैं।.... यह गार्हपत्याग्नि बन कर नाभिमें रहता है...यह संतान उत्पत्ति करता है ।"

पाठक विचार करें कि यह कथन कितना भावपूर्ण है । यज्ञके सच्चे स्वरूप का पता यहां लगता है । बाहर के यज्ञ जिस कार्यके लिये किये जाते हैं वह कार्य यही है जो कि अपने शरीरमें हो रहा है । शरीरमें क्या होता है वह किसी कोभी पता नहीं है, वह बतानेके लिये ही ये यज्ञ बाहर बनाये जाते हैं

अब आप बाह्य यज्ञ व आंतरिक यज्ञ का तत्त्व समझने के लिये यह चित्र (पृ. १४७ पर)देखिये–

इस चित्रसे आपको प्रचलित यज्ञ शाला की कल्पना होगी । और यही यज्ञ शाला अपने शरीरमें किस पद्धतिसे देखनी चाहिये इसका भी ज्ञान इसी चित्रसे आपको होगा। शरीरके पंचकोश और यज्ञ का क्या और कैसा संबंध है, यज्ञशाला के अग्नि अपने शरीर के अग्नियोंसे किस प्रकार संबंधित हैं, यह सब आपको इस चित्रसे पता लग जायगा । अब इसका विशेष विचार करनेके लिये पहिले उपनिषद् के वाक्य यहां दिये जाते हैं—

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनम् ॥
अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनं सवनं........॥ अथ
यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तृतीयसवनं .... ॥ छांदोग्य उ. ३।१६।१

" मनुष्य ही एक यज्ञ है । उसकी आयु के पहिले चोबीस वर्ष प्रातः सवन, उसके पश्चात् के चवालीस वर्ष माध्यंदिन सवन और अंतिम अठतालीस वर्ष तृतीय किंवा सायंसवन होता है । "

जिस प्रकार दिनके १२ घंटों में प्रातः कालमें प्रातःसवन, मध्यंदिन के समय माध्यंदिनसवन और सायंकालमें सायंसवन किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यकी पूर्ण आयु यह एक पूर्णदिन मान कर ही उक्तविभाग माने गये हैं—

२४ वर्ष = प्रातः सवन = प्रातः काल
४४ " = मध्यंदिन " = मध्यादिन"
४८ " = सायं = " सायं "
११६ कुल आयु एकसौ सोलह वर्ष की हुई ।

मनुष्यकी पूर्ण आयु ११६वर्षकी मान कर यह विभाग किया गया है । मनुष्य की पूर्ण आयु एक महायज्ञ है, यह कल्पना इस वर्णन में व्यक्त हो गयी

है; पाठक इसका योग्य विचार करें।
तथा—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्य-
मेव तत् ॥ छांदोग्य उ० ८।५।१

" जो यज्ञ कहा जाता है वह ब्रह्म-
चर्य ही है।" अर्थात् (ब्रह्म) ज्ञान प्रा-
प्तिके लिये (चर्य) व्यवहार करनेका
नाम ब्रह्मचर्य है और यही सच्चा यज्ञ है।
यही आयुभर चलाया जा सकता है।
बालपनसे अंतिम समयतक मनुष्य अ-
पनी सब आयु ज्ञानार्जनमें लगा सकता
है, और ब्रह्मचर्यका पालन करने द्वारा
अपना उद्धार कर सकता है। यही आयु
भरके यज्ञका संक्षेपसे तात्पर्य है। अब
अपने शरीरमें यह यज्ञ कैसा देखना चा-
हिये इस विषयमें उपनिषद् के वचन
देखिये--

वाग्वै यज्ञस्य होता ।
चक्षुर्वै यज्ञस्याध्वर्युः ।
प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता।
मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा ।
बृहदारण्यक उ० ३।१।३-६

"वाणी, चक्षु, प्राण और मन ये क्रमशः
यज्ञके होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा
ब्रह्मा हैं।"

यह सूचना दी है कि यज्ञ को अपने
शरीरमें सच्चे रूपमें किस रीतिसे देखना
और अनुभव करना। तथा इसी विषयमें
देखिये–

शरीरमिति कस्मात् । अग्नयो ह्यत्र
श्रियन्ते ज्ञानाग्निर्दर्शनाग्निः को-
ष्ठाग्निरिति ।......मुखे आहवनीय
उदरे गार्हपत्यो हृदि दाक्षिणाग्निः।
आत्मा यजमानो, मनो ब्रह्मा, लो-
भादयः पशवो, धृतिर्दीक्षा संतोष-
श्च, बुद्धीन्द्रियाणि यत्र पात्राणि, ह-
वींषि कर्मेंद्रियाणि, शिरः कपालं,
केशा दर्भाः, मुखमंतर्वेदि ....॥५॥

गर्भोपनिषद् ।

यही बात विस्तारसे प्राणाग्निहोत्र
उपनिषद में कही है --

अस्य शारीरयज्ञस्य....आत्मा यज-
मानः । बुद्धिः पत्नी ।....अहंका-
रोऽध्वर्युः । चित्तं होता । प्राणो
ब्राह्मणाच्छंसीः । अपानः प्रतिप्र-
स्थाता । व्यानः प्रस्तोता । उदा-
न उद्गाता । समानो मैत्रावरुणः।श-
रीरं वेदिः । नासिकोत्तरवेदिः।...
ओंकारो यूपः । आशा रशना । मनो
रथः । कामः पशुः ।केशा दर्भाः।
बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि। कर्मे-
न्द्रियाणि हवींषि । अहिंसा इष्टयः।
त्यागो दक्षिणा। अवभृथं मरणात् ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता शरीरेऽधि स-
माहिताः ।

प्राणाग्निहोत्र. ४

यही वर्णन कुछ भेदसे महानारायणो-
पनिषद् में आया है—

यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी
शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हि-

वेदः शिखा हृदयं यूपः काम आ-
ज्यं मन्युःपशुस्तपोऽग्निर्दमःशमयि
ता दक्षिणा वाग्घोता प्राण उद्गा-
ता चक्षुरध्वर्युर्मनो ब्रह्मा श्रोत्रम-
ग्नीद्यावद्ध्रियते सा दीक्षा,यदश्ना
ति तद्धविर्यत्पिबति तदस्य सोम
पानं ० ॥ ८० ॥

म. नारायणोपनिषद

इन सब प्रमाणोंका तात्पर्य यह है कि—

१यज्ञ = मनुष्य,
२ यज्ञ मंडप = मनुष्य शरीर,
३ यज्ञका समय = आयुसमाप्तितक
४ अग्नि
 आहवनीयाग्नि = मुख
 गार्हपत्याग्नि = कोष्ट, पेट
 दक्षिणाग्नि = हृदय
५ यजमान = आत्मा
६ यजमानपत्नी = बुद्धि, श्रद्धा
७ ब्रह्मा = मन
८ अध्वर्यु = अहंकार, चक्षु
९ होता = चित्त , वाक्
१० ब्राह्मणाच्छंसी = प्राण
११ प्रतिप्रस्थाता = अपान
१२ प्रस्तोता = व्यान
१३ उद्गाता = उदान,
१४ शमिता = दम, संयम
१५ मैत्रावरुण = समान
१६ पशु = लोभादि, काम, क्रोध.
१७ यज्ञपात्र = ज्ञानेंद्रियां
१८हविर्द्रव्य = कर्मेंद्रियां, अन्न भक्ष्य
१९ इष्टि = अहिंसा
२० सोमरस = जलपान
२१ दर्भ = बाल, केश
२२ वेदि = हृदय
२३ देवता = शरीरमें प्रत्यक्ष देवताएं रहती हैं।

शेष पाठक जान सकते हैं। यह यज्ञ प्रत्यक्ष है। इसीमें देवताओंका प्रत्यक्ष दर्शन और अनुभव है। जैसा कि पूर्व उपनिषद वाक्यमें कहा है कि इस शरीरमें सब देवताएं रहती हैं, ठीक यही बात वेदमें भी कही है देखिये—

(१) सर्वा ह्यस्मिन्देवता शरीरेऽधि समाहिताः ॥

प्राणाग्नि होत्र उ. ४

(२) तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते। सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥

अथर्व. ११।८।३२

(१) सब देवताएं इस शरीरमें रहीं हैं। (२) इसलिये इस पुरुषको जानने वाला ज्ञानी यह ब्रह्म है ऐसा कहता है, क्यों कि इसमें सब देवताएं उस प्रकार इकट्ठीं रहती हैं जैसी कि गौवें गोशाला में रहती हैं।
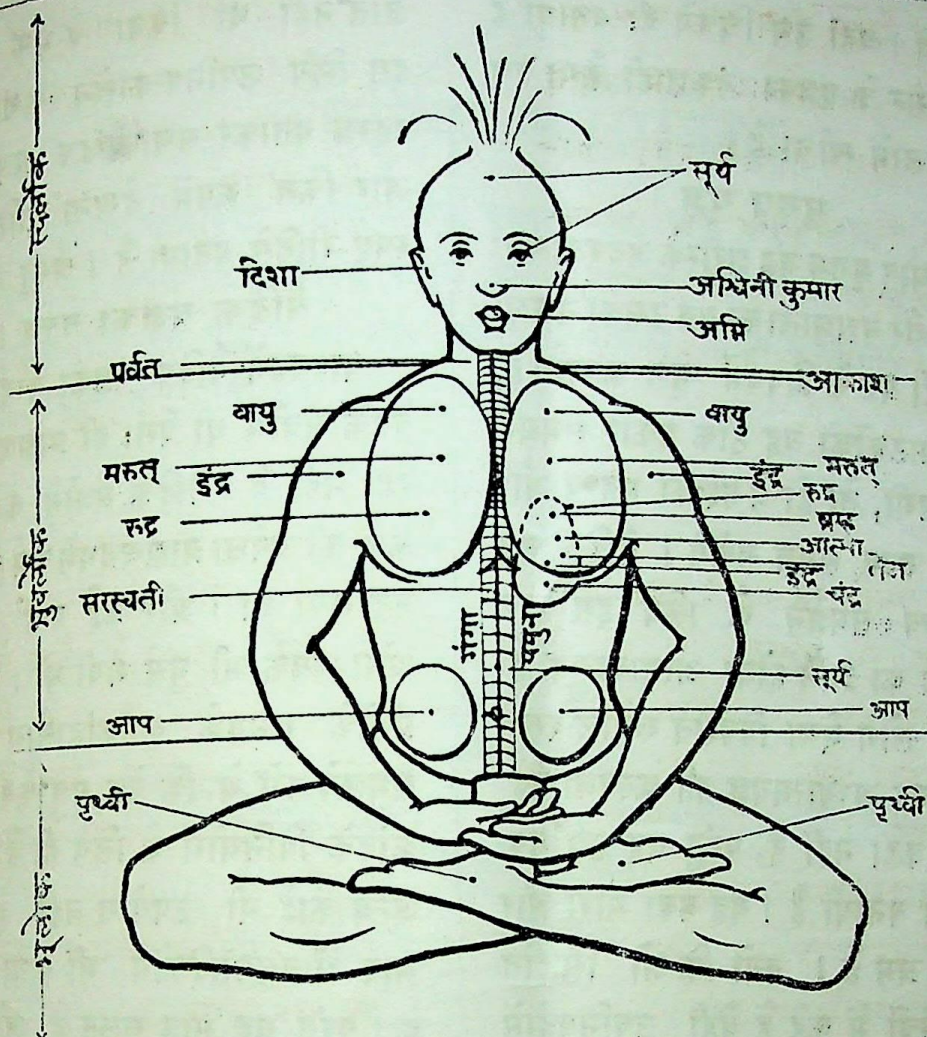
वेदका कथन और उपनिषद् का कथन कैसा एक ही है यह यहां प्रत्यक्ष देखिये । इस शरीररूपी यज्ञमंडपमें इंद्रादि संपूर्ण देव रहते हैं, यहां अपना अपना हविर्भाग ले रहे हैं, और यहां शतसांवत्सरिक महायज्ञ अथवा सत्र शुरू है । जो यज्ञ ब्राह्मणादि ग्रंथों में वर्णित है वह यहां शरीरमें प्रत्यक्ष हो रहा है । अर्थात् शरीरमें जो चल रहा है वह यज्ञ प्रत्यक्ष है परंतु अज्ञानी उसका अनुभव कर नहीं सकता, इसलिये उस अज्ञानी को बतानेके लिये यह बाह्य यज्ञ एक उदाहरणरूप है ।

जिस प्रकार सूर्य चंद्रादि ग्रहोंका छोटासा नकशा अथवा नमूना पाठशालाओं में लडकों को दिखाते हैं, और समझाते हैं कि ग्रहमालामें ग्रहोंकी गति कैसी हो रही है, ठीक उसी प्रकार इस शरीर में अध्यात्म शक्तियों द्वारा जो शतसांवत्सरिक महायज्ञ चल रहा है, परंतु जिस को अनाडी जन समझ नहीं सकते, उस को स्पष्ट करनेके लिये यह बाहरका यज्ञ रचा है । इसका ठीक ठीक स्पष्टीकरण पूर्व स्थलमें दिये हुए चित्रमें ही है।

जायगा । वहां उस चित्रमें ही बताया है कि शरीर के यज्ञका नकशाही कैसा इस यज्ञशालामें खींचा है ।

मुख्य यज्ञ ।

अर्थात् मुख्य यज्ञ शरीरके अंदर चल रहा है और यज्ञशाला का यज्ञ उसका नकशा है। यही यज्ञ के विषयमें मूल कल्पना है, यदि पाठकोंको यह ठीक प्रकार समझमें आजायगी, तो ही वे यज्ञका महत्त्व और यज्ञका तत्त्व समझ सकेंगे । वैदिक यज्ञ का तत्त्व समझने के लिये इस मूल कल्पना का ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

कई लोग ऐसा विपरीत ख्याल रखते हैं कि यह अध्यात्मयज्ञ की कल्पना वेदमंत्रोंमें कही नहीं है, परंतु यह उपनिषत्कारोंने बनायी है । यह बडा भारी और निर्मूल भ्रम है । क्यों कि जो सिद्धांत वेदके मंत्रों में कहे हैं वेही उपनिषदोंमें कहे हैं । शरीर रूप यज्ञ में संपूर्ण देवताओंका प्रत्यक्ष दर्शन होनेका वर्णन जैसा पहिले बताया है वैसा ही सब अन्य विधान है । वेदमंत्रके सिद्धान्तों का ही आविष्कार स्पष्ट रूपसे उपनिषदोंने किया है, उसमें अपनी बात नहीं मिलायी है ।

उपनिषदोंमें ब्राह्मणग्रंथोक्त कर्मकांड का विरोध इसलिये किया है कि कर्मकांडियोंको कर्मका वैदिक रहस्य ही ज्ञात नहीं था किंवा वे भूल चुके थे, इस लिये उपनिषत्कारोंने सच्चा वैदिक रहस्य बताकर सच्चा वैदिक यज्ञ कहां और किस रूपमें देखना चाहिये, यह स्पष्ट रीतिसे बताया है । अस्तु ।

वैदिक यज्ञका तत्त्व ।

वास्तवमें वैदिक यज्ञका तत्त्व जैसा वेदके मंत्रोंमें था वैसा ही ब्राह्मण ग्रंथोंमें रहा नहीं है । वैदिक मंत्रोंमें कहे यज्ञ कर्म की अपेक्षा ब्राह्मणग्रंथमें कर्म बहुत ही बढ गया था । और कई बातें उस में अनावश्यक भी घुस गयीं थी । ब्राह्मणग्रंथोंके समयके कर्मकांडीलोग ऐसा समझने लगे थे, कि वेद मंत्र केवल कर्मकांडके विनियोग के लिये ही हैं, उनका अन्य कोई भी उपयोग नहीं है । यह भाव श्रौतसूत्रादिकोंमें भी पाया जाता है । परंतु यह भाव गलत् है, और यही गलती उपनिषत्कारोंने स्पष्ट रूपसे बतायी है। और वास्तविक वैदिक अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप भी उन्होंने ही प्रकाशित किया है ।

यहांतक गीता और उपनिषदोंमें जो यज्ञ का स्वरूप बताया है वह संक्षेपसे इस लेखमें बताया है । अब इसके पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथोंमें जो यज्ञ का रूप वर्णन किया है वह अगले लेख में बतायेंगे ।

सूचना ।

वैदिक अग्निविद्या ।

"वैदिक अग्निविद्या" नामक एक पुस्तक स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। उसमें वेदके मंत्रोंमें बताये वैदिक यज्ञका स्वरूप बताया है। इस प्रसंगमें पाठक यदि उस पुस्तक का पाठ करेंगे तो यज्ञका विषय समझनेके लिये सुगमता हो सकती है। मूल्य केवल १॥) रु. है।

बडा गुरु ।

यदि इंद्र शक्ति आपके अंदर जागृत होगी, तो कठिनता ओंमें आपका उत्साह बढेगा, क्यों कि कठिनता ही योग्य मार्ग बताती है।

शास्त्रार्थ की सहायता।

शास्त्रार्थ की सहायता वै. धर्म के ग्राहक तथा धर्मके प्रेमी सज्जनोंसे आ रही है। आज तारीख तक निम्न लिखित सहायता प्राप्त हो चुकी है। जो स्वयं दान भेज रहे हैं उनका धन्यवाद है। पाठक इसका अवश्य ख्याल रखें की जो सहायता भेजनी है वह यथासमय शीघ्र ही यहां पहुंचनी चाहिये। देरी लगनेसे कार्य की क्षती होगी। यद्यपि शास्त्रार्थ की तिथि इस समय तक निश्चित नहीं हुई है, तथापि तिथि निश्चित होनेके पश्चात् तैयारी के लिये समय ही नहीं रहेगा। यज्ञ विषयक ग्रंथ लिखना पहिला कार्य है। शास्त्रार्थ प्रारंभ होनेके पूर्व यह ग्रंथ मुद्रित होकर तैयार होना चाहिये। शास्त्रार्थ के दिन यदि हम यह ग्रंथ जनताके सन्मुख रख सकेंगे तो वैदिक धर्मका विजय निःसंदेह है। हमारे पक्षको पूर्णतासे जनताके सन्मुख रखना हमारा पहिला कार्य है। "निर्मांस यज्ञ" के पक्षका प्रचार करनेके लिये इस ग्रंथके निर्माण की आवश्यकता अत्यंत है।

जो इस शास्त्रार्थ की सहायता उचित प्रमाणमें करेंगे उन सब महानुभावोंकी सेवामें एक एक प्रति इस पुस्तक की अवश्य भेजी जाय गी। तथा शास्त्रार्थका संपूर्ण वृत्त उनके पास मुद्रित करके भेजा जायगा।

कई महाशयोंके तथा पंडितोंके पत्र हमारे पास आगये हैं, जिन्होंने लिखा है कि शास्त्रार्थ के समय हम अवश्य पधारेंगे, उनको सूचना दी जाती है कि शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित होने पर उनको अवश्य सूचना दी जायगी। तथा हिंदी ऊर्दूके अखबारोंमें तिथि प्रसिद्ध की जायगी। "वैदिक धर्म" मासिकमें तो हर समय पूर्ण खबर प्रसिद्ध होगी ही।

जो पंडित शास्त्रार्थ के लिये अपनी विद्वत्ता से सहायता देना चाहते हैं वे श्रुति-स्मृति पुराणों में से एक एक ग्रंथके प्रमाण इकठ्ठे करके एक अपना लेख हमारे पास भेजदें।

जो महाशय आर्थिक सहायता भेजना चाहते हैं वे शीघ्र अपनी सहायता भेज दें। तथा जो अपनी सहानुभूति ही भेजना चाहते हैं वे भी समांस यज्ञके विरुद्ध अपनी अनुमति लिखकर भेजदें। इससे जनताके सन्मुख शास्त्रार्थ की सभामें हम यह रख सकेंगे कि भारत वर्षके इतने सज्जन पशुयज्ञके विरुद्ध हैं। पशुयागके विरुद्ध कितना लोकमत है यह इससे हम सभाके सामने रख सकते हैं। सभाका मत अनुकूल करनेका यह भी एक साधन सर्वमान्य ही है।

आज तारीख तक जिनसे आर्थिक सहायता

आगई है उनके नाम ये हैं —

म. एस. वी. उडीपीकर १०) रु.
म. मकनदास पुरुषोत्तमजी ५)
,, राम स्वरूपसिंहजी ५)
पं शंकरलाल भगवानजी ५)
शा. प्राणजीवन जमनादासजी ५)
पं. सूर्य देव शर्माजी २॥)
श्री. स्वा. विभूतिनंदजी २)
म. पन्नालाल श्यामलालजी ५)
,, हरिरामजी २)
पं. श्रीधर शर्माजी ३।=)
,, चेतराम शर्माजी ५।)
बा. न्यादर सिंहजी ५)
म. मुरारीलालजी २)
,, शंकर वि. बर्डे १०)
,, रामनारायणलालजी ५)
श्री. आर्य समाज वच्छोवाली लाहौर ४५॥)
म. जगद्बंधुजी १०)
श्री आर्य समाज अकोला
म० पानाचंद दायाभाई ५)
"बद्री शंकरजी ५)
,,ठेकेदार सायना)
,,जेराम नागजी २)
,,लक्ष्मी नारायणजी १)
,,पैंचय्याजी १)
,,ऐलय्या" १)
,,गोपाळ स्वामी,, १)
"रामैय्या १)
"रघुवीर जी १)
"पं. रामदुलार १)
"रायचंद्र १)
"लक्ष्मय्या १)

२६)

इसमेंसे प्राप्त २५)

म. हिरालाल जी गुप्त १०)
म. सत्य देवजी १०)
म. नायक मुरली ५)
म. बालकृष्ण जी २)
म. लक्ष्मय्या १)
म. दुर्गय्या ॥)
मंत्रीजी आर्य समाज तुंदला ५)
ला. ग्यानचंदजी कांट्राकर ५०)

ता. २३।४।२५ तक सर्वयोग २३६=)

(दोसौ छत्तीस रु. दो आने)

यज्ञ विषयक पुस्तक छपाईका ही व्यय दो हजार रु. होना है। इसलिये इस विषय की सहायता शीघ्र आजायगी तो पुस्तक प्रेसमें भेजा जा सकता है।

आशा है कि यज्ञ के प्रेमी और वैदिक धर्म के अभिमानी इस अवसर का अवश्य ही ख्याल रखेंगे।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल औंध
(जि. सातारा)

विशेष सूचना।

कई लोग पत्र उर्दूमें लिखते हैं, और वे क्या लिखते हैं, हमारे समझमें नहीं आता। पाठक स्मरण रखें कि यहां उर्दू जानने वाला कोई नहीं है।

आप मनुष्य हैं, इस लिये मनुष्यत्वके योग्य पुरुषार्थ करना और अपने आपको आदर्श मनुष्य सिद्ध करना, आपको उचित है ।
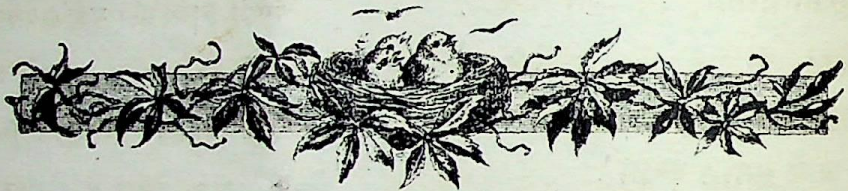
आसनों के साथ भस्त्रा प्राणायाम ।

आसनोंके साथ प्राणायाम का अभ्यास करनेसे शरीरस्वास्थ्य की दृष्टिसे बहोत लाभ होते हैं । इस लिये इस रीतिसे अनुभव लेकर जो अभ्यास उत्तम और लाभदायक सिद्ध हुए हैं उनका वर्णन यहां दिया जाता है, जो पाठक अपने स्वास्थ्य के इच्छुक हैं वे इसका अभ्यास करके लाभ उठा सकते हैं। इसके अभ्यासका क्रम निम्न प्रकार है—

(१) समसूत्रावस्थिति । खडा होना।

सीधा सम सूत्रमें खडा रहनेका पहिला अभ्यास है। पहिले दिवार के साथ पीठ लगावर खडे हो जाइये। सिरका पृष्ठभाग, पीठ, चूतर, पांव की एडियां दिवारको लगें। इसका नाम "समसूत्रावस्थिति" है। पृष्ठवंश, पीठ, गला, सिरआदिको सीधा समसूत्रमें रखना इसमें मुख्य है। सब शरीर इस प्रकार समसूत्रमें रखकर अपने दोनों हाथ भी दोनों ओर सीधे नीचे लटकने दें। इस प्रकार समसूत्रमें खडा होनेसे शरीरका बोझ विदित ही नहीं होगा। इस समसूत्र स्थिति को छोडकर यदि आप अपना शरीर आगे या पीछे करेंगे, तो आपको शरीरका बोझ प्रतीत होगा। इस लिये आपको ऐसा खडा होना चाहिये कि, जिस अवस्थितिमें अपने शरीरका बोझ बिलकुल मालूम नहीं होगा। किंचित काल इस स्थितिमें रहिए।

(२) समसूत्रावस्थिति और भस्त्रा।

पूर्वोक्त प्रकार समसूत्रावस्थामें खडा होकर भस्त्रा प्राणायाम कीजिये। लुहारकी धौंकनी का नाम भस्त्रा है उसमें जैसा वेगसे वायु अंदर घुमता है और बाहिर जाता है; उस प्रकार वेगसे पूरा श्वास अंदर लेना और वेगसे पूरा उच्छ्वास बाहिर छोडनेका नाम भस्त्रा प्राणायाम है। उक्त प्रकार खडा रहकर ये भस्त्रा प्राणायाम वेगसे पांच छे कीजिये। एक दो महिनेके अभ्यास से आप १५।२० तक भी कर सकते हैं।

सावधानी की सूचना—श्वास फेंफडोंमें प्रवेश करता है और उच्छ्वास फेंफडोंसे बाहिर निकलता है। श्वास और उच्छ्वासकी क्रिया वेगसे करनेका नाम भस्त्रा है। फेंफडोंमें उष्णता रहती है वहां अतिशीत वायु पहुंचनेसे सहन होना कठिन होता है। इस लिये भस्त्राका प्राणायाम प्रारंभमें थोडा और अभ्यास के पश्चात अधिक करना उचित है। प्रारंभमें अधिक वार करनेसे कष्ट होते हैं।

पूर्ण श्वास का लक्षण— श्वास पूर्ण लेना चाहिये। फेंफडोंके तीन विभाग हैं। एक पेटकी ओर है, दूसरा उसके ऊपर और तीसरा गलेके पास। गलेसे लेकर पेट तक जितना अंतर है उसके तीन भाग कीजिये। उनमेंसे पेटकी ओर के भागमें प्रथम प्राणवायु जाना चाहिये, इस लिये योगग्रंथोंमें कहा है कि (उदरं पूरयित्वा) उदर को पूर्ण करना चाहिये। वास्तव में पेटमें वायु जानेका प्रयोजन नहीं है, इस प्रकारके वाक्यों में "उदर" शब्दका अर्थ फेंफडोंका सबसे निचला भाग है। इस भागमें श्वास जैसा जैसा भरा जाता है, वैसा वैसा पेटका आकार बढता है और ऐसा ही पता लगता है कि प्राणवायुसे पेटही भर रहा है। परंतु वास्तवमें वायु फेंफडोंमें ही पहुंचता है। इसके नंतर फेंफडोंके मध्य विभागमें वायु क्रमशः भरना चाहिये और पश्चात सबसे उपरले गलेके पासके विभागमें भरना चाहिये। इस विभागमें प्राण भरनेके समयही छाति फैलानी चाहिये। थोडासा ख्याल रखनेसे यह सब बात

विना आयास होने लगती है । उच्छ्वासके समय क्रमशः ऊपरके, मध्यके और निचले भागोंसे वायुको बाहिर छोडना चाहिये । श्वास अंदर जानेके समय पेट बडा होता है और उच्छ्वास पूर्ण रीतिसे बाहिर छोडनेके समय पेट अंदर जाता है । श्वास जितना अंदर जासके लेना चाहिये और उच्छ्वास भी निःशेष बाहिर फेकना चाहिये । श्वास लेनेके समय सिरको थोडासा पीछे झुकाना और उच्छ्वासके समय सिरको थोडासा आगे झुकाना अच्छा होता है । पूर्ण उच्छ्वास के समय पेट अंदर जाकर नाभिस्थानके सूर्यचक्रपर आघात करता है । इस लिये कहा जाता है कि प्राणयामसे सूर्यचक्रका वेध होजाता है । इस सूर्यचक्रवेध का वर्णन किसी अन्य समय विस्तार पूर्वक किया जायगा । यहां इतना ही पर्याप्त है ।

उक्त प्रकार पूर्ण श्वसन मंद वेगसे परंतु श्वासोच्छ्वासकी गति समप्रमाणमें रखकर करनेसे उसका नाम **"सूर्यभेदन प्राणायाम"** होता है । और वेगसे श्वासोच्छ्वास करनेसे **"भस्त्रा प्राणायाम"** होता है । सूर्य भेदनमें किंचित मात्र कुंभक आवश्यक है, परंतु भस्त्रामें कुंभक की आवश्यकता नहीं है । यह विशेषता ध्यानमें आगयी तो इस लेख का कार्य हो जायगा ।

सब प्राणायामोंमें नाकसे ही श्वासोच्छ्वास करने चाहिये और मुख बंद ही रखना चाहिये । मुखसे श्वास लेने से बीमारी बढती है और नाकसे श्वासोच्छ्वास करनेसे बीमारी दूर हो जाती है ।

(३) उच्छ्वास और श्वास ।

इस अभ्यासका प्रारंभ उच्छ्वाससे कीजिये पूर्वोक्त प्रकार समसूत्रमें खडा होकर वेगसे उच्छ्वास बाहिर फेंकिये । प्रयत्न करके सब उच्छ्वास बाहिर फेंक दीजिये । पेट वेगसे अंदर आकर्षित करनेसे निःशेष उच्छ्वास हो सकता है । उच्छ्वासके बाद श्वास अंदर लीजिये उच्छ्वास अच्छा हुआ तो स्वाभाविक रीतिसे श्वास क्रिया अच्छी होजाती है ।

(४) हस्त प्रक्षेप और भस्त्रा ।

पूर्वोक्त प्रकार समसूत्रमें खडा रहकर हाथोंको वेगसे आगे और वेगसे पीछे कीजिये । हाथ आगे करके बाहुओंको सीधमें आजांय और पीछे जितने जासकें उतने चले जांय । हाथ आगे करनेके समय पूर्ण श्वास वेगसे लीजिये और हाथ पीछे जानेके समय वेगसे पूर्ण उच्छ्वास लीजिये । इस प्रकार चार पांचवार वेगसे कीजिये । जितना वेग अधिक होगा उतना लाभ अधिक होगा । हाथों और छातीमें खूनका प्रवाह अच्छी प्रकार होने के लिये इस अभ्यासमें बडी सहायता होती है ।

(५) हस्तचक्र और भस्त्रा ।

संख्या ४ के अभ्यासमें हाथोंको आगे और पीछे करना होता है । इस प्रकार हाथ आगे पीछे करनेसे हाथों द्वारा आधा चक्र भ्रमणसे बनता है । इस को पूर्ण चक्र बनाना इस अभ्यासमें है । बाहुदंड चक्रका मध्य

मानकर हाथोंको वेगसे घुमाइये। वेगसे घुमानेसे अंगुलियोंमें खून आता है और वहां चुभनेका अनुभव होता है। चुभने तक ही यह अभ्यास करना है, इससे अधिक नहीं। हाथोंका चक्र आधा अपने सामने होगा और आधा अपने पीछे होगा। एक बारमें श्वास और दूसरी बार में उच्छ्वास लेनेका यत्न करना चाहिये। तथा यह अभ्यास पांच सात वार करनेके पश्चात् हाथोंको सीधा ऊपर छत की ओर करके खूनको पुनः नीचे जानेका अवसर देना उचित है। हस्त चक्रमें खून अंगुलियोंमें आनेसे हाथका पंजा अधिक लाल दीखता है, वह हाथ ऊपर करनेसे पुनः पूर्ववत होता है।

यह हस्तचक्र हाथोंके हेर फेर से तथा हाथोंका क्रम बदलनेसे अनेक प्रकारसे किया जा सकते हैं। पाठक विचार करेंगे तो उनको स्वयं पता लग सकता है।
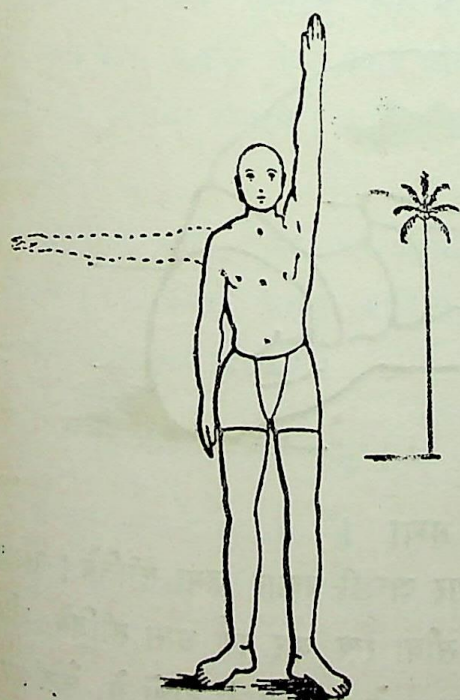
६ श्वास के साथ ताडासन।

समसूत्र में पूर्वोक्त प्रकार खडे रहिये और पूर्ण श्वास लीजिये। तत्पश्चात् ताडासनमें लिखे अनुसार हाथ ऊपर नीचे और तिरछे कीजिये। हाथोंका घुमाना क्रमके साथ होना चाहिये और क्रमपूर्वक एकवार श्वास और दूसरीबार उच्छ्वास करना चाहिये। यह अभ्यास दोचार वार कीजिये।

७ पादांगुष्ठासन और भस्त्रा।
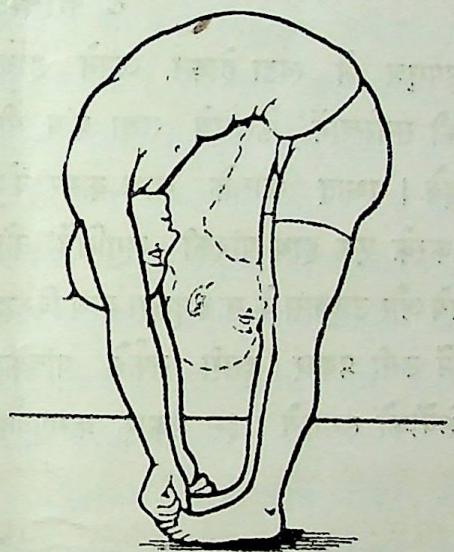
पूर्वोक्त प्रकार समसूत्र खडे हो जाइये और पूर्णश्वास अंदर लेकर हाथ ऊपर सीधे छतकी ओर कीजिये। पश्चात् उछ्वासके साथ हाथ नीचे करकेअपने पांवकी अंगुलियोंको हाथकी अंगुलियोंसे स्पर्श कीजिये तथा अपना सिर घुटनों को लगाइये। श्वासके साथ हाथ ऊपर और उच्छ्वासके साथ हाथ नीचे करने चाहिये और इस क्रमसे दोचारवार अभ्यास कीजिये।
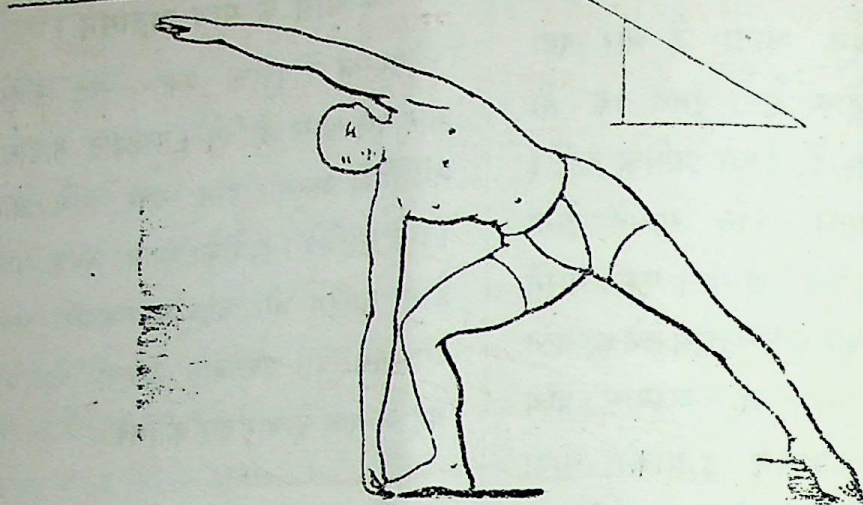
८ कोनासन और भस्त्रा ।

समसूत्र में खडा होकर अपने हाथ भूमिकी समरेखामें फैलाइये तथा पांव भी फैलाइये । पश्चात् श्वासके साथ कमर को टेढा करके एक हाथ पांवकी अंगुलियें को लगाइये और उछ्वास के साथ दूसरा हाथ विरुद्ध दिशामें उसी प्रकार दूसरी तर्फके पांवकी अंगुलियोंको लगाइये । इस प्रकार क्रमपूर्वक कोनासन के साथ भस्त्रा प्राणायाम दोचार वार करना चाहिये । इसका दूसरा प्रकार यह है कि दायां और बायां हाथ दोनों पावोंके बीचमें क्रमपूर्वक श्वास और उछ्वास के साथ लगाना । इस समय केवल कमर को ही घुमाना होता है । घुटने सीधे रखने चाहिये ।
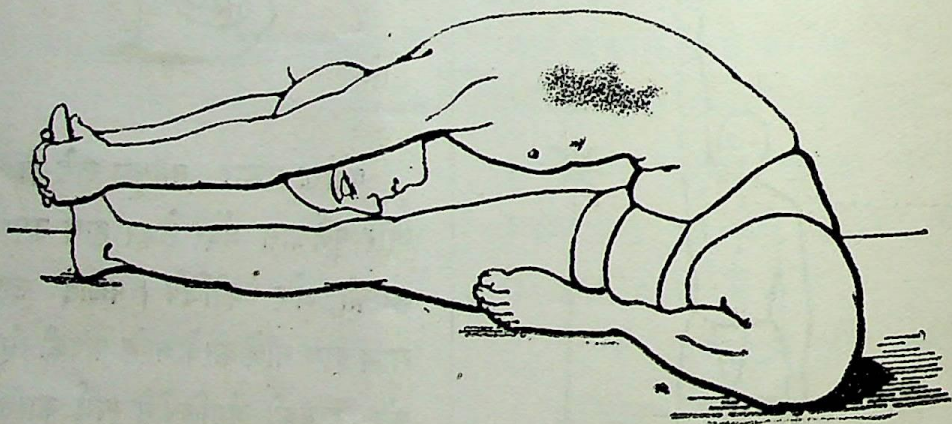
९ जानुशिरासन और भस्त्रा ।

भूमिपर वैठकर एक पांव जमीनपर फैलाइये और दूसरे पांव का पंजा फैले पांव की जंघापर अच्छी प्रकार जमा लीजिये । पश्चात धड सीधा रख कर पूर्ण श्वास लीजिये और उच्छ्वास के साथ दोनों हाथों से फैले हुए

पांवका अंगूठा पकडकर सिर घुटनेको लगाइये। फिर पूर्ववत् धड सीधा करके श्वास लेकर पूर्ववत सिर घुटनेको लगानेके समय उच्छ्वास कीजिये। यह सब अति शीघ्र और वेगसे करना चाहिये। पांव के हर फेरसे दोचार बार कीजिये।

१० दंडासन, पादशिरासन और भस्त्रा।

भूमिपर पीटके आधार लेट जाइये। दोनों पावोंको साथ साथ सीधा राखिये। सब पीठ समसूत्रमें रखिये तथा हाथ भी सिरके पीछे जोडकर अथवा साथ साथ रखिये। पांवसे हाथोंके पंजों तक सब शरीर दंडवत समसूत्र रहे। इसको दंडासन कहते हैं।

दंडासन में एक निमेष रहकर कमरके उपरका धड ऊपर उठाइये और हाथोंको आगे करके पांवोंके अंगुठे पकड लीजिये और सिर घुटनोंको लगाइये। यह पादशिरासन हुआ।

दंडासनमें श्वास लेकर पादशिरासनमें छोडना। इसी क्रमसे करना चाहिये। यह अभ्यास दोचारवार कीजिये।

इस अभ्यासका फल।

ये दस प्रकारके अभ्यास हैं। प्रत्येक अभ्यास दोतीनवार भी किया जाय तो प्रत्येक अभ्यासको आधे मिनिटसे अधिक समय नहीं लगेगा। और दसों अभ्यासोंको पांच मिनिट पर्याप्त हैं। इस प्रकार भस्त्रा प्राणायाम के साथ ये आसन पांच मिनिट तक करनेसे आपका उत्साह द्विगुणित हो जायगा, आपकी क्षुधा प्रदीप्त होगी, पचन शक्ति बढेगी, कोष्टगत वायु दूर होगा, और शरीरकी कांति बढेगी।

कोसाजल एक दो कौल पीकर अथवा कोसे जलमें थोडा नमक डालकर पीनेके पश्चात् यदि ये आसन भस्त्राके साथ आप करेंगे तो शौचशुद्धि होगी और अच्छी प्रकार क्षुधा प्रदिप्त होगी।

अधिक अभ्यास होनेपर भी दस मिनिटोंसे अधिक यह अभ्यास करनेकी आवश्यकता नहीं है। इससे पेटके सब दोष दूर होंगे और पाचन शक्ति बढ जायगी। यह अनुभव सिद्ध बात है।
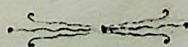
जीव और ईश्वर।

(ले० विद्या भूषण, विभु)

सत्य सनातन नाता है ।

मैं अल्पज्ञ सखा तेरा हूँ, तू सर्वज्ञ विधाता है ।
उस तरुवर के दोनों वासी, जो अनादि कहलाता है ।
मैं उसका फल खाने वाला तू मेरा फल दाता है ।
मैं बचपन का मित्र वही हूँ, क्या न याद कुछ आता है ।
बहुत दिनों तक खेले खाये मुहँ क्यों आज छिपाता है ।
जन्म मरणके बन्धन में हूँ निर्विकार तू त्राता है ।
भूल गया है बाल सखे क्या जो ऐसा कलपाता है ।
आजा आजा फिर देखूँ मैं लोचन अति ललचाता है ।
बहुत दिवस ' विभु ' बीतगये हैं दर्शन क्यों न दिखाता है ।

साहित्य मंदिर ।

१ भक्तिदर्पण अथवा आत्मप्रसाद— (ले०— श्री. चतुर भाई बाबर भाई पटेल प्रकाशक— श्री. मोती भाई लक्ष्मीदास पटेल, आर्यसमाज आनंद, मू. ०–६–०)

आर्यभाषा में म. राजपाल द्वारा प्रकाशित " भक्तिदर्पण " का गुजराती भाषाका अनुवाद श्री. चतुर भाईजीने किया है और करीब दोसौ पृष्ठोंका ग्रंथ केवल छह आनेके नाममात्र मूल्य में गुजराती लोगों के सन्मुख रखा है । इस लिये हम अनुवादक और प्रकाशक जीका धन्य वाद करते हैं । इसी

प्रकार धार्मिक पुस्तक अल्प मूल्य में देने चाहिये, तब धर्मकी जागृति हो सकती है।

२ **वैदिक दर्शन**— (ले॰ पंडित चमूपतिजी, प्रकाशक— म. राजपालजी, सरस्वति आश्रम लाहौर मू. ।=)

इस पुस्तकमें आत्मा, परमात्मा, सृष्टि की उत्पत्ति, ज्ञानका प्रारंभ, मुक्ति और उसके साधन, सुखदुःखकी समस्या इतने विषयोंका विचार वैदिक तत्त्वज्ञान की दृष्टिसे किया है।

३ **पंचमहायज्ञपीयूष**— (सं॰— श्री. बट्टूलालजी आर्यसमाज बांदा । प्रकाशक— म. मथुरा प्रसाद खरे, कटरा बांदा। मू. ।-)

श्री॰ स्वा॰ दयानंद सरस्वति रचित पंचमहायज्ञका पद्यानुवाद है। पद्य बडे ही मनोरंजक हैं।

४ **भारतीय गीत**=(ले.— श्री. पं. भूरालाल कथा व्यास शाहपुरा । मू. ।-)

भारत उन्नति के विषयपर मनोरंजक गीत इस पुस्तकमें हैं

३ **चार फल**— (ले॰— श्री. पं गणपति आर्योपदेशक देहलि, मू. ।)

सत्यार्थ प्रकाश, संस्कारविधि, आर्याभिविनय पंचमहायज्ञ, व्यवहार भानु, गोकरुणानिधि, सत्यधर्म विचार इन पुस्तकोंसे वाक्य उद्धृत करके चार मीठे फल जनताके सन्मुख रखे हैं। फल अत्यंत मीठे हैं इसमें संदेह नहीं है।

४ **वेद और गोमेध**— (ले॰-श्री. श्यामसुंदर दास वकील मैनपुरी । मू. =)

वेदमें गोमेध के सूचक शब्द और मंत्र जो जो हैं उनका ऋचा वैदिक अर्थ बताया है, इस लिये पुस्तक उपयोगी है।

व्यासोपदेश— (ले॰ भूरालाल व्यास, शाहपुरा)

इसमें संक्षेपसे चार वर्णोंके कर्तव्य लिखे हैं। ऋषि वचन और पद्यानुवाद भी है।

६ **सत्यासत्यनिर्णय**— (ला. जगन्नाथ दास मुरादाबाद, प्रकाशक— श्री. नाहर सिंह वर्मा, महाराजाधिराज शाहपुरा मेवाड- विना मूल्य)

७ **मेघउद्धारसभा** सियाल कोट पंजाब का रिपोर्ट देखनेसे पता लगता है इस सभाका कार्य उत्तम रीतिसे चल रहा है। चालक प्रशंसाके योग्य हैं।

८ **सत्यवादी**— (संपादक, श्री. पं. भीमसेन विद्यालंकार, लाहौर । वार्षिक मूल्य ३॥)

यह आर्य भाषाका साप्ताहिक पत्र लाहौरसे पं. भीमसेनजी के संपादकत्वमें प्रकाशित हो रहा है। पत्र अत्यंत उपयोगी है। राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक जागृती पंजाबमें करनेके उद्देश्यसे इसका जन्म हुआ है। प्राप्त अंकोंसे निश्चय हो सकता है कि अपने उद्देश्य पूर्ण करने में संपादक अवश्य कृतकार्य होंगे। आर्य भाषाके अभिमानी इस पत्रके अवश्य ग्राहक बनें।

शुद्धि ।

(लेखक – श्री. कुवर चांदकरण शारदा.)

" कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् । " ऋ० ९।६३।५

यह बडे ही हर्ष की बात है कि भारत में शुद्धि का प्रचार दिनों दिन बढता जा रहा है, यहां तक कि सन १९२४ के दिसम्बर मास में बेलगांव राष्ट्रीय महासभा के अवसर पर भी शुद्धि और हिन्दूसंगठन का समर्थक हिन्दू महासभा का विशेष अधिवेशन सफलतापूर्वक होगया । उस में देश के पूज्यवर महात्मा गांधीजी, दास, नेहरू आदि से लेकर अनेकशः राष्ट्रीय मुसलमान नेता भी उपस्थित हुए थे ये सब नेता पहिले शुद्धि और संगठन का विरोध करते थे, अब अवश्य ही इनका भ्रम दूर होगया होगा । शुद्धि और हिन्दू-संगठन की सफलता इससे अधिक और क्या हो सकती है कि मौलाना शौकतअली और मौ० मोहम्मदअली साहब तक हिन्दू महासभा में पधारे । क्षत्रियों में तो शुद्धि का प्रस्ताव आगरे में ही क्षत्रिय महासभा के अवसर पर श्रीमान वयोवृद्ध राजाधिराज शाहपुरा के सभापतित्व में तारीख ३१ दिसम्बर सन १९२२ को पास हो चुका था । और वृन्दावन में इन्हीं शीशोदिया कुलभूषण महाराणा प्रताप के वंशज हिज हाइनेस सर नाहरसिंहजी वर्मा के.सी.एस.आई. के सभापतित्व में शुद्ध हुये मलकाने राजपूतों ने अन्य सर्वश्रेष्ठ राजपूतों के साथ एकमञ्चपर बैठ कर भ्रातृसम्मेलन किया। उसमें राजस्थान के खरवानरेश, रावसाहेब गोपालसिंहजी राष्ट्रवर तथा बडे बडे राजाओं के साथ न केवल मलकानों ने खान पान ही किया किन्तु राजाधिराज शाहपुरा ने यह एलान भी किया कि आज से इन शुद्ध हुये राजपूतों के साथ रोटी बेटी का व्यवहार खुलगया है । इसी प्रकार हिन्दुओं की नाना जातीय कान्फ्रेंसों ने शुद्धि और संगठन के हक में प्रस्ताव पास कर दिये और बडे बडे पंडितों ने व्यवस्थायें देदीं, किन्तु इतना होने पर भी अब तक हमारे मार्ग में बहुतसे कांटे बिछे हुये हैं । गत दो वर्षोंसे शुद्धि और हिन्दू संगठन का जो कार्य मैं कर रहा हूं, उसके अनुभव से मुझे यही निश्चय हुआ है कि बहुत हिन्दू शुद्धि का इसलिये विरोध करते हैं कि शुद्ध हुये लोगों के मिलानेसे इनके रक्त की पवित्रता जाती रहेगी, यदि उनको यह ज्ञात होजाय कि उनके पूर्वज दूसरों को मिलाते रहे हैं और रक्त की पवित्रता कोरा ढकोसला मात्र है तो वे शुद्धि का कभी विरोध न करें । मेरा इस अध्याय में ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा यही सिद्ध करने का प्रयत्न होगा कि प्राचीन इतिहास से आम हिन्दुओंकी रक्त की पवित्रता विषयक विश्वास असत्य है ।

हिन्दू जाति चार भागों में विभक्त है, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। उत्तर भारत में ये चारों वर्ण विद्यमान हैं और दक्षिण भारत में केवल दो वर्ण विद्यमान हैं। ब्राह्मण और शूद्र, दाक्षिणात्यों का कहना है, कि परशुरामजी ने क्षत्रियों का नाश कर दिया अतः जो पीछे दक्षिण में राजा हुये वे सब शूद्र हुये। प्राचीन हिन्दु शास्त्रों के देखने से यह स्पष्ट विदित होता है, कि पहले दो प्रकार के विवाह होते थे एक तो अनुलोम और दूसरा प्रतिलोम। अनुलोम तो उसे कहते हैं, जिसमें कि उच्च जाति का ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपने से नीच जाति वाली स्त्री से विवाह करे, और प्रतिलोम उसे कहते हैं, जिसमें उच्च जाति वाली स्त्री अपने से नीच जाति वाले पुरुष से विवाह करले, परन्तु उपरोक्त शास्त्रसमर्थित विवाहों द्वारा उत्पन्न हुई संतति के विद्यमान रहने पर भी हिन्दू जनता का यह विश्वास है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये द्विज हैं। और इनके अन्दर रुधिर की पवित्रता है, अर्थात् सृष्टि की आदि में जो ब्रह्मण थे उन्हीं की वंशपरम्परा अब तक वर्तमान है। उसमें कोई बाहरी मिलावट नहीं हुई है। एवं जो क्षत्रिय हैं वे विना किसी बाह्यमिश्रण के आदिम क्षत्रियों के वंशज हैं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि हिन्दूधर्म विदेशी व विधर्मी को कभी हिन्दू जाति व धर्म में प्रविष्ट होने की आज्ञा नहीं देता। अब हमें जिस पर विचार करना है वह यह है कि आया हमारे प्राचीन महर्षि दूसरों को अर्थात विदेशियों को हिन्दूधर्म में सम्मिलित करते थे या नहीं व धर्मभ्रष्ट, पतित पीछे से प्रायश्चित्त द्वारा मिलाये जाते थे या नहीं।

हिन्दुओं की सब से प्राचीन धर्मपुस्तकें वेद हैं। वेदों को हम ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, वेदों में न केवल "यथेमां वाचं कल्याणीं" वाले मन्त्र से सब को वेद पढने की आज्ञा है परन्तु "पुनन्तु मा देवजनाः" वाले मन्त्रों से सारे विश्व को पवित्र करने की आज्ञा है। यही नहीं, ऋग्वेद ९-६३-५ में-

"इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वंतो विश्वमार्यम्"

मन्त्र द्वारा ईश्वर की महिमा बढाते हुये सब संसार को आर्य बनाने की आज्ञा है। और ऋग्वेद १०।१३७।१ में यह मन्त्र आया है—

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥

"जो गिरे हैं उनको पुनः उठावो। जिन्होंने पाप किया है, जिनका जीवन मैला होगया है उनको फिर से जीवन दो और शुद्ध करो।"

इतनी स्पष्ट आज्ञाओं के अतिरिक्त वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के इतिहास देखने से स्पष्ट विदित होता है कि सब वर्णों में से वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हुये हैं।

वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि पृथक् पृथक् हुए हैं। ऋग्वेद के १० मण्डल हैं। इसके मन्त्रों

के पृथक पृथक् ऋषि हैं। इन ऋषियों की नामावली देखने से स्पष्ट पता लगता है कि ये मन्त्रद्रष्टा ऋषि सब के सब ब्राह्मण ही नहीं थे। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि विश्वामित्र और उनके कुटुम्बी हुए हैं। और प्रत्येक हिन्दू जानता है कि महर्षि विश्वामित्र क्षत्रिय थे, ब्राह्मण नहीं थे। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ४३ वें व ४४ वें मन्त्र के द्रष्टा अजमीढ और पुरमीढ ऋषि हुए हैं। विष्णुपुराण में लिखा है कि अजमीढ और पुरमीढ क्षत्रिय थे। महाभारत के "अनुशासन पर्व" में लिखा हुआ है, कि विश्वामित्रजी कठिन तपस्या के बाद ब्राह्मण बने।

ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपाः। क्षत्रियोऽपि च सोऽत्यर्थं ब्रह्मदेशस्थकारकः॥

और ब्राह्मणों में जो कौशिक गोत्र वाले ब्राह्मण हैं वे विश्वामित्र के ही वंशज हैं और आजतक ब्राह्मण लोग कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणों के साथ विवाह आदि सब प्रकार के संबन्ध करते आये हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण और क्षत्रिय का रक्त परस्पर मिल जाता था। और जो अभिमानी ब्राह्मण रक्त की पवित्रता की डींग मारते हैं उनका सिद्धान्त शास्त्रानुकूल नहीं है। जिस समय द्रौपदी का स्वयंवर हुवा था उस समय पांडव, ब्राह्मण वेश में ही आये थे और अर्जुन ने ब्राह्मणवेश में ही मछली की आंख भेद कर द्रौपदी को स्वयंवर में जीता था। इससे सिद्ध है कि प्राचीन समय में ब्राह्मण क्षत्रिय आपस में विवाह करते थे। इसी प्रकार सीता स्वयंवर में धनुष तोडने के लिये रावण जैसे ब्राह्मण आये थे और सीता से विवाह करने के लिये उद्यत थे। इससे भी यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों का आपस में विवाह होता था। ये "काण्वायन" ब्राह्मण अजमीढ क्षत्रिय के पुत्र "कण्वऋषि" की सन्तति हैं। इसी प्रकार वैश्य लोग भी ब्राह्मण बन जाते थे। हरिवंश पुराण में लिखा है कि नाभागरिष्ट-वैश्य के दोनों लडके वैश्य से ब्राह्मण बन गये।

"नाभागरिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।" ६५९

कवश, एलूष शूद्र थे परन्तु इनकी धार्मिकता के कारण ऋषियों ने इन्हें अपने मंडल में मिला लिया था। जानश्रुति पौत्रायण नाम का एक शूद्र भी राजा होगया था और तत्पश्चात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण बन गया था।

यह सब बातें स्पष्टतया यह ही प्रमाणित करती हैं कि हिन्दूजाति में परस्पर चारों वर्णों में विवाहसंबंध होता था और हिन्दू-जाति एक थी। कविवर कालिदास की प्रसिद्ध शकुन्तला कैसे उत्पन्न हुई थी। विश्वामित्र ऋषि ने मेनका अप्सरा से संभोग किया तब विश्वामित्र के वीर्य से वह पैदा हुई। इस प्रकार उत्पन्न शकुन्तला से प्रसिद्ध क्षत्रिय राजा दुष्यन्त ने विवाह कर लिया। जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्म

ही प्रधान था और सब मानते थे

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव शूद्रताम्"

अर्थात कर्म से शूद्र ब्राह्मण हो जाता था और ब्राह्मण शूद्र।

ब्राह्मणों में वसिष्ठ गोत्र वाले बहुत पवित्र माने जाते हैं। परन्तु वसिष्ठ गोत्र वाले कौन थे। यह बात महाभारत के निम्नलिखित श्लोक से विदित होती है।

गणिकागर्भसम्भूतो वासिष्ठश्च महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम्॥

महर्षि वसिष्ठ वेश्या के गर्भ से पैदा हुए परन्तु अपनी तपस्या के कारण ब्राह्मण पद को प्राप्त होगये। ऋग्वेद के सातवें मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि वासिष्ठजी ही हैं। इसी प्रकार व्यासजी महाराज जिन्होंने महाभारत रची उनकी तथा पराशर ऋषि की भी उत्पत्ति महाभारत के वनपर्व में शूद्रकुल से बताई गई है। पराशर ऋषि चांडाली के पेट से पैदा हुए, और व्यासजी मल्लाह की पुत्री योजनगन्धा के पेट से उत्पन्न हुए।

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपच्यास्तु पराशरः। बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजाः॥

पराशर मुनिने योजनगन्धा मछलीमार की पुत्री से सम्भोग किया तब व्यासजी उत्पन्न हुए। और फिर उसी योजनगन्धाका विवाह राजा शान्तनु के साथ हुआ। उसके पुत्र चित्रांगद विचित्रवीर्य भारतवर्ष के राज्य के मालिक हुए। उनकी रानियों से व्यासजी ने नियोग कर के पांडु और धृतराष्ट्र को पैदा किया। और दासी से भोग किया उससे विदुरजी पैदा हुए।

पीछे के काल में भी यह याज्ञवल्क्यस्मृति के अध्याय ४ में लिखा है कि—

जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेऽपि वा। व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम्॥

इसके पश्चात् याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार विज्ञानेश्वर भट्ट ने मिताक्षरा में लिखा है कि सातवीं पीढ़ी में वा पांचवीं पीढ़ी में ब्राह्मण का निषादी के साथ विवाह होने पर उनके पुत्र वा पुत्री ब्राह्मण हो जाते थे। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी लिखा है देखो मनु अध्याय १० श्लोक ६४

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत् प्रजायते। अश्रेयाञ्छ्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात्॥

इससे सिद्ध हो गया कि शूद्री से विवाह करने पर भी ६ वीं व ७ वीं पीढ़ी में उस की संतति ब्राह्मण बन जाती थी। कुल्लूक भट्ट मनुस्मृतिके प्रसिद्ध टीकाकार ने तो यहां तक लिखा है कि यदि शूद्र ब्राह्मणी के साथ विवाह करले और उससे पुत्र उत्पन्न हो तो वह पहली पीढ़ी में ही ब्राह्मण होजायगा। और यदि ७ पीढ़ी तक बराबर शूद्रों में विवाह करेगा तो शूद्र होगा, नहीं तो शूद्रों में विवाह करने पर भी ६ पीढ़ी तक तो बराबर ब्राह्मण ही रहेगा।

अतः ब्राह्मण में शूद्र का खून विद्यमान है । और उच्च जातियों के रक्त की पवित्रता वाला सिद्धान्त प्राचीन शास्त्रों के आधार पर मिथ्या साबित होता है । पुराणों में स्थान स्थान पर " ब्रह्मक्षत्र " शब्द आता है इसके मायने यह हैं कि जो क्षत्रिय-ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के गुणों से सम्पन्न होते थे वे ही ब्रह्मक्षत्रिय कहलाते थे । इसका अर्थ कई यह भी लगाते हैं कि जो क्षत्रिय थे परन्तु उनकी संतति ब्राह्मण हुई वे ब्रह्म क्षत्रिय हैं । और कहीं पर यह भी अर्थ लगाया जाता है कि पिता क्षत्रिय और उसने ब्राह्मण स्त्री से विवाह कर लिया तो ब्रह्म क्षत्रिय बन गये । सूत यद्यपि क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी के रज से उत्पन्न हुये थे तथापि बडे बडे ऋषि उन्हीं सूतजी से कथा सुनने सामने आकर नीचे बैठते थे । विष्णुपुराण में लिखा है कि पुरु राजा के कुल से ब्राह्मण और क्षत्रिय उत्पन्न हुए । ययाति और शर्मिष्ठा क्षत्रिय पुरु राजा के माता पिता थे । इसी विष्णुपुराण के ९ वें और १० वें अध्याय से यह भी सिद्ध होता है, कि गार्ग्य, शांडिल्य और काण्वायन व मोद्गल्य आदि गोत्र जो ब्राह्मणों के हैं वे क्षत्रियों से निकले । मारवाड के छींपे भी पहिले ब्राह्मण थे पीछे क्षत्रिय बने और ब्रह्मक्षत्र कहलाने लगे । इसी प्रकार से महेश्वरी ओसवाल आदि क्षत्रियों से वैश्य बने । और वैश्यों के साथ उनके विवाह संस्कार होने लगे। इसी प्रकार नाना जातियां बनीं । मारवाड में अबतक यही रिवाज है, कि दरोगे जो राजपूत पिता और नीच जाति की स्त्री के पेट से पैदा होते हैं, वे यदि धनवान् और गुणवान हो जावें तो राजपूतों में मिला लिये जाते हैं । और जो राजपूत पतित और निर्धन हो जाते वे दरोगे बन जाते हैं । राजस्थान में यह कहावत अब तक प्रचलित है कि " तीजी पीढी ठाकुर और तीजी पीढी चाकर (दारोगा) " खरवड चन्दाने बोडाना आदि राजपूत जीविका न रहने से दरोगे होगये । ता २१ दिसम्बर सन १८९६ में श्रीमान राजाराम रामकृष्ण भागवतने एक लेख रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई शाखा के पत्र में छपवाया था जिसमें उन्हों ने यह सिद्ध किया है कि वैदिक काल में अनार्यों को आर्य बनाते थे उनकी शुद्धि के लिये एक यज्ञ किया जाता था । जिसका नाम व्रात्यस्तोम यज्ञ है । इस यज्ञ द्वारा ३३ व्रात्य और उनका एक सरदार एक साथ ३४ मनुष्य शुद्ध होकर आर्य बना लिये जाते थे । और इसके बाद उनको द्विजों के अधिकार दे दिये जाते थे । सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण के १७ वें अध्याय में इसका विस्तृत विवरण मिलता है । लाखों अनार्य इसी प्रकार ३४ (चौतीस) के समूह में शुध्द कर के आर्य बनाये गये । इसी प्रकार लाट्यायन ब्राह्मण में हीन व्रात्य आदिकों के ४ प्रकार के व्रात्यस्तोम यज्ञों द्वारा शुध्दि और प्रायश्चित्त लिखा है । इसके विषय में विशेष देखने की इच्छा

हो तो सन् १८९७ के नम्बर ५३ वाल्यूम १६ रायल एशियाटिक सोसाइटी के बम्बई शाखा की पत्रिका के ३५७ से लेकर ३६४ पृष्ठ तक देखो। इसके अतिरिक्त वेदों, उपनिषदों, वायुपुराण, हरिवंशपुराण, विष्णुपुराण, भविष्यपुराण, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों तथा जुन्नर, नासिक, सांची आदि के प्राचीन शिलालेखों व प्राचीन सिक्कों से स्पष्ट विदित होता है कि प्राचीन समय में बाहर से आये लोगों को हमारे पूर्वज अपने में मिला लेते थे। कुछ प्रमाण इसी पुस्तक में दे दिये हैं। अधिक देखना हो तो Foreign elements in the Hindu papulation नामक लेख जो Indian Antiquary में Vol.1911 में छपा है उसे पढो।

भील आदि अनार्य किस प्रकार हिन्दू रीति रस्म मानकर हममें मिलगये, इस बात के अब तक प्रमाण मिलते हैं।

भील और गासियों में राजपूतों की जातियां अब तक विद्यमान हैं। हमारी स्मृतियों में प्रायश्चित्त की विधि बहुत प्राचीन काल से चली आती है। भारतवर्ष में हूण, सीदियन आदि जो बाहर से आये वे सब आर्य बनाये गये, और विदेशों में भी यहां से आर्य मिशनरियों ने जा जाकर विधर्मियों को आर्य बनाया। सम्राट अशोक ने चीन जापान में धर्म प्रचारक भेजे और सबों को बौद्ध बनाये। भारतवर्ष के बाहिर जो ४५ करोड बौद्ध हैं वे हमारे ही धर्म भाई हिन्दू भाई हैं।

आज तक हूण जो पहिले तिब्बत से टाइग्रीस नदी तक पहुंचे हुये थे भारतवर्ष में परमार क्षत्रियों की एक शाखा माने जाते हैं। और उनसे सब क्षत्रिय विवाह करते हैं। हमने आर्य सभ्यता फैलाई तभी तो हमारा चक्रवर्ती साम्राज्य सारे संसार में विस्तृत था। हमारे आर्य राजा सर्वत्र राज्य करते थे। अफगानिस्तान में शकुनि, चीन में भगदत्त, यूरोप में विडालाक्ष, अमेरिका में बभ्रुवाहन आदि राज्य करते थे।

वीरश्रेष्ठ अर्जुनने अमेरिका की राजकन्या उलूपी से विवाह किया था; महाभारत में युधिष्ठिर ने जो राजसूय यज्ञ किया था उसमें सब राजाओं का वर्णन है। पूज्य शंकर स्वामी ने तो शंख बजा कर ही सारा भारत शुद्ध किया था। जो शान्ति से शुद्ध न हुये उन्हें तलवार के जोर से उन्होंने शुद्ध किया देखो "शंकर दिग्विजय" चन्द्रगुप्त ने सल्यूकस की लडकी के साथ विवाह किया था। सिकन्दर के साथ आये हुये बहुतसे ग्रीक आर्य बनाये गये। और बुद्ध भगवान का विदेशों में धर्म प्रचार किससे छिपा है। उनकी शुद्धि की लहर तो देश देशान्तरों में फैली हुई थी। पुष्कर के प्राचीन इतिहास में लिखा है कि ऋषियों ने निरीति राक्षस को पुण्यभूमि पुष्कर में शुद्ध कर के वैदिक धर्मानुयायी बनाया। बौद्धों के इतिहास में लिखा है कि बौद्ध प्रचारक तीर्थों में जाकर ब्राह्मणों तथा आर्यजातियों को बौद्ध मतानुयायी बनाते थे। सांची

रियासत भूपाल में ईसा के ३०० वर्ष पूर्व के बौद्ध स्तूप मिलते हैं उनसे भी शुद्धि की प्रथा प्राचीन साबित होती है।

बम्बई सरकार के पुरातत्व विभाग की सन १९१४ ई० की "प्रोग्रेस रिपोर्ट" हाल ही में प्रकाशित हुई है। उस में एक शिलालेख है जो ग्वालियर रियासत के भेलसा शहर के पास बसे खांदबाबा नामक एक गरुडध्वज स्तम्भ पर मिला है, इस लेख में यह कहा है कि "देलियो डोरस" नामक एक हिन्दू बने यवन अर्थात् ग्रीकने इस स्तम्भ के सामने वासुदेव का मन्दिर बनवाया और यह यवन वहां के भगभद्र नामक राजा के दरबार में तक्षशिला के (एण्ट आल्कट्स उस) नामक ग्रीक राजा के एलची की हैसियत से रहता था "एण्टि आल्कट्स (आंटिक) उस" के सिक्कों से अब यह सिद्ध किया गया है, कि वह ईसा के १४०वर्ष पूर्व राज्य करता था इससे यह बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है, कि उस समय भारत में वासुदेव भक्ति प्रचलित थी। केवल इतना ही नहीं किन्तु यवन लोग भी वासुदेव के मन्दिर बनवाने लगे थे, अतः सिद्ध है कि हिन्दुओं में शुद्धि का रिवाज बहुत ही पुराना है, शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दुर्बलताओं एवं आडम्बर पूर्ण साम्प्रदायिक बखेडों के कारण यह रिवाज मुसलमानों के समयमें दब गया था, और इसके दब जाने में मुसलमान बादशाहों का अन्यायपूर्ण शासन भी कारण था। पुराणों में ऐसे सैकडों उदाहरण पाये जाते हैं जिनसे यह साफ तौर पर सिद्ध हो जाता है कि हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों राजा महाराजों ने लाखों करोडों बौद्धों और म्लेच्छों को शुद्ध करके पुनः सनातन धर्म, हिन्दु जातिमें मिलाया था। भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पर्व खं० ४ अध्याय २१ में लिखा है कि—

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपाययौ। म्लेच्छान् संस्कृतमाभाष्य तदा दशसहस्रकान् ॥ वशीकृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महोत्तमे। ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम् ॥ सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छान्शूद्रवर्णायचाकरोत्। कारुवृत्तिकराः सर्वे बभूवुर्बहुपुत्रकाः ॥ द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ॥ तदा प्रसन्नो भगवान् कण्वो वेदविदांवरः ॥ तेषां चकार राजानं राजपुत्रपुरं ददौ।

देवी सरस्वती की आज्ञा से कण्व ऋषि ने मिश्र देश में जाकर १० हजार म्लेच्छों को शुद्ध किया और उनको संस्कृत पढाकर भारत वर्ष में लाये और उन में से २००० को वैश्य बनाया इसी में आगे लिखा है —

मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेन सुशासिताः। संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागता ॥ शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम्।

इत्यादि अर्थात मिश्रदेश में उत्पन्न म्लेच्छ शुद्ध होकर तथा उत्तम वेद पढकर व शिखा

सूत्र धारण करके ब्राह्मणपद को प्राप्त हो गये। आगे फिर इसी अध्याय में कथा आती है कि वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य श्रीकृष्ण चैतन्य देव के प्रधान शिष्य स्वामी रामानन्द- जी आचार्य निम्बादितजी श्री विष्णुस्वामीजी तथा आचार्य वाणीभूषण आदि सात आचार्यों ने हरिद्वार, प्रयाग, काशी, अयोध्या, और कांची आदि प्रसिद्ध तीर्थस्थानोंमें जाकर लाखों म्लेच्छों को पवित्र वैष्णव धर्म- का उपदेश देकर हिन्दू धर्ममें प्रविष्ट किया। जिसे संदेह हो वह भविष्य पुराण पढकर या विद्वानों से सुनकर अपने संदेहको निवृत्त करले। देवल मुनिने तो अपने धर्मशास्त्र में गोहत्यारे, म्लेच्छों की झूंट न खाने वाले की भी शुद्धि का विधान लिखा है, यथा—

बलाद्दासीकृतो म्लेच्छैश्चांडालाद्यै- श्च दस्युभिः। अशुभं कारितं कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् । उच्छिष्टं मार्जनं चैव तथा तस्यैव भक्षणम् । तत्स्त्रीणां च तथा संगस्ताभिश्च सहभोजनम् ॥ इत्यादि ॥

"रणवीर प्रायश्चित्त" में अनेक प्रमाण लिखे हैं। अर्थात् म्लेच्छ चाण्डालादि तथा डाकुओं द्वारा जो जबर्दस्ती दास बनाया गया हो तथा अशुभ कर्म गौ आदि पवित्र प्राणियों की हिंसा आदि जिससे जबर्दस्ती कराई गई हो अथवा जिससे झूंठे बर्तन मंजवाये गये हों या जिसे झूंटा खिलाया गया हो तथा जिसने उनकी स्त्रियों का संग या उनके साथ भोजन किया हो तो उसकी शुद्धि कृच्छसन्तापन व्रत से होती है। उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों के विद्यमान होते हुए भी हम रूढि के गुलाम होने के कारण शुद्धि करने को बुरा मानते हैं। इसका कारण यह है कि एक समय आर्यजाति के दुर्भाग्य से ऐसा आया जब कि भारत से विभिन्न देशों में उपदेशक ब्राह्मणों का अभाव होगया, और भारत से ब्राह्मण उन देशों तक पहुंच न सके, जो उनको धर्म कर्म की शिक्षा देकर आर्यधर्म में दृढ रखते। अतः उस समय शनैः शनैः आर्यधर्म की बहुतसी शाखायें अज्ञान से तथा अपना कर्म त्याग देने से होगईं। जैसा कि महाभारत शांतिपर्व राजप्रकरण में स्पष्ट रूप से वर्णन आता है। ऐसा ही मनुस्मृति अध्याय १० श्लोक ४३-४४ में विधान पाया जाता है।

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रि- यजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥ पौंड्रकाश्चोड्र- द्रविडाः कम्बोजा यवनाः शकाः। पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराता दरदा खशाः ॥

अर्थात निम्नलिखित तमाम क्षत्रिय जातियां कर्म के त्याग देने से और यज्ञ अध्ययन करने और स्ववर्णानुकूलप्राय श्चित्तादि कार्यों के लिये ब्राह्मणों के न मिलने से धीरे धीरे म्लेच्छता को प्राप्त होगईं। जैसे कि पौंड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात,

दरद, खश आदि आदि। ज्योंही इन आर्यों ने ब्राह्मणों के अभाव से अपना धर्म कर्म का परित्याग किया तथा सर्वदेशीय भाषा संस्कृत का पठन पाठन बन्द किया तब इनकी अनेक शाखायें जातियों के रूप में परिवर्तित होगई और आर्य लोग इनको म्लेच्छ नाम से पुकारने लगे। क्योंकि उस समय संस्कृतविभिन्न भाषाभाषियों को आर्य लोग म्लेच्छ कहते थे। कुछ समय के उपरान्त ब्राह्मणों ने अन्य देशों में जाकर इनमें से बहुतसी जातियों को संस्कृत भाषा पढाकर पुनः आर्यधर्म में प्रविष्ट किया और जिस समय ये जातियां भारतवर्ष में आक्रमण करने या अन्य किसी उद्देश्यसे आई, आर्यों ने इन्हें वैदिक सभ्यता की शिक्षा देकर हिन्दूधर्म में मिला लिया। जिनमें से आज तक बहुतसी जातियां उसी नाम से प्रसिद्ध हैं। और हिन्दुओं का उनके साथ खान पान का सम्बन्ध उसी प्रकार है। जैसा कि एक आर्य का आर्य के साथ होना चाहिये।

पुराणों में भारतवर्ष की सीमा आधुनिक अंग्रेजी सर्कार द्वारा निर्धारित सीमा नहीं है। भारतवर्ष की प्राचीन सीमा के लिये पातञ्जलि के महाभाष्य के "के पुनःआर्यावर्ताः" आदि प्रमाणों से तथा वायुपुराण और मत्स्यपुराण से पता लगेगा कि भारतवर्ष के पूर्व में East sea (पूर्व समुद्र) पश्चिम में अरब प्रदेश और दक्षिण में लंका और उत्तर में हिमालय लिखा है। इसी अध्याय में आगे चलकर वर्णन आता है कि जिस समय स्वयं भगवान बुद्ध की शिक्षा के विपरीत १००००००० (दश करोड) मनुष्यों ने वैदिक सभ्यता का परित्याग कर दिया था। और वर्णाश्रम धर्म को छोडकर आर्य धर्म के विरुद्ध आचरण करने लगे थे तब उस समय जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजी ने अग्निवंशज क्षत्रिय राजाओंकी सहायता से उन्हे केवल शंखध्वनि से ही शुद्ध करके पुनः आर्यधर्म में सम्मलित किया था। और वैदिक वर्णानुकूल संस्कारों से संस्कृत किया था। शक, यवन आदि जातियां जो किसी समय अज्ञानवशात आर्यजाति से पृथक होगई थीं, और जिनके आचार व्यवहार आदि में भी महान् अन्तर आगया था परंतु जिस समय भारतवर्ष में वे आई और अपने प्राचीन धर्म का प्रभाव उनकी आत्माओं पर पडा तब आर्यजाति ने उनको पुनः हिन्दूधर्म में प्रविष्ट करके क्षत्रिय आदि वर्णों में मिला लिया। पुराणों में इस विषय का वर्णन विस्तारपूर्वक किया हुआ है। पौराणिक उदाहरणों को यदि छोड भी दिया जाय तो भी वर्तमान समय में विशाल खंडहरों को खोदने से जो प्राचीन शिलालेख भूगर्भ से निकाले जा रहे हैं उनके आधार पर यह पूर्ण रूप से सिद्ध होचुका है कि आर्यजाति ने भारतमें आई हुई अन्य जातियों को अपनाया था।

(क्रमशः

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य ।

(लेखक ' राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति ' आत्मारामजी अमृतसरी)

संस्कारचन्द्रिका ।

शताब्दी संस्करण बहुत उत्तम छपकर तय्यार है। मनुष्य मात्र के उपयोगी ग्रन्थ है । इस में हमारे जीवन में जो महत्व पूर्ण संस्कार होते हैं उनकी वैज्ञानिक खोज उनको कहां तक करने के लिए बाधित करती है यह सविस्तर बताया है । महर्षि दयानन्द प्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या है । प्रत्येक संस्कार की फिलासफि युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा बडी विद्वत्ता से सिद्ध की है । मू. सजिल्द ४) डा. व्यय |||)अजिल्द ३||)

सृष्टिविज्ञान पुरुषसूक्तका स्वाध्याय तथा वेदोत्पत्ति संबंधी मंत्रोंकी व्याख्या मू. २)

तुलनात्मक धर्म विचार १)ब्रह्मयज्ञ||) शरीरविज्ञान |≈) आत्मस्थान विज्ञान–) नीति विवेचन १|) गीतासार |≈)

गुजराती हिन्दी शब्द कोष ६) समुद्रगुप्त ||≈) आरोग्यता||) श्रीहर्ष||) मजहबेइस्लामपर एक नजर ≈) ऋषिपूजा की वैदिक विधि–) विज्ञापकके ग्राहकों को ≈) रुपया छूट। वा. मूल्य २)

विज्ञापक, बडोदा । अपने ढंग के अनूठे मासिक में प्रति मास **वैदिक समाजान्तर्गत** आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् राज्यरत्न आत्मारामजी, कुंवर चांदकरणजी शारदा, रावसाहब बाबु रामविलास जी, पं. आनन्द प्रिय जी, प्रोफेसर आर्ते एम.ए. के लेखों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रोचक विषय भी । वा. मू. २) नमूना |–) प्रकाशक) जयदेव ब्रदर्स बडोदा ।

वैदिक उपदेश माला ।

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी ।

मूल्य ||) आठ आने । डाकव्यय /) एक आना।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

संस्कृत पाठ माला।

स्वयं संस्कृत सीख कर रामायण महाभारतादि ग्रंथों का पाठ तथा अन्यान्य आर्ष ग्रंथोंका पाठ स्वयं करनेकी प्रबल इच्छा पाठकों के मनमें उत्पन्न होगई है। इस लिये पाठकों की प्रेरणासे ही यह—

संस्कृत पाठ माला

मुद्रित करनेका कार्य हमने प्रारंभ किया है।

एक वर्षमें बारह पुस्तक प्रसिद्ध किये जायंगे और यदि पाठक प्रतिदिन घंटा अथवा आधघंटा इन पुस्तकों का क्रमपूर्वक अध्ययन करेंगे तो एक वर्षके अंदर उनको पर्याप्त संस्कृत आ जायगा।

बारह पुस्तकों का मूल्य म. आ. से ३) तीन रु. है और वी. पी. से ४) चार रु. है।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य।=) पांच आने और डाकव्यय -) एक आना है।

विद्यार्थियोंके लिये

विशेष सहूलियत है। जो गरीब हैं वे इनका अध्ययन विनामूल्य भी कर सकते हैं।

अपने सब मित्रोंको इसकी सूचना दीजिये। जो ग्राहक प्रारंभमें होंगे उनको ही सहूलियतसे लाभ होसकता है। पीछेसे मूल्य भी बढेगा।

मंत्री—स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडळ, औंध (जि. सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक ६ क्रमांक ६६ ज्येष्ठ सं. १९८२ जून स. १९२५

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ हमारी हलचल० .... १६९
२ यमयमी सूक्त १७०
३ शास्त्रार्थ विचार .... १८४ (आ)
४ कामधेनु १८८
५ अभिनव अर्जुन १८८
६ शीर्षासन .... "
७ यज्ञका गूढ तत्त्व १८९
८ ग्रंथमाला. २००

लेखक- प्रोफेसर नन्दकिशोर विद्यालंकार.

पुनर्जन्म.

भूमिका लेखक- श्री. १०८ स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

निश्चय जानियें आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं, और सदा रहेंगे। इसलिये यदि आप को 'मृत्यु' के इस भीषण नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह जानना हो कि मृत्यु के पश्चात जीवात्माकी क्या गति होती है। पितृयान और देवयान मार्ग क्या हैं। उपनिषदों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कितने ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना चाहते हैं। यदि आप जानना चाहते हैं कि किस प्रकार आजकल के धुरन्धर पश्चमीय विद्वान् आपके प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते जाते हैं। पश्चिमके घोर नास्तिक वाद तथा डर्विन के विकास-वाद की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं तो इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

इस ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपक्षियों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा। सृष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकरण को अधुनिक विज्ञानके साथ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है। इस ग्रन्थसे आपको जर्मनी में किये गये घोडों पर नवीन परीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा। ग्रन्थका विषय दार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रखखागया है - इस लिये यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। श्री. स्वामी श्रीद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान् क्या लिखाते हैं देखियें:—

"ग्रन्थकर्त्ताने 'पुनर्जन्म' की सचाई को जनसाधारणके आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषतः हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की है।"

श्रीयुत डाक्टर गङ्गानाथ झा, वाइस चान्सलर इलाहाबाद युनिवर्सिटी।

"मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें 'पुनर्जन्म' सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशदरूपमें रखनेमें ग्रन्थकर्ताको पूर्णतया कृतकार्यता हुई है। और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं।

(श्री० डा० प्रभुदत्त शास्त्री एम० ए० पी०एच० डी०, प्रेसिडेन्सी कालेज-कलकत्ता युनिवसिटी)

"ग्रन्थकर्ताकी मूल पुस्तकको मैंने देखा था और प्रशंसा की थी-मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ताने इसे प्रकाशित किया और हिन्दी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो। (बा० भगवान्दास एम० ए० बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।)

पं० नन्दकिशोर विद्यालंकार, C/o गोबीला अण्ड कम्पनी ८।२ हेस्टिंग्स स्ट्रीट कलकत्ता

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य

(लेखक - प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न गुरुकुल कांगडी)

श्री स्वामी श्रध्दानन्द जी लिखते हैं-

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के वेदोपाध्याय श्री पं० चंद्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य-जगद का बडा उपकार किया है । इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है । छपाई अच्छी है । मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते हैं—

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है । मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था । इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान् निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं । मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशन में समर्थ हो सकें ।

श्री मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बडोदा लिखते हैं—

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा । इस ग्रन्थ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है । इस अनुसंधान - युगमें प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए-ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगलवाद कहता हूं। आपका काम सफलहै।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को अवश्य पढना चाहिए । पृष्टसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥) रु० है ।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० ' आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य । ५आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६ आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेगी ।

पत्ता-प्रबन्धकर्ता अलंकार गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

हमारी हलचलसे कष्ट उत्पन्न न हो।

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥

अ. १२।१।२५

(उदीराणाः) उठते हुए , (उत आसीनाः) और बैठे हुए (तिष्ठन्तः) खडे होते हुए , तथा (प्रक्रामन्तः) चलते फिरते और दौडते हुए (दक्षिणसव्याभ्यां) दाएं और बाएं पांवोंसे (भूम्यां) मातृभूमि के अंदर (मा व्यथिष्महि) न कष्ट उत्पन्न करें ।

अर्थात् हमारी जो हलचल होती है उससे किसी भी प्रकार मातृभूमिमें कोई कष्ट उत्पन्न न हों ।
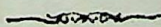
यमयमी सूक्त ।

श्रीमान पूजनीय पण्डित चमूपतिजी ने " यमयमी " सूक्त पर " आर्य " मासिकमें तथा " वैदिक मेगाजिन " में बडा विस्तृत,मनोरंजक और गवेषणा-पूर्ण लेख लिखा है । लेख जिस ढंगसे लिखा है और जितनी मानसिक समता से उस लेखकी वाक्य रचना की है वह निःसंदेह प्रशंसा योग्य है । यदि इस प्रकारकी समता शांति और अन्वेषणा आर्य लेखकों और वक्ताओं में रही, तो निःसंशय महत्त्वपूर्ण खोज होनेकी पूर्व तैयारी होगई है, ऐसा हम कह सकते हैं । यह शांतिपूर्ण अन्वेषणायुक्त लेख लिखनेका ढंग आर्योंको इस समय अवश्य अपनाना चाहिये और श्री. पं. चमूपतिजीने इस प्रकारके लेख लिखने-का प्रारंभ आर्य सामाजिक जगत् में सबसे प्रथम शुरू किया है, इसलिये उनका हम हार्दिक धन्य वाद करते हैं । इतना आवश्यक धन्यवाद देनेके पश्चात् प्रस्तुत लेखकी समालोचना करनेका प्रारंभ करते हैं । इस लेख में पं० चमूपतिजीने निम्न लिखित बातें सिद्ध करने का यत्न किया है—

१ इन मंत्रोंके (इस सूक्तके)आधार पर यम और यमी को भाई बहिन नहीं माना जा सकता ।

२ मंत्र में कहे " (गर्भे) गर्भ में " शब्दका अर्थ 'माताके गर्भमें' ऐसा नहीं है प्रत्युत " उत्पत्तिके पूर्व " ऐसा है ।

३ इस सूक्त में यम यमी का तात्पर्य भाई बहिन नहीं है प्रत्युत पति पत्नी है। अर्थात् यह भाई बहिन का संवाद नहीं है प्रत्युत इस सूक्तमें विवाहित पति पत्नी का संवाद है।

४ यम यमी ये विवाहित स्त्री पुरुष थे । पुरुष सर्वसंगपरित्याग करने लगा, उस समय वह अपनी पत्नीको नियोग की आज्ञा देता है।

५ (भ्राता) भाई इस शब्दका अर्थ इस सूक्तमें (भर्ता) पति है।

६ सारे सूक्तमें दांपत्य की ध्वनि है, भाई बहिनके संवाद की नहीं ।

श्री. पं० चमूपतिजीके सारे लेखका सार यही है । अब विचार करना है कि यह सत्य है वा असत्य है ।

प्राचीन मतसे विरोध ।

जो पं० चमूपतिजीने अपने लेखमें सिद्ध करनेका आग्रह दिखाया है वह इस समयतक किसीने भी माना नहीं है।

१ बृहद्देवता ग्रंथ बडा प्राचीन और प्रामाणिक है उसमें यम यमी को भाई बहिन ही माना है ।

२ यास्काचार्य भी अपने निरुक्तमें वह भाव ध्वनित करते हैं, इसी लिये पं० चमूपतिजीने भी लिखा है कि "यास्क भी सायण का साथ देता प्रतीत होता है। (आर्य पृ. २१)"

३ सायन आदि तो स्पष्ट ही यम यमी को भाई और बहिन ही मानते हैं। क्यों कि वे पूर्व परंपराको स्थिर रखते हैं।

सायण को हम अपने आधारके लिये न भी स्वीकृत करें तो भी बृहद्देवताकार तथा यास्काचार्य निरुक्तकार ये बडे प्रामाणिक व्यक्ति ऐसे नहीं हैं कि जिनका निराकरण यौंही किया जा सकता है।

ब्राह्मण ग्रंथोंमें "यम और यमी" शब्द अनेक स्थान पर आगये हैं, उनमें भाई बहिन, पुत्र माता, आदि संबंध प्रसंगानुसार वर्णन किया है। एक ही पदार्थ की ओर विभिन्न दृष्टिसे कवि लोग देखते हैं, इसलिये यदि किसी स्थान पर भाई बहिन की कल्पना किसीने की, तथा दूसरे स्थानपर पुत्र और माता की कल्पना की, तो कोई दोष नहीं है। इस विषयमें उषा और सूर्य का दृष्टांत देखने योग्य है। कई स्थानों पर उषाका पुत्र सूर्य कहा है, कई स्थानों पर उषाका जार, उषाका पिता आदि वर्णन है। वह सब काव्य दृष्टीसे देखना चाहिये। वास्तव में सूर्य के स्थानमें पिता पुत्र आदिकी कल्पना लाक्षणिक ही है। उसीप्रकार यम यमीके विषयमें अग्नि तथा पृथ्वी की कल्पना भी लाक्षणिक है, अतः उस से यम यमी को भाई बहिन माननेमें अवश्यही विरोध होता है, ऐसा कहा नहीं जा सकता। प्रत्युत ब्राह्मण ग्रंथोंके अन्यत्र कथनानुसार अग्नि सूर्यका पुत्र और पृथ्वी सूर्यपुत्री है और यदि शतपथानुसार यम यमी अग्नि और पृथ्वी हैं, तो उनका परस्पर संबंध भाई बहिन का भी माना जा सकता है। और यदि ऐसा माना गया, तो शतपथादि ब्राह्मण-ग्रंथ, बृहद्देवता, निरुक्त और सायन भाष्य इनमें परस्पर विरोध बिलकुल नहीं रहता। शब्दार्थ के विषयमें विरोध बेशक रहे, परंतु "यम यमी" ये सहजात भाई बहिन होने में कोई मतभेद ही नहीं।

खोजका महत्व।

यहां प्रश्न हो सकता है कि ब्राह्मण, निरुक्त आदि ग्रंथोंमें भी भ्रम हो सकता है, इस लिये उन ग्रंथोंमें लिखी बात जैसी की वैसी हम क्यों मानें? क्या उन के विधानोंकी अधिक खोज करना पाप है?

इस पर हम कह सकते हैं, कि ऋषि प्रणीत शतपथादि ब्राह्मण हैं और आचार्य प्रणीत निरुक्तादि ग्रंथ हैं। ये ग्रंथ यद्यपि हमारे लिये मार्ग दर्शक हैं, तथापि केवल वह ऋषिका वा महर्षिका वाक्य है, अथवा मुनिका किंवा आचार्यका मत है, इसीलिये सर्वथा आदरणीय मानने

की कोई आवश्यकता नहीं। इस प्रकार की बौद्धिक गुलामी आर्योंमें कभी नहीं थी, और सच्चा आर्य ऐसी गुलामी कभी अपने ऊपर लेभी नहीं सकता। इसलिये शतपथादि ब्राह्मणों से लेकर बृहद्देवता तथा निरुक्तकार तक की मानी हुई बात- कि यमयमी ये आपसमें भाई बहिन ही हैं - श्री. पं० चमूपतिजीने स्वीकृत नहीं की, और अपनी खोज आगे बढाई, इस लिये हम उनका धन्यवाद गाते हैं। खोज सत्य हो वा असत्य, बौद्धिक गुलामी वृत्तिको हटाकर आगे बढाने से ही जनताका हित होता है।

केवल शतपथ में महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है इसलिये उसको आंख बंद करके स्वीकार करना कदापि योग्य नहीं है। परीक्षाकी भट्टीमें उसको तपाकर शुद्ध है वा अशुद्ध है,इसका अवश्य निर्णय करना चाहिये।

खोज की सचाई।

इसके पश्चात् "खोजकी सचाई" की भी खोज होनी चाहिये, वह सचाई की परीक्षा आंतरिक प्रमाणोंपर निर्भर है। प्रकृत प्रसंगमें यम यमी भाई बहिन हैं ऐसा निरुक्तकार तक के ऋषिमुनियोंने माना है, श्री. पं. चमूपतिजीने उनको पतिपत्नी सिद्ध करनेका आग्रह किया है। इनमें से कौनसा पक्ष ठीक है और कौनसा ठीक नहीं है, ऐसा विचार करने के समय स्वयं यमयमी सूक्त क्या कहता है इसपर अंतिम निर्णय होना संभव है। हमारे विचारसे पं. चमूपतिजीका मत यमयमी सूक्तके आंतरिक प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता, इसलिये केवल खोज करनेके यत्न के लिये उनको धन्यवाद देनेपर भी खोजकी असत्यता के कारण उनके मतका स्वीकार किया नहीं जा सकता।

यमयमी का अर्थ।

यमयमी का अर्थ क्या है इस विषयमें पं. चमूपतिजीने बडे विस्तार से अवतरणिकामें लिखा है —

यम । यमी। (सूक्तकी देवता)
आग्नि। पृथ्वी। (श. ब्रा. ७।२।१।१०)
(भाई[युगल]बहिन)बृहद्देवता ७।१६३
दिन । रात्री। (मोक्षमुल्लर)

यमयमी के ये अर्थ लें अथवा कोई अन्य अर्थ किये जांय। इन अर्थों के विषयमें कोई विवाद करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। क्यों कि उक्त शब्दोंका कोई भी क्यों न अर्थ हो, उनका पारस्परिक संबंध जो यमयमी सूक्त में कहा है, वह भाई बहिन का संबंध है, वा पति पत्नीका संबंध है, यही विचारणीय बात है और वह बात शब्दोंके अर्थ देखनेसे ही केवल निर्णीत नहीं हो सकती। देखिये यमयमी का दिन रात्री यही अर्थ लीजिये। दिन और रात्री का संबंध भाई बहिन का भी हो सकता है, क्यों कि विवस्वान सूर्य का पुत्र दिन और पुत्री

रात्री है। उनका परस्पर माता और पुत्रका भी संबंध माना जा सकता है। रात्रीका पुत्र दिन और दिनकी पुत्री रात्री जैसा कवीका विचार और कल्पना हो, वैसा माना जा सकता है। दिन पति, रात्री पत्नी और चंद्र उनका पुत्र यह भी एक कल्पना है। तात्पर्य कविकल्पना की आर्ष वाङ्मयमें सीमा नहीं है। इसकारण प्रकृत विचारमें यमयमी का शब्दार्थ देखने और निश्चित करनेका विशेष महत्त्व नहीं है।

विशेष महत्त्व इस बातका है कि इस सूक्त में दोनों का पारस्पारिक संबंध किस प्रकार का वर्णित है। इसलिये श्री. पं. चमूपतिजी ने स्वीकृत किये संपूर्ण अर्थ मानते हुए भी हम परिणाम में सहमत नहीं हो सकते।

यौगिक अर्थ।

यमयमी का यौगिक अर्थ "संयमी" ऐसा श्री. पं. चमूपतिजी ने स्वीकृत किया है। परंतु ऐसा मानने पर—

यम—संयमी पुरुष (पति या भाई)
यमी—संयमी स्त्री (पत्नी या बहिन)

दोनों संयमी होनेसे इस सूक्तकी संगति ही लग नहीं सकती, क्यों कि यमी के नामपर जो मंत्र हैं उनमें काम विकार भयानक रूप लिया हुआ दिखाई देता है। यौगिक अर्थ के पक्षमें दोनों को संयमी मानना पडेगा, वह यमीके भाषण में संगत नहीं होता, क्यों कि यमी संयमी दिखाई नहीं देती है। इसलिये इस सूक्त के विषयमें यमका अर्थ "संयमी" नहीं है।

यम का दूसरा अर्थ "युगल, जुडे भाई, एक योनिसे उत्पन्न सहजात भाई" यह है। यही यहां लेना चाहिये। यह अर्थ यम के विषयमें जैसा संगत होता है वैसा ही यमी के विषय में होता है, यही भाव लेकर बृहद्देवताकारने वैवस्वत यम यमी की कथा लिखी है।

यम संन्यासी नहीं है।

श्री. पं. चमूपतिजी कहते हैं कि यम संन्यास वृत्तिसे प्रभावित है, इसलिये वह संसार सुखसे दूर हो रहा है, परंतु यह उनकी निज कल्पना ही केवल है। यमयमी सूक्त में इसके विषयमें विरुद्ध प्रमाण है—

बतो बतासि यम नैव ते मनो
हृदयं चाविदाम। अन्या किल
त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते
लिबुजेव वृक्षम् ॥ १३ ॥
ऋ. १०।१०

यमी कहती है—"हे यम! तू सचमुच बलहीन है? तेरे मन और हृदय का हमें पता ही नहीं लगा। कोई अन्य स्त्री तेरा आलिंगन करेगी जैसी पेटी घोडेका और बेल वृक्षका।"

यहां यमी कहती है कि "हे यम! तेरा मन मुझपर नहीं है, तू दूसरे ही स्त्रीका स्वीकार करेगा और वह स्त्री तुझे

आलिंगन देगी । "

इस समय यमको अवसर है, कि वह अपने संन्यास व्रतका निश्चय यमीसे कहे, परंतु वह यमीका कथन अपनी मुग्धतासे स्वीकृत करके यमीके ही शब्दोंमें उत्तर देता है, परंतु एक भी शब्द से यमी के पूर्व मंत्रोक्त कथन का निषेध नहीं करता, देखिये --

अन्यमूषु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् । तस्या वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥ १४ ॥
ऋ. १०। १०

यम उत्तर देता है—"हे यमि! किसी और को तू, तथा कोई और तुझे आलिंगन करे, जैसे बेल वृक्ष को। तू उस के मन की इच्छा कर, वह तेरे मनकी इच्छा करेगा। इस प्रकार तुम दोनों की संगति तू अपने लिये कल्याणकारी कर।"

यह पूर्व मंत्रमें कहे यमीके कथन का उत्तर यम देता है। इसमें वह सन्यास का उल्लेख नहीं करता, वह इतनाही कहता है --

"कि (जैसा मैं किसी अन्य स्त्री को आलिंगन दूंगा,) उसी प्रकार तू भी किसी अन्य पुरुष को आलिंगन देगी।"

यह मंत्र देखने से स्पष्ट पता लगता है कि, यम के मनमें वैराग्य का लेश भी नहीं है। वह वैराग्य और सन्यास मात्र के कारण यमीके साथ संबंध नहीं छोडना चाहता है, अर्थात् यम के निषेधका कारण अन्य है, वह इसी के पूर्व मंत्रमें देखिये --

न वा उ ते तन्वा तन्वं संपपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् । अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १२ ॥
ऋ. १०।१०

यम कहता है—"मैं तेरे शरीरसे अपना शरीर संयुक्त न करूंगा। (यः) जो (स्वसारं) अपनी बहिनके पास (निगच्छात्) गमन करे, उसे (पापं आहुः) पापी कहते हैं। इसलिये मेरे सिवा किसी दूसरे से तू आनंद कर। तेरा (भ्राता) भाई (न वष्टि) यह नहीं चाहता।"

इसमें दो वाक्य स्पष्ट हैं —

(१) यः स्वसारं निगच्छात् तं पापं आहुः = जो बहिन के पास जाता है, उसे पापी कहते हैं।

(२) ते भ्राता एतत् न वष्टि = तेरा भाई यह नहीं चाहता।

इन मंत्रों का दूसरा कोई अर्थ नहीं है। यम अपनी बहिनसे शरीर संबंध करना नहीं चाहता। उसने "यमी बहिन होने के कारण ही शरीर संबंधका निषेध किया है," न कि स्वयं विरक्त होनेके कारण। संपूर्ण सूक्तमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है, कि जिससे यम का वैराग्य सिद्ध हो जाय। पूर्व स्थान में जो १४वां मंत्र दिया है, उस में यमने वैराग्य अव-

सर आने पर भी विवाह निषेध अथवा अपने वैराग्य का उल्लेख किया नहीं है। इतनाही नहीं, परंतु ध्वनित किया है कि "जैसा मैं दूसरी स्त्रीसे आनंद करूंगा वैसा तू भी कर" यह उत्तर देखनेसे और उसके अनुसंधान से इस मंत्रके (यमी -स्वसा) यमी बहिन तथा (यम-भ्राता) इन शब्दोंका प्रयोग देखनेसे स्पष्ट पता लगता है कि, यहां भाई बहिन के विवाह का निषेध है।

यम यमी
भ्राता स्वसा
(भाई बहिन)

इस स्थानपर "भ्राता" शब्दका अर्थ श्री. पं. चमूपतिजीने (भर्ता) पति किया है और "स्वसा" शब्दका अर्थ (अभिसारिका) प्रेमपत्नी किया है; वह न केवल गलत है, परंतु निराधार भी है। भ्राता और भर्ता ये शब्द एक धातुसे उत्पन्न होने पर भी "भाई" और "पति" के क्रमशः वाचक हैं। स्वसा शब्दका अर्थ पत्नी नहीं है, परंतु भगिनी है।

धात्वर्थ और यौगिक अर्थ की इतनी खींचातानी करनेसे और भ्राता का अर्थ पति करने से कोई विशेषता नहीं होती है। यदि इतना अर्थ खींचना है, तो अर्थका अनर्थ दूसरा और कोई नहीं हो सकता है। इस प्रसंगमें अथर्ववेदीय यमयमीसूक्त में जो दो मंत्रार्ध अधिक हैं, वे भी यहां देखने योग्य हैं —

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते
तनूं तन्वा सं पपृच्याम् ॥ १३ ॥
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता
स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥
अथर्व १८।१।

यम कहता है—"हे यमि! तेरा मैं (नाथं) नाथ (न अस्मि) नहीं हूं, जो मैं तेरे शरीर से अपने शरीर का संबंध करूं॥ मेरे मन और हृदय से यह बिलकुल प्रतिकूल है, जो (भ्राता) भाई होकर (स्वसुः) बहिन के (शयने) बिछौनेपर (शयीय) सो जाऊं॥"

ऋग्वेद के यमयमी सूक्तसे अथर्व वेदके सूक्तमें ये दो मंत्रार्ध अधिक हैं। और विचार करनेसे पता लगता है, कि ये मंत्रार्ध संदिग्ध बात अधिक स्पष्ट करनेके लिये ही आगये हैं।

(१) [हे यमि! अत्र अहं ते नाथं न अस्मि] = हे यमि! यहां मैं तेरा नाथ नहीं हूं।

(२) [भ्राता स्वसुः शयने शयीय एतद् मे मनस हृदः च असंयत] = भाई बहिनके बिछौने पर सोवे यह मेरे मन और हृदयसे विरुद्ध है।

ये मंत्र स्पष्ट बता रहे हैं कि, यम और यमी भाई बहिन हैं न कि पतिपत्नी। और इसी कारण यम यमीके साथ शरीरसंबंध करना नहीं चाहता, क्यों कि वैदिक धर्म के अनुसार भाई बहिनका विवाह निषिद्ध ही है।

श्री. पं. चमूपतिजीने ये मंत्र अपने भाष्यमें लिये नहीं हैं । लेते तोभी यहां भ्राता शब्दका अर्थ पति करना उनके लिये कोई अशक्य नहीं था । एक वार दृढ मन करके मंत्रों के अर्थ तोड मरोड करके अपने ढंगसे ढालने ही हैं, ऐसा संकल्प जो करेंगे उन के लिये "भ्राता और स्वसा" शब्द कितनीसी रुकावट डाल सकते हैं ? शोक हमें इस बातका है कि जिसने वेदके लिये इतना त्याग किया है। वे ही वेदके अर्थ अपने ढंगके अनुकूल ढालनेके लिये " भ्राता और स्वसा " को इतना पीसनेके लिये तैयार हुए हैं !! देखना है कि वेदके लिये ये सज्जन समर्पित होते हैं या वेद इनके लिये समर्पित बनाया जाता है !!! महाभारतमें इसीलिये कहा है -

विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।

म० भारत आदि. अ. १।२६७

" अल्पश्रुत अर्थात् जिसने श्रुतिका अध्ययन (श्रवण- मनन - निदिध्यासन) नहीं किया , उस पुरुषसे (वेदः बिभेति) वेद घबडाता है , क्यों कि वेद को यह डर लगता है, कि यह अल्पश्रुत पुरुष (मां) मुझे अर्थात् वेदको (प्रतरिष्यति) बिगाडेगा "।

यह वेदके मनमें डर है । यह डर हमें यहां सार्थ और सयुक्तिक प्रतीत होता है । क्यों कि जिस ढंगसे विद्वद्वर्य श्री० पं० चमूपति जी वेदकी खोज कर रहे हैं उस ढंगसे वेद के शब्दों का अर्थ बिलकुल सुरक्षित नहीं है । " भ्राता " शब्दका अर्थ पति होगया । " स्वसा " शब्दका अथ धर्मपत्नी बना दिया , अब केवल " माता " शब्द का यौगिक अर्थ " मान्य करनेवाली " है, वह ले कर " पतिके लिये मान्य करनेवाली धर्मपत्नी" इतना ही अनर्थ करना शेष है!!! भ्राता और स्वसा के शब्दार्थ बिगाडनेसे जो डरते नहीं वे " माता" का अर्थ धर्म पत्नी करनेसे भी डरेंगे क्यों ? धात्वर्थ अथवा यौगिक अर्थ लेकर अर्थ करना तो है , उसका ढंग आ जाय या, न आजाय ; अपने मन घडंत अर्थको सिद्ध करना है , उस कार्य की पूर्ति के लिये वेदके अर्थ तोडे और मरोडे गये, तो इनको पर्वाह कहां है ? थोडीभी पर्वाह होती तो इतना अनर्थ ["भ्राता" का अर्थ पति !] कभी न करते । हमें वारंवार आश्चर्य होता है कि इनसे इतना साहस कैसा होता है ?

भ्राता और भर्ता !

भ्राता शब्द जगत् की कई भाषाओं में है, युरोपकी प्रायः सब भाषाओं में गया है, परंतु किसी भी भाषामें इसका अर्थ पति नहीं है । यौगिक अर्थ देखकर भाव निश्चित करने के लिये इस प्रकार का प्रयुक्त अर्थका कोई आधार चाहिये। भ्राता शब्दका जिस जिस भाषा में प्रयोग

है वहां केवल "भाई" यही एक अर्थ है। पति ऐसा किसी भी भाषामें इसका अर्थ नहीं है।

केवल एक धातुसे उत्पन्न होनेके कारण संपूर्ण शब्दोंका एक ही अर्थ नहीं होता। जिस भ्रमसे यहां पं. चमूपतिजीने भ्राता का अर्थ पति किया है, उसी प्रकार के अन्य भ्रमसे महाराष्ट्रीय पंडित और इतिहास संशोधक महात्यागी सुविज्ञानी श्री. विश्वनाथ काशिनाथ राजवाडे महोदयजीने भी यहां भ्राता का अर्थ पति कर के इसी सूक्तसे यह अनुमान घड दिया है कि –"वेदके पूर्व समय की जनता में भाई बहिन आपस में शादी करते थे, इसका सूचक यहां का भ्राता शब्द है क्यों कि भ्राता तथा भर्ता ये एक ही धातुसे शब्द बनते हैं !!"

इस लेख का हम खंडन ही करनेका विचार कर रहे थे, इतने में इसी मतकी पुष्टि करने वाला लेख श्री. पं. चमूपतिजीका प्रसिद्ध हुआ ! तब हमें सचमुच आश्चर्य प्रतीत हुआ! हां इन दोनों लेखों में भिन्नता इस बातकी है कि पं. चमूपति जी यम यमी को इसी सूक्तमें भी पतिपत्नी सिद्ध करते हैं, परंतु पं. राजवाडे जी इसीसे पूर्वकालीन बात सिद्ध कर रहे हैं। दोनों ने "भ्राता" शब्द के यौगिक अर्थ का ही प्रमाण अपने आधार के लिये दिया है। भ्राता का अर्थ पति करनेसे कितना अर्थ का अनर्थ होता है यह यहां देखिये। अस्तु।

यम और यमी भाई बहिन हैं, युगल हैं, एक गर्भ से सहजात भाई बहिन हैं, यही बात इसी सूक्त में यमीने भी कही है —

> गर्भे नु नौ दम्पती कर्दवस्त्वष्टा
> सविता विश्वरूपः। न किरस्य
> प्रमिनान्ति व्रतानि वेद नावस्य
> पृथिवी उत द्यौः ॥ ५॥
>
> ऋ. १०।१०।

यमी कहती है — "परमेश्वरने हमें (गर्भे) गर्भ में ही दंपती बनाया है। उसके नियमों को कोई तोड नहीं सकता। इ."

इस मंत्रमें (गर्भे नौ दंपती कः) परमेश्वरने गर्भ में ही हम दोनों को दंपति बनाया था, यह कहा है क्यों कि एक गर्भ में सहजात भाई बहिन ये थे। इसलिये यमी का कहना यह है कि "यदि हमारा विवाह परमेश्वर को मंजूर न होता, तो हमें एक गर्भ में क्यों बनाता? जिस कारण सर्व सामर्थ्यशाली परमात्माने हमें एक गर्भ में रखा, तो उसने ही गर्भ में हमारा पति और पत्नीका संबंध बना दिया है। परमात्मा के नियम कोई तोड नहीं सकता, इसलिये हे यम ! तू उसके नियम न तोड और मेरे साथ शरीरसंबंध कर।"

यह कथन स्पष्ट बता रहा है, कि ये सहजात भाई बहिन हैं। यदि ऐसा न

माना जाय तो शब्द के अर्थ ही विपरीत करने पडेंगे और यमीके कथन का भाव भी (Force of argument.) बिलकुल नहीं रहेगा। "गर्भ" का अर्थ श्री. पं. चमूपतिजी भिन्न ही मानते हैं, वह उनकी रुची और आग्रह है। पूर्वापर संगति देखनेसे उनको अपनी गलतीका पता लग जायगा। अब यम-यमी विवाहित थी या नहीं, इसका विचार करना है —

यमयमी पतिपत्नी नहीं थी।

इस विषयमें मंत्र ७ का प्रमाण देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। देखिये वह मंत्र —

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सह शेय्याय। जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां विचिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ७ ॥

ऋ. १०।१०

यमी कहती है —"मुझ यमी को यम का काम हुआ है, एक साथ शयन स्थानमें सोनेके लिये। जिस प्रकार (जाया) स्त्री अपने (पत्ये इव) पतिके लिये अपना शरीर प्रगट करती है, उस प्रकार मैं अपना शरीर प्रगट करूं और हम रथके चक्रोंकी तरह उद्यम करें।"

इस मंत्रमें (जाया पत्ये इव) "धर्मपत्नी अपने पतिके लिये जिस प्रकार होती है उस प्रकार मैं यमी तेरे (यमके) साथ रहूं" यह भाव प्रकट होगया है।

यदि यमयमी विवाहित पतिपत्नी हैं, जैसा कि श्री. पं. चमूपतिजी मानते हैं, तो (जाया पत्ये इव) "पति पत्नी के समान" इन शब्दों की व्यर्थता होगी। जो विवाहित पतिपत्नी अर्थात् दंपति हैं उनको (जाया पत्ये इव) पतिपत्नी समान कहा नहीं जा सकता, क्यों कि वे स्वयं पतिपत्नी हैं। "घोडा घोडेके समान" ऐसी उपमा नहीं होती। जिस अवस्थामें जो होगा उसको उसीकी उपमा संगत नहीं होती।

यमी प्रस्ताव कर रही है और यमसे याचना कर रही है कि "मैं तेरे साथ इस रीतिसे रहना चाहती हूं कि जैसी पत्नी पतिके साथ रहती है।" यमी का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाय तोही दोनोंका पतिपत्नी संबंध विवाह संस्कार के पश्चात् बनना है। प्रस्ताव के समय गांधर्व विवाह पद्धतिमें भी पतिपत्नीका संबंध नहीं होता है। प्रस्ताव स्वीकृत होने पर गांधर्व विधिसे विवाह होनेके पश्चात् वह संबंध होगा।

इस सप्तम श्लोक के शब्द देखनेसे स्पष्ट पता लगता है और साथ साथ पूर्वके मंत्र देखनेसे भी स्पष्ट होजाता है, कि यमी का प्रस्ताव यम स्वीकार ही नहीं करता, इसलिये कि यम भाई है। भाई बहिन का किसीभी अवस्थामें शरीर संबंध न होवे यह बात बताना वेदको यहां अभीष्ट है।

(१) घरमें साथ सोना, (२) पति-पत्नी के समान रहना, (३) रथके चक्रोंके समान रहना, यह सब यमी की इच्छा है, यमी का प्रस्ताव है । पाठक यहां स्मरण रखें की विवाह संस्कार से प्राप्त अवस्था यह नहीं है। सहजात भाई बहिन का अवश्य विवाह होना चाहिये; यह यमीका पक्ष है, यमी इसी हेतु को देकर कहती है --

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्ये-
त्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबंधृ
यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥ ९ ॥

ऋ. १०।१०

यमी कहती है-"रात्री और दिन इसे उपदेश दें । सूर्य की चक्षु इसकी आखें खोलें । द्यौ और पृथिवी यह युगल आपसमें संबंधित है । उसी प्रकार यमी यम के साथ (अ-जामि) बंधुत्व-रहित संबंध धारण करे । "

इस मंत्रमें "सहजात युगल भाई बहिन आपस में पतिपत्नीवत् रहते हैं इसलिये यमयमी सहजात भाईबहिन भी वैसे ही रहें, " यह यमी का हेतु (argument) है ।

(१) सूर्य से उत्पत्ति होनेके कारण दिन और रात्री आपसमें सहजात भाई बहिन हैं, तथापि एकदूसरे के साथ पतिपत्नीवत् मिले रहते हैं और यह उनके पिता सूर्यको पसंद है क्यों कि वह बारंबार देखता हुआ भी उसका निषेध नहीं करता । प्रकाश और अंधकार, प्रकाश और छाया, साथ साथ रहते हैं इसप्रकार यह रूपक यमी बता रही है और सह जातोंका विवाह सृष्टिनियमा-नुकूल बता रही है ।

(२) आत्मासे उत्पन्न होने के कारण द्यौ और पृथिवी सहजात भाई बहिन हैं, तथापि "द्यौः" अपना वीर्य (जल) पृथ्वीपर फेंकता है और वानस्पत्यादि संतति उत्पन्न करता है ।

यमी ये दो हेतु देती है और यम के मनको अपना प्रस्ताव स्वीकृत करनेके लिये अपने अनुकूल बनाती है । ये हेतु सहजात भाई बहिन के ही हैं, इन हेतु ओंका विचार करनेसे भी पता लगता है कि ये यमयमी सहजात भाई बहिन हैं, न कि विवाहित पति पत्नी ।

उक्त हेतुओंको सुनकर यम उत्तर देता है—

आधा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र
जामयः कृणवन्नजामि । उपबर्बृहि
वृषभाय बाहु मन्यमिच्छस्व सुभगे
पतिं मत् ॥ १० ॥

ऋ. १०।१०

"हां! वैसे आगे युग आयेंगे जिस समय (जामयः) भाई बहिन (अजामि) बंधुत्वरहित व्यवहार करेंगे । [इस समय वैसा पतित काल नहीं है] इस कारण तू मेरे से भिन्न किसी अन्य पति की इच्छा

कर और अपना बाहू उस बलवान के लिये फैला ।"

इस मंत्रमें स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है कि जब तक धर्मका युग रहेगा तब तक भाई बहिन का शरीर संबंध नहीं हो सकता । मनुष्य समाज के पतन की अवस्थामें वैसा होगा । ऐसा पतन का युग अवश्य आयगा यह कहने का तात्पर्य यहां नहीं है, प्रत्युत जो यमीका प्रस्ताव यमके सन्मुख है उसकी स्वीकृतीकी संभावना धर्ममर्यादाके आस्तित्व के समय नहीं हो सकती, अधर्मका युग जहां होगा वहांही इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकृत हो सकता है । इतनाही इसका तात्पर्य है । इसलिये स्वयं भाई होनेके कारण यम कहता है कि "तू किसी दूसरे से यह शादीका प्रस्ताव कर, दूसरेसे अपना काम संबंध जोड । यह भाई तेरी यह इच्छा धर्ममर्यादा के कारण पूर्ण करही नहीं सकता ।"

जामि और अजामि।

इस सूक्तमें " जामि और अजामि" ये शब्द विशेष अर्थ से प्रयुक्त हुए हैं। यम और यमी दोनोंके कथन में ये शब्द समानही अर्थसे प्रयुक्त हुए हैं । श्री. पं. चमूपतिजीने इन शब्दोंके अर्थोंकी खोज बहुत करनेका यत्न किया है, परंतु अशुद्ध मार्ग से खोजका यत्न करनेके कारण विपरीत परिणाम तक उनकी खोज पहुंची है ।

ये मंत्र इतने स्पष्ट हैं, कि इनका विचार करनेके समय हम "जामि अजामि" के अर्थ जो अन्य स्थानमें हैं, न भी देखें, तो भी हम ठीक अर्थ का पता लगा सकते हैं।

मंत्र ९ में दिन रात्री तथा द्यावा पृथिवी के युगल को दर्शाकर यमी यम से कहती है कि "(यमी यमस्य अजामि बिभृयात्) यमी यमके साथ अजामि जैसा संबंध धारण करे ।"

यमी चाहती थी कि यमके साथ अपना शरीर संबंध हो । इस शरीरसंबंध का दर्शक "अजामि" शब्द इस मंत्र९ में है। अर्थात् दोनोंका शरीर संबंध न होनेका हेतु "जामि" शब्द बताता है । विवाह निषेध करनेके समय "(नौ परमं जामि) हम दोनोंका परम जामि संबंध है ।" इसलिये हम दोनोंका परस्पर शरीरसंबंध नहीं होगा (देखो मंत्र४) ऐसा यम कह रहा है ।

इससे सिद्ध है कि इस सूक्त में जामि और अजामि शब्दोंके अर्थ निम्न प्रकार हैं —

जामि = परस्पर का ऐसा संबंध कि जिससे परस्परका शरीर संबंध पतिपत्नी वत् हो नहीं सकता ।

अजामि = परस्परका ऐसा संबंध कि जिसमें स्त्रीपुरुषोंका पतिपत्नीवत् व्यवहार हो

सकता है ।

इस सूक्त में "भ्राता, स्वसा, एकगर्भ में स्थिति" आदि वर्णन जो अन्यत्र है, वह देखनेसे यमयमी का भाई बहिन रूप संबंध स्थिर और निश्चित ही है, इस लिये इस सूक्तमें "जामि" शब्द भाई बहिन का संबंध और "अजामि" शब्द भाईबहिन नहीं ऐसा पतिपत्नी संबंध बतानेवाला माना जाता है और वह युक्तियुक्त ही है ।

सत्यका असत्य ।

मनुष्य एक वार तुल जाय तो वह मर्जी आये बातें मानने लगता है, वही अवस्था श्री. पं. चमूपतिजीकी इस सूक्तकी खोजके समय होगई है देखिये—

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनं
ऋतं वदन्तो अनृतं रपेम ॥ ४ ॥
ऋ. १०।१०।

यम कहता है—"नहीं जो पूर्व समय में हमने किया, कैसे भला अब करें ? नियम का व्याख्यान करने वाले ही क्या नियम तोडनेवाला कर्म करें ?"

यम के कथन का तात्पर्य यह है कि "जो पहिले कभी नहीं किया गया वह अब हम कैसे करेंगे ? अर्थात् भाई बहिन का शरीर संबंध कभी नहीं हुआ वह अब कैसे हो सकता है ? क्या हम ही जो नियमों की व्याख्या करनेवाले हैं वे ही नियम तोडनेवाला कार्य करें ? ऐसा कर्म हमारे से कदापि नहीं हो सकता ।" यह यम के कथनका तात्पर्य है । इसका कितना विपरीत अर्थ श्री० पं० चमूपतिजीने किया है, देखिये —

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनं

पं-चमूपतिकृत अर्थ- " जो हमने पहिले किया अब कदापि नहीं करेंगे"

बिलकुल उलटा अर्थ यह है! और यह बनता भी नहीं क्यों कि " कद्ध नूनं " का अर्थ " कैसे भला अब ? " इतना ही प्रश्नार्थक हो सकता है। यदि पिछला " न " कार , जो यहां आ नहीं सकता, वह बलात्कार से लाया भी जाय तो (कद्ध नूनं न ?) कैसे भला अब नहीं ? ऐसा हो सकता है । और संपूर्ण मंत्र चरणका अर्थ " जो हमने पहिले किया कैसे भला अब नहीं करेंगे ? " ऐसा बनेगा । परंतु जैसा पं०चमूपतिजी लिखते हैं वैसा कभी हो ही नहीं सकता । अर्थात् पं ० चमूपतिजी की सांत्वनार्थ हमने नकार को पिछले वाक्यार्थके साथ संबंधित मानने पर भी उनके लिखित अर्थसे बिलकुल विरुद्ध अर्थ होता है और इस अर्थसे यमी का प्रस्ताव स्वीकार करनेका पातक यम कर रहा है, ऐसा सिद्ध हो रहा है !! यम जिस पातकसे अर्थात् भगिनीसे शरीर संबधके पापसे दूर रहना चाहता है, और बडी युक्ति प्रयुक्तिसे बहिन को समझा रहा है, वही पातक श्री. पं० चमूपतिजी उनके गले में लटका देते

हैं !!! इस प्रकार यदि चतुर्थ मंत्रमें यमकी स्वीकृति ही हुई तो आगे के मंत्रोंका कोई उपयोग ही नहीं रह सकता है।

वास्तवमें " न यत्पुरा चकृमा, कद्ध नूनं " इसमें न कार का संबंध पहिले वाक्य के साथ है और दूसरे वाक्य के साथ नहीं है। क्यों कि यमी के प्रस्ताव का इन्कार ही यमने सर्वत्र किया है, और यमयमी कभी पतिपत्नी के नातेसे रही ही नही थीं। इसलिये "जो हमने किया अब कदापि नहीं करेंगे" ऐसी झूंठी गवाही यम से दिलवानी अथवा यम की अनुमतिके विनाही न कार को दूसरे स्थानपर ले जाकर यम के कथनका विपरीत ही अर्थ करना यह वेद के पक्षपाती श्रेष्ठ पंडित के लिये कदापि उचित नहीं है।

सखा।

पहिले मंत्र में यमीने यमको "सखा" शब्द से पुकारा है और दूसरे मंत्रमें यमने भी वह सखा शब्द अपने लिये स्वीकृत किया है। इससे श्री. पं० चमूपति जी अनुमान करते हैं कि दोनों का पतिपत्नी संबंध हो चुका था। परंतु यह अर्थकी किंवा अनुमान की विडंबना है। क्यों कि सखा शब्दसे केवल पतिपत्नी से संबंधित सख्य ही बोधित होता है ऐसा कभी कहा नहीं जा सकता, हां पति पत्नीका सख्य, मित्रोंका सख्य, भाई बहिनका सख्य, पितापुत्र का सख्य, राजा प्रजाका सख्य ये सब विविध सख्य हैं। तात्पर्य सखा शब्द सामान्य समानशीलता बतानेवाला शब्द है, इससे इतना लंबा अनुमान नहीं निकाला जा सकता।

हां, प्रथम मंत्रमें जो सख्य यमी चाहती है वह पतिपत्नी संबंध का ही सख्य है, परंतु यमीका भाव जानकर यम स्पष्ट शब्दोंसे उस का निषेध ही करता है देखिये—

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्।

ऋ. १०।१०।२

"तेरा सखा यह सख्य नहीं चाहता" यह यमका कथन है। यमीका प्रस्ताव यम समझ गया था, इसी लिये उसने उत्तर दिया कि " ऐसा सख्य मैं नहीं चाहता। " इससे पूर्व भाई बहिनका सख्य दोनोंमें पहिलेसे था ही। परंतु यमीको भाई बहिन के सख्य की अपेक्षा पतिपत्नी संबंधसे उत्पन्न सख्य चाहिये था। वह यम चाहता नहीं था। क्योंकि यह नवीन प्रस्ताव था। देखिये—

ओचित् सखायं सख्या ववृत्यां

ऋ. १०।१०।१

" मैं अपने सखा को सख्य भावके लिये वर्ण करती हूं। " अथवा मैं अपने सखा के साथ सख्य भावसे वर्तन करती हूं किंवा वर्तन करूं।

इसमें केवल यमी की इच्छा व्यक्त हो रही है, यमी प्रस्ताव कर रही है, यमी

यमको पतित्व के लिये पसंद (choose) करती है। इस शब्द प्रयोग से भी पता लगसकता है कि इनका विवाह इससे पूर्व हुआ नहीं था। यह एक यमी का यमके प्रति (proposal) प्रस्तावित विचार था। इसको श्री. पं. चमूपतिजी-ने गलत समझा है और वे सखा शब्द यहां देखकर ही इनको विवाहित समझने लगे हैं। परंतु वैसा समझने के लिये मंत्रमें अल्प भी प्रमाण नहीं है। प्रत्युत "ववृत्यां" क्रिया भविष्यकाल का प्रस्तावित वर्ताव बता रही है। यदि यह प्रस्ताव यमसे स्वीकृत होता तो वे दोनों पतिपत्नी भावसे रह सकती थीं। परंतु ज्ञानी यमने यमी का अधार्मिक प्रस्ताव माना नहीं, इस लिये उन दोनोंमें विवाह संबंध कभी हुआही नहीं। अब और एक बात देखिये—

समान लक्षण।

द्वितीय मंत्रमें यमके वचनमें निम्न लिखित विधान आता है--

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद्विपुरुषा भवाति ॥

ऋ. १०।१०।२

"तेरा सखा इस प्रकारका सख्य चाहता नहीं जिसमें (स-लक्ष्मा) समान लक्षण वाली (विपुरूपा) विषमरूप वाली बनती है।" अर्थात् समान लक्षण वाली बहिनके साथ विषमरूपवाली स्त्री (पत्नी) के समान व्यवहार करना पडे, इस प्रकार का सख्य मैं नहीं चाहता, यह यम का कथन है।

एक मातापितासे उत्पन्न होने के कारण भाई बहिन के लक्षण, अवयव, चिन्ह आदि बहुत अंशमें समान होते हैं। इस प्रकारके समान चिन्हवाले भाई बहिनका विवाह हुआ तो संतान में बडा बिगाड होता है। इसलिये सगोत्र विवाह शास्त्रमें निषिद्ध माना है। अन्य गोत्र के उत्पन्न स्त्रीपुरुष विषम वृत्तिवाले होते हैं, उनमें गुणकर्म स्वभाव का साम्य देख कर विवाह होना लाभकारी होता है। तात्पर्य विवाहके लिये सगोत्रतासे उत्पन्न होनेवाली समान लक्षणता न हो परंतु भिन्न गोत्रोत्पन्न होनेपर जितनी समान गुणता मिलजाय उतनी अच्छी है। यह बतानेके लिये मंत्रमें ये शब्द आगये हैं। परंतु पं. चमूपतिजीने इस-का भी स्वारस्य नष्ट किया है।

यम कहता है, कि हमारे समान लक्षण हैं, इसीलिये हममें विवाह नहीं हो सकता, क्यों कि विवाह करनेके पश्चात् हमें विरुद्ध आकारवालों के समान आचरण करना पडेगा।

स्त्रीपुरुष विरुद्ध आकारवाले, (वि-सुरूप) भिन्न रूपवाले हैं, दोनों के रूपमें बडा भेद है। विवाह संबंधके सख्य में ये विभिन्न आकार एक दूसरेके पोषक होते हैं, किसी अन्य सख्य संबंधमें यह नहीं होता।

इसकारण यम कहता है कि हमें उक्त प्रकार आचरण करना पडेगा, इसलिये मैं वैसा सख्य नहीं चाहता, जैसा तू चाहती है ।

यहां यमका कथन कितना सीधा है, परंतु श्री. पं. चमूपतिजीने इस मंत्रमें भी विवाहित स्त्रीपुरुष संबंध की बू सूंघी है और इसके लिये " सखा " शब्द में ही उन्होंने प्रमाण देखा है !! परंतु यह कैसे सिद्ध हो सकता है, हमारे समझमें नहीं आता है ।

तात्पर्य जितनी भी रीतियोंसे हमने देखने का यत्न किया, उतनी रितियोंसे हमें पं. चमूपतिजीका कथन सरासर गलत प्रतीत हुआ है । इसलिये हमारे मतसे –

(१) यमयमी सूक्त में यम और यमी ये आपसमें सहजात युगल भाई बहिन हैं ।

(२) मंत्रका " गर्भ " शब्द " माता का गर्भ " ही दर्शाता है । वह बेशक् आलंकारिक भी माना जाय तो भी कोई हर्ज नहीं है ।

(३) इसमें यमयमीका तात्पर्य पतिपत्नी नहीं है । परंतु केवल भाईबहिन ही है ।

(४) यमयमी कभी विवाहित नहीं हुई थी, परंतु केवल यमी यमसे विवाहका ही प्रस्ताव कर रही थी, जो यमने स्वीकृत किया ही नहीं ।

(५) भ्राता का अर्थ यहां भाई ही है न कि पति ।

(६) सारे सूक्तमें भाई बहिन के संवाद की ध्वनि है, दांपत्य संबंध बतानेवाला एकभी शब्द इसमें नहीं है ।

(७) विवाह संबंधसे किंवा सांसारिक सुखसे यम विरक्त नहीं था, परंतु वह बहिनसे विवाह करना नहीं चाहता था ।

यम और यमी ।

यम और यमी शब्द भाईबहिनके वाचक होने के विषयमें साधारण प्रमाण भी यहां देखने योग्य है ।

यम	यमी
पुत्र	पुत्री
कुमार	कुमारी
कृप	कृपी
गौतम	गौतमी

इत्यादि अनेक शब्द भाई बहिन का संबंध बताने वाले संस्कृत सारस्वतमें प्रसिद्ध हैं । कई स्थान पर अन्य अर्थ भी होगा परंतु वह इनके भाई बहिन होनेका पूर्ण निषेध नहीं करता, इतना ही यहां बताना है ।

अंतमें ।

निवेदन इतनाही है कि वेदकी खोज करने के मिषसे वेदको अपनी मर्जीके अनुसार ढालना नहीं चाहिये । परंतु मनकी अवस्था यह रखनी चाहिये कि

वेदसे हमें कुछ प्राप्त हो। वेदसे धर्म हमें सीखना है न कि वेदके सिरपर हमने अपने मनका धर्म मढना है।

श्री. पं. चमूपति जीका हमें पूर्ण परिचय है। वे विद्वान, सुविचारी, वेद के प्रेमी, ऋषियोंके भक्त, शास्त्रोंके श्रद्धालु, उत्साही, धार्मिक मनः प्रवृत्तिसे युक्त हैं। अन्यान्य सद्गुण भी उनके अंदर बहुत हैं।

यदि अपने प्रयत्नसे वेदमंत्रकी ऐसी शोचनीय अवस्था बनेगी, इस विषयमें थोडासा भी संदेह उनके मनमें खडा हो जाता, तो वे इस प्रकार का लेख लिखनेको कभी प्रवृत्त ही नहीं होते। हमारा पूर्ण विश्वास है कि यह खोजका पयत्न उन्होंने बडी श्रद्धासे और वेदपर अटल निष्ठासे ही किया है, परंतु दिशा भूल होनेके कारण परिणाम विपरीत ही होगया है।

दिशाभूल।

आजकल कई विद्वान ऐसे हैं कि जो वेदके विषयमें श्रद्धा तो रखते हैं, परंतु अपनी दिशाभूल होगई है इसका इन को पता तक नहीं है! और वे बडे वेगसे वेदके विषयमें लेख लिखते हैं। इस प्रकारके कई विद्वानों के लेख और पुस्तक भी इस समय जनता में प्रचलित होगये हैं। परंतु इनके पुस्तकों से वेदके ज्ञानका प्रचार तो दूर रहा, परंतु वेदके विषयमें अज्ञानही अधिक फैल गया है और जनता वेदके धर्मसे प्रतिदिन दूर ही हो रही है। परंतु इनको पता तक नहीं है कि अपने प्रयत्नसे हो क्या रहा है? हम जो करना चाहते थे वह बन रहा है वा बिगड रहा है इसका भी इनको पता नहीं है।

निश्चय समझना चाहिये कि यह वैदिक धर्म की रक्षा का प्रयत्न निःसंदेह ही नहीं है। परंतु यह वैदिक धर्म के नाश का ही प्रयत्न है। यह अवस्था जब इनके ध्यानमें आजायगी तब तो कुछ लाभ की आशा है, परंतु ध्यानमें आनेकी संभावना ही हमें दीखती नहीं है। ये अपने मनः कल्पित अवस्थापर ऐसे दृढ हैं कि उससे एक रतिभर भी हिलना नहीं चाहते।

औंध में पशुयागका शास्त्रार्थ।

औंध में जो पशुयाग विषयमें शास्त्रार्थ होने वाला है,- उसके लिये सहायता आ रही है। ता. २० मई तक जो सहायता प्राप्त हुई है उसका ब्यौरा नीचे दिया है।

" निर्मांस यज्ञ " विषयपर जो पुस्तक मुद्रित करना है उसके लिये मुद्रणव्यय करीब दो हजार चाहिये। उसमेंसे इस समय तक करीब तीसरा भाग वसूल हो गया है। पाठक प्रयत्न करेंगे तो शेष रकम वसूल होना कोई अशक्य बात नहीं है। आशा है कि पाठक सज्जन अपने अपने स्थानपर यत्न अवश्य करेंगे ही।

कई पाठकों ने अपनी संमति निर्मांस यज्ञके अनुकूल लिखकर भेजी है और कई पुरुषार्थी सज्जनोंने अपने नगरमें सभा करके उस सभाकी संमतिभी लिखकर सबके हस्ताक्षरोंके साथ हमारे पास भेजी है। कई आर्य समाजियोंने व्यक्तिशः तथा कई समाजों ने संघशः पशुयाग के प्रतिकूल संमति लिखकर हमारे पास भेजी है सो पहुंच चुकी है। इन सबका हार्दिक धन्यवाद है।

इस समय हमारे पास करीब चारसौके हस्ताक्षर प्राप्त हुए हैं आशा है कि अगले महिनेमें इससे अधिक प्राप्त हो जांयगे। समय पर इस सबका प्रभाव अच्छाही हो जायगा।

शास्त्रार्थ की तिथि अभीतक निश्चित नहीं हुई। लिखा पढी ही चल रही है। तिथिका निश्चय होते ही एक मास पूर्व वृत्तपत्रों द्वारा सबको सूचना दी जायगी।

कई लोगोंके पत्र हमारे पास आगये हैं जो कि शास्त्रार्थ के समय यहां उपस्थित होना चाहते हैं। उनके प्रति निवेदन है कि उन को एक मास पूर्व पत्र द्वारा सूचना अवश्य भेजी जायगी। यहां जितने लोग आवेंगे उनके रहने सहने और भोजनादिका प्रबंध मुफ्त किया जायगा। यहां कई सज्जनोंने उस व्ययका भार उठानेका वचन दिया है।

यहां शास्त्रार्थके समय जो बृहत् हवनयज्ञ किया जायगा उसका सब व्यय श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहौर ने अपने जिम्मे लिया है। घृत, हवन सामग्री, चंदन काष्ठ आदिके व्यय की व्यवस्था इस प्रकार होगई है। अन्य समिधायें जितनी आवश्यक हैं यहां ही विना मूल्य मिल जांयगी। इस रीतिसे बृहत् यज्ञके व्ययकी व्यवस्था भी हो चुकी है।

इसके अतिरिक्त चार पंडित शास्त्रार्थके समय पर भेजनेका स्वीकार भी श्री० आर्य प्र. सभा पंजाबने किया है। अर्थात् इनका व्यय भी श्रीमती सभाकी ओर से होगा। तात्पर्य इतनी तैयारी होगई है।

बंबई और यू. पी. प्रांतोंके आर्य प्र. सभाओं और पंडितों के साथ लिखा पढी हो रही है। अभीतक उचित उत्तर आये नहीं है। उनका निश्चय होते ही पाठकों को इसी प्रकार सूचित किया जायगा।

इस समय तक जो कमी है वह " निर्मांस यज्ञ " के ग्रंथमुद्रण के व्यय की ही कमी है। अतः पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इसके लिये उचित सहायता शीघ्र ही भेज दें, क्यों कि यह पुस्तक अतिशीघ्र छपकर तैयार होनी चाहिये।

इस समयतक निम्न लिखित सहायता प्राप्त हो चुकी है।

म. मुकुंदलालजी आर्य ४)
म. हरिकृष्ण कन्हैयालालजी २५)
राजा गोविंद प्रसादजी १०)
पं. रामचंद्रजी एस्. डी.ओ. ५)
श्री. बा- शामलालजी चौधरी १०)
श्री. मंत्री आर्य समाज बहावलपुर १०)
श्री. बलवंतसिंह रावजी ५)
पं- मूलचंद शर्माजी धीमान् ५)
म. रामेश्वर दयालजी १॥)
म. मुं. अंबिका प्रसादजी ५)
म. राधाकृष्णजी पेशकार २॥)
म रामरत्न लहसन्सदार २॥)
पं- मूल चंदजी गुप्त २)
बा- भगवानदिनजी २)
म. जगन्नाथजी १)
म. ईश्वरलालजी १)
म. लक्ष्मीप्रसादजी ॥)
म. देवी प्रसादजी २५)
म. रणछोडलाल गिरधरलालजी ६०)
म. रामलाल मोहरवानी ५)
श्री. आर- डी. यावलकर १)
श्री. मेलारामजी मास्टर ५)

प्रधान आर्य समाज कुरुक्षेत्र

म. रामजीदास जी ४)
पं. सोमदत्तजी २)
पं. शांतिस्वरूपजी २)
पं. भगीरथजी २)
म वेदमित्रजी २)
म. भगतरामजी १)
म. चिरंजीवजी १)
म. विश्वबंधुजी १)
म. लक्ष्मणजी १)
म. श्रद्धारामजी १)
म. शिवराजजी १)
म. गोपालजी १)
म. द्वारकादासजी १)
म. नौबतरायजी ।)
म. धर्मदेवजी विद्यार्थी २)

२६।) २२)

डा. साहब दयालुजी १०)
म. सोमाभाई जेठाभाई ५)
म. गणेशदत्तजी (आर्यसमाज जामपुर) २५)

डा. जयन्तीजी	२६)	डा. ए.एस.वडनेरे	३)
म. वि० के० दवे	१०)	भिषगाचार्य श्री.विश्वनाथजी	१०)
शा. देवजी रायसी	७)	म. सरमुख सिंहजी	१०)
म. लक्ष्मीचंदजी	३)	श्री. प्रतापसिंहजी	१०)
म. मदनजितजी आर्य	३)	श्री. महादेव प्रसादजी	१)
श्री. मंत्री आर्य समाज सदर बाजार दलहौसी	२॥)	श्रीमती रमादेवीजी	॥)
म. दशरथराम विद्यार्थीजी	२)	ब्र. कृष्णचंद्रजी	१)
म. हुकुम चंदजी	२)	म. संतरामजी	५)
म. हरिभजनजी वैश्य	२)	म. काशीरामजी	४)
म. पुरंदर राम सिताराम जायसवाल	५)	योग	३५९)
पं. सर्वजित जी गौर	२)	पूर्वप्रकाशित	२३६)
		२२।५।२५ केदिनतक प्राप्त	५९५)

कामधेनु क्या है?

(श्री हंसराज जी, पुस्तकाध्यक्ष रीसर्च पुस्तकालय, डी. ए. वी. कालेज, लाहौर)

लोक में प्रसिद्ध है कि महर्षि वसिष्ठ के पास 'कामधेनु' नामक एक गौ थी जो कि नाना प्रकार के भोजन वस्त्र रत्नादि यथेष्ट पदार्थ मांगने पर तुरन्त देती थी। उसे विश्वामित्र ने वसिष्ठ जी से छीन लिया था। तथा—

एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला शत्रुसूदन।
विदधे कामधुक्कामान्यस्य यस्येप्सितं यथा॥

वा०रामायण बालकांड। ५३।१॥

तस्याथ कामधुग्धेनुर्वसिष्ठस्य महात्मनः।
उक्ता कामान्प्रयच्छेति सा कामान्दुह्यते सदा॥

महाभारत, आदिपर्व, १७५।९॥

निम्न लिखित स्थलों पर भी कामधेनु की चर्चा है:—

१ विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु।
अथर्व० ४। ३४। ८॥

२ विश्वरूपा धेनुः कामदुघाऽस्येका।
अथर्व० ९। ५। १०॥

३ पश्चिमा वारुणी दिक् च धार्यते वै सुभद्रया। महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया (?)॥ सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम्। उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम्॥

महाभारत उद्योग पर्व, १०२।९—१०॥

४— सुदुघा पृश्नि। ऋ५।६०।५ (पृश्निः)= गोदेवता इतिसायण: cow of plenty-Macdonell's Vedic Mythology Pages 150 and 168.

५ एषा वै स्तनवती विराड् यङ्कामङ्कामयते तं मेतां दुग्धे। ताण्ड्य महा ब्राह्मण २०।१।५॥

उपरि लिखित प्रमाणों से सिद्ध है कि शबला, विश्वरूपा, पृश्निः और विराट् कामधेनु के नामान्तर हैं॥

यथेष्ट भोजनादि सब वस्तुओं को तत्काल देने वाली किसी ऐतिहासिक कामधेनु का होना तो सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से नितान्त असम्भव है। अब इस बात का अन्वेषण करते हैं कि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में कामधेनु किसे कहा गया है जिसके न समझनेसे ही ऐसी भ्रान्ति हुई है।

१—निम्न लिखित प्रमाणों से सिद्ध है कि गो मात्र का नाम कामधेनु है:—

(क) संहितासि विश्वरूपी। यजु० ३।२२॥
संहितासि विश्वरूपा ... एतानि वै गोर्नामानि, संहिता विश्वरूपा गौः। काठक संहिता ७७। (मैत्रायणी संहिता १। ५। ६ भी देखो)॥

(ख) विराड् वै गौः ('विराट्'—यजु० १३। ४३)। शतपथब्राह्मण ७।५।२।१९॥

(ग) एतद्वै देवा इमांल्लोकानुखां कृत्वैतैस्तनैः सर्वान् कामानदुहत तथैवैतद्यजमान इमां लोकानुखां कृत्वैतैः स्तनैः सर्वान् कामान् दुहे॥ सैषा गौरेव। इमे वै लोका उखेमे लोका गौः। शतपथ ६।५।२।१६-१७॥

दुग्ध घृतादि नाना प्रकार के पदार्थ देने से माता के समान मनुष्योंका भरण पोषण करने तथा उनकी खान पान की सम्पूर्ण

मनः कामनाओं को पूर्ण करने से गौ में कामधेनुत्व प्रत्यक्षसिद्ध है तथा; ....

(क) धेन्वनडुहौ वा इदं सर्वं बिभृतः । शतपथ ३ । १ । २ । २१ ॥

(ख) गौर्वा इदं सर्वं बिभर्ति।श० ३।१।२।१४॥

(ग) माता धेनुः । श० २ । २ । १ । २१ ५ । ३ । १ । ४ ॥

(घ) महांस्त्वेव गौर्महिमा ....॥ गोर्वै प्रतिधुक् । तस्यै शृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि तस्यै मस्तु तस्याऽआतञ्चनं तस्यै नवनीतं तस्यै घृतं तस्या ऽ आमिक्षा तस्यै वाजिनम्। श० ३।३।३।२॥

(ङ) मनुष्याणां ह्येतासु (गोषु) कामाः प्रविष्टाः । श० २। ३।४।३४॥

२– निम्न लिखित प्रमाणों से सिद्ध है कि "कामधेनु" पृथिवी का भी नाम है ॥

(क) इयं (पृथिवी) वै पृश्निः । तैत्तिरीय ब्राह्मण १।४।१।७॥

(ख) यातयमानो अधि सानु पृश्नेः । ऋ. ६।६। ४॥

इस मन्त्र में पृश्नि का अर्थ सायण तथा ग्रिफिथ ने नाना रूप वाली पृथिवी किया है ॥

(ग) अथर्व वेदके पृथिवी सूक्त में पृथिवी को स्पष्ट कामदुघा = कामधेनु कहा गया है- त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघापप्रथाना ...।१२। १।६१॥

(घ) इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी तै० १।७।६।७॥

(ङ) इयं (पृथिवी) वै विराट् श० १२।६। १। ४० गोपथ उ० ६ ।२॥

(च) विराड्ढीयम्(पृथिवी)।श०२।२।१।२०

(छ) अयं वै (पृथिवि-) लोको विराट् (यजु० १३ । २४) । श० ७ । ४ । २ । २३ ॥

नाना प्रकार के अन्न रस और रत्नादि सब पृथिवीसे ही उत्पन्न होते हैं । अतः पृथिवी से मनुष्यों की सब कामनाएं पूरी होती हैं अतः इसका 'कामधेनु' होना भी प्रत्यक्ष सिद्ध है ॥

३— निम्न लिखित प्रमाणों से वाणी का नाम भी "कामधेनु" सिद्ध होता है:-

(क) वाग्वै शबली (= "कामधेनुः" इति सायणः) तस्यास्त्रिरात्रो वत्सस्त्रिरात्रो वा एतां प्रदापयति॥ तद्य एवं वेद तस्मात एषाऽप्रत्तादुग्धे । तां० ब्रा० २१ । ३ । १-२ ॥

अमरकोष कां० २, (वैश्य) वर्ग९, श्लोक ६७ की महेश्वर कृत टीका में शबली तथा चित्रवर्णा (विचित्र रङ्गों वाली) गौ को कहा गया है पूर्वोक्त ब्राह्मण वचन में शबली को वाणी का नाम कथन किया गया है । विचित्र भाषण ही वाणी का विचित्र रूप है । वैसा भाषण करने वाले को पण्डित कहा गया है यथा:-- प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् । आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥ विदुर नीति १ ३३ ॥

(ख) वाग्वै विराट श० ३।५।१।३४॥

(ग) वागु सर्वं भेषजम् ।७।८।४।२८।।

यहां वाणी को सब दुःखों के मिटाने वाली अर्थात् सब सुखों को देने वाली कहा गया है, और यही वाणी का कामधेनुत्व है ।।

सत्य, अर्थवत्व, विचित्रत्व, माधुर्य्यादि गुणों से युक्त वाणी मनुष्य को क्या क्या ऐश्वर्य्य प्राप्त नहीं कराती, इसी लिये वाणी मनुष्य की सांसारिक समग्र कामनाओं को पूरा कराने से कामधेनु कही गई है तथा वाणी का प्रभाव लोक में प्रसिद्ध है यथा:—

१ – कः पर : प्रियवादिनाम्

२ – अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।

३ – अर्थवच्च विचित्रञ्च न शक्यं बहुभाषितुम् ।।

४ – यदीच्छासि वशीकर्त्तुं जगदेकेन कर्मणा । परापवादसस्येभ्यो गां (वाचं) चरन्तीं निवारय । (व्याख्यानमालायाम्)

५—कामान्दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीर्त्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति ;

तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः।। (सुभाषितभाण्डागारे)

४ निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कामधेनु उषा का भी नमा है?——

(क) शुक्रर्षभा नभसा ज्योतिषा ऽ गाद् विश्वरूपा शबलीरग्निकेतुः ;।

समानमर्थं स्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आऽगाः।तैत्तिरीयसंहिता ४।३।११।५

(ख) धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहाना ... ।
ऋ० ३ । ५८ । १ ।।

इस मन्त्र में सायण तथा ग्रिफिथ ने भी " धेनुः " का अर्थ उषा किया है ।।

५– निम्नलिखित प्रमाणों से रोहिणी नक्षत्र का नाम भी कामधेनु है:—

(क) प्रजापते रोहिणी वेतु पत्नी । विश्वरूपा बृहती चित्रभानुः ।। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ । १ । १ । १ ।।

(ख) दक्षस्य तनया याभूत् सुरभिर्नाम नामतः । गवां माता महाभाग सर्वलोकोपकारिणी ।। तस्यान्तु तनया जज्ञे कश्यपात्तु प्रजापतेः । नाम्ना सा रोहिणी शुभ्रा सर्वकामदुघा नृणाम् ।।
(शब्दकल्पद्रुमे कालिकापुराणवचनम्)

(ग) सा (विराट्) तत सा ऊर्ध्वारोहत् सा रोहिण्यभवत् । तै० १।१।१०।६।।

(घ) विराट् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रतिष्ठितिः । तै० १ । २ । २ । २७ ।।

विद्वज्जनों से नम्र निवेदन ।

महानुभावो ! खोज करने पर ऐसी ऐसी अनेक बातों का पता लग सकता है अतः आप से यही प्रार्थना है कि आप मुख्यतया वेद तथा तत्सम्बन्धी ग्रंथों का ही अनुसंधान करें। यदि आप में से कोई भी मेरी प्रार्थना को स्वीकार करे तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूंगा ।

(आर्य जगत्)

अभिनव अर्जुन ।

गुरुकुल-कांगडी (हरिद्वार) विश्वविद्यालयके सुविख्यात श्रीमान् देशबन्धु विद्यालंकार उत्तरीय भारतमें 'अभिवनअर्जुन' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपके धनुर्विद्याके चमत्कारोंने हजारों लोगोंको आश्चर्य-चकित कर दिया है। रामायण व महाभारत में प्रतिपादित मत्स्यवेध, शब्दवेध, सप्ततालवेध, अक्षिवेध आदिके अनेक चमत्कारपूर्ण प्रयोग आप अपने धनुष बाणसे करते हैं। योगशास्त्र- प्रतिपादित प्राणविद्यामें आपकी कुशलता देखकर बडे बडे डाक्टर- सिविल सर्जन-तक भी आश्चर्यसे स्तब्ध हो जाते हैं। क्योंकि आप प्राणविद्याके सहारे अपनी हाथ व माथे आदि की नाडियोंकी गति और हृदयकी धडकन तक बन्द कर लेते हैं। शारीरिक बल भी आपने अच्छा सम्पादन किया है। मसल्स कण्ट्रोल्में तो आपने कमाल कर डाला है। हाथीको बांधनेवाली जंजीरमें बांधे जाकर बाहिर निकलना; आदमियोंसे भरी गाडीको छाती, हाथ और जांघपरसे निकालना, १५०० पौण्डका पत्थर छातीपर रखवाना और १५ घोडेकी ताकतकी मोटरका रोकना आपके लिये मामूली बातेंहैं।

योग साधन तथा धनुर्वेद की खोज केलिये हम श्री. देशबंधुजीका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

शीर्षासनका अनुभव ।

(ले० -- श्री० चोखेलाल दीक्षित, कासगंज)

सेवामें श्रीमान मान्यवर महोदयजी नमस्ते हर्ष है। धन्यवाद है॥ निवेदन है कि लगभग बीस सालके बीतचुके होंगे कि मेरी आदत में हो चुका था कि मैं किसी रोगमें दवाई करना उत्तम नहीं समझता था। अधिक तर मेरा विश्वास उपवास चिकित्सापर था। जब से मैंने आपकी लिखी अमूल्य पुस्तक "आसन" का अवलोकन किया है तबसे योग की क्रियाओं द्वारा रोगोंकी निवृत्ति पर आसनों की क्रिया द्वारा अच्छा अनुभव होगया। मुझे लगभग दो सालसे उदरपीडा शूल दर्द था। "शीर्षासन" करनेसे रोगका नाम तक नहीं रहा। यहां तक कभी कभी गुदा द्वारा लोहू से धोती खराब हो जाती थी वो रोग भी अब नहीं रहा मेरी आयु इस समय ५२ साल की है। मैं १६ अप्रैल से प्रतिदिन शीर्षासन किया करता हूं।

यज्ञका गूढ तत्त्व।

वैदिक धर्मका प्राण ही यज्ञ है। यज्ञ हटा दिया जाय, तो वैदिक धर्म में कोई सत्त्वही नहीं रहता; इतना महत्त्व यज्ञसंस्थाका वैदिकधर्म में है। परंतु जिस प्रकार वैदिक धर्म की अन्यान्य संस्थाएं लुप्त अथवा कलुषित हुईं, उसी प्रकार आर्यों की यज्ञ संस्था भी प्रायः लुप्त और जो अवशिष्ट है वह कलुषित हो चुकी है। इसलिये इस यज्ञसंस्थाका मूल शुद्ध स्वरूप देखनेका यत्न करना चाहिये। वेदका अन्वेषण, तथा प्राचीन परंपरा का अभ्यास करनेसे ही इस यज्ञ संस्थाका पता इस समय भी लगना संभव है। यह कार्य एक दो दिन के अल्प प्रयत्नसे होना संभव नहीं है, प्रत्युत सैंकडों मनुष्य विभिन्न केंद्रों में बीसियों वर्षोंतक ठीक मार्गसे प्रयत्न करेंगे, तभी यह कार्य होना संभव है। इसलिये इस दृष्टिसे थोडासा प्रयत्न इस लेखमें करने का विचार है।

संस्कृतमें सामान्यतः और वेदमें विशेषतः पदार्थों के नाम विशेष महत्त्व रखते हैं, मानो प्रत्येक नाम उस उस पदार्थ की व्याख्या ही है जिसका कि वह वाचक है। यद्यपि प्रत्येक और हरएक शब्द के विषय में हम यह सिद्ध न कर सकें, तो भी बहुत ही शब्दोंके विषयमें उक्त नियमकी यथार्थता इस समयमेंभी हम देख सकते हैं। इसी नियम के अनुसार आज यज्ञ के विविध नामों का विचार करना है।

निघण्टु (३ । १७) में यज्ञवाचक १५ नाम दिये हैं, उनके अर्थ और उनके आशय प्रथम देखिये—

(१) यज्ञ।

सबसे प्रथम "यज्ञ" शब्द हमारे सन्मुख आता है। इसका अर्थ सुप्रसिद्ध है– "देव पूजा, संगतिकरण और दान" ये इसके मूल अर्थ हैं। देवोंका सत्कार, संगतिकरण अर्थात् संघटन और परोपकार अर्थात् दूसरोंकी सहायता करने के लिये आत्म-समर्पण करना ये तीन भाव इसमें मुख्य हैं।

विचार करनेसे पता लगजायगा कि ये तीन भाव ही मानवी उन्नतिके महामंत्र हैं। (१) सत्कार करने योग्य जो हैं उनका सत्कार करना, (२) आपसमें संगठनका बल बढाकर अपनी संघशक्ति का उत्कर्ष करना, और (३) जो हीन दुर्बल हैं,

उनकी उन्नति के लिये आत्मसमर्पण करना ये तीन भाव ऐसे हैं, कि जिनके पालन करनेसे हरएक समाज तथा संघ निश्चयसे उन्नत हो सकता है।

देवपूजा करनेका प्रश्न जहां उत्पन्न होता है; वहां देव कौन हैं, देवोंका स्वरूप क्या है, इस प्रश्नका विचार अवश्य करना पडता है। यज्ञके अर्थमें भी 'जो देवपूजा है, वह किनकी पूजा है, इसका यहां विचार अवश्य करना चाहिये।

देव शब्द भाषामें किंवा संस्कृत भाषामें भी प्रसिद्ध है। ब्राह्मणोंको " भूदेव " कहते ही हैं। क्षत्रियों को " देव " शब्दका प्रयोग नाटकादिकों में भी हुआ है। वैश्य धनदेव सुप्रसिद्ध हैं और कर्मदेव शूद्र ही हैं। ये देवोंके चार भेद आजकलके नहीं हैं अनादिसिद्ध हैं—

ब्राह्मण —— भूदेव, ज्ञानदेव
क्षत्रिय —— राष्ट्रदेव, शौर्यदेव
वैश्य —— धनदेव
शूद्र —— कर्म देव

ज्ञान के मुख्य होनेके कारण ब्राम्हणों को भूदेव कहते हैं, अर्थात संपूर्ण भूमंडलपर उनका देवत्व है, यह निर्विवाद है। राजा का मान उसके नीचे है क्यों कि राजा का संमान केवल उसके राज्यमें ही होता है, कवि भी कहते हैं —

स्वदेशे पूज्यते राजा
विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

अपने देशमें सम्राट् की पूजा होती है परंतु विद्वान की सर्व भूमंडलभर में पूजा होती है।

धन का मान तीसरे दर्जेपर है, इसी लिये व्यवहार में भी राजा की अपेक्षा धनीका मान कम गिना जाता है। द्विजों में ये तीन देव हैं। इसके अतिरिक्त तीनों द्विजों के लिये सामान्य सहायक चतुर्थ जो हैं उनको " कर्मदेव " कहते हैं। आर्योंकी अवनतिके सारस्वतमें इन कर्म देवोंको घृणाकी दृष्टिसे देखने का प्रारंभ हुआ, तथापि उन्नतिके सारस्वतमें इन शूद्रोंकी भी योग्यता बडी तथा नमस्कारार्ह थी।

अस्तु, ये चार प्रकारके देव हैं। जिनकी पूजा देवपूजा कहलाती है। इन चारों में से एक एक प्रतिनिधि और स्त्री-जातीका एक प्रतिनिधि मिलकर पंचायतन पूजा होती है। इसी कारण पंचायतन-पूजामें स्त्री भी संमिलित होगई है। अस्तु। इन चार वर्गों में जो पूजाके लिये योग्य हैं उनका सत्कार करना यज्ञकी देवपूजा है। इस विषयका विस्तार बहुत हो सकता है, परंतु यहां संक्षेपसे ही देखना है इसलिये यहां इतनाही पर्याप्त है।

" संगति करण " का अर्थ "संगटन" स्पष्ट ही है, समाज तथा राष्ट्रका जीवित ही संगतिकरण के विना नहीं हो सकता। जातीयताका यही प्राण है।

दान का अर्थ सत्पात्र के लिये अर्पण करना होता है। आजकल इसका भी विपरीत अर्थ हुआ है जो कोई हो उसको अर्पण करनेका नाम

दान नहीं । इस प्रकारके अविचार से किया हुआ दान तामस दान होने के कारण दाताकी अधोगति करता है और लेनेवालेको भी गिरा देता है ।

देव पूजा, संगतिकरण और दान अर्थात योग्य सत्कारार्होंका सत्कार, संगठन और सत्पात्र में अर्पण ये यज्ञके तीन मुख्य लक्षण हैं । पाठक विचार करके जान सकते हैं कि, ये लक्षण जिस यज्ञमें घटते हैं, वह किस प्रकार राष्ट्रका हित साधन कर सकता है । यज्ञका मुख्य ध्येय इसी प्रकार सार्वजनिक अथवा सार्व राष्ट्रीय होता है ।

(२) वेन ।

यज्ञवाचक नामोंमें " वेन " शब्द दूसरा है । " वेन " का अर्थ " गति, ज्ञान, चिंतन, निशामन अर्थात दर्शन, वाद्यवादन तथा स्वीकार है । इसके अतिरिक्त इसके अर्थ "इच्छा, पूजा, सत्कार, मेधा, " आदि भी हैं । गति अर्थात् हलचल करना, ज्ञान बढाना, चिंतन अर्थात सोचना किंवा विचार शक्तिकी जागृति करनी, निशामन अर्थात दर्शन शक्तिका उत्कर्ष करना, दूर दृष्टिका विकास करना, वाद्यवादन अर्थात गायन-वादन आदिका उत्कर्ष करना और जो अच्छी बातें हैं, जो उन्नतिके साधन हैं, उनका स्वीकार करना । इच्छा शक्ति, मेधा-शक्ति आदि शक्तियोंका उत्कर्ष करना । ये सब कार्य वेन नामक यज्ञके अंतर्भूत होते हैं ।

पाठक यहां देखते जांय कि पहिले " यज्ञ " की अपेक्षा इस " वेन " के कार्यक्षेत्र में किस रूपमें भेद है । यद्यपि यज्ञ वेन आदि शब्द यज्ञके ही वाचक हैं, तथापि हरएक शब्द से बताया हुआ कार्यक्षेत्र भिन्न भिन्न है ।

साधारणतः समझा जाता है, कि सब शब्द एक ही भाव बताते हैं, परंतु वास्तवमें वैसा नहीं है । प्रत्येक नाम विभिन्न यज्ञसंस्थाका वाचक है । यहां पाठकोंको ध्यानमें धरना चाहिए कि, जिस प्रकार "कर्म" शब्द सामान्य है बैठने उठने से लेकर राष्ट्रवर्धनकारी अश्वमेध पर्यंत सबही यद्यपि कर्म हैं, तथापि आंतरिक दृष्टिसे देखा जाय, तो प्रत्येक कर्म भिन्न भिन्न ही है; उसी प्रकार यज्ञ और वेन ये तथा अन्य यज्ञवाचक शब्द यद्यपि यज्ञवाचक हैं, तथापि सब का तात्पर्य, उद्देश्य और कार्य क्षेत्र एक ही नहीं है । इसकी भिन्नता इन शब्दोंके अर्थके विज्ञानसे ही विशद हो सकती है ।

पहिला " यज्ञ " शब्द सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नतिका भाव विशेष कर बताता है और यह " वेन " शब्द " ज्ञान, मेधा, चिंतन " आदि आंतरिक शक्ति विकास की सूचना दे रहा है । पाठक यह उद्देश्यका भेद यहां देखें और यज्ञवाचक दोनों शब्दों से व्यक्त होने वाले कार्यक्षेत्र का विचार अपने मनमें ठीक प्रकार स्थिर करें । ऐसा करनेसेही आगेका विचार समझनेके लिये सुगमता हो सकती है ।

(३) अध्वर।

यज्ञवाचक नामोंमें " **अध्वर** " शब्द विशेष ही महत्त्व रखता है, इसका ठीक अर्थ " **अहिंसा** " है। " ध्वर " शब्दका अर्थ " कुटिलता, हिंसा, नाश " आदि प्रकार का है और उसका निषेधक शब्द " अ-ध्वर" है। इस लिये इसका अर्थ " अकुटिल, सीधा, सरल, अहिंसामय, विनाशरहित " ऐसा होता है।

इसके अतिरिक्त और भी एक महत्त्व-पूर्ण अर्थ " अध्व-र " शब्दको है। " अध्व " शब्द मार्गवाचक है और " र " शब्द " देना, बताना " बता रहा है। अर्थात् अध्वर शब्दका अर्थ इस व्युत्पत्तिसे " मार्ग दर्शक, सत्यमार्ग को बतानेवाला " है।

जिसमें कुटिलता नहीं है, जो सीधा और सरल है, तथा जिसमें हिंसा नहीं है, वही ठीक मार्गदर्शक हो सकता है। इस प्रकार दोनों अर्थोंकी संगतिभी हो सकती हैं।

संपूर्ण यज्ञ कर्म कैसा होना चाहिये, उसके कार्यकर्ता किस मनोभावनासे युक्त होने चाहिये और कुल कर्मका उद्देश्य क्या होना चाहिये, इसका निश्चय इस शब्दके मननसे हो सकता है।

संपूर्ण यज्ञकर्म पूर्ण अहिंसामय होना चाहिये, कीसीकोभी कायिक वाचिक अथवा मानासिक कष्ट न पहुंचे, यह उद्देश्य यज्ञ-कर्ताका सदा होना चाहिये। मनके सब कुटिल भाव दूर रखने का यत्न होना चाहिये, तथा सबका कल्याण बढे और किसीका नाश न हो इस विषयका विचार यज्ञकर्ताके मनमें सदा जागता चाहिये।

"सरलता, सीधापन, तेढेपनका अभाव, अहिंसा " येही सद्गुण हैं, जो अध्वरसे बताये जाते हैं। तथा जनताको सत्य मार्ग बतानेवाला यह कर्म होना चाहिये, अर्थात इस यज्ञ कर्मसे जनता स्वयं सन्मार्गपर चलती रहे, यह इस कर्मका उद्देश्य है।

पहिले " यज्ञ " शब्दने राजकीय तथा सामाजिक उन्नतिके कार्य क्षेत्रका बोध किया है। दूसरे यज्ञवाचक " वेन " शब्दने वैयक्तिक तथा सार्वजनिक ज्ञान और मेधा शक्तिकी उन्नति की सूचना दी है और यज्ञवाचक इस तीसरे " अध्वर " शब्दने अहिंसामय सब कर्म करनेका उपदेश दिया है। पाठक इन बोधोंका विचार करें और यज्ञ-वाचक शब्दसे जो कार्यक्षेत्र सन्मुख आता है उसको विचार की आंखसे देखें।

(४) मेध।

यह मेध शब्द भी यज्ञवाचक है। इसके मुख्य तीन अर्थ हैं, मेधाबुद्धिका संवर्धन, संगतिकरण अथवा संगठन और हिंसा। " मेधा हिंसनयोः संगमे च " ये इसके धात्वर्थ हैं। मेधाबुद्धिका संवर्धन और संगम, मिलाप अथवा संगठन ये अर्थ ऐसे

हैं, कि जिनके विषयमें किसीकोभी कोई संदेह नहीं हो सकता। क्यों कि ये दोनों भाव यज्ञवाचक पूर्व शब्दोंमें आये ही हैं। "वेन" शब्द के अर्थमें जो ज्ञान वर्धन का भाव है, वही इसमें किंचित् रूपान्तरसे विद्यमान है। संगठनका भाव भी यज्ञ शब्दके समान ही इसमें है।

ये दोनों भावोंकी इसमें विद्यमानता है, इसीलिये हम कह सकते हैं, कि मेधमें "यज्ञ और वेन" इन दोनों यज्ञवाचक शब्दोंका भाव इकठ्ठा हुआ है। यज्ञका संगतिकरण किंवा संगठन तथा वेन का ज्ञान संवर्धन ये दोनों भाव मेध में इकठ्ठे हुए हैं।

पहिले बतायाही है, कि "यज्ञ" शब्दसे उस कर्मका बोध होता है कि जो सार्व राष्ट्रीय है और "वेन" शब्दसे उस कर्मका विशेषकर बोध होता है कि जो वैयक्तिक होता है। ये दोनों प्रकार के कर्म "मेध" शब्दसे बोधित होते हैं, इसलिये हम कह सकते हैं कि मेध शब्दसे जिस यज्ञकर्म का बोध होता है वह यज्ञ-कर्म वैयक्तिक और सार्वजनिक दोनों भावोंसे युक्त है। अर्थात् मेधसे जैसा सार्वजनिक राष्ट्रीय हित सिद्ध होगा वैसा ही वैयक्तिक शक्तिसंवर्धन भी होगा।

नरमेध, अश्वमेध, गोमेध, अजमेध ये यज्ञ इस मेध के अंतर्गत हैं। उक्त शब्दार्थ लेनेसे इन यज्ञोंका भाव समझमें आसकता है। नरमेध वह कर्म है कि जिससे मनुष्य की वैयक्तिक और सार्वजनिक सच्ची उन्नति हो सकती है। ("नरमेध" का वर्णन करनेवाला स्वतंत्र पुस्तक यजुर्वेद स्वाध्याय में स्वा० मंडल द्वारा प्रसिद्ध हुआ है। पाठक इसका वर्णन वहीं देखें। इस पुस्तकमें यजु. अ. ३० कि व्याख्या ही है।)

"अश्वमेध" को "राष्ट्रं वा अश्वमेधः" ऐसे वचन कह कर स्वयं शतपथ ब्राह्मण-कारने ही यह यज्ञकर्म राष्ट्रसंवर्धन कारक है ऐसा कहा है। सम्राट् बननेवाला राजा एक अश्व छोडता है और संपूर्ण राजा महा-राजाओंको युद्धका आह्वान करता है। युद्ध के लिये जो आते हैं उनके साथ युद्ध करके उनका पराभव करता है, इस प्रकार जो सम्राट् सर्वोपरि शक्तिमान होता है वह भूमंडलका शासक होता है। अश्वमेध की यह पद्धति ही इसकी राष्ट्रीयता सिध्द करती है।

गोमेध की पद्धति प्रायः लुप्त होगई है इस-लिये उसका निरीक्षण करके यहां कुच्छ बताना इस समय असंभव है। तथापि नर-मेध और अश्वमेध ये दो यज्ञ जैसे राष्ट्रीय स्वरूपके दिखाई देते हैं उसी प्रकार यह भी राष्ट्रीय स्वरूपका ही होना संभव है। गोरक्षा, गोसंवर्धन, भूमि तथा कृषिसंवर्धन आदि भाव भी इसमें होने की संभावना बहुत है।

शेष रहा जो अजमेध वह धान्य हवन का महायज्ञ है, इस विषयके प्रमाण इसी मासिकके गत अंकमें दिये ही हैं। अज शब्दका अर्थ धान्य है, चावल और जौं है। इनके पुरोडाशका तथा घृतादिका हवन करके

यह यज्ञ करनेका विधान इस समय भी वैष्णव संप्रदायमें प्रचलित है। इसलिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

पितृमेध, गृहमेध आदि अनेक प्रकारके मेध हैं और इन सबमें मेधावृद्धि, संगठन आदिभाव हैं। इसमें जो " हिंसा " का अर्थ है, वह यज्ञमें पशुहिंसाका भाव नहीं बताता है, प्रत्युत उक्त कार्योंके विरोधकों की हिंसा करनी चाहिये, इतनाही बता रहा है।

मेध शब्दसे जो पुरुषार्थ के महत्कर्म पूर्व स्थलमें बताये हैं, उनमें राष्ट्रीय तथा सार्वजनिक अभ्युदयका भाव स्पष्ट है। इसलिये आवश्यकता पडने पर इन कार्योंके शत्रु-ओंकी हिंसा करनेकी सूचना यह शब्द दे रहा है। जिस समय यज्ञसंस्था जीवित और जाग्रत थी उससमय का भाव यह शब्द बता रहा है। परंतु यज्ञसंस्थाका नाश होने के पश्चात हरएक धर्मकृत्यमें जिस प्रकार भ्रंश हुआ है, उसी प्रकार यज्ञ संस्थामें भी दिखाई दिया तो कोई आश्चर्य नहीं है।

तात्पर्य आजकल अश्वमेधादिमें अश्वमांसकी आहुति देनेकी कल्पना सन्मुख आती है, परंतु प्रारंभ में अश्वमेधमें जो हिंसा होती थी वह साम्राज्यके शत्रुओंकी ही होती थी। इतना भेद ध्यानमें धरना चाहिये। राष्ट्र रक्षकोंका रक्षण और राष्ट्र विध्वंसकोंकी हिंसा यह भाव मेधमें स्पष्ट है। इसी प्रकार अन्यान्य मेधोंके विषयमें जानना चाहिये।

यहां इस बातका ख्याल अवश्य मनमें रखना चाहिये, वह ख्याल यह है कि, यज्ञमें चतुर्विध हवन सामग्री, घृत, समिधा आदिकोंका हवन अभीष्ट ही था। परंतु जैसा अश्वमेधमें साम्राज्य स्थापना मुख्य है उसी प्रकार पितृमेधमें पितृसत्कार प्रमुखस्थान रखता है। तात्पर्य सब मेधों और यज्ञोंमें हवन करना एक कार्य अवश्य था ही, परंतु उस उस यज्ञका विशेष अन्य कर्म से ही जाना जाता था।

इस प्रकार मेध नामक यज्ञोंमें राष्ट्र-संवर्धनादि भावों के संबंधमें हिंसा कैसी संमिलित हुई यह बात देखने योग्य है। और यह हिंसा युद्धादि प्रसंगों के कारण आवश्यक ही थी। इतनाही नहीं प्रत्युत अपरिहार्य सी थी।

पहिले " यज्ञ " शब्द में राष्ट्रोन्नतिका भाव है द्वितीय " वेन" शब्दमें वैयक्तिक उन्नतिकी सूचना है, तृतीय " अध्वर " शब्दमें अहिंसामार्ग बताया है। अर्थात् अहिंसाके मार्गसे ही वैयक्तिक आत्मोन्नति और सामुदायिक राष्ट्रोन्नतिका साधन करना चाहिये। परंतु यहां प्रश्न होता है कि अहिंसा पूर्ण प्रेममय मार्गसे जिनका वशीकरण न हो जाय, और वे यदि प्रबल शत्रुता ही करने लगें तो क्या किया जाय ? ऐसी अवस्थामें " मेध " शब्द आकर बता रहा है कि ऐसी अवस्थामें युध्दादि अपरिहार्यही हैं इसलिये वह करना चाहिये और आवश्यक हिंसा करनी चाहिये।

(५) विदथ ।

इस प्रकार शत्रुओंको दूर करनेके मेध आदि यज्ञकर्म करनेके पश्चात् हमारे सन्मुख यज्ञवाचक " विदथ " शब्द आता है, इसका मूल धात्वर्थ "ज्ञान, सत्ता (अस्तित्व) लाभ, विचार, चेतना " आदि है । " विदथ " शब्दके कोशोंमें अर्थ " ज्ञानी, साधु, त्यागी किंवा संन्यासी, ज्ञान और युद्ध " इतने हैं । मूल धात्वर्थ और ये प्रसिद्ध अर्थ इनका कोई विरोध नहीं है ।

जो युध्द का भाव हमने मेध शब्दमें पूर्वस्थल में बताया है, वही इस शब्दके अर्थ में भी है । इसके अतिरिक्त मेध के द्वारा राष्ट्रकी सुस्थिति होते ही और शत्रु दूर होते ही, अपने राष्ट्रका ज्ञान बढाना, अपना राष्ट्रीय अस्तित्त्व स्थिर रखनेके लिये प्रयत्न करना अपने राष्ट्रका लाभ करनेका उपाय सोचना और इस प्रयत्न के लिये संपूर्ण राष्ट्रमें चेतनता उत्पन्न करना आदि कार्य इस "विदथ " शब्द द्वारा सूचित होते हैं । ये सब कार्य अंदरूनी सुधार के हैं । राष्ट्रकी आंतरिक सुधारणा करनेसे ही वह राष्ट्र सदाके लिये सुखी उन्नत तथा उच्च रह सकता है । इस लिये बाह्य शत्रु दूर करने के साथ ही आंतरिक सुधार के लिये प्रयत्न करने का विचार जो इस शब्द द्वारा वेदने बताया है, वह हरएक मनुष्य को विचार करके देखना आवश्यक है ।

(६) नार्यः ।

इसके पश्चात् " नार्यः " शब्द यज्ञवाचक नामों में निघण्टुमें लिखा है । " नृ—नये " इससे यह शब्द बनता है । नीति, राजनीति, ये इसके धात्वर्थ हैं । वैयक्तिक नीति साधारणतया नीति शब्दसे जानी जाती है जिसमें विधिनिषेध, शील-संवर्धन तथा धर्माचार का संबंध है । दूसरी सामुदायिक नीति जिसका एक अंग राजनीति है । जो समाज अथवा राष्ट्र इन दोनों नीतियोंमें प्रवीण अथवा पूर्ण होता है वही परम उच्चताके शिखरपर पहुंचता है ।

इस प्रकार ये यज्ञवाचक छह शब्द मनुष्यों के लिये वैयक्तिक उन्नति तथा राष्ट्रीय उन्नति का संपूर्ण ज्ञान और विज्ञान सूचीत कर रहे हैं । जो पाठक इन शब्दोंका विशेष विचार करेंगे उनको इन शब्दोंके अंतर्गत ज्ञानका पता स्वयं लगेगा और यज्ञके सार्वराष्ट्रीय महत्त्वका भी पता लग जायगा ।

इन शब्दोंके विचार से ही आर्यों की वैदिक यज्ञ संस्था की राष्ट्रीयता स्वयं प्रकाशित हो सकती है ।

(७) सवनम् ।

" सु— प्रसवैश्वर्ययोः " इस धातुसे यह " सवन " शब्द बनता है । प्रसव, उत्पत्ति, प्रेरणा, ऐश्वर्य, प्रभुत्व ये इसके धात्त्वर्थ हैं । ये धात्त्वर्थ यद्यपि सामान्य भाव बता रहे हैं, तथापि इसका विशेष भाव जो यज्ञमें प्रचलित है, वह " पेय रस " वाचक ही है ।

यज्ञमें तीन सवन होते हैं, प्रातः, मध्यंदिन और सायं ये तीन नाम इन तीन सवनों के हैं । सोम औषधिका रस निकालना

और उसका पेय बनाना यही इनमें मुख्य भाग है।

इन यज्ञोंमें " वाज पेय " एक यज्ञ है जिनके करनेसे यजमान को " वाजपेयी " कहते हैं। आज कल नामके वाजपेयी किंवा वाजपेयी पंडित बहुत हैं, परंतु किन कारणोंसे उनका वह नाम बना यह भी उनमेंसे बहुतों को पता नहीं होगा। यह अवस्था इस समय की है क्यों कि यज्ञ संस्थाका इतना लोप हो चुका है।

" वाज-पेय " शब्दका अर्थ (वाज) अन्न और (पेयं) पेय, रसपान है। "अन्न-पान" यही इसका अर्थ है। पाठक यहां देखें कि आर्यों की वैदिक यज्ञ संस्थामें "खान - पान " नामक भी एक यज्ञ है !! असलमें देखा जाय, तो हरएक यज्ञ में खान पान होता ही है; फिर इसी यज्ञका नाम (वाज -- पेय) " खान पान "क्यों रखा गया ? यह प्रश्न विचारणीय ही है।

खान पान के संबंध का विचार इसमें विशेष होनेके कारण इस यज्ञका यह नाम रखा गया है। " वाज " शब्दका अर्थ शारीरिक बल और मानसिक शक्ति " भी है। अतः वाजपेयमें ऐसे अन्न और पेय का विचार होना स्वाभाविक है, कि जिसका शारीरिक और मानसिक शक्तिविकास के साथ घनिष्ट संबंध हो।

यह जैसा " वाज पेय " यज्ञमें है वैसा ही इस " सवन " में भी है। सवन में सोमरस का संबंध है और सोमरस ऐसी चीज है जो जीवनदात्री वैद्यशास्त्रमें सु प्रसिद्ध है।

पाठक यहां देखें कि आर्योंकी यज्ञसंस्था में खान पान का विचार भी कितना महत्व रखता है। राष्ट्रका और संघका हित उसी समय हो सकता है कि जिस समय राष्ट्र में खानपान का ठीक प्रबंध हो और ज्ञान संवर्धनकाभी प्रबंध उत्तम हो।

पिछले शब्दों द्वारा वर्णित अवस्था सिद्ध होते ही खानपान के प्रबंधकी सूचना यह शब्द यहां देरहा है। कितनी दृष्टिसे यज्ञका विषय विचार करना चाहिए और कितने महत्त्वपूर्ण विषय उसके अंदर हैं, इसकी कल्पना पाठकों को यहां हो सकती है।

(८) होत्रा।

(९) इष्टि।

ये यज्ञवाचक दो शब्द हैं, ये शब्द हवन के वाचक प्रसिद्ध हैं। यज्ञका एक प्रधान अंग हवन है हि।

निघंटु १। ११ में " होत्रा " शब्द का अर्थ " वाणी" दिया है, इससे वाक् शक्ति के विकास का भी इससे संबंध अवश्य आता है। इसी कारण ऐतरेय ब्राह्मण ५। ४ में " वाग्वै यज्ञः " कहा है।

(१०) देवताता।

यह शब्द यज्ञवाचक है, देवत्वका (ताता) फैलाव करनेका भाव इसमें है।

पूर्व ९ शब्दों द्वारा यज्ञ कर्म करनेसे जो देवत्व प्राप्त होता है, उसका संपूर्ण जगत में फैलाव करना हरएक आर्यका धर्म ही है।

वह देवत्व प्रचारका सूचक कर्म इस शब्द द्वारा बताया है। स्वयं देव बनना और जगत में देवत्वका प्रचार करना, स्वयं उच्च बनना और दूसरोंको उच्च बनानेका यत्न करना, स्वयं धार्मिक बनकर दूसरोंको धार्मिक बनानेके लिये धर्म प्रचारक बनना, इत्यादि सब भाव इस शब्द द्वारा सूचित हो रहे हैं पाठक इस लिये इस शब्दका विचार अवश्य करें ।

(११) मख।

" मह" धातुका अर्थ " पूजा और वृद्धि" है और यही धात्वर्थ मख शब्दका है, इस कारण " पूजा और वृद्धि " का वाचक मख शब्द माना जाता है ।

जो राष्ट्र पूर्व दस शब्दों द्वारा वर्णित कर्तव्य करेगा, उसकी संपूर्ण जगत में पूजा होगी और उसकी वृद्धि होगी, इसमें संदेहही नहीं। तथापि यह शब्द दूसरोंसे पूजा स्वीकार करनेका भाव नहीं बताता है, परंतु स्वयं इतनी अवस्था प्राप्त होनेपर भी सत्कार के लिये जो योग्य होंगे, उनका सत्कार करना और अपनी सब प्रकार से वृद्धि करनेका परम पुरुषार्थ करना , येही कर्तव्य सूचित करता है। अन्यथा उच्च शिखर पर पहुंचे हुए मनुष्यका भी पतन होना संभव है । अथवा उच्च शिखर पर पहुंचे मनुष्य का ही पतन अधिक जोर से होता है । और इसीलिये उच्च अवस्था प्राप्त होनेपर अधिक नम्रता और अधिक पुरुषार्थ का अवलंबन होनेकी अत्यंत आवश्यकता है ।

(१२) विष्णु ।

यह यज्ञवाचक शब्द है। इसका अर्थ व्यापक भाव बताता है। संकुचित भावका अभाव इस में है। यज्ञ वाचक " विष्णु " शब्द कर्मवाचकही है इसलिये " व्यापक कर्म " ऐसा इसका अर्थ है । व्यापक कर्मका तात्पर्य " वह कर्म कि जिस कर्म का परिणाम संपूर्ण जनतापर होता है," इसके विरुद्ध संकुचित कर्म है, इसका परिणाम व्यक्ति तकही रहता है ।

यह यज्ञवाचक शब्द बता रहा है कि, यज्ञमें सार्वजनिक व्यापक दृष्टि अवश्य धारण करनी चाहिये । संकुचित दृष्टिका त्याग और व्यापक दृष्टिका उदय इसप्रकार यज्ञ कररहा है।

इस प्रसंगमें संकुचित परिणाम वाले कर्म और व्यापक परिणाम वाले कर्मोंका विचार पाठक करें और व्यापक कर्मोंसे राष्ट्रहित कैसा होता है और संकुचित कर्मोंसे कैसा उसका बिगाड होता है , यह अवश्य देखें । यह देखनेसे ही पाठकोंको विष्णु शब्दसे बतानेवाले यज्ञ के भावका स्पष्ट ज्ञान होगा और यज्ञकी सार्वजनिकता भी ठीक प्रकार ध्यानमें आजायगी ।

(१३) इंदु ।

अब यज्ञवाचक "इंदु शब्द" देखना है। इंदु सोम अथवा चंद्र यह शांतिका सूचक सब जानते ही हैं। "उंदी-क्लेदने" धातुसे इंदु शब्द बनता है। इसलिये इसका मूल अर्थ गीला करने वाला होता है। इसका भी तात्पर्य शांती करने वाला है ।

इंदु चंद्रका नाम है और यही " कला निधि " भी है। कलाओंका निधि जो होता है, उसी को कला निधि कहते हैं। चौदह विद्याएं और चौसठ कलाएं होती हैं। चौसठ कला ओं अथवा हुनरों का जो अधिपति वही " कला-निधि, चंद, इंदु किंवा सोम " है।

पाठक पूछेंगे कि कलाओं का यज्ञके साथ क्या संबंध है? उत्तरमें निवेदन है कि यज्ञके साथ संपूर्ण कलाओं और हुनरों का संबंध है। शतपथ ब्राह्मणमें यज्ञ प्रकरणमें " शिल्प " का वर्णन इस स्थानपर देखने योग्य है। " शिल्प, आसुरी माया " आदि जो यज्ञमें प्रकरण हैं, उनको देखनेसे स्पष्ट पता लगता है कि यज्ञके कारण ही आर्यों में शिल्पोंका विकास हुआ था।

द्विजों की सब विद्याएं और सब कलाएं यज्ञ में प्रयुक्त होती थीं। और यह कलाओं के साथ होने वाला यज्ञ सर्वत्र राष्ट्रमें सुख और शांति स्थापन करने वाला होता था। इस समयतक बताये संपूर्ण यज्ञवाचक शब्दों का परस्पर संबंध देखनेसे पाठकों को स्वयं पता लग सकता है कि इस यज्ञसंस्था के कारण ही आर्योंके राज्यमें सुख और शांति रहती थी और उसका विशेष कारण कलाओंकी उन्नति ही है। जिस प्रकार संपूर्ण कलाओंसे युक्त चंद्रमा शांति देनेवाला होता है, उसी प्रकार संपूर्ण कला ओं से युक्त राष्ट्र भी शांतिमय और सुख समृद्धिसे परिपूर्ण हो सकता है। कलाओंका संबंध इस प्रकार सुखमय शांतिके साथ है।

इस शब्द द्वारा सूचित होता है, कि राष्ट्रमें कलाओंकी उन्नति करना भी यज्ञके साथ अत्यंत घनिष्ठ संबन्ध रखता है। देखिये यज्ञकी व्याप्ति कैसी है और उसका राष्ट्रहित के साथ कैसा दृढ संबंध है।

(१४) प्रजापति।

इसके पश्चात् यज्ञका नाम " प्रजा-पति" है। इसका दूसरा और कोई अर्थ ही नहीं है, प्रजाका पालन करनेका पूर्ण भाव इसमें है। जो भाव इस समय तकके शब्दोंमें हमने सूक्ष्मरूपसे देखा वही भाव इस शब्दमें स्पष्ट और व्यक्त रूपसे है।

राष्ट्रका पालन, जनताकी रक्षा, राज्यकी पालना येही यज्ञके उद्देश्य हैं, इस विषयमें पूर्व शब्दोंके अर्थ बतानेके प्रसंगमें जो हमने कहा है वही भाव इस शब्दसे पाठकों के मनमें दृढ होगया होगा।

यज्ञवाचक शब्दोंके भाव मनमें लेकर उनसे राष्ट्रकी पालना किस प्रकार हो सकती है यह पाठक अवश्य देखें और सोचें। ऐसा करनेसे पाठकोंके मनमें यज्ञ-संस्थासे जनताका हित कैसा होता है यह बात आ जायगी और यज्ञकी सर्वोपयोगिता उनके मनमें स्थिर हो जायगी।

(१५) घर्मः।

यह यज्ञवाचक अंतिम शब्द है। "गर्मी" उष्णता ये इसके अर्थ हैं।

दिलकी जो गर्मी होती है, हृदयकी जो

उष्णता होती है, वह जबतक रहती है, तब तक ही मनुष्य जीवित रहता है। जिस समय हृदय की गर्मी हट जाती है उस समय इसको मुर्दा कहते हैं। यही अवस्था राष्ट्रकी है। राष्ट्रके अंदर जिस समयतक उच्च विचारोंकी गर्मी होती है उस समय तक ही राष्ट्र जीवित और जाग्रत रहता है। एकवार यह उच्च विचारों की गर्मी राष्ट्रसे हटगयी तो उसका जीवन रहना ही मुष्कील है। इस कारण राष्ट्र उन्नतिके लिये इस प्रकार की "गर्मी" किंवा "घर्म" अर्थात् उष्णता अवश्य चाहिये।

यह गुण अंतमें इसलिये रखा है कि यह सर्वोपरि है। कोई इसे न भूले इसलिये इस को अंतमें कहा है। सब अन्यगुणोंके साथ इसका साहचर्य है इसलिये भी इसको सबके अंतमें कहा है। तात्पर्य यह है कि इस गुण की सार्वत्रिक आवश्यकता है। इस कारण इसका विशेष महत्व है।

यहांतक यज्ञवाचक नामों के तात्पर्य का विचार हमने इस लेखमें किया है। इस विचार से पाठकों के मनमें यह बात अच्छी प्रकार आ जायगी कि यह वैदिक यज्ञसंस्था, जो कि आर्यों में चिरकालसे विद्यमान थी, वह राष्ट्रीय शक्तिका विकास करनेवाली थी, इस यज्ञसंस्थाके कारण आर्योंमें वैयक्तिक तथा सामुदायिक सद्गुणोंका परिपोष होता था।

यदि यह बात सत्य है तो यज्ञ किस रीतिसे करने चाहियें और किस रीतिसे नहीं, इसका विचार करना यजमानको अत्यंत आवश्यक है। विशेषतः इस समय कि जिस समय संपूर्ण यज्ञ संस्थाका लोप हो चुका है, उस समय यज्ञ करना हो, तो विशेष ही सावधानी के साथ करना चाहिये अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानिकी ही संभावना विशेष होगी।

इस समय जो लोग समझते हैं कि यज्ञ हमारा निजू और खानगी कार्य हैं, वे यदि केवल इन नामोंकाही विचार करेंगे, तो उनको यह यज्ञसंस्था निजू किंवा खानगी नहीं हो सकती, यह हमेशा ही सार्वजनिक है, यह ज्ञात होगा।

यज्ञकर्ताको इस बातका ज्ञान आवश्यक ही है। इस बातके ज्ञानके विनाही जो यज्ञ करनेके लिये प्रवृत्त होगा, उसका कर्म निष्फल होनेमें शंकाही क्या हो सकती है!

वैदिक कर्मकांड के लुप्त होनेकी कोई सीमा ही नहीं रही है। जो यज्ञसंस्था शुद्ध राष्ट्रीय रक्षणकी संस्था थी, वही आज एक वैयक्तिक कर्मसंस्था बन गई है, इससे अधिक विद्याका लोप तो क्या हो सकता है?

इसलिये जो यज्ञके कर्म कर्ता हैं, वे सबसे पहिले यज्ञसंस्थाके तत्त्वके साथ परिचित हों और पश्चात् यज्ञकर्म करने के लिये प्रवृत्त हों। तब उनको सच्चा वैदिक कर्म सच्चे वैदिक मार्ग से करनेका ज्ञान होगा, और उसके करनेसे जैसा एक व्यक्तिका तथा सर्व जनताका भी भला होगा।

ग्रंथ माला।

१ हिंदी स्वराज्य— (लेखक—श्री कृष्णाजी विनायक वझे, इंजीनियर नासिक, मू. १।।

अपने देशकी सब प्रकारसे धर्मानुकूल उन्नति किस रीतिसे हो सकती है, इस विषयका निदर्शन और विचार इस पुस्तक में किया है। प्राचीन हिंदी राजकीय संस्था, ग्रामसभा, आदि सबका यथायोग्य विचार इस पुस्तक में है। पुस्तक मराठी भाषामें है।

२ प्रथ प्रदीप —(अनुवादक-श्री. पं. धर्मेन्द्रशास्त्रीजी, प्रोफैसर मेरठ कालेज। लेखक श्री. टी. एल्. वास्वानी मू. १)

"ऋषिदयानंद और आर्य आदर्श" के विषयमें कतिपय विचार जो टी. एल. वास्वानी जीने अंग्रेजीमें प्रकाशित किये थे उनका भाषानुवाद यह है, मूल लेखक जैसे अंग्रेजीके प्रसिद्ध ओजस्वी लेखक हैं उसीप्रकार अनुवादक भी भाषाके प्रभावी लेखक हैं, इस लिये यह पुस्तक धर्मपथपर चलनेवालों के लिये निःसंदेह प्रदीपवत् होगई है। पुस्तक सर्वदृष्टी से पढने योग्य है।

३ शिवबोध—(ले.-श्री. हरिशरण श्रीवास्तव मराल,वकील, मेरठ मू. ≡)

बोध रात्रीके विषयमें काव्यमय रसपूर्ण वर्णन इस पुस्तक में पाठक देखकर आनंद प्राप्त कर सकते हैं।

४ मनुष्य सुधार।

५ षोडश संस्कार विधि। मू. ॥

६ सत्यासत्य निर्णय। ॥)

७ जातीय आन्दोलन।

८ आर्य समाजमें बाधाएं। ॥)

(ले०— श्री० पं. चंद्रिका प्रसाद आत्रेय, सर्वोपकारी पुस्तकालय. कानपूर).

प्रथम पुस्तक में मनुष्य सुधार के लिये आवश्यक बातोंका उत्तम विचार है। तथा दूसरे पुस्तकमें सोलह संस्कारोंके पूर्ण प्रयोग लिखे हैं। अन्य पुस्तकेंभी उद्देश्यकी पूर्ति करनेवाली हैं।

९ ऋषिदयानंदकी जीवन कथा।

(ले०— श्री. घासीराम जी। प्रकाशक— बा. शिवकृपाल, विद्याप्रिंटिंग प्रेस, मेरठ। मू.–)

यह पुस्तक बालकोंके हितार्थ लिखी है और वह उस कार्यके लिये अत्यंत उत्तम पुस्तक है।

१० हिंदू सर्वस्व। (संपादक— श्री. रघुनंदन झा। प्रकाशक— पं. दुर्गाचंद्र जोशी वैद्य। कनखल। हरिद्वार। वार्षिक मूल्य ४)

हिंदू, हिंदी तथा हिंद के हित का विचार करनेके लिये यह पत्र प्रकाशित हो रहा है।

स्वयं संस्कृत भाषा सीखने की अत्यंत सुगम पद्धति। इतनी सुगम पुस्तकें देखकर आपको भी आश्चर्य होगा !

१ इन पुस्तकों के अध्ययनसे आप घर बैठे, विना किसीकी सहायताके, संस्कृत सीख सकते हैं।

२ यदि आप प्रतिदिन आधा घंटा अध्ययन करेंगे तो एक वर्षके अंदर रामायण महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

३ जो साधारण हिंदी जानते हैं वे भी इन पुस्तकों का अध्ययन करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

४ जो स्त्रियां संस्कृत पढना चाहती हैं, उनके लिये ये पुस्तक अपूर्व लाभकारी हैं।

५ आठ दस वर्ष की अवस्था के बालक और बालिकाओं को भी ये पुस्तक पढाये जा सकते हैं, इतनी सुगम पद्धति से ये लिखे गये हैं।

६ हरएक पाठशालाकी पढाईमें ये पुस्तक अत्यंत लाभ कारी हैं।

शीघ्र ग्राहक बन जाइये और अपने इष्टमित्रों को संस्कृत पढने का उत्साह दीजिये।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ।≈) पांच आने है,

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४) रु. है।

नमूनेके अंकके लिये ।≈) तिकिट भेजिये।

मंत्री–स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :– श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि.सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक ७ क्रमांक ६७ आषाढ सं. १९८२ जुलै स. १९२५

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

मातृभूमि	....	२०१
औषधियोंका महामख	....	२०२
यमयमीसूक्त	....	२१६
पशुयाग शास्त्रार्थ	....	२१७
ग्रंथपरिचय	....	"
यवनजातिकी शुद्धि	....	२१९
यम और नियमोंका महत्व		२२८

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य

(लेखक — प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न गुरुकुल कांगडी)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के वेदोपाध्याय श्री पं० चंद्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य—जगत् का बड़ा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है। मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते हैं—

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है। मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था। इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशन में समर्थ हो सकें।

श्री मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बडोदा लिखते हैं।

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा। इस ग्रंथ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है। इस अनुसंधान - युगमे प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रंथ की एक प्रति होनी चाहिए —ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगलवाद कहता हूं। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को आवश्य पढना चाहिए। पृष्ठसंख्या ६०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥)रु० है।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १०, आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य।८आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत६आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेगी।

पत्ता- प्रबन्धकर्ता अलंकार गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

वर्ष ६
अंक ७
क्रमांक
६७

आषाढ
संवत १९८२
जुलै
सन १९२५

वैदिक तत्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र।

संपादक-- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

अन्न देने वाली मातृभूमी।

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्। ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि निषीदेम भूमे ॥ २९ ॥

अथर्व० १२ । १ ।

(विमृग्वरीं) विशेष खोज करने योग्य (ब्रह्मणा वावृधानां) ज्ञानसे बढने वाली, (ऊर्ज) बलकारक और (पुष्टं) पुष्टिकारक घृत और अन्न का भाग (बिभ्रतीं) धारण और पोषण करने वाली, (क्षमां पृथिवीं) विस्तृत मातृभूमि की मैं (आवदामि) प्रशंसा करता हूं कि हे मातृभूमे ! तुझपर (अभिनिषीदेम) हम सब बैठे रहें।

अर्थात् मातृभूमिमें ही रह कर उसकी सेवा करें।

औषधियोंका महामख !

यज्ञ विधिके विषयमें शास्त्रचर्चा करते हुए ऋषि प्रश्न करते हैं—

ऋषय ऊचुः—

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्। पूर्वे स्वायंभुवे सर्गे यथावत्प्रब्रवीहि नः ॥ १ ॥ अन्तर्हितायां संध्यायां सार्धं कृतयुगेन तु । कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा ॥ २ ॥ ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने । प्रतिष्ठितायां वार्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च ॥ ३ ॥ वर्णाश्रमप्रतिष्ठानं कृत्वा मन्त्रैश्च तैः पुनः । संहितास्तु सुसंहृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ॥ ४ ॥

मत्स्यपुराण अ० १४३

" ऋषि पूछने लगे- कि स्वायंभुव मनुके समय त्रेतायुगके प्रारंभ में यज्ञका प्रचार कैसा हुआ ? सत्ययुग के साथ उस युगका संधिकाल समाप्त होनेके पश्चात् त्रेतायुग प्रवृत होनेके समय कैसी यज्ञ व्यवस्था शुरू होगई ? ग्राम पुर नगर आदि की रचना होनेके पश्चात्, कृषि आदिसे औषधियों की उत्पत्ति होनेके नंतर, जीवन साधन के नाना कामधंदे शुरू होनेके पीछे, वर्णाश्रम धर्मकी प्रतिष्ठा होने के पश्चात् उन वेदोक्त मंत्रों द्वारा यज्ञ का प्रचार किस ढंगसे हुआ ? यह सब हमें कहो । "

इस कथन का तात्पर्य यह है कि सत्य युगमें ग्राम नगर आदि बने नहीं थे, कृषिसे उत्पन्न होने वाले धान्य आदि बनने नहीं लगे थे, अर्थात् इस प्रकार कृषिका उत्कर्ष नहीं हुआ था, गृहादि निर्माण भी लोग नहीं करते थे, यह सत्ययुग कि जिस में लोग केवल जंगल में ही रहते थे और जो कुछ "अ-कृष्ट-पच्य" अर्थात् कृषिसे उत्पन्न न हुआ हुआ ही कंद मूल फल फूल आदि जो कुछ मिले खा लेते थे, उस समय जो कुछ हुआ होगा वह बात और है; परंतु जिस समय ग्राम और गृह बने, कृषि की उन्नति होकर विविध धान्य बनने लगे तथा आश्रम और वर्ण की व्यवस्था ठीक बनगई तब त्रेतायुगमें किस प्रकार यज्ञ संस्था प्रचलित होगई ? इस प्रश्नका उत्तर उक्त पुराणही दे रहा है—

एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्सूतः श्रूयतां तत्र चोदितम् ।

सूत उवाच—

मन्त्रान्वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्मसु । तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्प्रभुः ॥ ५ ॥ दैवतैः सह संहृत्य सर्वसाधनसंवृतः । तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ॥ ६ ॥ यज्ञकर्मण्यवर्तन्त कर्मण्यग्रे तथर्त्विजः । हूयमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः ॥ ७ ॥ संप्रतीतेषु देवेषु साम गेषु च सुस्वरम् । परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च ॥ ८ ॥ आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषुच। आहूतेषुच देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा ॥ ९ ॥ य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते । तान्यजन्ति तदा देवाः कल्पादिषु भवान्ति ये ॥ १० ॥ अध्वर्युप्रैषकाले तु व्युत्थिता ऋषयस्तथा । महर्षयश्च तान्दृष्ट्वा दीनान्पशुगणांस्तदा ॥ ११ ॥ विश्वभुजं ते त्वपृच्छन्कथं यज्ञविधिस्तव ॥ १२ ॥

मत्स्यपुराण अ० १४३

"उक्त प्रश्न श्रवण करके सूत कहने लगे कि—वैदिक मंत्रोंका विनियोग यज्ञकर्म में करके विश्वभुक् इंद्रने यज्ञका प्रचार किया। देवताओंका संगठन किया, सब यज्ञके साधन इकट्ठे किये और अश्वमेधका प्रारंभ हुआ जिसमें अनेक महर्षिभी प्राप्त हुए थे। इस यज्ञमें अनेक ऋत्विज अनेक प्रकारके हवि अग्निके अंदर अर्पण करने लगे। जब सुस्वर सामगान होने लगा, और पशुओंका आलंभन चलने लगा, यज्ञका सेवन करनेवाले देव जब आहूत हुए, उस समय दीन पशुगणोंका अवलोकन करके महर्षिगण उठे और इंद्रसे पूछने लगे कि तुम्हारा यज्ञविधि क्या है ?"

ऋषिलोग इस रीतिसे पशुयज्ञ देखकर क्रोधित हो गये क्यों कि " प्राचीन कल्पोंमें इंद्रियों को ही यज्ञभाग लेनेवाले देव मानकर उनका ही यजन किया जाता था।" यह ऋषियोंको आध्यात्मिक यज्ञ ज्ञात था। और इस आध्यात्मिक यज्ञ को महर्षियोंकी संमति भी थी। इंद्र यही आध्यात्मिक यज्ञ कर रहा है, इस भावनासे ऋषिमहर्षि इंद्रके इस यज्ञमें आगये थे, परंतु जब उन्होंने इसमें दीन पशुओंकी हिंसाका प्रसंग देखा, तब वे बडे दुखी होगये, और उन्होंने पूछा कि " रे इंद्र ! तू क्या कर रहा है ? किस विधिसे तेरा यज्ञ हो रहा है !"

अर्थात् जिस यज्ञमें पशुकी हिंसा होगी वह यज्ञ ऋषियोंको संमत ही नहीं था। ऋषिलोग तो उस यज्ञके पक्षमें थे, कि जिसमें धान्य समिधा आदिकाही हवन हो। ऋषियोंकी संमति

पशुमांस हवन के लिये कदापि मिलना संभवही नहीं था। पशुमांस का हवन जिसमें होता है वैसा यज्ञ ऋषियोंने कभी देखा ही नहीं था और न सुना था। इस लिये इंद्रका यह याग देख कर ऋषि महर्षिगण हैराण होगये और घबरा कर इंद्रसे पूछने लगे कि " हे इंद्र ! तू किस विधिके अनुसार यज्ञ कर रहा है ? "

ऋषियोंके प्रश्नमें ही हिंसा कर्मका पूर्ण निषेध है। यह अश्रुत पूर्व बात जो ऋषिमहर्षियोंने यहां देखी, वह इंद्रकी ही नवीन बात थी; जिसके साथ ऋषि लोग परिचितही नहीं थे। ऋषि-लोग वैदिक यज्ञको पूर्णतासे जानते थे, और वे समझते थे कि वैदिक यज्ञमें हिंसाका नाम निशान भी नहीं था। इस लिये वे फिर कहते हैं —

पशुबलिकी नवीन प्रथा।

अधर्मो बलवानेष हिंसा धर्मेप्सया तव । नवः पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम ॥ १२ ॥ अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया। नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ॥ आगमेन भवान्धर्मं प्रकरोतु यदीच्छति ॥ १३ ॥ विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणा-व्यसनेन तु । यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिमोषितैः ॥ १४ ॥ एष यज्ञो महानिन्द्र स्वयंभुविहितः पुरा । एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ उक्तो न प्रति-जग्राह मानमोहसमन्वितः ॥ १५ ॥

" ऋषि कहते हैं- हे इंद्र ! यह बडाही अधर्म है। धर्मके नामसे तू हिंसारूपं अधर्म कर रहा है !! तेरे इस यज्ञमें यह पशुका विधि एक (नवः विधिः) नवीन ही बात है। तूने यह धर्म का नाश करनेके लिये पशुओं द्वारा अधर्म ही शुरू किया है !!! यह धर्म नहीं है। यह अधर्म ही है। हिंसा को धर्म नहीं कहते हैं। यदि तुम्हे यज्ञ कर्म करना है, तो वैदिक विधिसे करो। दुर्व्यसनी बनना छोडकर विधिके अनु-सार धर्मसे यज्ञ करो। हे इंद्र ! यज्ञीय धान्यके बीजोंसेही यज्ञ करनेका विधि है। यही यज्ञ स्वायंभुमनुने पहिले कालमें कहा था। इस प्रकार ऋषियों ने इंद्रको बहुतही समझाया, परंतु इंद्रने ऋषियों कथन माना नहीं। "

इस ऋषिवचनके अंदर यह स्पष्ट हुआ है कि (१) वैदिक धर्मके अनु-सार धान्यों और बीजोंका ही हवन इष्ट है. (२) यज्ञमें वैदिक विधिके अनुसार पशुहिंसा नहीं है, (३) यज्ञमें पशु-हिंसा का प्रचार नवीन है और व्यसनी वृत्तिके कारण हुआ है, इसी लिये उक्त ऋषिवाक्य में व्यसनी न बननेका उप-देश है। (४) हिंसा करके धर्मका आचरण नहीं हो सकता। (५)

स्वयंभु मनुने जो यज्ञ कहा था, उसमें पशुवध नहीं था । इत्यादि बातें ऋषि वचनमें आगई हैं, उनका मनन करना योग्य है । इसके पश्चात्—

दोनोंका शास्त्रार्थ ।

तेषां विवादः सुमहाञ्जज्ञे इन्द्रमहर्षिणाम् । जंगमैः स्थावरैः केन यष्टव्यमिति चोच्यते ॥ १६ ॥
ते तु खिन्ना विवादेन शक्त्या युक्ता महर्षयः । सन्धाय सममिन्द्रेण पप्रच्छुः खचरं वसुम् ॥ १७ ॥

" इस रीतिसे इंद्र और महर्षियोंके बीचमें बडा शास्त्रार्थ छिड गया । स्थावर हव्यसे हवन होना चाहिये यह ऋषियोंका पक्ष था और वह वेदानुकूल भी था । जंगम पशु आदिसे यज्ञका हवन करना चाहिये यह व्यसनी इंद्रका पक्ष था । ऋषियोंकी बात इंद्र मानता नहीं था । इस लिये इंद्रको समझाते समझाते ऋषिमहर्षि शास्त्रार्थकी युक्तियां देते देते थक गये । अंत में दोनोंने निर्णयके लिये सम्राट् वसु महाराजसे पूछा । "

ऋषि महर्षि वेदज्ञान से परिपूर्ण होने पर भी पशुयज्ञके पक्षपातीयोंको समझाने में असमर्थ हुए । फिर हमारे जैसे स्वल्प बुद्धिवालों से क्या बनेगा ? पशुमांस का प्रलोभन इतना प्रबल है !! अस्तु । इस शास्त्रार्थका वृत्तांत आगे देखिये-

ऋषय ऊचुः-
महाप्राज्ञ त्वया दृष्टः कथं यज्ञविधिर्नृप । औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं नस्तुद प्रभो ॥ १८ ॥

सूत उवाच-
श्रुत्वा वाक्यं वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम् । वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ॥ १९ ॥

" ऋषि पूछने लगे- कि हे उत्तानपादके वंशज वसुराजा ! तूने कौनसा यज्ञविधि देखा है, कह । हमारी आशंका का समाधान कर । "

" सूत बोले- कि उन ऋषिमुनियोंका प्रश्न सुनकर वेदशास्त्रके अनुसार वचनोंका बलाबल न विचारते हुए ही यज्ञका तत्त्व वसुराजा कहने लगा । " –

यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः । यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ मूलफलैरपि ॥ २० ॥ हिंसा स्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमः । तथैते भाविता मन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः ॥ २१ ॥ दीर्घेण तपसा युक्तैस्तारकादिनिदर्शिभिः । तत्प्रमाणं मया प्रोक्तं तस्माच्छमितुमर्हथ ॥ २२ ॥ यदि प्रमाणं स्वान्येव मन्त्रवाक्याणि वो द्विजाः । तथा प्रवर्ततां यज्ञो ह्यन्यथा माऽनृतं वचः ॥ २३ ॥

" राजा वसु बोला— कि द्विजोंको

मेध्य पशुओंसे तथा फल मूलोंसे ही यज्ञ करना उचित है। यज्ञका स्वभाव ही हिंसा है यह मैंने देखा है। महर्षियोंने मंत्रों को जाना है जो बडे तपस्वी थे और दीर्घ दर्शी अर्थात् तत्त्वज्ञानी भी थे। इसलिये यह प्रमाण मैंने कहा है अतःआप शांत हूजिये। यदि आपको भी वेदमंत्र ही प्रमाण हैं तो वैसा पशुयाग ही कीजिये और व्यर्थ झूंठ बोलना आपको उचित नहीं है। "

इस तरह सभाका मध्यस्थ और अध्यक्ष सम्राट् वसु भी ऋषिमहर्षियोंके विरुद्ध हुआ और उन्होने देवोंका पक्षपात करके देवोंके हकमें अपनी संमति दे दी इसका कारण यही था कि वसुराजा भी अधिकार संपन्न देवों के विरुद्ध बोलना पसंद करता नहीं था। ब्राह्मणोंकेपास स्वर्गकी कूंजियां नहीं हैं, ऐसा समझकर उन्होने देवोंके पक्षमें इस प्रकार कहा। परंतु इसका परिणाम उसको बहुत बुरी रीतिसे भोगना पडा-

एवं कृतोत्तरास्ते तु युज्यात्मानं ततो धिया। अवश्यं भाविनं दृष्ट्वा तमधो ह्यशपंस्तदा ॥ २४॥
इत्युक्तमात्रो नृपतिः प्रविवेश रसातलम्। ऊर्ध्वचारी नृपो भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥ २५ ॥
वसुधातलचारी तु तेन वाक्येन सोऽभवत्। धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः ॥ २६ ॥

यह राजाका भाषण श्रवण करके ऋषियोंने उसे शाप दिया 'कि तेरा अधःपात होवे' इस स उसका अधःपतन हुआ। धर्मके विषयमें सब संशयोंका निराकरण करनेवाला राजा वसुभी इस प्रकार पतित होगया।"

धर्मके विषयमें इतनासा पक्षपात करनेके कारण सम्राट् वसुमहाराज की ऐसी अवनति हो गई। यह है यज्ञमें पशुवध के पक्षपात का परिणाम! यदि कोई साक्षात् पशुवध करेगा, तो उसका क्या होगा यह विचारवान् पाठक विचार करके ही जान सकते हैं। इतना प्रभावी वसुराजा भी यज्ञमें पशुहिंसाका पक्षपात करनेके कारण गिर गया और फिर शीघ्र उठ नहीं सका। उन्होंने स्वयं हिंसा नहीं की, परंतु यज्ञमें पशुहिंसाका केवल समर्थन ही किया। इससे ही पाठक जान सकते हैं कि, पुराणोंका आशय क्या है। पुराणग्रंथ पाठकों को अहिंसामय यज्ञ की ओर ही लाना चाहते हैं, इस विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखिये—

तस्मान्न हिंसा यज्ञे स्याद्यदुक्तमृषिभिः पुरा। ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवंगताः ॥ २९ ॥
तस्मान्न हिंसायज्ञं च प्रशंसंति महर्षयः। उञ्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ॥ ३० ॥
एतद्दत्वा विभवतः स्वर्गलोके

प्रतिष्ठिताः । अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया शमः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः। सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम् ॥ ३२ ॥

"इसलिये यज्ञमें हिंसा नहीं होनी चाहिये यह बात प्राचीन कालसे ऋषि कहते आये हैं, कोटिशः ऋषिलोग अपने तपोंसे ही स्वर्गको चले गये और इसी कारण हिंसामय यज्ञकी प्रशंसा ऋषि लोग नहीं किया करते हैं। यथाशक्ति फलमूल शाक आदि जो अपने पास हो वह दे कर अर्थात् उसका दान कर स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं। अद्रोह, दम, शम, भूतदया, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, मनकी कोमलता, क्षमा, और धैर्य यह सनातन धर्मका मूल है।" इसमें भूतदया अहिंसा ये ही प्रधानगुण हैं, इस लिये सनातन धर्मके यज्ञमें हिंसा नहीं होनी चाहिये। यह निश्चित बात है।

अर्थात् सनातन वैदिक धर्मके अनुसार यज्ञमें पशुकी हिंसा अभीष्ट ही नहीं है। पूर्वोक्त यज्ञीय बीजोंका हवन करना ही वैदिक यज्ञमें इष्ट है और इस प्रकार होने वाला निर्मांस यज्ञ ही सच्चा वैदिक यज्ञ कहलाता है।

यह देव और ऋषियोंके शास्त्रार्थ का सार है। इस शास्त्रार्थ के समय स्वयं वसुराजा सभापति था। परंतु उसने पक्षपात किया इसलिये उसका पतन हुआ। (यहां कथा वायपुराण अध्याय ५७ में भी न्यूनाधिक पाठभेदसे आगई है।)

इस शास्त्रार्थ की बात से पता लगा कि मत्स्यपुराण और वायुपुराण की संमति तो निर्मांस यज्ञ के विषयमें ही स्पष्ट है। इसमें किसी भी प्रकार कोई विरोध किसी का होही नहीं सकता। क्यों कि उक्त श्लोकोंका अर्थ बिलकुल स्पष्ट है। यही शास्त्रार्थका वृत्तांत महाभारतमें भी है, वहांके कुछ श्लोक देखिये—

महाभारतकी साक्षी ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । ऋषीणां चैव संवादं त्रिदशानां च भारत ॥ २ ॥

म. भारत. शांति अ. ३३६

"ऋषि और देवोंके शास्त्रार्थ का पुरातन इतिहास यह है।" इस श्लोक के पश्चात् कोष्ट में दिये श्लोक मद्रास के महाभारतमें अधिक आते हैं —

[इयं वै कर्मभूमिः स्यात्स्वर्गो भोगाय कल्पितः । तस्मादिन्द्रो महीं प्राप्य यजनाय तु दीक्षितः ॥ ३ ॥ सत्रवीयपशोः काल आगते तु बृहस्पतिः। पिष्टमानाययतामत्र पश्वर्थमिति भाषत ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा देवताः सर्वा इदमूचुर्द्विजोत्तमम् । बृहस्पतिं मांसगृध्राः पृथक्पृथगिदं पुनः ॥ ५ ॥] अजेन यष्टव्यमिति प्राहुर्देवा द्विजोत्तमान् । स च

छागोऽप्यजो ज्ञेयोनान्यः पशुरिति स्थितिः ॥ ६ ॥

म. भा. शां ३४५

"यह कर्म भूमि है और स्वर्ग भोगके लिये ही है। इसलिये इन्द्र भूमिपर आकर यज्ञकर्म करनेके लिये दीक्षित बना। सवनीय पशुका समय प्राप्त होने पर बृहस्पतिने कहा कि "पशुके लिये आटा लाओ।" यह बृहस्पतिका भाषण सुनकर (मांसगृध्राः) मांसभक्षण के लालची देव बृहस्पतिसे पुनः पुनः बोलने लगे कि बकरे के मांस से हवन करना चाहिये।"

यह देवोंका भाषण श्रवण करके ऋषि-बोलने लगे कि —

ऋषय ऊचुः ।

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः। अजसंज्ञानि बीजानि च्छागं नो हन्तुमर्हथ ॥ ४ ॥ नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः। इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येत वै पशुः ॥ ५ ॥

म. भारत शां. अ. ३३७

"यज्ञों में बीजोंसे अर्थात् धान्यसे हवन करना चाहिये यह वेदकी श्रुति है। अज नामके बीज हैं इसलिये बकरा मारना योग्य नहीं है। हे देवो! पशुमारना सज्जनोंका धर्म नहीं है। यह श्रेष्ठ कृतयुग है इस समय यज्ञमें पशु कैसा मारा जायगा?"

इस रीतिसे देवों और ऋषियोंका विवाद चलता रहा। तत्पश्चात् सम्राट् उपरिचर वसु महाराज के सभापतित्वमें शास्त्रार्थ होनेका निश्चय हुआ। देवों और ऋषियोंने मिल कर उक्त सम्राट् को ही अपना अध्यक्ष चुनलिया और उसके सन्मुख अपना विवाद रखा —

भो राजन्केन यष्टव्यमजेनाहो स्विदौषधैः। एतन्नः संशयं छिन्धि प्रमाणं नो भवान्मतः ॥ ११ ॥ स तान्कृताञ्जलिर्भूत्वा परिपप्रच्छ वै वसुः। कस्य वै को मतः पक्षो ब्रूत सत्यं द्विजोत्तमाः ।१२

म. भारत शां. अ. ३७

"हे राजन्! बकरेके मांस का हवन होना चहिये, या औषधियोंका हवन करना चाहिये, यह विवाद चल रहा है, इसका फैसला आप कीजिये। आपही हमारे प्रमाण हैं। वह राजा हाथ जोडकर उनसे पूछने लगा कि किसका पक्ष क्या है वह सत्य सत्य मुझे कहिये।"

यहां पाठक देख सकते हैं, राजाने जो यह पूछा उसमें उसका विशेष हेतु था। ऋषि लोग और देव इन में विवाद था। इसलिये प्रबल पक्षके साथ अपनी संमति देनेका विचार करके वसुराजाने उक्त प्रश्न किया था। 'सत्यपक्ष यह है' इतनाही कहना होता, तो वसुराजाको उक्त प्रश्न पूछनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत न होती। परंतु

उसके मनमें विशिष्ट पक्षकी ओर झुकनेकी कल्पना आगई थी।

यदि किसी समय आजकल कोई विवाद उत्पन्न हो और वह विवाद एक ओर पंडित लोग हों और दूसरी ओर सरदार राजे महाराजे हों, तो अध्यक्ष की जो अवस्था हो सकती है वही अवस्था उपरिचर वसुकी होगई थी। पंडितोंका पक्ष लेनेसे कोई लाभ नहीं और सरदारों और राजामहाराजोंका पक्ष लेनेसे बहुत लाभ हो सकता है, यह भाव जब सभाध्यक्षके मनमें किसी कारण उत्पन्न हो जाय, तब उसका निर्णय धर्म सभाध्यक्ष के योग्य नहीं हो सकता। यही अवस्था वसुराजा की हो गई। वसुराजाका उक्त प्रश्न श्रवण करके ऋषिलोग अपने सरल भावसे कहने लगे–

> धान्यैर्यष्टव्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिप। देवानां तु पशुः पक्षो मतो राजन्वदस्व नः॥ १३ ॥
>
> म. भा. शांति. ३३७

"ऋषि बोले कि — धान्य हवन करनेका पक्ष हमारा है और पशु हवन का पक्ष देवों का है। इस विषयमें आप निर्णय दीजिये।"

दोनोंका पक्ष विदित होते ही वसुराजा ने उत्तर दिया —

सभापतिका पक्षपात।

> देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात्। छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा॥ १४॥
>
> म. भा. शांति ३३७

"देवोंका पक्ष जानकर वसुराजाने पक्षपात से बकरे के मांससे हवन करना चाहिये ऐसा भाषण किया।"

इस पक्षपातका परिणाम उपरिचर वसुराजाको बहुत बुरी रीतिसे भोगना पडा, देखिये —

> कुपितास्ते ततः सर्वे मुनयः सूर्यवर्चसः। ऊचुर्वसुं विमानस्थं देवपक्षार्थवादिनम्॥१५॥ सुरपक्षो गृहीतस्ते यस्मात्तस्माद्दिवः पत॥
>
> म. भारत. शांति ३३७

"सब मुनि क्रोधित हुए और बोले की हे राजन्। तूने पक्षपातसे देवोंके पक्षका समर्थन किया है इसलिये तेरा अधः पात होगा।"

उस दिनसे वसुराजा पतित होगया और उसकी कोई इज्जत नहीं रही। केवल मांस यज्ञका पक्षपात करनेसे इस प्रकार एक बडे सम्राट् का अधःपात हो गया है। यह देखकर अब कोई भी पशुयाग का समर्थन न करे।

निर्मांस यज्ञका फल।

अब निर्मांस यज्ञ करनेका फल देखिये कैसा होता है। यह निर्मांस यज्ञ उसी उपरिचर वसुराजानेही किया था। इसका वृत्तांत यह है –

एभिः समन्वितो राजन्गुणैर्विद्वान्बृहस्पतिः ॥२॥ तस्य शिष्यो बभूवाग्र्यो राजोपरिचरो वसुः । अधीतवांस्तदा शास्त्रं सम्यक्चित्रशिखंडिजम् ॥ ३ ॥ स राजा भावितः पूर्वं दैवेन विधिना वसुः। पालयामास पृथिवीं दिवमाखंडलो यथा ॥ ४ ॥ तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः । बृहस्पतिरुपाध्यायस्तत्र होता बभूव ह ॥५॥ प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्याश्चाभवंस्त्रयः । एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ॥६॥ धनुषाख्यो ऽथ रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू । ऋषिर्मेधातिथिश्चैव तांड्यश्चैव महान् ऋषिः ॥ ७ ॥ ऋषिः शांतिर्महाभागस्तथा देवशिराश्च यः । ऋषिश्रेष्ठश्च कपिलः शालिहोत्रपिता स्मृतः ॥८॥ आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च वैशंपायनपूर्वजः ॥ कण्वोऽथ देवहोत्रश्च एते षोडश कीर्तिताः ॥९॥ संभृताः सर्वसंभारास्तस्मिन्राजन्महाक्रतौ । न तत्र पशुघातोऽभूत् स राजैवास्थितो ऽभवत् ॥१०॥ अहिंस्रः शुचिरक्षुद्रो निराशीः कर्मसंस्तुतः ।आरण्यकपदोद्भूता भागास्तत्रोपकल्पिताः ॥११॥ प्रीतस्ततोऽस्य भगवान् देवदेवः पुरातनः । साक्षात्तं दर्शयामास सोऽदृश्यो ऽन्येन केनचित् ॥१२॥

म. भारत. शांति. अ. ३३६

"गुणवान् विद्वान बृहस्पतिका शिष्य उपरिचर वसुराजा था। उसने बृहस्पतिसे नाना शास्त्रोंका अध्ययन किया। वह इंद्रके समान राष्ट्रका पालन करता रहा। उस राजाने बडा अश्वमेध किया। इस यज्ञमें बृहस्पति उपाध्याय होता बना था। प्रजापतिके पुत्र सदस्य बने थे। एकत, द्वित, त्रित, धनुष, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, तांड्य, शांति, देवशिरा, कपिल (शालिहोत्र पिता), आद्य कठ, तैतिरी (वैशंपायन पूर्वज), कण्व, देवहोत्र, ये सोलह ऋत्विज थे। सब यज्ञ संभार संगृहित होनेके बाद वह यज्ञ हुआ, परंतु उसमें पशुघात नहीं हुआ। वह यज्ञ अहिंसामय, शुद्ध, और विशेष प्रशंसनीय हुआ। और इस यज्ञसे पुरातन देवोंका देव संतुष्ट हुआ।"

यह निर्मांस यज्ञका फल है। इसी यज्ञसे वसुराजाकी उन्नति और उसका अभ्युदय हुआ। निर्मांसयज्ञका यह फल देखिये। परंतु जब उसने देवोंका पक्षपात करके समांस यज्ञके लिये अपनी संमति दी, तब उसका अधःपात होगया!! इससे सिद्ध है कि निर्मांस औषधियज्ञ ही श्रेष्ठ है और समांस यज्ञ अधार्मिक अत एव अधःपात करनेवाला और सर्वतोपरि गिरानेवाला है।

अधार्मिक प्रवृत्तिसे समांस यज्ञ शुरू हुआ इस विषयमें महाभारतमें ही एक प्रमाण है वह यहां देखने योग्य है —

अधार्मिक वृत्तिसे समांस यज्ञ।

इदं कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तितः। अहिंस्या यज्ञपशवो युगेऽस्मिन्न तदन्यथा ॥ ८२ ॥
चतुष्पात्सकलो धर्मो भविष्यत्यत्र वै सुराः। ततस्त्रेता युगं नाम त्रयी यत्र भविष्यति ॥ ८३ ॥
प्रोक्षिता यज्ञ पशवो वधं प्राप्स्यन्ति वै मखे ॥ यत्र पादश्चतुर्थो वै धर्मस्य न भविष्यति ॥ ८४ ॥

म. भा. शांति अ. ३४०

"यह कृत युग है, यह श्रेष्ठ काल है। इस युगमें यज्ञके पशु अहिंस्य अर्थात् हिंसा करनेके लिये अयोग्य हैं। क्यों कि इस युगमें चारों कला ओं से पूर्ण-धर्म होता है। इसके पश्चात् त्रेता युग होगा, उसमें त्रयी विद्या होगी और यज्ञ-पशु प्रोक्षित हो कर मारे जांयगे क्यों कि उस युगमें धर्मका एक भाग रहेगा नहीं।"

देखिये यज्ञमें पशुहिंसा तब शुरू हुई कि जब धर्मका एक भाग लुप्त हुआ। जिस समय तक पूर्णधर्म इस भूमंडल पर था तबतक वैदिक यज्ञ तो होते ही थे, परंतु उनमें औषधियोंका ही हवन होता था, और पशुवध नहीं होता था। जिस समय पूर्ण धर्म भावना रही नहीं कुछ धर्म रहा और कुछ अधर्म की कल्पनाएं बीचमें आगई तब यज्ञमें पशुवध प्रारंभ हुआ। और अधर्म भावनाके बढ जानेके प्रमाण में ही यज्ञमें पशुवध बढता गया। इससे स्पष्ट है कि वास्तविक पूर्ण धार्मिक रीतिके यज्ञमें पशुवध होना ही असंभव है। जिस समय कुछ धर्मकी भावना और कुछ अधार्मिक प्रवृत्ति इनका मिश्रण हो जाय तब ही यज्ञमें पशुवध की संभावना हो सकती है। अतः हम विना संदेह कह सकते हैं अधर्म के साथ ही पशुयज्ञ का संबंध है। धार्मिक यज्ञमें पशुमांस का हवन होना असंभव है।

यहां कई कहेंगे कि कृत और त्रेता छोडकर यह तो कलियुग है इस लिये इसमें पशुयाग के लिये क्या दोष है? युगानुसार अधर्मवृद्धिका प्रमाण देखिये—

युग	धर्मभाग	अधर्मभाग
कृत (सत्य)	४	०
त्रेता	३	१
द्वापार	२	२
कलि	१	३

इस कलियुगमें एक हिस्सा धर्म है और तीन हिस्से अधर्म है। इस लिये यदि त्रेता युगमें यज्ञमें पशुहिंसा हो सकती है तो इस कलियुगमें क्यों नहीं हो सकती?

इस शंकाके उत्तर में निवेदन है कि

बेशक इस समय सत्यधर्म की भावना बहुत कम है और अधर्म की वृत्ति बहुत अधिक है । तथापि हमें अपने सामने कौनसा आदर्श रखना चाहिये ? सत्य-धर्मका आदर्श रखना चाहिये या पूर्ण अधर्मका आदर्श रखना चाहिये ? सब लोग कहेंगे कि आदर्श तो धर्मकाही रखना चाहिये । यदि यह सत्य है तो धार्मिक यज्ञका ही आदर्श यज्ञ कर्ता को अपने सन्मुख रखना चाहिये ।

क्षण मात्र मान लिया जाय कि कलियुग में तीन भाग अधर्म और एक भाग धर्म रहा है । इस लिये स्वभावतः मनुष्यकी प्रवृत्ति अधर्मकी ओर अधिक और धर्मकी ओर न्यून होतीही है । यह इसलिये नहीं कहा है कि कलियुग के नाम पर मनुष्य प्रतिदिन अधर्म ही करने लग जांय । परंतु इसलिये कहा है, इस युगमें स्वभावतः अधर्मवृत्ति अधिक होती है अतः प्रत्येक मनुष्य अपने सन्मुख उच्च धर्म का आदर्श रखे और कर्म करते समय प्रतिक्षण अपना आचरण शुद्ध धर्मकी कसौटीसे परीक्षा करके देखे । और जहां अशुद्धिकी संभावना हो वहां सावधानीकेसाथ जहांतक हो सके वहांतक अपने आपको अधर्म से बचावे ।

अब प्रकृत विषयके संबंधसे इतनाही यहां कहना पर्याप्त है कि सत्ययुग के शुद्ध धार्मिक आचारके समय पशुमांस हीन ही यज्ञ हुआ करते थे । यही शुद्ध और उच्च धार्मिक यज्ञ है । यही आदर्श यजमानोंको अपने सन्मुख सदा रखना चाहिये । त्रेतायुगसे अधर्म बढ गया और यज्ञमें हिंसा प्रारंभ हुई । परंतु इस हिंसा का संबंध अधर्म के साथ है यह जानकर हर एक मनुष्यको और विशेषतः यजमानको इस अधर्म मूलक हिंसामय यज्ञसे बचनेका यत्न करना चाहिये । और यथाशक्ति प्रयत्न करके निर्मांस यज्ञही करना चाहिये । क्यों कि वही धार्मिक शुद्ध यज्ञ है । इसी विषयमें एक इतिहासिक कथा देखिये । इसी महा-भारतमें यह कथा है —

फलमूलोंसे यज्ञ

श्रेष्ठ विदर्भदेशमें एक सत्य नामक ब्राह्मण था । उसने यज्ञ करनेकी इच्छा की । उसके पास श्यामाक, सूर्यपर्णी और सुवर्चला ये तीनही वन्य धान्य और साक यज्ञके लिये थे । उसने —

> उपगम्य वने शुद्धिं सर्वभूताऽवि-
> हिंसया । अपि मूलफलैरिष्टो यज्ञः
> स्वर्ग्यः परंतप ॥ ९ ॥

म. भा. शांति. २७२

" वानप्रस्थाश्रममें सबभूतोंकी अहिंसा करनेके कारण सब प्रकार से शुद्धि प्राप्त करके उसने निश्चय किया कि मूल फलों से जो यज्ञ किया जाता है वह भी स्वर्ग की प्राप्ति होने के लिये पर्याप्त है । " ऐसा निश्चय करके उसने उक्त वन्य

वस्तुओंसे ही अपना यज्ञ करना प्रारंभ किया ।

इस श्लोक पर टीका करते हुए नीलकंठ चतुर्धर जी लिखते हैं—

यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः । इति श्रुतेरर्थमाहापीति।
(म. भा. शां. २७२)

महाभारतटीका (नीलकंठी)

" मनुष्य जो अन्न भक्षण करता है, वही अन्न उसके देवताओंका होता है।" यह श्रुतिवाक्य है ऐसा टीकाकारने कहा है। यह किस स्थानका वचन है इसका पता हमें अभीतक लगा नहीं है । परंतु किसी ब्राह्मण ग्रंथका यह वचन प्रतीत होता है। इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि जो मनुष्य शाकाहारी है उसकी देवताएं शाकभोजी होती हैं और जो मनुष्य मांसभोजी है उनकी देवताएं मांसभोजी होती हैं । इस कथन के सत्यासत्यका विचार न करते हुए ही इस तत्त्वका स्वीकार करनेपर निम्न प्रकार फल निकल आता है—

१ नरमांस भक्षक मनुष्योंकी देवताएं मनुष्य मांस खानेवाली होती हैं, इस लिये नरमांस भोजी मनुष्य अपनी देवताओं के लिये नरबली देते रहें।

२ घोडा, गाय, बकरा आदि पशुओं का मांस जो मनुष्य खाते हैं उनकी देवताएं भी उक्त मांस खातीं हैं, इस लिये गोश्तखोर मनुष्य अपनी देवताओं के उद्देश्यसे मांस अर्पण करते रहें ।

३ जो मनुष्य चावल गेहूं आदि धान्य खाते हैं, दूध घी दही आदि सेवन करते हैं, उनकी देवताएं येही सात्त्विक पदार्थ खातीं हैं,इसकारण ये शाकभोजी मनुष्य इन्ही पदार्थोंका हवन तथा अर्पण करें।

प्रस्तुत विवादके प्रसंगमें यहां इतनाही कहना है कि जिस पं. दीक्षित महोदयजीने औंधमें सोमयाग किया वे वंशपरंपरासे केवल शाकभोजी शुद्ध सात्विक अन्न खानेवाले ही हैं । उनके बापदादा में किसीने भी कदापि मांसभक्षण किया ही नहीं था। इसलिये इनकी देवताएं निरामिषभोजी ही हैं । अतः इनको समांसयज्ञ करना अत्यंत अनुचित था । यह बात यहां उक्त वचन से ही सिद्ध होगई ।

यद्यपि देवताएं इसप्रकार नरमांसादि खातीं हैं ऐसा हम मानते नहीं हैं तथापि दुर्जनतोषन्यायसे उनकी यह बात हमने क्षणमात्र मान भी ली, तो भी उससे उनका मांस यज्ञ सिद्ध नहीं होता है, प्रत्युत निर्मांस यज्ञही सिद्ध होता है । इतना देखनेके पश्चात् हम पूर्वप्राप्त ब्राह्मणकी कथाका वृत्तांत देखते हैं । चूंकी ब्राम्हण वानप्रस्थी, शुद्धाचारी, अहिंसा का पालन करनेवाला था,

इस लिये उन्होंने कंदमूल और फलोंसे ही यज्ञ करनेका निश्चय किया !

उस ब्राह्मणकी स्त्री बडी अहिंसाशील थी और उसका नाम पुष्करधारिणी था । यह स्त्री अत्यंत पतिव्रता थी, जो पति कहता था वह सब श्रद्धापूर्वक करती थी । यह इतनी अहिंसाशील थी कि वस्त्र के लिये मोर के पंख जो गिर जाते थे वही उपयोग में लाती थी ।

इस ब्राह्मण के आश्रममें एक पर्णाद नामका मृग था, वह इस यज्ञको देख रहा था । उस मृगने एक समय उक्त ब्राह्मणसे कहा कि यह तुम्हारा यज्ञसांग नहीं है—

वचोभिरब्रवीत्सत्यं त्वयेदं दुष्कृतं कृतम् । यदि मंत्रांगहीनोऽयं यज्ञो भवति वैकृतः ॥ मां भो प्रक्षिप होत्रे त्वं गच्छ स्वर्गमनिंदितः ॥ १० ॥

म. भा. शांति. २७२

उस मृगने कहा कि " यह तेरा यज्ञ (दुष्कृत) बुरी विधिसे किया हुआ है क्यों कि यह मंत्र और अंगसे हीन है । अतः अपना यज्ञ सांग करनेकी इच्छा तुम्हारी है तो तुम मेरे मांस का हवन करो और अनिंदित होता हुआ स्वर्ग को चला जा "

यह मृग का भाषण श्रवण करके उस सत्यनामक ब्राह्मणने कहा कि—

न हन्यां सहवासिनम् ॥ ११ ॥

म. भा. शां. अ. २७२

" मैं साथीका हनन नहीं करूंगा । " ब्राह्मण इस रीतिसे हिंसासे दूर रहना चाहता था और मृग उसको अपना वध करानेके लिये उत्साहित करता था । अंतमें—

मृगमालोक्य हिंसायां स्वर्गलोकं समर्थयत् ॥ १६ ॥ तस्य तेनानुभावेन मृगाहिंसात्मना तदा । तपो महत्समुच्छिन्नं तस्माद्धिंसा न यज्ञिया ॥ १८ ॥

म. भा. शांति, २७२

" मृगका हठ देख कर उसने अपने स्वर्गवास के लिये मृगमांस से हवन किया । उस प्रकार मांस हवन का यज्ञ करनेसे उस ब्राह्मण का बहुत ही तप नष्ट हुआ, इस लिये यज्ञमें हिंसा नहीं करनी चाहिये । "

इस ब्राह्मणकी धर्मपत्नी पहिलेसेही ऐसे हिंसाकर्मसे असंतुष्ट थी और पूर्णरीतिसे विरुद्ध थी । अंतमें तात्पर्य यह निकला कि-

अहिंसा सकलो धर्मो हिंसाधर्मस्तथाऽहितः ।

म. भा. शां. अ. २७२

" अहिंसा ही परिपूर्ण धर्म है और जिसमें हिंसा करनी पडती है वह अहितकारक कर्म है । " यह अध्याय ही यज्ञमें हिंसाका निषेध करनेके लिये महाभारतमें लिखागया है । टीकाकर

नीलकंठ चतुर्धर इस अध्याय की समाप्ति पर निम्नलिखित पंक्तियां लिखते हैं—

अत्र आख्यायिकातात्पर्यं पशुकार्ये श्यामाकादिविकारांश्चरुपुरोडाशादीन् कुर्यादिति गम्यते। तथा च गृह्ये " अथ श्वोभूतेष्टकाः पशुना स्थालीपाकेन वा " इति पशुस्थाने स्थालीपाकोऽपि विधीयते। एवमन्यत्र पुरोडाशामिक्षादीनामपि पशुस्थाने विधानमवगंतव्यम्। तस्मान्न हिंसायज्ञः श्रेयानिति यज्ञनिंदेत्यध्याय नाम तत्र हिंसायज्ञनिंदेत्यवगंतव्यम्॥

म. भा. शां. अ. २७२

(नीलकंठी टीका)

" इस कथा का तात्पर्य यह है कि यज्ञमें पशुके स्थानपर श्यामाक आदि धान का उपयोग करना चाहिये ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है। गृह्य सूत्रमें भी 'पशुस्थानमें स्थालीपाक' का प्रयोग करनेको कहा है। अन्यत्र भी पुरोडाश, दही आदि का पशुके स्थानपर उपयोग करना चाहिये। अतः हिंसायज्ञ श्रेयस्कर नहीं है। इस अध्याय का नाम यज्ञनिंदा है उसका तात्पर्य हिंसायज्ञ की निंदा समझना चाहिये! " इसी टीकाकारने इसी अध्याय के नवम श्लोक की टीकामें निम्न पंक्ति लिखी है—

यथा वा ज्योतिष्टोमे आनुबंध्यायां गोपशोः स्थाने पश्वभावे पयस्यायाश्वलायनाद्युपदिष्टायां पयस्यायां०।

(म. भा. शां. २७२। ९ नीलकंठी)

" ज्योतिष्टोम में गौ के स्थानपर दही का उपयोग करने को लिखा है।" यह आश्वलायन का कथन है। शतपथ में तो कई स्थानोंमें पशुओं के स्थानपर घृताहुती देनेका विधान पूर्व लेखोंमें बताया ही है। इसका तात्पर्य स्पष्ट यही है कि यज्ञमें पशुमांस हवन की आवश्यकता नहीं है, इतनाही नहीं प्रत्युत समांस यज्ञ करनेसे अवनति, अधोगति, अधःपात तथा पतन होता है। इस कारण कोई भी वैदिक धर्मानुयायी कभी समांस यज्ञ न करे तथा समांस यज्ञ यदि किसीने प्रमादसे किया अथवा करनेका प्रारंभ किया तो उसे प्रतिबंध करें और निर्मांस यज्ञका खूब प्रचार करें।

अब निर्मांस यज्ञके संबंधमें श्रीमद्भागवत की साक्षी बताकर इस लेखको समाप्त करना है, देखिये भागवतकार क्या कहते हैं—

(१) भो भोः प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाध्वरे। संज्ञापितान् जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः॥ एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव। संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः॥

भा० ४। २५। ७, ८

(२) तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्तास्ते ऽदयालुना । कुठारैश्छिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत्
भा० ४ । २८ । २६

" हे राजन् । तेरे यज्ञमें जो सहस्त्रों पशु तेरी निर्दयतासे मारे गये वे तेरी उस क्रूरताका स्मरण करते हुए क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारोंसे तुझे काटने के लिये बैठे हैं । "

" इस दयाहीनने जो यज्ञमें पशु मारे थे वे ही क्रुद्ध होकर, उसका यह अयोग्य कर्म स्मरण करते हुए, उसको कुल्डाडोंसे छिन्नभिन्न करने लगे । "

ये भागवत के वचन स्पष्ट रीतिसे कह रहे हैं कि पशु यज्ञका परिणाम स्वर्गमें बहुत ही बुरा होता है । यज्ञमें मारे हुए पशु कुल्हाडे लेकर स्वर्गमें बैठे होते हैं, जब यजमान वहां पहुंचता है, तब वे उसे काटते हैं और उसके टुकडे टुकडे करते हैं । पशुयज्ञका कितना भयानक परिणाम यह है, पाठक अवश्य देखें, और सोचें कि यदि इतनी भयंकर अवस्था बनती है तो क्यों पशुयाग किया जाय ?

धान्य हवन करके स्वर्गीय सुख प्राप्त करना ही योग्य है । मूर्खतासे पशुयाग का खटाटोप करके अपने आपका ही नाश करवाना किसी भी मनुष्य को योग्य नहीं है ।

तात्पर्य पुराणों का भी आशय देखा जाय तो वे ग्रंथ भी पशुयाग का खंडन अनेक प्रकारोंसे और स्पष्ट शब्दोंसे कर रहे हैं । प्रायः किसी भी पुराण का यह तात्पर्य नहीं है कि पशुयाग करना चाहिये । परंतु प्रायः सभी पुराण अपने अपने ढंगसे पशुयाग का खंडन ही कर रहे हैं । यह बात और है कि पुराणों का पशुयाग खंडन का ढंग भिन्न है, परंतु पुराणोंका तात्पर्य पशुयाग खंडन में है इसमें किसीका भी मतभेद होही नहीं सकता ।

अतः पशुयाग धर्मबाह्य है और धान्य, पुरोडाश, घी, दूध, समिधा, औषधि आदि का हवन करना धर्मानुकूल है ।

यमयमी सूक्त

यम यमी सूक्त पर जो विचार हमने वैदिक धर्मके पूर्व अंकमें प्रकाशित किये थे उसका प्रत्यालोचन पं. चमूपतिजीने "आर्य" में किया है । परंतु उस में कोई नवीनता नहीं है । इस प्रत्यालोचन के प्रत्येक कथन का खंडन प्रथम लेखसेही हो चुका है । अतःकोई विशेष बात सन्मुख आने तक हमारे वेही विचार स्थिर हैं । अधिक लेख लिखकर विस्तार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

"संपादक"

सूर्यभेदन व्यायाम।

योग के आसनों को एक दूसरे के साथ मिलाकर करनेसे " सूर्य-भेदन " व्यायाम की पद्धति सिद्ध होती है। शरीरका मेद दूर करने के लिये इस व्यायाम के समान और कोई साधन नहीं है।

ऋषि मुनियों के बलवर्धक और आरोग्य साधक व्यायामों में " सूर्य भेदन व्यायाम " सबसे मुख्य और सबसे सुगम है।

इस समय सहस्रों मनुष्य इस से लाभ उठा रहे हैं। इसलिये आप स्वयं इस व्यायाम को करके आरोग्य प्राप्ति पूर्वक अपना बल बढाइये।

इस व्यायामसे दो मास के अंदर ही शरीर सुडौल बनता है।

सूर्य भेदन व्यायाम का

मूल्य ।=) छः आने।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा).
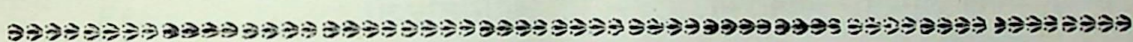
पशुयाग शास्त्रार्थ!

गतमासमें जो शास्त्रार्थ के संबंधमें वृत्त दिया है उससे अधिक कुछभी निश्चित नहीं हुआ है।

स्वाध्यायमंडलमें इस विषयमें खूब आंदोलन चल रहा है। श्रुतिस्मृतिसे लेकर पुराणों तक के संपूर्ण ग्रंथोंका परिशीलन करके एक ग्रंथ निर्माण किया जा रहा है। प्रायः इस मासमें उस ग्रंथका लेखन पूर्ण हो जायगा। और इससे स्पष्ट पता लग जायगा कि प्रायः सभी ग्रंथ यज्ञमें हिंसाका निषेध एक मतसे ही कर रहे हैं।

स्थानस्थान के विद्वानोंके लेख भी आरहे हैं। जिन विद्वानों को अपना लेख इस ग्रंथमें मुद्रित करनेकी इच्छा है, वे अपना लेख हमारे पास आगामी मासके अंत तक भेज दें जिससे हम उन लेखोंको यथायोग्य स्थानमें रख सकेंगे।

यागविषयक प्राचीन शास्त्रार्थ के ग्रंथ भी हमने बहुत संग्रह किये हैं, जिससे प्रतीत होता है कि, पशुयाग निषेध बडाही प्राचीन है। शताब्दियोंके पूर्व सब विद्वान इसका निषेध करते आये हैं।

अब हमारे सन्मुख यह प्रश्न खडा है कि इन सब ग्रंथोंको किस ढंगसे जनताके सन्मुख लावें? क्यों कि इन सब ग्रंथोंका मुद्रण याग विचार करनेकी दृष्टीसे अत्यावश्यक होने पर भी आर्थिक बल के अभाव के कारण अशक्य है। विशेषकर वैष्णव सम्प्रदाय वालों ने पशुयाग निषेधपर बहुत ग्रंथ निर्माण किये हैं। जिन महानुभावों के पास वैष्णवों के अथवा अन्योंके यागहिंसा निषेध विषय-पर ग्रंथ हों, वे सज्जन हमारेपास उन ग्रंथों को भेज दें। उसका लेखन करनेके पश्चात् हम उनका पुस्तक वापस करेंगे तथा मुद्रण करनेके पश्चात् उनको मुद्रित पुस्तक भी भेजदेंगें।

शास्त्रार्थ पुस्तक के मुद्रण के लिये जो सहायता इस ता. २८।६।२५ तक आगई है वह निम्न स्थानमें दी है—

म. गणपतराव गोरे	१०)
म. मदन०जी	११)
म. रामचरित्रजी	१)
म. जगजीवनजी	१०)
म. संतरामजी	११)
म. वनमालीजी	१०)
म. हर नारायणजी	२)

श्री. मंत्री आर्यसमाज दारे सलाम—

म. सालिग्रामशर्माजी	५ शिलिंग
म. धेला भाई जी	५ "
" बिशनदासजी	५ "
" कानजी जयराम	५ "
" सांडस ई. आर-	५ "
" गोविंदजी	१० "
" मोहनलालजी	५ "
" सुंदरजी	५ "
" माधोजी	२ "
" पांड्याजी	२ "
" वसंतरामजी	१ "
	५० शि. के रु. ३३=)

श्री. मंत्री आर्य समाज चंबा	११)
म. छगनभाईजी.	१)
" चुनीलालजी	५)
" नटवरलालजी	५)
" हितमललालजी	१०)
" बिहारीलालजी	१॥)
श्रीमती दुर्गावती देवीजी	१)
बा. शिवप्रसादजी	५॥)
" लालचंद्रजी	१०)
म. मदन०जी	४)
कुँ. चांदमलजी	२)
से. मगनलालजी	२)
" जीतमलजी	१)
" केशरलालजी	१)
" मथुरालालजी	१)
" गोकुलदासजी	१)
गुप्तदान	१)
पं. टीकारामजी	२)

श्री. मंत्री आर्यसमाज झांशी	१५)
म. भवानीरामजी	१)
" ईश्वरीप्रसादजी	१)
" सोमेश्वरजी	१)
" बनवारीलालजी	१)
" हरशिवप्रसादजी	१)
मुं. रामलाल जी	११)
" जीवारामजी	२)
बा. लक्ष्मी नारायणजी	२)
" कृष्ण कुमारजी	१)
पं. शिवशंकरजी	१)
चौबे सुंदर लालजी	१)
श्रीमंत्री आर्यसमाज जम्मू	२५)
म. देसराजजी	१॥)
श्री. स्वा. शिवानन्दजी	५)
म- नटवरलालजी	५)
शा. परसोत्तमजी	३)
" सांकलचंदजी	२)
म. बलदेवजी	५)
" आदित्यरामजी	५)
से. चीमनलालजी	५)
म. भगुभाईजी	१)
म. मोतीरामजी	१)
पं. धीरजलालजी	१)
ला. शिवदयालजी	२)
म. गोपाल सावंत	२)
" सीताराम लक्ष्मण	१)
" राजाराम लक्ष्मण	१)
" बापूजी शिवाजी	१)
डा. शिवदयालजी	१०)
बा. टिंकेत नारायणजी	५)
" हेमरामजजी	१)
पं. गोपाललालजी	१)
श्री. धुली लालजी	१)
ब्र. ओंप्रकाशजी	२॥)
" पुरुषोत्तम प्रकाशजी	२॥)
" चमन प्रकाशजी	२)
योग	२८२ ॥।=)
पूर्व मासतक प्रकाशित	५९५)
सर्वयोग	८७७ ॥।=)

पाठक इस बातका विचार करें कि जब और इतनी सहायता प्राप्त होगी तभी यज्ञ-विषयक पुस्तक प्रेसमें मुद्रणार्थ भेजा जा सकता है। इसलिये इस कार्य के लिये अपना दान भेजनेकी शीघ्रता करें। शास्त्रार्थका भाद्रपद मास पास आ रहा है।

ग्रंथ परिचय।

१ निरुक्त भाष्य। [लेखक तथा प्रकाशक–श्री पं०. चंद्रमणिजी विद्यालंकार, पाली रत्न, वेदोपाध्याय गुरुकुल विश्व-विद्यालय, कांगडी. जि. बिजनोर]

श्री० पं० चंद्रमणि जी निरुक्तका परिशीलन आज कई वर्षोंसे कर रहे हैं।

निरुक्त शास्त्र का विशेष रीतिसे अध्ययन करना उनके लिये विशेष हृदयंगम इस लिये हुआ कि उनको संस्कृत हिंदी अंग्रेजी के अतिरिक्त पालि आदि प्राकृत भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान है। प्राकृत आदि अनेक भाषाओंके ज्ञानके विना निरुक्तका अध्ययन उतना हृदयंगम नहीं हो सकता यह बात निरुक्तके साथ परिचय रखने वाले स्वयं जान सकते हैं। इसलिये पंडितजी की योग्यता निरुक्त का अध्ययन करने के लिये जैसी चाहिए वैसी है और इसी लिये वे ऐसा सुयोग्य ग्रंथ बना सके हैं। केवल हिंदी जाननेवाले भी इस ग्रंथसे अत्यंत लाभ प्राप्तकर सकते हैं इतना सुगम यह ग्रंथ हुआ है। हरएक वैदिक ज्ञानका प्रेमी इस ग्रंथसे अवश्य प्रेम करेगा।

वैदिक जीवन ।

(लेखक–श्री० पं. विश्वनाथजी विद्यालंकार। प्रकाशक — चौ० श्रीचन्द्रजी, मॅनेजर महेशबुकडिपो, घसेटी बाजार, अजमेर मू. ।॥)

इस पुस्तकमें स्तुतिप्रार्थनोपासना, वैयक्तिक जीवनकी उच्चता, कर्मयोग ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, दान, अतिथियज्ञ, राष्ट्रीयजीवन, अंतर्राष्ट्रीय विचार, ईश्वरप्रेम आदि उपयोगी और आवश्यक अस्सीसेभी अधिक विषयोंका वेदमंत्रोंके प्रमाण देकर दस प्रकरणोंमें उत्तम विचार किया है। हरएक प्रकरण अत्यंत बोधप्रद और वैदिक जीवन व्यतीत करनेकी इच्छा करनेवालेके लिये अतिलाभदायी है और मूल्यभी अत्यल्प है। इसलिये जिज्ञासू पाठक इसका पाठ आवश्य करें।

(३) धार्मिक लक्षण वर्णन ।

(ले० श्री. पं. कृष्णचंद्रसूरी; २९ जकरियास्ट्री, कलकत्ता । मू०– ।॥)

इस पुस्तकमें ३६ श्लोकोंमें धार्मिकके लक्षणोंका वर्णन है। श्लोक और टीका संस्कृत में है और उसका सरल भाषानुवाद भी है।

(४) तुलनात्मक विचार– (ले०–श्री० पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालंकार प्रकाशक– म० राजपालजी आर्य पुस्तकालय, अनारकली, लाहौर । मू. ॥)

इस पुस्तकमें श्री० स्वामिजीके विचारोंके साथ श्री० मध्वाचार्यजीके विचारोंकी तुलना की गई है और दर्शाया है कि दोनों आचार्योंके विचारोंमें कितनी समानता है । इस पुस्तकसे स्पष्ट पता लगता है कि यह समानता आश्चर्यजनक है । और इतनी शताब्दियों के पूर्व समाजके सिद्धान्तोंकेही विचार श्रीमध्वाचार्यजीने जनताके सन्मुख रखे थे। निःसंदेह पं० धर्मदेवजीका यह पुस्तक हरएक आर्यको अवश्य पढनीय और मननीय है।

(५) **तार दर्पण**–तारद्वारा संदेश भेजने की विधि इस पुस्तकमें दी है।(लेखक और प्रकाशक –श्री० म० रामस्वरूप, बीसाऊ (जयपूर मू० ।=)

(श्री० कुँवर चांदकरण शारदा)

डाक्टर भांडारकर ने सम्राट् अशोक के शिलालेखों (Rock Edict XIII Ep. Ind. Vol. II. pp 463-464) में से यह लिखा है:-

" एसे च मुखमुते विजये देवानंप्रियस यो धर्मविजयो ।

सो च पुन लघो देवानंप्रियस इह च सर्वेसु च अंतेसु आ छसुपि योजनसतेसु यत्र अंतियोंको नाम योनराजा परं च तेन अंति-योकेन चतुरो राजानो तुरमाये नाम आंति-किनि नाम मक नाम अलिकसुंदरो नाम ।"

प्राकृत भाषा के उपरोक्त लेख से पाया जाता है कि ग्रीक लोगों को यवन कहते थे और इसमें ५ यवन राजाओं के नाम " अंतियोक " " तुरमाय " " मक " " अलिकसुन्दर " " अंतिकिनि " आये हैं । ये ही शुद्ध हुये हिन्दू राजा अंग्रेजी में Antiochos Soter. King of Syria Ptolemy Phial. delphos, . king of Egypt, Antigonos Gontos, king of mecedonia, Alexandar, king of Ephisus कहते हैं । उपरोक्त शिलेखों के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध करने का सफल प्रयत्न किया है कि ग्रीक लोगों का पुराना नाम यवन था । इन लोगों को हिन्दूधर्म में दीक्षित कर पुनः हिन्दू-धर्म में मिला लिया गया था । पंजाब और काबुल में राज्य करने वाला राजा जिसका नाम " मिलिन्द मीनीएन्डर " menander था यह ईसा से ११० वर्ष पूर्व बडा प्रतापी राजा हुआ था । और यवन जाति का एक स्तम्भ था । पाली भाषा में लिखे शिलालेखोंसे यह सिद्ध होता है कि उसने बौद्ध मत को भी ग्रहण किया था । यवन राज " मीनीएन्डर " को शुद्ध कर कर उसका संस्कृत नाम " मिलिन्द " रक्खा गया उसने महाभाष्य के रचयिता " पातंजलि " के समय में " साकेत " जिसको "अवध" कहते हैं और "मध्यामिका " (मेवाड) नामक स्थान यवनोंद्वारा घेरे । महर्षि " पतंजलि " ने महाभाष्य में उनकी मिसाल निम्न प्रकार से दी हैं-

" अरुणयवनो मध्यामिकाम "

" अरुणायवनो केतम् "

इसी राजा "मिलिन्द" के सिक्के "बरोच" (गुजरात) में प्रचलित थे। और काठियावाड में अबतक मिलते हैं। उनके एक ओर तो ग्रीक भाषा में (Basileus Suthros Menandros) और दूसरी ओर प्राकृत में "महाराजस आदर्श मीनमदर्श" लिखा हुआ है। "मिलिन्दपनहो" नामक प्राकृत भाषा की पुस्तक में "मिलिन्द यवन ने किस प्रकार बुद्ध धर्म स्वीकार किया इसका विस्तृत वर्णन है इसका वृत्तान्त "Sacred Books of the east" में भी मिलता है। जिस में लिखा है कि बौद्ध गुरु "नागसेन" से शास्त्रार्थ कर "मिलिन्द" राजाने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। बौद्ध होने के बाद इसके सिक्कों पर "धर्मचक्र" भी रहता था।

न केवल इतना ही प्रत्युत पाली शिलालेखों से यह भी सिद्ध होता है कि यवनोंने "सिंह", "धैर्य" और "धर्म" शब्दान्त नाम रखकर हिन्दू-धर्म को स्वीकार किया था। एक शिलालेख से यह भी प्रमाणित होता है कि तुरकण का पुत्र हरकरण जिसका पहिला नाम वदालोक था, वह ब्राह्मण और साधुओं को बहुत दान दिया करता था। इसलिये ब्राह्मणों ने उसे इस साधुभक्ति तथा ब्राह्मण प्रेम के उपलक्ष्य में हिन्दू बना लिया था। "चिट" और "चन्दान" नामक यवनों के जीवनचरित्र से यह सिद्ध होता है कि इनका संस्कृत नाम "चित्र" और "चन्द्र" रक्खा गया था। और आर्यपुरुषों के साथ इनका खानपान समान पाया जाता है। जुन्नर के एक शिलालेख से यह बात और भी पुष्ट होजाती है। नासिक की गुफाओं में एक शिलालेख मिला है कि "सिधं ओतराहस दतामिति यकस योणाकस धम्मदेव पुसत इंद्राग्निदतस धम्मात्मना:" इसका अर्थ यह है "दत्तामित्र का रहने वाला धार्मिक धर्मदेव के पुत्र इन्द्राग्निदत्त ने यह मंदिर दिया" इस लेख से यह प्रकट होता है कि उत्तर से आये हुए यवन पिता पुत्रों को धर्मदेव और इन्द्राग्निदत्त नाम रख कर आर्य्य बना लिया गया था। नासिक में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें लिखा है "शकाग्निवर्मण: दुहित्रा गणपकस्य रेभिलस्य भार्यया गणपकस्य विश्ववर्मस्य माता शकनिकया उपासिकया विष्णुदत्तया गिलनभेषजार्थं अक्षयनीवी प्रयुक्ता" इस लेख में एक रानी की तरफ से धर्मार्थ फण्ड स्थापित करने का वर्णन है। यह रानी शकजाति की थी। शकजाति से शुद्ध होने के बाद इसका नाम विष्णुदत्ता रक्खा गया। और यह बौद्ध उपासिका बनगई। इसके पति का नाम गणपक था और इसके पिता का नाम अग्निवर्मन था।

इसके पिता के नाम के साथ वर्मा विशेषण लगा हुआ है, जोकि क्षत्रियत्व का परिचायक है। अतः प्रतीत होता है कि जिस समय यह लिखा गया होगा। उस समयसे पूर्व ही विदेशी शक जाति हिन्दूको

मनुस्मृति और महाभारत में म्लेच्छ लिखा है, आर्य्यजाति में पूर्णरूप से मिल चुकी थी। ये लोग भारत में पश्चिम की तरफ से आये थे और राजा विक्रमादित्य के १५० वर्ष बाद तक उन्होंने मालवा, गुजरात पर शासन किया था। इस जाति का सब से प्रसिद्ध राजा। शालिवाहन, जिसका कि संवत चलता है, हुआ है, इसके वंशज ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें अब तक पाये जाते हैं। अवध के बहुतसे वंश क्षत्रिय ताल्लुकदार इन्हीं महाराज शालिवाहन के वंशज हैं। और अवध का बहुतसा हिस्सा "वैशवाए" नाम से प्रसिद्ध है वहां अधिकांशतः यही वैश क्षत्रिय पाये जाते हैं और इसी वंश की बडी बडी रियासतें अब तक मौजूद हैं, जैसे "कसमांडा खजूर गांव" "कुर्री-सुदौली" "रहवां" "नरेन्द्रपुर" "चरुदार" आदि। महाराज हर्ष जो कि "वैश" वंश में से थे वेही भारत के। प्रसिद्ध सम्राट् हुये, देखो बाणभट्ट रचित "हर्षचरित्र"।

क्षत्रप वंश का क्षत्रिय जाति में प्रवेश।

प्राचीन शिलालेखों में क्षत्रपवंशीय कई राजाओं का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु क्षत्रप शब्द का किसी संस्कृत कोष या अन्य पुस्तक में पता नहीं चलता। अतः डाक्टर "भांडारकर" ने यह सिद्ध किया है, कि यह शब्द फारसी भाषा के "क्षत्रपावन" शब्द का, जिसका अर्थ राजप्रतिनिधि है, रूपान्तर है। अंग्रेजी में इसी शब्द का बिगड कर (Satrap) होगया है। एक नासिक के शिलालेख में इस वंश के राजा "दिनीक," "नाहापान" आदि का और "नहपान" की लडकी "संघमित्रा" का एक आर्य राजा ऋषभदत्त या उशवदत्त जो राजा "दीनीक" का पुत्र था उसके साथ विवाह का वर्णन आता है, यह नासिक का शिलालेख इस प्रकार है:—

"सिद्धं राज्ञः क्षहरातस्य क्षत्रपस्य नहपानस्य जामात्रा दीनीकपुत्रेण उषवदातेन इत्यादि"

इस वंश के राजाओं का राज्य नासिक और बाद में उज्जयिनी में २०० वर्ष तक रहा। शिलालेखों और सिक्कों में "चष्टन" नाम मिलता है, डाक्टर साहब ने अनुमान किया है कि यह "चष्टन" ही तियस्थनीज नाम से प्रसिद्ध था। इसके पुत्र का हिंदू नाम "जयदमन" और पौत्र का "रुद्रदमन" था, इसके कुछ काल के बाद इनके नाम रुद्रसिंह आदि होगये थे, इन नामों के देखने और ऊपर लिखित शिलालेखों के विचार करने से यही सिद्ध होता है कि "क्षत्रप" लोग भी विदेशों से आकर भारत में वसे थे और शनैः शनैःहिन्दू आचार विचारों को ग्रहण करने से हिन्दू जाति में मिला लिये गये। इन शुद्ध हुये क्षत्रियों का राज्य ३८८ सन् तक रहा। रुद्रदमन के विषय में जूनागढ में निम्नलिखित शिलालेख मिला है "शब्दार्थ गान्धर्व — न्यायाद्यानां विज्ञान-प्रयोगावाप्तविपुलकीर्तिना" अर्थात रुद्रदमन व्याकरण, संगीत, न्याय आदि का प्रकाण्ड

पंडित था और उसकी बडी कीर्ति थी ।

कान्हेडी गुफा के शिलालेख "वासिष्ठी-पुत्रस्य" आदि से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इस शुद्ध हुये " रुद्रदमन" की पुत्री से वासिष्ठ पुत्र " श्रीसातकर्णी" का विवाह हुआ था अर्थात् वे शुद्ध किये जाकर उनका उच्च वंशों के राजाओं के साथ संबंध भी होगया । नासिक की गुफा के शिलालेख में लिखा है कि इसी शक जाति के " दसपुरा" के रहने वाले शुद्ध हुये विष्णुदत्तके लडके "वृद्धीक " ने वहां दो कुंड बनवाये । इससे ज्ञात होता है कि न केवल राजा महाराजा वरन् मामूली हैसियत के शक जाति के आदमी भी शुद्ध कर लिये जाते थे ।

यह यवन शुद्ध होने के बाद बडे बडे मठों बौद्ध चैत्यों और स्तूपों में पुष्कल दान देते थे । पूना के समीप की कारली गुफा में लिखे हुये शिलालेखों से यह सिद्ध होता है—

" धेनुकाकटा यवन स सिंह
धयानथम्भो दानं "

अर्थात धेनुकाकट से आये हुये यवन ने शुद्ध होकर हिंदू नाम " सिंहध्य " रक्खा । उसने यहां भेंट चढाई ।

" धेनुकाकटा धमयवनस । "

अर्थात धेनुकाकट से आये हुये यवन ने शुद्ध होकर अपना हिन्दू नाम धम्म रक्खा और यहाँ भेंट चढाई ।

जुन्नार के निम्नलिखित शिलालेखोंसेभी यही सिद्ध होता है:—

'यवनस इरिलस गतान दवधम वे पोढियो'

अर्थात् ईरीला नामक यवन को हिंदू बनाया गया और उसने मन्दिर के लिये दो कुंड बनवा दिये ।

आभीरजाति का हिंदू होना ।

वर्तमान " अहीर " कहलानेवाले विदेश से भारत में आये और " आभीरवटक " नामक स्थान में, जो संयुक्तप्रान्त में " अहरौरा " और झांसी जिले में "अहीर-वार " नाम से प्रसिद्ध है, आकर बसे । विष्णुपुराण महाभारत तक में इनको म्लेच्छ मानते रहे परन्तु हिंदूजाति ने इनको शुद्ध कर अपने में मिला लिया और सन् १८० में इनके शुद्ध हिन्दू नाम रक्खे जाने लगे हैं जैसे कि " रुद्रमूर्ति " अभीर सेनापति था । और यह राज्य करने लगे और राजा होने के बाद इनके नाम " माधरीपुत्र " " ईश्वरसेन " " शिवदत्त " इत्यादि हुये और राजपूतों में मिलगये और अबतक इनको यादव राजपूत होने का अभिमान है ।

तुरुष्क जाति का हिन्दू होना ।

भारत के उत्तर से एक जाति, जिसका नाम तुरुष्क था भारतवर्ष में आई । जिस देश में यह जाति रहती थी, उसका नाम राजतरङ्गिणी में तुरुष्क तथा कुषाण लिखा है, यह कुषण राजा के वंशज थे, और कुषणवंशी कहलाये । इस वंश के हिम-काड्स (हिमद उफिसस) नामक एक राजा ने शैवमत को स्वीकृत कर हिंदू जाति में प्रवेश किया था । इसके विशेषणोंमें " माहेश्वर " शब्द मिलता है जिसका

अर्थ शैव है। इस के सिक्कों पर एक तरफ तुर्की टोपी दूसरी तरफ त्रिशूलधारी शिव और नन्दी बैल की तस्वीर है। इसी वंश में प्रसिद्ध बौद्ध राजा "कनिष्क" "हुविष्क" और "वसुदेव" हुये जिनके सिक्कोंपर बौद्ध भगवान् के चित्र मिलते हैं ये सब हिन्दूजाति में मिलगये।

हूण जाति का आर्य होना।

ईसाकी ५ वीं शताब्दी में हूण जाति ने टीडीदल की तरह भारत में प्रवेश किया, और कुछ समय के उपरान्त काश्मीर से लेकर मालवा आदि प्रदेशों तक इस जाति का अधिकार हो गया था। इसका विस्तृत विवरण राजतरंगिणी में लिखा है। हर्षवर्धन "शिलादित्य" ने इन्हे परास्त किया। बहुत काल तक भारत में रहने के कारण और हिन्दूधर्मानुकूल कर्मों के करने से ये क्षत्रिय जाति में पूर्णरूप से मिल गये थे। छत्तीसगढचेदी के राजा कर्णदेव ने एक हूण कन्या "अहिल्या देवी" से विवाह किया था। और पंवार राजपूतों की यह हूण एक शाखा अब तक मानी जाती है।

शाकद्वीपी मग जाति का ब्राह्मण जाति में प्रवेश॥

निम्नलिखित श्लोक से सिध्द् होता है कि मगों को विदेश से लाकर ब्राह्मण बनाया।

देवो जीयात् त्रिलोकीमणिरयमरुणो यन्निवासेन पुण्यः, शाकद्वीपःय दुग्धाम्बुनिधिवलयितो यत्र विप्रा मगाख्याः। वंशस्तत्र द्विजानां भ्रमिलिखिततनाभास्वतः स्वाङ्गमुक्तः, शाम्बो यानानिनाय स्वयमिह महितास्ते जगत्यां जयन्ति॥

एशिया तथा उसके आस पास के प्रदेशों में एक जाति मग नाम की, जिस को अब मगी कहते हैं, आबाद थी। यह लोग पहले पहल आकर बंगाल राजपूताना आदि में बसे थे। उस समय ब्राह्मण लोग पुजारी बनना गर्हित कर्म समझते थे। क्योंकि "देवचर्य्यागतैर्द्रव्यैः क्रिया ब्राह्मी न विद्यते" अर्थात् देवपूजा में प्राप्त द्रव्य द्वारा ब्रह्मकर्म नहीं होता। अतः श्रीकृष्ण के पुत्र "शाम्बराज" ने अपने मन्दिर की पूजा के लिये (जो कि उसने चनाब नदी के तट पर बनवाया था) इन मगों को पुजारी बना दिया। तब से शनैः शनैः ये मग लोग उन्नति करते करते ब्राह्मण जाति में मिल गये, और देवपूजा में इनका इतना अधिकार बढा कि "वराहमिहिर" के समय से सूर्य्य देवता की स्थापना का अधिकार केवल मग ब्राह्मणोंका ही रहा। भविष्यपुराण में इनके विषय में लिखा है कि ये पहिले गले में डोरी डाले रहा करते थे, परन्तु ब्राह्मण पदवी प्राप्त करने पर यज्ञोपवीत धारण करने लगे। शिलालेखोंसे यह सिद्ध होता है कि ये लोग पहले "शाकद्वीप" में रहा करते थे। इनका विस्तृत विवरण स्कन्दपुराण में मिलता है और शाम्ब ने जब भोजवंशी यादवों की लडकियां इनको ब्याह दीं तो उस दिन से उनकी संतान "भोजक" कह-

लाई, ये लोग जादू टोना बहुत करते थे इस वास्ते इनके साहित्य को "मैगिक" साहित्य कहते थे और अंग्रेजी का Magic शब्द इसी "मैगिक" का अपभ्रंश है। यही लोग मारवाड में सेवक कहाते हैं। यह "मिहिर" गोत्र के थे। और फारस से भारत में आये। पार्सियों के गुरु "जरतुष्ट" Zoroaster के वंशज हैं और वहां मगी पुजारी कहाते थे। इस प्रकार पांचवीं शताब्दी तक हम बराबर पार्सियों से विवाह सम्बन्ध करते थे और उनको अपने में मिला लेते थे। हिंदू नेताओं का कर्तव्य है कि पारसी भाइयों को भी जो १६ आना हिन्दू हैं उनको अपनी ओर अपना प्राचीन धार्मिक व रुधिर का संबन्ध बताकर खींचे, ताकि वे अपने आपको हिन्दू कहें क्योंकि पहिले जो लोग ईरान, सीरिया, "एशिया माइनर" श्याम आदि देशों से भारत में आये वे सब हिंदू बनाए गये थे और "आर्य्य सभ्यता को मानते थे"।

गुर्जर जाति का आर्य्यजाति में प्रवेश।

बहुत से ऐतिहासकों का मत है कि हूणों के साथ साथ गुर्जर लोग भी विदेश से आये थे। और पहल पहल ये लोग भीनमाल तथा गुर्जरत्रा अर्थात् गुजरात देश जिसको पुराने जमाने में लाट देश कहते थे, आकर बसे थे। कुछ काल के बाद ये लोग तमाम भारत में फैल गये। चीनी यात्री यूनच्वंग Yuanchwang लिखता है कि राजस्थान में सातवीं शताब्दी के प्रथम भाग में ही गूजर लोग हिन्दू जाति में इतने मिलगये थे कि इन को सब क्षात्रिय मानते थे। और यही गूजर प्रसिद्ध "प्रतिहार राजपूत वंश" कन्नौज में जाकर कहलाया। गुजरात के कुनवी, राजस्थान के "गुर्जरगौड ब्राह्मण" और "बड गूजर राजपूत" सब इसी वंश के हैं। कई प्रान्तों में इनका राज्य भी हो गया था पंजाब का गुजरांवाला तथा गुजरात जिला और बम्बई प्रांत का गुजरात अबतक इसी नाम से प्रसिद्ध है। महीपाल, महेन्द्रपाल राजों को राजशेखर कवि ने "रघुकुलतिलक" लिखकर रघुवंशी प्रकट किया है। वास्तव में ये लोग विदेशी थे। ये लोग आजतक एशिया और यूरोप के बीचमें "कहजार" जो कि गूजर का अपभ्रंश है इस नाम से एक बहुत बड़ी संख्या में वसते हैं। इनको भी हिन्दू जाति ने अपने में मिलाया था। और अपनी आर्य्य सभ्यता इनको सिखाई थी।

इन्होंने शुद्ध होकर अपने हिन्दू नाम रक्खे। जैसे "वत्सराज" "नागभट्ट" "रामभद्र" आदि। और अपने नाम के आगे हिन्दू धर्मों के नाम लिखने लगे जैसे "परमवैष्णव" "परमभगवतभक्त" "परमेश्वर" आदिआदि। इन गूजरों के सम्बन्ध में जोधपुर के शिलालेखसे यह प्रमाणित होता है कि ये परिहारों के पूर्वज हैं और ब्राह्मण पिता और क्षत्रिय माता से "परिहार" राजपूत उत्पन्न हुये। चालुक्य वंश जिसने भारत में राज्य किया वह भी इन्हीं गूजरों की संतति है। और यह पीछे से "सोलंखी" राजपूत कहलाये। इसी प्रकार चौहान

और परमार राजपूत भी यहीं बाहर से आकर हिन्दू बनाये गये और सब मिल जुल गये। चौहानों का पहिला राजा "पृथिवीराज विजय" के अनुसार "वासुदेव" हुआ और इस वासुदेव का राज्य छठी शताब्दी में मुलतान में था। इसके सिक्कों पर "ससानीयन पल्हवी" भाषा लिखी है इससे ज्ञात होता है कि यह भारत के बाहर से आया था और ब्राह्मण बनगया।

इस वंश का दूसरा राजा "सामन्त" हुआ और उसके लिये बिजौलिया का शिलालेख सिद्ध करता है कि वह ब्राह्मण था अतः चौहान राजपूत ब्राह्मणों के वंशज हैं। "कर्पूरमंजरी" में लिखा है कि ब्राह्मण कवि "राजशेखर" ने चौहान वंश की कन्या 'अवन्तीसुन्दरी, के साथ विवाह किया। इनका "वत्सगोत्र" था। इस प्रकार चौहान पहिले ब्राह्मण थे फिर क्षत्रिय बनगये। "तालगुंड" (माईसोर)के शिलालेख से प्रमाणित होता है कि कदम्ब भी पहिले ब्राह्मण थे फिर क्षत्रिय बन गये। कदम्बों के विषय में लिखा है कि "मानव्य ऋषि" की संतति "हारितपुत्रों" ने तीनों वेद पढकर ब्राह्मणपद को प्राप्त किया और क्यों कि इनके घर के पास कदम्ब का वृक्ष था, इस वास्ते यह कदम्ब कहलाये। इसी कुल में "मयूर शर्मन" नामक वीर योद्धा हुआ। और उसका पुत्र "कंगवर्मन"हुआ। अर्थात सातवीं शताब्दी तक ब्राह्मणों से क्षत्रिय हो जाते थे और कोई जाति पांति का बन्धन नहीं था।

जिस प्रकार प्रतिहार ब्राह्मण और क्षत्राणी से हुये उसी प्रकार कदम्ब भी ब्राह्मणों से क्षत्रिय बनगये क्योंकि चालूक्यों और कदम्बों का गाढ सम्बन्ध हो गया था। कदम्ब जाति के इसी "मयूरशर्मन" ने हिमालय के पास के "अहिच्छत्र के अग्रहार स्थान से १२००० ब्राह्मणों को लाकर अग्निहोत्र करा कर उनको "माईसोर" में बसाया। ये अबतक माईसोर में विद्यमान हैं। और "हाविक" ब्राह्मण कहलाते हैं। इसी प्रकार "सिंद" जाति भी "अहिच्छत्र" से आई और इनका "नागध्वज पुलिवाल भगवती पुरा परमेश्वर" बडा प्रतापी नागराज हुआ। ये लोग "शिवालिक" पर्वत, "हिंदुकुश" पर्वत, "सवालक्ष पर्वत" पांचाल देश के ऊपर के भाग की तरफ से आते थे। और भारतनिवासियों में मिल जाते थे। यह "अहिच्छत्र" सपादलक्ष की राजधानी था। मुसलमानी काल में सपादलक्ष की सीमा में अजमेर, मारवाड और पंजाब सम्मिलित हो गये। दक्षिण के और उज्जैन के बहुतसे ब्राह्मण अपने आपको "अहिक्षेत्र" से ही आया बतलाते हैं। इन्हीं गूजरों का बडा भारी राजा "प्रकाशादित्य" हुआ है जिसके अबतक सिक्के मिलते हैं और इनके विवाह-सम्बन्ध "बगदाद" तक होते थे। इन सब गूजरों की भिन्न भिन्न क्षत्रिय जातियों को अबतक सब से उच्च अग्निकुल राजपूत मानते हैं। इससे बढकर शुद्धि का क्या उत्तम प्रमाण होगा ?

मैत्रिक जाति का हिन्दू होना

वैसे तो सृष्टि की उत्पत्ति ही सब से ऊंचे स्थान " तिब्बत " पर हुई और वहां से और मध्य एशिया से आर्य्य लोग बराबर लगातार आकर आर्य्यावर्त्त में बसते रहे। परन्तु उन्होंने कभी भी जाति पांति के संकुचित बन्धन नहीं लगाये और जो जो मनुष्यों के समूह आते रहे उनसे लड भिड कर भी उन्हें अपनी सभ्यता सिखाकर अपने में मिलाते रहे । ५ वी शताब्दी में हूणों के साथ साथ कई जातियां आईं जिन का हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं । और हम यह भी दर्शा चुके हैं कि उन सब को हिन्दू जाति ने अपने में हडप कर लिया । उन्हीं हूणोंके साथ मैत्रिक या " मिहर " जाति आई । इसी मिहिर का अपभ्रंश मेर है । और इन मैत्रिकों में वल्लभी बडे ही प्रतापी राजा हुये हैं । गुजरात के नागर ब्राह्मणों का इन्हीं वल्लभियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है । यद्यपि ये लोग गुजरात के बडौदा राज्य के विसनगर में रहने से नागर ब्राह्मण कहलाये परन्तु वास्तव में ये उत्तर हिन्द के नगरकोट में पहिले वसते थे । जो बंगाल में गये वे वहां मिल गये और बंगालियों के गोत्र इन नागरों से बराबर मिलती हैं और इसी प्रकार जो भारत के अन्यप्रांतों में गये, वे वहां मिल जुल गये ।

भारत के ब्राम्हणों में नागर ब्राम्हण सब से श्रेष्ठ माने गये हैं। H.H. Risley) ने (जो भारतवर्ष में प्रसिद्ध जातीय तत्वान्वेषक माने गये हैं) अपने Castes and Tribes of India नामक पुस्तक में लिख है कि नागर ब्राह्मणों की तहकीकात करने पर मालूम होता है कि सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया तो उसकी सेना के कई सिपाही यहीं भारत में बसगये । उन लोगों ने यहां की स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया उससे जो सन्तान उत्पन्न हुई वह नागर ब्राह्मण कहलाये इनमें सब ही रीति रिवाज वे ही हैं जो यूनानियों में पाये जाते थे। इसकी पुष्टि इनके सिर और नाक के नापसे भी होता है जो Indo Scythian जाति के सिर और नाक के नापसे मिलती है ।

क्योंकि ५वीं शताब्दी तक कोई भी जन्म से जाति मानने का प्रमाण नहीं मिलता इस वास्ते ये नागर ब्राह्मणों के पूर्वज भी जैसा जैसा काम करने लगे वैसे वैसे कहलाने लगे।

पृथिवीराज चौहान के वंशज अजमेर मेरवाडे के कई मेर असल चौहान हैं। "मिहिर" क्षत्रियों से सम्बध के कारण शायद मेर कहलाने लगे हों । क्योंकि मेरों में अन्य राजपूतों की गोत्रें भी हैं । राजस्थान के राजपूतों को अपने प्राचीन इतिहास में चौहान, परमार, परिहार, सोलंखियों की उत्पत्ति देखकर इन वीर मेरों को अपने में मिलाने में जरा भी संकोच नहीं करना चाहिये ।

काम्बोज जाति हिन्दू बनाई गई।

काम्बोज जाति को मनु ने म्लेच्छ लिखा है । इतिहास में इसका विदेशों से

आना पाया जाता है । परन्तु आजकल यह हिन्दू जाति की उपजाति है । और कम्बोहे नाम से भारत के कई भागों में बहुत बड़ी संख्या में बसी हुई है । एक वर्ष पूर्व अमृतसर में इस जाति की एक कान्फ्रेन्स हुई थी । उच्च जाति के हिन्दू इनके हाथ का जल ग्रहण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते । इसी प्रकार न मालूम कितनी विदेशी जातियों को हिंदुओं ने अपने में मिला लिया होगा ।

मुसलमानों का वैष्णव धर्म में प्रवेश ।

विचित्र पाचनशक्ति रखनेवाली आर्य्य-जाति ने न केवल अन्य विदेशियों को अपनाया प्रत्युत पुराणों के प्रमाणों से यह भी सिद्ध होता है कि वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों ने लाखों मुसलमानों को वैष्णव धर्म की दीक्षा देकर हिन्दू बनाया । जिस समय भारत में मुसलमानों का राज्य विस्तृत हो रहा था, और लाखों हिन्दू मुसलमान हो गये थे, उस समय बंगाल में कृष्णचैतन्य महाप्रभु, जिनको बंगाली गौराङ्ग स्वामी कहते हैं, वैष्णवधर्म का प्रचार करते थे । उन्होंने इस अवस्था को देखकर अपने शिष्य प्रशिष्यों को आज्ञा दी कि मुसलमान हुए हिन्दुओं को वापस लेलो । इसका विस्तार पूर्वक वर्णन भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पूर्व खण्ड ४ अध्याय २१ में किया है । यथाः —

"श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे कृष्णचैतन्य सेवकाः । दिव्यं मन्त्रं गुरोश्चैव पठित्वा प्रययुः पुरीम् ॥ रामानन्दस्य शिष्याः वै अयोध्यायामुपागताः । कृत्वा विलोमं तं मन्त्रं वैष्णवांस्तानकारयन् ॥ भाले त्रिशूलं चिह्नं च श्वेतरक्तं तदाभवत् । कण्ठे च तुलसी माला जिह्वा राममयी कृता ॥ म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः ॥"

अर्थात् कृष्णचैतन्य के शिष्य अपने गुरु का उपदेश ग्रहण कर सातों पुरियों में गये । रामानन्द के शिष्य अयोध्या में गये और यवनों के मत का खण्डन करके और अपने मत का उपदेश देकर सबको वैष्णव बना लिया । और उनके मस्तकों पर लाल सफेद रंग का त्रिशूलाकार तिलक लगवाया गले में तुलसी की माला पहनाई, रामनाम का उपदेश दिया । रामानन्दजी के प्रभाव से अयोध्या के तमाम मुसलमान वैष्णव बन गये । आचार्य निम्बादित्यजी शिष्यों सहित कांचीपुर गये और मार्ग में समस्त मुसलमान हुवों को वैष्णव धर्म में पुनः मिला लिया उनके मस्तकों में बांस के पत्ते के सदृश तिलक लगाकर और गले में माला डालकर और कृष्ण का नाम जपने का उपदेश देकर हिन्दू बनाया । इसी प्रकार विष्णुस्वामी वाणीभूषण आदिकों ने हरिद्वार, काशी आदि तीर्थस्थानोंमें जाकर तमाम मुसलमानों को वैष्णव बनाया था । अबदुल करीम उर्फ़ रसखां को मुसलमान से वल्लभाचार्यजी ने हिन्दू बनाकर वैष्णवधर्म में दीक्षित किया था ।
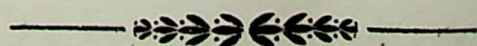
यम और नियमोंका महत्त्व ।

(लेखक— म० लालचन्द्रजी.)

" अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः । पा. योगसूत्र.

एक आदर्श रखने वाले व्यक्तियों के समूह को "समाज" कहा करते हैं, किन्तु व्यक्ति और समाज के कर्तव्य में भिन्नता है, जो नियम की व्यक्तिकी उन्नति के लिये पर्याप्त हैं उनसे कहीं कडे नियम समाजकी स्थितिके लिये आवश्यक होते हैं। यदि एक मनुष्य पवित्र, सन्तोषी, तपस्वी, सहन-शील, स्वाध्यायी और परमात्माका भक्त हो, तो वह उन्नतिके पथ से च्युत नहीं हो सकता, यदि संसारमें उसके सिवाय उसका किसी और से सम्बन्ध न हो । पर ज्योंही यह निश्चित हुआ कि एक मनुष्य का दूसरेसे सम्पर्क अनिवार्य है तो यह भी आवश्यक हो गया कि एक मनुष्य अपना आचरण इस प्रकार बनावें कि वह अपने स्वत्व कि रक्षा करता हुआ कहीं दूसरों के स्वत्व और अधिकारों पर जो हस्तक्षेप नहीं करता, इस लिये यह आवश्यक हुआ कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह को समाज की स्थिति और प्रगतिके लिये, समाज का प्रत्येक व्यक्ति अवश्य पालन करे, वरना समाजके छिन्न भिन्न होने का भय हो जाता है, यदि किसी समाजके व्यक्ति आपसमें द्वेषभाव रखेंगे और एक दूसरेकी हिंसा प्रतिहिंसा करेंगे तो वह समाज, सामाजिक दृष्टिसे उन्नत होनेके स्थान अवश्य अवनत होगा । अकेले मनुष्य को जब संसारमें किसी और से संपर्क हो न हो तो केवल ऐसा आचरण पर्याप्त है, कि जिससे वह अकेला अपनी स्थिति रख सके और उन्नति भी कर सके । वह अपनी सत्ता और ईश्वरकी सत्ताका माननेवाला है उसका आचरण पवित्र है, वह प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध है, उसका हृदयतंत्र प्रकृतिके अनुकूल है, वह प्रकृति की भिन्न अवस्थाओं को सन्तोष और सहनशीलतासे बिताता है । शीतोष्ण में प्रसन्न रहता है उसके सामने सत्य असत्य का प्रश्न ही नहीं आता, क्यों कि सिवाय उसके और परमात्माके और कोई है ही नहीं और यद्यपि उसका जीवन सत्यमय है पर सत्य और असत्यकी परख उसे दुःख नहीं देती सत्य यद्यपि सदैव स्थित है पर सत्यका निरूपण जभी करना पडता है जब एक व्यक्तिका दूसरे से सम्पर्क हो ।अस्तेय की जो वास्तवमें विना दूसरे व्यक्तिके अस्तित्व के आवश्यकता ही नहीं । अकेले व्यक्तिके लिये जो शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, यह पांच नियम लिखे हैं यदि कोई व्यक्ति उन सब को पूरा निभाये तो यह कहा जा सकता है कि वह आचार वान् है, उसका आचरण श्रेष्ठ है और श्रेष्ठ होने की सब से बडी

कसौटी यही है कि वह ईश्वर प्राणिधानतक अनुभव करता है । ब्रह्मचर्य के वास्तविक अर्थ भी उच्च आचरण के ही हैं जो बिना वीर्यरक्षा के कदापि सिद्ध हो नहीं सकता । परन्तु प्रकृति के अनकूल जीवन व्यतीत करनेवाला व्यक्ति स्वतःसिद्ध समाधिको ईश्वर प्रणिधानद्वारा ही लाभ कर लेता है और सच्चे अर्थों में स्व - अध्ययन रूपी स्वाध्याय करता है न कि केवल पुस्तकों का पाठ । इसी लिये वह ब्रह्मचारी है उसका गमन ब्रह्म नाम परमात्मा की ओर है और उसे ईश्वरप्रणिधान, स्वाध्याय, जप, संतोष और पवित्रता के सहारे अधिकार प्राप्त है । पर ज्योंही मनुष्य को दूसरे मनुष्यों से सम्पर्क हुआ उसे अवश्य अपनी और अपने द्वारा समाजकी रक्षा के हेतु आचरण समाज की रक्षाका साधन बनाना होता है और इस नियमित जीवनको ब्रह्मचर्यका जीवन कहते हैं, ब्रह्मचर्य में आजन्म स्त्रीका निषेध नहीं है, यद्यपि जो विवाह न करे वह आदित्य ब्रह्मचारी कहाता है परंतु वीर्य-रक्षा करता हुआ, उत्तम सन्तान की वृद्धि करना और ऋतुगामी होना ब्रह्मचर्य ही कहाता है और यह अनुभव हम प्रति ऋतु में प्रकृति में भी देखते हैं कि सब की सब प्रकृति अपनी अपनी ऋतुमें पुष्पवती और फलवती होती है । ऋतुकाल के पश्चात् गर्भ-धारण करने वाली पत्नी को भी पुष्पवती कहते हैं । श्रेष्ठ आचरण की फलरूप अवस्था अपरिग्रह है उसे चाहे आत्मसंयम कहिये। समाज में रहकर संयम आवश्यक हो जाता है अकेला मनुष्य यदि संयमी न भी हो तो केवल अपना आप ही खाता है किन्तु जब व्यक्ति समाज का भाग होता है तो उस के लिये संयमी होना उसकी अपनी स्थिति और वृद्धि और समाज की रक्षाके लिये आवश्यक है । इसी लिये भगवान मनुने आदेश किया है कि मनुष्य समाजमें बुद्धिमान केवल शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानरूपी पांच नियमों को ही पालन करता हुआ सफल नहीं हो सकता उसे अवश्य अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह नाम पांच यमों को भी निभाना होगा।

यह तो रहा व्यक्ति के कर्तव्यो का विधान जो उसे समाज में रहकर अवश्य निभाने चाहिये पर यदि एक व्यक्ति अपने कर्तव्य न करे तो क्या किया जाय ? ऐसी अवस्था में प्रत्येक कर्तव्य के भंग करने के लिये दण्डका विधान होना आवश्यक है और दण्ड देने का अधिकार समाज को ही होना चाहिये क्योंकि समाजका प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य न करता हुआ न केवल अपनी हानि करता है पर साथ ही समाज की भी हानि करता है । समाज के किसीभी व्यक्तिका पतित होना समाजमें दोषका आना होता है और इसी लिये मानवधर्मशास्त्र में यह आदेश है कि जो मनुष्य वेदको त्याग कर कहीं और श्रम करता है अर्थात् वेदके अनुसार जो व्यक्ति जीवन नहीं बनाता उसे द्विजों की पंक्तिसे

हटा दिया जावे। यह तो हुआ समाजसे बहिष्कार। पर प्रश्न यह है कि यदि एक मनुष्य ऐसे निन्दित कर्म करे कि वह अपने आपको गिराने के अतिरिक्त समाजके पतन का भी कारण हो। उदाहरण के तौर पर चोरी करना, झूट बोलना आदि तो क्या समाज उसे बहिष्कार कर दे अथवा किसी प्रकार उसे आचारवान बनाने का यत्न करे। यदि बडे छोटे सब अपराधों के लिये बहिष्कार ही एकमात्र उपाय हो तो एक समय ऐसा आसकता है जब कि बहिष्कार किये हुओं की संख्या में वृद्धि होते वे साधारण समाज का प्रतिकार करने में संगठित हो जावेंगे। बहिष्कार भी केवल उसी समयतक हो सकता है जब तक समाज की अवस्था योग्य हो और धार्मिक मनुष्यों की संख्या पर्याप्त हो तब तक तो शास्त्र विरुध्द कार्य करनेवालों को बुरा कहा जा सकता है। किंतु यदि किसी समय समाज में अधिकता ऐसे मनुष्यों की हो जाय जो मान मर्यादा धर्म कर्तव्य आदिसे विमुख हों तो उस समय समाज की स्थिति उसी रूप में होगी और प्रगति वैसी ही होगी जैसी कि वह चाहेगा। ऐसे समय में सत्यार्थी लोगों को सत्याग्रह करने की आवश्यकता होती है और संसार का इतिहास ऐसे उदाहरणोंसे भरा हुआ है जहां कि समाज के अत्याचारों से सत्यनिष्ठ धर्मपरायण लोग पीडित हुए हैं। सो चाहे व्यक्ति के कर्तव्य की ओर दृष्टि दे चाहे समाजकी। जब तक व्यक्ति और समाज ऐसे सर्वतन्त्र मानुषिक उन्नति के नियमों पर स्थिर नहीं रहते तब तक समाज में चाहे किसी विशेष ढंग की स्थिरता कुछ कालतक हो सके पर परस्पर हितके न होने के कारण समाज चिरकाल तक उन्नत नहीं रह सकता। संसार में स्थायी विजय केवल सत्य की ही हो सकती है। किसी समय कोई विशेष जन समूह चाहे धर्मसे च्युत होकर, कर्तव्यसे विमुख होकर कुछ कालतक अपना डंका बजाले पर अटल ऋत और सत्य जो परमात्मा के सार्वभौम नियम हैं उनके आगे सिर झुकाना ही पडता है।

साधारणतया यदि यह मानलिया जाय कि किसी भी देशकी नीति उस देशके रहने वालों की बहुमत सम्मति के अनुसार हुआ करती है तो यह अत्यावश्यक है कि नेता लोग सुचरित्र हों ताकि देशवासियों की सम्मति जिसपर कि देश की नीति का निर्भर है पवित्र और निष्कलंक रह सके। यदि जनताकी शिक्षाका प्रबन्ध सत्यता की ओर न होगा तो संभव है कि देशवासियों की रुचिसंकुचित हो जाए और वे या तो आपस में हिंसा प्रतिहिंसा, अथवा फूट, चोरी, व्यभिचार आदि में निमग्न रहकर अपने आप को खोदें अथवा आपसमें ऐसे समूह स्वार्थ के कारण बनालें कि सारे समाज कि वृद्धि के स्थान आपस में झगडे और ईर्षा और द्वेष कि वृद्धि हो जाय अथवा स्वार्थरत एक विचित्र सामुहिक रूप में

प्रगट होकर सारे देशका समाज किसी अन्य देशवासियोंके स्वत्व के छीन लेने के लिये देशसेवा के ढोंग से तुल पडे । समाज की अवस्था और प्रगति विचित्र है इस में संशय नहीं कि किसी समाज की नीति और उसका आदर्श व्यक्तियों की नीति और आदर्श की ही झलक होती हैं पर ऐसा देखा गया है कि जब मनुष्यों में व्यक्तित्व शक्तिका ह्रास हो जाता है तो समाज की नीति उसके कतिपय नेताओं के चित्त की वृत्तिपर ही निर्भर होती है और साधारण जनता भेडों की भांति अपने नेताओं की आज्ञा पालते हैं ऐसी अवस्था में समाज सच्चे अर्थों में जीवित नहीं कही जाती। ऐसी समाजमें अधिकार बहुमत द्वारा निश्चित नहीं होता पर केवल नेताओंके इशारे पर ही समाज की गति रहती है। समाज की स्थिति और उत्तरोत्तर वृद्धिके लिये व्यक्तिओंका आचारवान् होना आवश्यक हैं और साथ ही व्यक्तियों में निजी व्यक्तित्व शक्तिका होना भी अनिवार्य है। जिस मनुष्यमें निजी व्यक्तित्व विकास नहीं पाता वह मनुष्य कभी उत्कर्ष और आत्मसम्मान के रहस्य को नहीं समझ सकता, किन्तु व्यक्तित्व का विकास समाज के हित के लिये हो, अर्थात कोई भी व्यक्ति केवल निजी उन्नति में ही सन्तुष्ट न रहकर अपने परिवार, अपने पडौसी, अपने गांव अथवा अपने मुहल्ले की उन्नति में भी उचित भाग ले और जब तक अपने चहुं ओर अपने अनुकूल वायुमण्डल न बना ले तब तक अपने दायित्व से आपको उऋण न समझे। यह पारस्परिक दायित्व है। उस भाव के उदय होने से व्यक्तियों में सहानुभूति होकर समाज का संगठन हुआ करता है। प्रत्येक व्यक्ति न केवल अपने ही लिये जिये परं च अपने आप को समाज का भाग समझता हुआ, यह जानता हुआ कि उसके लिये हुए कर्म समाज पर अवश्य प्रभाव डालते हैं अपने जीवन को यज्ञरूप बनाकर परस्पर हित के लिये ही साधन करे, यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना उत्तरदायित्व अनुभव करे तो संसार में दुःख और क्लेश की मात्रा बहुत कम हो जाय। उदाहरण के तौर पर देखिये, कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन व्यवहार में वायुमंडल में प्रश्वास द्वारा और मलमूत्र द्वारा वायुमण्डल को गन्दा करता है पर उसकी शुद्धि का दायित्व अपने ऊपर नहीं लेता। यह बात पुराने आर्योंने अनुभव की और हवन यज्ञ की प्रथा चलकर व्यक्ति के दायित्व को निश्चित किया कि प्रत्येक व्यक्ति इसलिये हवनद्वारा वायुमंडल को शुद्ध करे कि उसने अपनी जीवनचर्या में अनिवार्य तौर पर कुछ परिणाम में उसे अशुद्ध किया है। इसी प्रकार जब यह पता लग जाय कि शब्द का नाश नहीं होता तो अवश्यमेव किसी व्यक्तिका यह अधिकार नहीं कि वह ऐसे शब्द उच्चारण करे जिनसे वायुमण्डल में ओज हो और जो अन्य व्यक्तियों के कानोंद्वारा जाकर उन के मन और अन्तःकरण पर आघात पहुंचावें। अतः प्रत्येक

कर्म जो एक व्यक्ति करता है वह अवश्यमेव उसके कारण उसके मिलने वालोंपर प्रभाव डालता है,इसी हेतु भगवान् कृष्ण ने कहा था, कि मैं कर्तव्य इस लिये पालन करता हूं कि यदि मैं अपना कर्तव्य न पालन करूं तो सर्व साधारण में व्यभिचार के फैलानेका दोषी मैं बनूंगा। जब कि यह सिद्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति के किये हुए कर्म उसके आसपास के व्यक्तियों पर प्रभाव डाले विना नहीं रहते तो समाज के हित के लिये व्यक्ति को सदैव शुभ कार्य ही करने चाहिये ताकि उसके कर्म से औरों की हानि न हो।

जब तक व्यक्ति स्वार्थ के मदमें अन्धा नहीं होता तब तक समाज में हानि नहीं आती। पर यदि कभी ऐसी स्थिति आजाय कि एक समाज सामुहिक दृष्टि में स्वार्थान्ध होजाय और व्यक्तिगत उन्नति को न सह सके जैसा कि प्राय: आज कल की बिरादरियों में देखा जाता है तो ऐसे समयमें दोष उन थोडे व्यक्तियों का हुआ करता है जो संकुचित भाव रखते हुए समाजके बल को व्यक्तिके विरोध में लगा देते हैं। यह अवस्था सामाजिक अन्याय की अवस्था है और ऐसी स्थितिमें व्यक्तिका अधिकार है कि वह सत्य सिद्धान्त को सामने रखकर समाज के विरोधके लिये सत्य के आश्रय कटिबद्ध हो जाय और समाजकी बागडोर ऐसे लोगों के हाथ से निकालकर परोपकारी और परस्पर उन्नति की रक्षा करने वाले व्यक्तियों के हाथ में लाये विना सन्तुष्ट न हों। समाज का अन्याय व्यक्तिके अन्याय से भी अधिक दारुण हुआ करता है और इस अन्याय के नीचे दब जाना आचारवान व्यक्तिके लिये अयोग्य है। इस लिये धर्म अधर्म के निश्चय करने के लिये केवल समाज की संमती ही पर्याप्त नहीं हो सकती। मनुष्य को सत्यसिद्धान्त की आवश्यकता है कि जो व्यक्ति और समाज दोनों को सीमाबद्ध रखे और मनुष्य के उत्तरोत्तर विकास में बाधा न पडे। यह सत्य ज्ञान भगवानने सृष्टि की आदिमें ही वेदमें दिया है। वेदमें व्यक्ति जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन आदि सब विषयों पर मनुष्य के लिये पूर्ण शिक्षा दी है और उस शिक्षा के अनुकूल चलने में ही मनुष्य का कल्याण है।

इस में कुछ सन्देह नहीं कि मनुष्य विचार करने और कार्य करने में स्वतंत्र है पर मर्यादा रहित कार्य स्वतंत्रता की ओर न ले जाकर मनुष्य को नि:श्रृंखलता की ओर ले जाता है। मर्यादायुक्त जीवन ही स्वतंत्रता का हेतु है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये संयम की आवश्यकता है। संयम जितना व्यक्तिके लिये आवश्यक है उतना ही बल्कि उससे भी अधिक समाजके लिये आवश्यक है। कोई मनुष्य यह अधिकार नहीं रखता कि वह ऐसा कर्म करे जिससे दूसरे मनुष्य की हानि हो॥

स्वाध्याय के ग्रंथ।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध।
मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन। १)

(२) य. अ. ३२ का व्याख्या। सर्वमेध।
" एक ईश्वरकी उपासना। " मू. ॥)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण।
" सच्ची शांतिका सच्चा उपाय। " मू. ।।)

[२] देवता-परिचय ग्रंथ माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥=)

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=)

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =)

(४) देवताविचार। मू. =)

(५) वैदिक अग्नि-विद्या। मू. १॥

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। मू. १॥

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥)

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। मू. १

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।

(५) योग साधन की तैयारी। मू. १

(६) योग के आसन मू. २)

(७) सूर्यभेदन व्यायाम। मू. ।=

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग -)

(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग =)

(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक =)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। १॥)

(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-)

(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)

(३) वैदिक सभ्यता। मू. ॥।)

(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥)

(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥)

(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥)

(९) शिव संकल्पका विजय। मू. ॥।)

(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ॥)

(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)

(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. =)

(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. =)

(१४) वेदमें लोहेके कारखाने। मू. ।-)

(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. =)

(१६) वैदिक जलविद्या। मू. =)

(१७) आत्मशक्ति का विकास। मू. ।-)

[७] उपनिषद् ग्रंथ माला।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या। ।॥=)

(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला।

(१) शतपथ बोधामृत। मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;

औंध (जि. सतारा)

संस्कृत पाठ माला।

स्वयं संस्कृत भाषा सीखने की अत्यंत सुगम पद्धति। इतनी सुगम पुस्तकें देखकर आपको भी आश्चर्य होगा!

१ इन पुस्तकों के अध्ययनसे आप घर बैठे, विना किसीकी सहायताके, संस्कृत सीख सकते हैं।

२ यदि आप प्रतिदिन आधा घंटा अध्ययन करेंगे तो एक वर्षके अंदर रामायण महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

३ जो साधारण हिंदी जानते हैं वे भी इन पुस्तकों का अध्ययन करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

४ जो स्त्रियां संस्कृत पढना चाहती हैं, उनके लिये ये पुस्तक अपूर्व लाभकारी हैं।

५ आठ दस वर्ष की अवस्था के बालक और बालिकाओं को भी ये पुस्तक पढाये जा सकते हैं, इतनी सुगम पद्धति से ये लिखे गये हैं।

६ हरएक पाठशालाकी पढाईमें ये पुस्तक अत्यंत लाभ कारी हैं।

शीघ्र ग्राहक बन जाइये और अपने इष्टमित्रों को संस्कृत पढने का उत्साह दीजिये।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ।-) पांच आने है,

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४) रु. है।

नमूनेके अंकके लिये ।-) तिकिट भेजिये।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक ८ क्रमांक ६८ श्रावण सं. १९८२ अगस्त स. १९२५
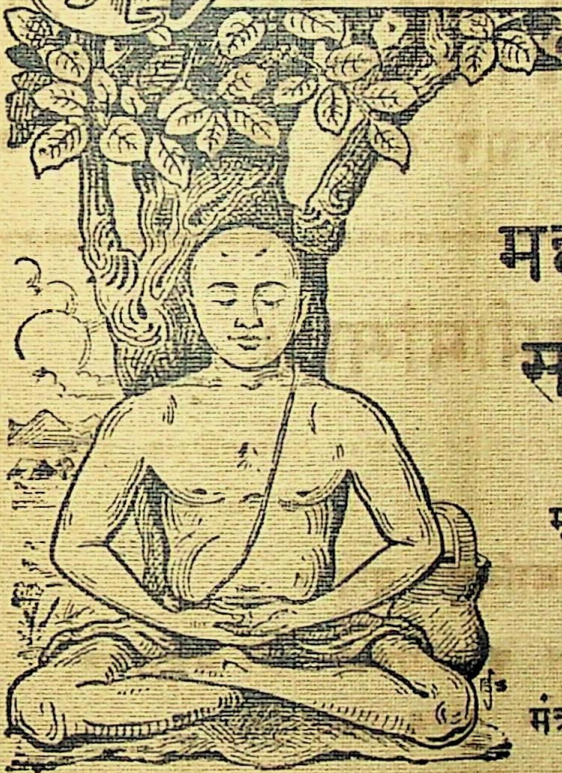
संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

हमारा उन्नति ....पृ. २३३
यमयमीसूक्त २३४
सुभगे शब्द प्रयोग २४३
महान स्वप्न २४५
नवीन ग्रंथ २४६
आसन— २४७
शास्त्रार्थ वृत्त ....,,
सर्पविष— २४८
संकल्पशक्ति— २५६
लन्दन में प्रेत विद्या २६३

लेखक- प्रोफेसर
नन्दकिशोर विद्यालंकार

पुनर्जन्म.

भूमिका लेखक- श्री. १०८
स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

निश्चय जानिये आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं, और सदा रहेंगे। इसलिये यदि आप को 'मृत्यु, के इस भीषण नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह जानना हो कि मृत्यु के पश्चाद् जीवात्माकी क्या गति होती है। पितृयान और देवयान मार्ग क्या हैं। उपनिषदों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कितने ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना चाहते हैं। यदि आप जानना चाहते हैं कि किस प्रकार आजकल के धुरन्धर पश्चमीय विद्वान् आपके प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते जाते हैं। पश्चिमके घोर नास्तिक वाद तथा डार्विन के विकासवाद की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं तो इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

इस ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपक्षियों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा। सृष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकारण को अधुनिक विज्ञानके साथ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है। इस ग्रन्थसे आपको जर्मनी में किये गये घोडों पर नवीन परीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा। ग्रन्थ-का विषय दार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रक्खा गया है —इस लिये यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। श्री· स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान् क्या लिखते हैं देखियेः—

"ग्रन्थकर्त्ताने 'पुनर्जन्म' की सचाई को साधारण जन के आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषतः हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की है।"

श्रीयुत डाक्टर गङ्गानाथ झा, वाइस चान्सलर अलाहा बाद युनिवार्सिटी।

" मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें 'पुनर्जन्म' सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशदरूपमें रखनेमें ग्रन्थकर्ताको पूर्णतया कृत कार्यता हुई है। और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं।

(श्री० डॉ० प्रभुदत्त शास्त्री एम०ए० पी० एच. डी०, प्रेसिडेन्सी कालेज-कलकत्ता युनिवर्सिटी)

"ग्रथकर्ताकी मूल पुस्तकको मैने देखा था और प्रशंसा की थी-मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ता ने इसे प्रकाशित किया और हिंदी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो। (बा० भगवानदास एम ० ए० बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।)

मैनेजर गोबीला ॲण्ड कम्पनी ८।२ हेस्टिंग्स स्ट्रीट, कलकत्ता।

वर्ष ६
अंक ८
क्रमांक ६८

श्रावण
संवत १९८२
अगस्त
सन १९२५

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।
संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर. स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)
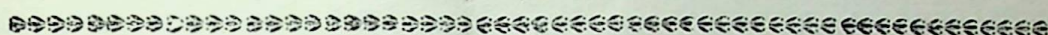
हमारी उन्नति ।

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत । स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

अ. १२।१।३२

हे (भूमि) मातृभूमि ! (नः) हमको (मा पश्चात्) न पीछे से, (मा पुरस्तात्) न आगेसे, (मा उत्तरात्) न ऊपरसे, (उत) और (न अधरात्) न नीचेसे (नुदिष्ठाः) पीछे हटाओ । (नः स्वस्ति भव) हमारे लिये कल्याण कारिणी हो । (परिपंथिनः) बटमार चोर और दुष्ट हमको (मा विदन्) न मिलें और (वधं) मृत्युको हमसे (वरीयः) बहुत ही (यावय) दूर हटा दे ।

हमें किसीभी स्थानसे प्रतिबंध न हो, हम सब दिशाओंमें अपनी प्रगति और उन्नति करते हुए आगे बढें, कोई भी शत्रु हमपर हमला न करे, और किसी दुष्टके कारण हमारा वध न हो । अर्थात् हमारी प्रगति होकर सब प्रकार हमारा कल्याण हो । दिन प्रतिदिन हमारी उन्नति होती रहे ।

[श्री० पं० चंद्रमणिजी विद्यालंकार, स्नातक गुरुकुल कांगडी, पालीरत्न, निरुक्त भाष्यकार तथा वेदाध्यापक गुरुकुल कांगडी, द्वारा यह लेख हमारे पास प्रसिद्धी के लिये आया है। जैसा कि हमने पूर्व प्रसिद्ध किया था, हमारा विचार यमयमी सूक्तपर पुनः लिखकर अपना और पाठकोंका समय नष्ट करनेका नहीं था। परंतु यह लेख विशेष विचार पूर्ण है और इसमें कई विचार नवीन हैं इस लिये यह पाठकोंके सन्मुख रख देते हैं। पं० चंद्रमणिजी स्वयं निरुक्त भाष्यकार होनेके कारण इनके लेखका प्रामाण्य विशेष है, पाठक इस दृष्टिसे इस लेखको पढें। पंडितजीने यही लेख विस्तार से गुरुकुल पत्रिका "अलंकार" में मुद्रित किया है और यमयमी सूक्तकी विशेष व्याख्या भी की है। पाठक "अलंकार" में इस विशेष लेख को अवश्य पढें।

संपादक-वैदिकधर्म]

यमयमी—सूक्त ।

(ले०-श्री.पं. चन्द्रमणि विद्यालंकार, पालीरत्न)

श्री. पं. चमूपति जी एम. ए. ने यमयमी-सूक्त की विचित्र व्याख्या करते हुए जिस अनर्गल प्रणाली का आश्रय लिया है और जिस प्रकार वैदिक शब्दों का अनर्थ किया है, उसे देख कर अत्यन्त खेद होता है और सहसा महाभारत की यह उक्ति स्मरण आ जाती है 'बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति'। क्या इस प्रकार की व्याख्याओं से वेद का उद्धार होगा या संहार होगा? यदि इस प्रकार के व्याख्यान वेद-भक्तों की भक्ति को बढाने लगे तो समझिए, वेदोद्धार का कार्य उस से भी अधिक पीछे पड जावेगा।

पं. चमूपति जी ने अपने दोनों लेखों में मुख्यतया चार स्थापनायें की हैं, जिन पर उनका संपूर्ण महल खडा है। वे चार स्थापनायें ये हैं—

१ यमयमी पतिपत्नी हैं।

२ भ्राता स्वसा का अर्थ पति पत्नी है।

३ 'यम' सन्यासी होने वाला बैरागी है।

४ ऋषि दयानन्द 'यम' के इस भाव के पोषक हैं।

१. यमयमी पतिपत्नी हैं ?

१. ब्राह्मण ग्रन्थोंका अनर्थ—पं. चमूपति जी ने यमयमी को पतिपत्नी सिद्ध करने के लिये ब्राह्मण वचनों का जो अनर्थ किया है वह अत्यन्त खेद जनक है।

(क) 'अग्निर्वै यम इयं (पृथिवी) यमी आभ्यां हीदं सर्वं यतम्' इस शतपथ के प्रमाण (७.२.१. १०.) को प्रस्तुत करते हुए परिणाम निकालते हैं कि यहां यम यमी का संबन्ध पति पत्नी कोही प्रतिपादन किया हुआ है।

यहां तो यम यमी का कोई भी संबन्ध प्रतिपादन नहीं किया, प्रत्युत 'आभ्यां हीदं सर्वं यतम्' के अनुसार 'यम' धातु से यम यमी का निर्वचन करते हुए पुल्लिङ्ग होने से अग्नि का नाम यम और पृथिवि को यमी बतलाया है। आप लिखते हैं—"लीजिए तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'अग्ने पृथिवीपते यह पाठ मिलता है। सम्भव है आपको आपत्ति हो कि 'पति' का अर्थ यहां स्वामी है। आगे चल कर कहा है 'तस्मिन योनौ प्रजनौ प्रजायेय' अर्थात् इसगर्भ में मैं गर्भाधान करूं। प्रकरण उस प्रकार के पतित्व का हैं जिससे प्रजनन होता है"।

वाचकवृन्द ! इस स्थलपर तो हमारे योग्य पण्डित जी ने विचित्र कौशल दर्शाया है।—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि, अनमीवस्य शुष्मिणः
प्र प्र दातारं तारिषः, ऊर्जं नो धेहि द्विपदे
चतुष्पदे॥"

अग्ने पृथिवीपते ! सोम वीरुधां पते ! त्वष्टः समिधां पते! विष्णवाशानां पते! मित्र सत्यानां पते! मरुतो गणानां पतयः! रुद्र पशूनां पते! वरुण धर्मणां पते! इन्द्रौजसां पते! बृहस्पते ब्रह्मणस्पते! आरुचा रोचेऽहं स्वयम्, रुचा रुरुचे रोचमानः। अतीत्यादः स्वराभगेह, तस्मिन्योनौ प्रजनौ प्रजायेय। वयं स्याम पतयो रयीणाम्। भूर्भुवः स्वः स्वाहा ॥ ३का० ११ प्रपा० ४अनु०

अर्थ—हे अन्नपति परमेश्वर! हमें आरोग्य तथा बल को देने वाले अन्न को प्रदान कीजिए। आत्मसमर्पक अपने भक्त को दुःख सागर से तराइए। और, हमारे मनुष्यों तथा पशुओं में बल को स्थापित कीजिए।

पृथिवी के स्वामी अग्रणी! औषधिओं के मालिक शान्तिधाम ! चन्दनादि शुष्क इन्धनों के पति दीप्तिमान ! दिशा उपदिशाओं के स्वामी सर्वव्यापक! सत्य नियमों के स्वामी मित्र ! सत्य धर्मों के पति पापान्धकार-निवारक ! वसु रुद्र आदित्य आदि गणों के स्वामी जीवनाधार ! पशुओं के स्वामी रोग-निवारक ! बलों के भण्डार, सामर्थ्यशाली होते हुए दुष्टों के विदारक ! महती वाणी के पति वेदपति परमात्मन् ! मैं सात्विक अन्न के सेवन द्वारा स्वयं दीप्ति से प्रदीप्त होऊं और स्वयं प्रदीप्त होता हुआ अपनी दीप्ति से दूसरों को भी प्रदीप्त करूं। हे प्रभो! सांसारिक सुख को छोडकर उस पारलौकिक सुख को मुझ में धारण कीजिये, अर्थात् अभ्युदय के पश्चात् निःश्रेयस सुख की प्राप्ति कराइए। ऐसे सुखसम्पन्न गृहस्थधाम में प्रकृष्ट सन्तान को पैदा करूं। एवं, हम सब भूलोक अन्तरिक्षलोक और द्युलोक-तीनों लोकों के धनों के स्वामी बनें। प्रभो ! यह मेरी प्रार्थना सच्ची हार्दिक प्रार्थना है।

वाचकवृन्द ! यह है प्रकरण। उपर्युक्त प्रकरण के इतने स्पष्ट होते हुए पं० चमूपतिजी को अग्नि तथा पृथिवी का परस्पर में पतिपत्नी संबन्ध जोडने की न जाने कैसे सूझी !

'अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि' आदि मन्त्र यजुर्वेद के ११ वें अध्याय का ८३ वा मंत्र है। उसी की विस्तृत व्याख्या यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण ने की है।

(ग) गोपथ उ० २. ९ का 'पृथिव्यग्नेःपत्नी'प्रमाण पेश करते हुए पं० चमूपति जी लिखते हैं "यम यमी का पतिपत्नीभाव इससे तो नितरां स्पष्ट ही है कि अग्नि (यम) की पृथिवी (यमी) पत्नी है।

पाठक वृन्द ! जरा इस अमोघ अस्त्र की भी जांच कर लीजिये। गोपथ का उपर्युक्त प्रकरण इस प्रकार है—

आग्नीध्रो देवपत्नीर्व्याचष्टे । पृथिव्यग्नेः पत्नी, वाग् वातस्य पत्नी, सेनेन्द्रस्य पत्नी, धेना बृहस्पतेः पत्नी, पथ्या पूष्णः पत्नी, गायत्री वसूनां पत्नी, त्रिष्टुप रुद्राणां पत्नी, जगत्यादित्यानां पत्नी, अनुष्टुपू मित्रस्य पत्नी, विराड् वरुणस्य पत्नी, पंक्तिर्विष्णोः पत्नी, दीक्षा सोमस्य राज्ञः पत्नीति।

मैं इसकी व्याख्या पण्डित जी पर ही छोडता हूं। वे ही वतला दें कि इस स्थल पर पतिपत्नी के संबन्ध का क्या रहस्य है? अथवा यहां 'पत्नी' शब्द किसी और ही अर्थ का द्योतक है जो आप के अभिप्राय को सिद्ध नहीं करता ? एवं कोई भी ब्राम्हण-वचन पण्डित जी के मत का पोषक नहीं दीख पडता।

(२) सूक्त की अन्तःसाक्षि पतिपत्नी के विरुद्ध है—परन्तु इसके विपरीत यम यमी सूक्त की अन्तः साक्षि यमयमी के पतिपत्नी-भाव को पुष्ट नहीं करती, प्रत्युत उसके सर्वथा विरुद्ध ही पडती है। सूक्त के सातवें मंत्र में आता है 'जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्याम्'। इसका अर्थ पण्डित जी भी यही करते हैं कि

पति के लिये जायारुप में मैं अपना शरीर प्रकट करूं इससे अत्यन्त स्पष्ट है कि 'यमी' अभी 'यम' की जाया अर्थात् पत्नी नहीं परन्तु पत्नी बनना चाहती है।

(३) यास्क पति पत्नी के विरुद्ध है – (क) यदि 'अग्निर्वै यम इयं यमी' इस शतपथ—वचन का आश्रय लेकर प्रस्तुत सूक्त में यमयमी को पति पत्नी माना जावे तो यह यास्कमत के सर्वथा विपरीत है। अग्नि और पृथिवी देवता पृथिवीस्थानीय हैं। परन्तु यास्क इस सूक्त में यम यमी को मध्यमस्थानिय देवता मानता है (निरु०११अ०२४श०)

(ख) और यदि 'यमी' यमपत्नी होती तो यास्क यमी का निर्वचन 'यमस्य पत्नी' ऐसा अवश्य करते जैसा कि इसी ११ वें अध्याय में आये इन्द्राणी का 'इंद्रस्य पत्नी' और 'रोदसी' का 'रुद्रस्य पत्नी' किया है। अतः स्पष्ट है कि यास्क 'यमी' को 'यमपत्नी' नहीं समझते।

२. भ्राता और स्वसा का अर्थ।

जो विद्वान् अपनी माया से यम यमी को उपर्युक्त ब्राह्मण —वचनों में पतिपत्नी दिखला सकते हैं, उनके लिये यह कोई कठिन कार्य नहीं कि भ्राता को पति और स्वसा को पत्नी बनादें। आइए, इस की भी परीक्षा कर लें।

भ्राता – सायण और यास्काचार्य के प्रमाण देते हुए आपने भाई के अतिरिक्त भ्राता के भर्ता, पोषक, भागहर्ता- ये अर्थ और दिये हैं। और लिखा है "लौकिक भाषा में भ्राता शब्द का प्रयोग केवल भाई अर्थ में होता है, पोषक तथा भागहर्ता इन अर्थों में केवल वेदही में इस शब्द का प्रयोग है"।

पण्डित जी यहां कुछ भ्रम में पड गये हैं। वह यह भूल गये हैं कि भाई के वाचक 'भ्राता' शब्द

का क्या निर्वचन है । यास्क का पाठ पण्डित जी ने पूरा नहीं दिया मैं उसे पूरा कर देता हूं–"भरते-र्हरति कर्मणो हरते भागं भर्तव्यो भवतीति वा ।"

भाई के वाचक भ्राता शब्द के ही ये तीन निर्वचन हैं । भर्ता (पोषक), भागहर्ता, और भर्तव्य होनेसे भाई को भ्राता कहते हैं ! पिता के पश्चात् भाई ही बहिन का पोषक होता है अत: वह भर्ता है, भाई दायभाग का आहरण करता है अत: वह भागहर्ता है, भाईभाई को परस्पर में एक दूसरे की पालना करनी चाहिए अत: वह भर्तव्य है ।

पंडित जी द्वारा निर्दिष्ट 'परायाहि मघवन, (ऋ० ३. ५३. ५) और 'अस्य वामस्य पलितस्य' (ऋ. १.१६४.१) मंत्रों में आये 'भ्राता' शब्द का अर्थ भर्ता भाई ही है अन्य कुछ नहीं । 'अस्य वामस्य' मंत्र में सूर्य अशनि और अग्नि- इन तीन को भाई बतलाते हुए त्रिविध अग्नि का प्रतिपादन किया है। मंत्र तथा 'भ्राता' शब्द की विस्तृत व्याख्या लेखक ने वेदार्थदीपक निरुक्तभाष्य में की है।

स्वसा—'स्वसृ' शब्द के निर्वचन में पंडित जी यास्क (११ अ० ३२ख०) को बिलकुल भूल गये, क्योंकि वह उनके विपरीत पडता था ।

'स्वसृ' का अर्थ अंगुलि निघण्टु— पठित है और सायण ने ऋ०१. ९२. ११ में 'स्वसारम्' का अर्थ 'स्वयमेव सरन्तीं निशाम्' किया है, अत: 'स्वसृ' का अर्थ 'अभिसारिका पत्नी' भी है।

इस अद्भुत तर्क को देखिये क्या उत्तम परिणाम निकलते हैं!! 'पिता' का अर्थ बाप, सूर्य, परमेश्वर, गुरु उपदेशक हैं, अत: पालक होने से पति भी पिता है। 'माता' का अर्थ मां, परमेश्वर, प्रकृति है, अतः उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थों के बनाने से पुत्री भी माता है। भगवन् ! ऐसे कुतर्क से काम नहीं चलेगा।

मैं निश्चय से कह सकता हूं कि अभी तक किसी भी प्राचीन आचार्य ने भ्राता का अर्थ पति और स्वसा का अर्थ पत्नी नहीं किया । यदि किया हैं तो पण्डित जी उसका प्रमाण पेश करें ! विना प्रमाण के पण्डित जी का तर्क लंगडा है और भयंकर गढे में गिराने वाला है !

शब्दों के यौगिकत्व से यह अभिप्राय नहीं कि आप मनघडन्त अर्थ करते जावें । यदि यह विचार है तो सर्वथा अशुद्ध और निरुक्त–शास्त्र के विपरीत है । इस विचार को एकदम मन से दूर कर देना चाहिए । लौकिक भाषा में पाचक, कहार (क = उदक), परिव्राजक आदि यौगिक शब्द हैं परन्तु फिर भी वे रसोइए, जल भरने वाले कहार और पर्य्यटन करने वाले सन्यासी के लिये ही प्रयुक्त होते हैं । पण्डित जी के मतानुसार प्रत्येक गृहिणी को पाचिका, सब मनुष्यों और स्त्रिओं को कहार या कहारी और प्रत्येक चलने फिरने वाले स्त्री पुरुष को परिव्राजिका या परिव्राजक नहीं कहा जाता । हमें आश्चर्य है कि वेदाध्ययन के इन प्रारम्भिक नियमों की ओर तनिक भी ध्यान क्यों नहीं दिया गया ।

३. यम सन्यासी होने वाला वैरागी है।

पं० चमूपति जी लिखते हैं कि प्रस्तुत सूक्त में 'यम' सन्यासाश्रम में प्रवेशेच्छुक संयमी महात्मा है । सूक्त-रचना को देखने से स्पष्टतया पता लगता है कि यम ऐसा पुरुष नहीं ।

(क) लम्बे संवाद के पश्चात् १२ वें मंत्र में यम ने पतिपत्नी के संबन्ध की अन्तिम अस्वीकृति बडे प्रबल शब्दों में प्रकाशित करदी । और संबन्ध न करने का कारण 'पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्'

कहते हुए 'न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्' से जतला दिया कि बस मैं यह संबन्ध नहीं करूंगा। यदि वह सन्यासी होना चाहता है और इसलिये संबन्ध नहीं करता तो वही कारण बतलाना चाहिए था, पाप कारण नहीं हो सकता। पाप तो कारण तब होता जब कि वह वनस्थ या संन्यस्त अवस्था में होता। जब तक उसने गृहत्याग नहीं किया तब तक धर्मानुसार ऋतुगामी होने पर कोई पाप नहीं। पाप की युक्ति तभी चरितार्थ हो सकती है जब कि यम यमी का संबन्ध पति पत्नी का न हो।

(ख) जब 'यमी' यम के अन्तिम वचन से निराश हो गई तब वह १३ वें मंत्र में कहती है कि मैं तेरे मन और हृदय को नहीं खींच सकी। अस्तु, तू किसी अन्य स्त्री के साथ ही संबन्ध स्थापित करेगा। उसके उत्तर में इसके अन्तिम मंत्र में यम कहता है, हां, तू किसी अन्यपुरुष को ही अपना पति बना। साफ है कि दोनों ही गृहस्थ-धर्म को तो पालन करना चाहते हैं, परन्तु परस्पर में नहीं।

इस स्पष्ट वर्णन को पं० चमूपति जी ने 'स्त्री-सुलभ तीक्ष्णता से कटाक्ष किया' और 'यम यह कहां स्वीकार करता है कि मैं दूसरी स्त्री को आलिङ्गन दूँगा' कह कर टालना चाहा है। आश्चर्य है, पण्डित जी ने यहां पर सभ्य तरीके के मनुष्य स्वभाव को सर्वथा भुला दिया। यदि कोई स्त्री किसी दूसरे पुरुष से विवाह-संबन्ध का प्रस्ताव करती है तो अनिच्छा होने पर यही उत्तर मिलेगा कि मैं आप से संबन्ध नहीं करना चाहता। उसके साथ यह कभी नहीं कहा जावेगा मैं अमुक के साथ संबन्ध करूंगा। वैदिक वर्णन मनुष्य-स्वभाव के इस उच्च तरीके की शिक्षा क्यों न देता। अतः, १३ वें मंत्र के पूर्वार्ध का ही उत्तर देना उचित था और 'अन्या किल त्वां' इत्यादि उत्तरार्ध के लिये मौनावलम्बन ही योग्य था।

(ग) नियोग के प्रतिपादन के लिये सन्यासी होने वाले यम और उस की पत्नी का यह संवाद किसी उच्च भाव का द्योतक नहीं। यदि गृहस्थाश्रम में ही किसी महात्मा को पूर्ण वैराग्य उत्पन्न होगया हो तो वैदिक मर्यादा से परिपूरिता सहधर्मिणी का भी वैसा ही उज्वल चारित्र खींचना बडा भावपूर्ण होता। आप ही विचारिए कि बडे परिश्रम से अत्यन्त खींचतानी के साथ आपके मतानुसार यमयमी-सूक्त का अर्थ करने पर भी एक यति सन्यासी की सहधर्मिणी का यह चरित्र शोभाजनक है या उपनिषत्प्रतिपादित याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी का 'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्य्याम' इत्यादि चरित्र उज्ज्वल है ? नियोग का प्रतिपादन तो किसी अन्य विधि से और इस से भी अच्छे तरीके पर हो सकता था। अतः, बलात्कार 'यम' को 'सन्यासी होने वाला' मानकर सूक्त की संगति लगाना वेद के गौरव को घटाना है।

(घ) 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे' आदि पराशर-स्मृतिका प्रमाण उद्धृत करते हुए पं० चमूपति जी लिखते हैं कि सन्यासी हो जाने पर सन्तानाभाव में पत्नी को नियोग करने का अधिकार है। ठीक है, परन्तु आपका यम तो सन्यासी नहीं है सन्यासी होना चाहता है। इस सूक्त के प्रथम ही मंत्र में आए 'पितुर्नपातमादधीत' वाक्य का अर्थ 'अपने पिता की सन्तति को चलाये' करते हुए पण्डित जी भी इस बात को स्वीकृत करते हैं कि 'यम' की अभी कोई सन्तान नहीं हुई।

क्या यह यम विवाह करते ही पूर्ण वैरागी होगये?

और क्या इस बात की वेद आज्ञा दे सकता है कि कोई मनुष्य विवाह करते ही बिना सन्तानोत्पत्ति किये घर छोड कर भाग जावे और पत्नी को दुरवस्था में डाल दे ? यदि ऐसा आकस्मिक वैराग्य है तो मैं समझता हूं वह सर्वथा झुटा वैराग्य ही होगा उसे हम सच्चा और पूर्ण वैराग्य कभी नहीं कह सकते। यदि उस बैरागी ने गृह-त्याग करना ही था तो दो मास के पश्चात् भी कर सकता था, इस अन्तर में गर्भाधान करके पितृ ऋण से मुक्त हो जाता और व्यर्थ में ही पत्नी को आपत्काल में डाल कर नियोग के लिये बाधित न करता।

४. ऋषि दयानन्द के अर्थ से विरोध।

पं० चमूपति जी ने 'यम' को सन्यासी मानकर यथा कथंचित् यमयमी-सूक्त की संगति लगाने का प्रयत्न केवल इस लिये किया है कि आचार्य दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्' की व्याख्या नियोग परक की है। परन्तु पता लगता है कि ऋषि के पोषक पण्डित जी ने संगति लगाते समय सत्यार्थ प्रकाश के उस स्थल को भी पढने का कष्ट नहीं किया। आप ऋषि दयानन्द के नाम पर सूक्त की संगति तो लगाने बैठे, परन्तु संगति लगाते लगाते ऋषि के अर्थ से अत्यन्त दूर चले गये, और अपनी मनघडन्त व्याख्या को आर्षानुकूल प्रसिद्ध किया !!!

अब आप ऋषि के ही शब्दोंमें 'अन्यमिच्छस्व' की व्याख्या देखिये—

"जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि (सुभगे !) हे सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री ! तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर, क्यों कि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे, परन्तु उस विवाहित महाशय पति कि सेवा में तत्पर रहे। वैसे ही स्त्री भी जब रोग आदि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी ! आप सन्तानोत्पत्ति की इच्छा मुझ से छोड के किसी दूसरी विधवा स्त्रीसे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये"।

"जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे' इस वाक्य को "वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे" इस वाक्य के साथ मिला कर संगति लगाने से साफ पता लगता है कि यहां रोगजन्य असमर्थता ही अभिप्रेत है सन्यासिजन्य असमर्थता नहीं और फिर 'परन्तु उस विवाहित महाशय पति कि सेवा में तत्पर रहे' यह वाक्य ऋषि के भाव को और भी स्पष्ट कर देता है।

यहां तो स्वामी जी को 'यम' का अर्थ 'सन्यासी' अभिप्रेत ही नहीं।

'यमाय' का अर्थ यजुर्वेद ७. ४१ में ऋषिने ग्रहस्थाश्रमजन्यविषयसेवना दुपरताय यमनियमादि युक्ताय' किया है और यहां सत्यार्थप्रकाश में यमयमी सूक्तान्तर्गत 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्' का अर्थ नियोग परक किया है, अतः इस सूक्त में ऋषि को 'यम' से सन्यासी अभिप्रेत है-यह संयोजन 'कहीं का ईंट कहीं का रोडा भानमती ने कुणवा जोडा' के सामान ही है।

पाठकगण ! पंडित जी की इन चारों स्थापनाओं में कितना बल है, यह आपने जांच लिया। ऐसी

स्थापनाओं के आधार पर भवन कितना दृढ बन सकता है, इसे आप स्वयं ही विचार सकते हैं। स्पष्ट है कि उस में अवश्यमेव अनेक दोष होंगे। अतः, उन सब की यहां समालोचना न करते हुए हम यथार्थ पक्ष की स्थापना करते हैं। उस में यथावसर कुछ एक अन्य दोषों की भी परीक्षा हो जावेगी।

स्वपक्ष– स्थापन।

(१) हमारा मत है कि प्रस्तुत सूक्त में यम यमी निस्सन्देह भाई बहिन हैं। इसकी पुष्टि के लिये हम निम्न लिखित प्रमाण पेश करते हैं –

(क) अन्तःसाक्षि -- किसी की पुष्टि के लिये सब से प्रबल प्रमाण अन्तःसाक्षि ही हुआ करता है। मंत्र ११ में यम यमी के लिये 'भ्राता' 'स्वसा' का प्रयोग किया गया है। और १२ वें मंत्र 'पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्' में फिर यमी के लिये 'स्वसारं' प्रयुक्त है। ये शब्द सिवाय भाई बहिन के अन्य किसी भाव में कभी प्रयुक्त ही नहीं होते–यह हम पहले दर्शा ही चुके हैं।

(ख) लौकिक संस्कृत का प्रमाण --- पं. चमूपति जी व्याकरण का सहारा लेकर बडे दावे के साथ कहते हैं कि 'यम' की बहिन 'यमा' हो सकती है 'यमी' कभी नहीं। 'यमी' का अर्थ सदैव 'यम की पत्नी' ही होगा। उनके इस लेख से पता लगता है कि वे लौकिक संस्कृत से अत्यन्त अनभिज्ञ हैं। आप जरा शब्दकल्पद्रुम वाचस्पत्य तथा अमरकोश आदि कोषों को देखिए।

(१)वहां 'यमुना' नदी के 'यमभगिनी' और 'यमी' ये दो नाम और दिये हुए है। एवं 'यम' का पर्यायवाची 'यमुनाभ्राता' बतलाया गया है। हमें इस कल्पना में जाने की कोई आवश्यकता नहीं कि 'यम' यमुना नदी का भाई क्यों है? परन्तु यह स्पष्ट ह 'यम' यमुनाभ्राता है और 'यमुना' के समानार्थक शब्द यमभगिनी और 'यमी' भी हैं। अतः निस्सन्देह यम यमी भाई बहिन हुए।

(२)और देखिए, भाईदूज नामक प्रसिद्ध त्योहार जो दीपावली के तीसरे दिन प्रायः संपूर्ण भारत में मनाया जाता है उसका संस्कृतनाम 'भ्रातृ द्वितीया' है। 'भ्रातृद्वितीया' का पर्यायवाची नाम 'यमद्वितीया' कोषों में उल्लिखित है। इससे भी यही परिणाम निकलता है कि यम यमी भाई बहिन ही हैं।

(३) परन्तु इसके विपरीत संस्कृत का अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण है कि 'यम' की पत्नी का नाम 'यमी' बिल्कुल नहीं। शब्दकल्पद्रुम में 'यमपत्नी' का अर्थ लिखा है 'यमस्य भार्या यमस्य द्वे भार्ये धूमोर्णा विजयेति जटाधरः'।

यदि 'यमी' यमपत्नी होती तो अवश्यमेव 'यमी' का अर्थ यमपत्नी करता। अतः यह असंदिग्ध है कि यमी यम की पत्नी नहीं प्रत्युत भगिनी है। व्याकरण से चाहे 'यमी' का अर्थ 'यमपत्नी' भी हो सकता हो, परन्तु साहित्य की दृष्टि से वह सर्वथा अशुद्ध ही कहलायेगा।

(ग) व्याकरण प्रमाण – इतने स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए यम-भगिनी के अर्थ में प्रयुक्त 'यमी' की सिद्धि के लिये व्याकरण-प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि फिर भी आग्रह हो तो लीजिए व्याकरण -- प्रमाण भी दे देते हैं।

पं. चमूपति जी 'पुंयोगादाख्यायाम्'(पा.४.१.४८) सूत्र देकर सिद्ध करते हैं कि यमपत्नी अर्थ में ही 'यम' से 'ङीष्' प्रत्यय होगा अन्यथा नहीं। पण्डित जी! पुंयोगादाख्यायाम् का अर्थ तो यह है कि जो पुलिङ्ग नाम पुरुष के योग से स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हैं उससे 'ङीष्' हो जाता है। यहां स्त्रीपुरुष का एकमात्र दम्पती भाव कहां से आगया स्त्रीपुरुष के संबन्ध पितापुत्री भाई

बहिन भी तो हैं ? वे कैसे छूट जावेंगे ? अत एव कौमुदीकार लिखते हैं "योगः संबन्धः । सचेह दम्पतिभाव एवेति नाग्रहः । संकोचे मानाभावात्" अर्थात् योग कहते हैं संबन्ध को । और वह यहां दम्पतिभाव ही है-ऐसा आग्रह नहीं, क्योंकि स्त्रीपुरुष के संबन्ध को संकुचित अर्थ में ग्रहण करने के लिये कोई प्रमाण नहीं । आगे कौमुदीकार उदाहरण देता है कि केकय राजा की पुत्री का नाम 'केकयी' इसी सूत्र से निष्पन्न होता है । पण्डित जी के व्याकरणानुसार तो 'केकयी' केकय की पत्नी बन जावेगी ! भगवन् ! ऐसा अनर्थ न कीजिए । पुत्री को पुत्री और बहिन को बहिन ही रहने दीजिए उन्हें पिता या भाई की पत्नी न बनाइए !

इस प्रकार आपने देख लिया कि अभी तक संस्कृत वाङ्मय में यमयमी का यदि कोई संबन्ध स्थापित है तो एकमात्र भाई बहिन का ही है अन्य कोई नहीं ।

(२) 'यम सहजात जोडा और असहजात जोडा इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है । यहां सहजात जोडे के अर्थ में प्रयुक्त है । एवं, यम और यमी सगोत्र भाई बहिन हैं सगे नहीं ।

संपूर्ण सूक्त में ऐसा कोई शब्द नहीं जिससे सगे भाई बहिनों की कल्पना की जा सके । पंचम मंत्र के 'गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कः' वचन को देख कर कई लोग भ्रम में पड जाते हैं कि यहां तो स्पष्टतया सगेभाई बहिन ही अभिप्रेत हैं । यह उन की भूल है । यहां पर 'नौ' शब्द द्वितीयान्त नहीं प्रत्युत षष्ठ्यन्त है । एवं, इसका अर्थ यह होगा कि 'उत्पादक परमेश्वर ने हमारे कई भाई बहिनों को गर्भ में दम्पती बनाया है ।'

(३) गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । १०.८.५० ३६

विधवेव देवरम् मर्यं न योषा । ऋ० १०.४०.२
उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकम् । ऋ० १०.१८.८

इत्यादि मंत्रों में विवाह और नियोग का सामान्यतया विधान है । परन्तु यमयमी सूक्त सगोत्र-विवाह और सगोत्र-नियोग का निषेधक है ।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥
मनु ३. ५॥

अर्थात् , जो स्त्री माता की छः पीढी और पिता के गोत्र की न हो, वह द्विजों के लिये (दारकर्मणि) विवाहार्थ और (मैथुने) नियोग में गर्भधारणार्थ प्रशस्त है ।

उपर्युक्त मनुवचन का मूल यही यमयमी-सूक्त है । इसी वेदाज्ञा को सामने रखते हुए ऋषि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के नियोग प्रकरण में लिखते हैं-"परन्तु माता, गुरुपत्नी, भगिनि, कन्या, पुत्रवधू आदि के साथ नियोग करने का सर्वथा निषेध है ।" अत एव पुत्री का नाम 'दुहिता' है क्योंकि वह 'दूरे हिता' होती है । विवाह या नियोग के संबन्ध के लिये सगोत्रों से बाहर दूर निहित होती है ।

सपिण्ड, सगोत्र, सनाभि, सज्ञाति-ये सब शब्द शब्दकल्पद्रुम ने समानार्थक बतलाये हैं । इस अर्थ में 'जामि' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जिसकी सिद्धि हम अभी करेंगे ।

चतुर्थ मन्त्र में आये 'गन्धर्वो अप्सु अप्या च योषा' 'सा नौ नाभिः' 'परमं जामि तन्नौ' और १० वें मंत्र का 'जामयः' शब्द इसी सगोत्रता का द्योतक है ।

(४) ये यम और यमी पूर्ण संयमी हैं । मन्त्र-व्याख्या के देखने से आपको स्पष्टतया ज्ञात हो

जावेगा कि यमी के संयम में भी कोई सन्देह स्थल नहीं। 'पितुर्नपातमादधीत वेधा' 'एकस्य चित्त्वजसं मर्त्यस्य' 'विवृहेव रथ्येव चक्रा' आदि में यमी उच्च उद्देश्य का ही निर्देश कर रही है।

'काममूता' में उसने स्पष्टतया ही कह दिया है कि मैं यथेष्ट प्रवृद्धचेता होती हुई इस संबन्ध के लिये कह रही हूं।

अन्त में अपने प्रस्ताव के न माने जाने पर दुःखी नहीं होती प्रत्युत 'बतो बतासि' कहती हुई बडी प्रसन्नता प्रकट कर रही है। यमी का प्रस्ताव अशिष्ट है, भाव पापपूर्ण नहीं प्रत्युत पवित्र है।

सगोत्र वालों में दम्पती संबन्ध मानुषी कल्पना के भी बाहर है—यह बात ठीक नहीं। इस पाप-कर्म को अनेक जातियें और व्यक्तियें करती रही हैं और कर रहीं हैं। इस का निषेध करना आवश्यक ही था।

सगोत्र वालों में विवाह के लिये जिस किसी तरह भी बुद्धि और हृदय को अपील किया जा सकता है, किया गया। और फिर उसके ठीक ठीक उत्तर देकर निषेधात्मक परिणाम निकाला गया जिस से प्रस्तावकर्त्री यमी भी सहमत हो गई। यह है संवाद का रहस्य।

पं० चमूपती जी को भाई बहिन के पक्ष में 'बाजारू बातों' की गन्ध आने का एक मात्र कारण मंत्रों के यथार्थ अर्थों को न समझना ही है।

अब 'जामि' शब्द पर और विचार करना रह गया है जिस के कारण सायणाचार्य तथा उस के अनुयायी विद्वान 'आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि' मंत्र के अर्थ का अनर्थ करते हैं।

'जामि' पर विस्तृत विवेचन लेखक ने वेदार्थदीपक निरुक्तभाष्य में किया है। यहां पर संक्षेप से ही लिखा जावेगा।

'आ घा ता गच्छान्' मंत्र की व्याख्या यास्काचार्य ने नि० ४ अ० ४६ श० में की है। वहां 'जामयः' 'अजामि का अर्थ करते हुए लिखते हैं— जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वा समानजातीयस्य वोपजनः" जामि अतिरेक का नाम है, मूर्ख का वाचक है और समानजातीय अर्थात सज्ञाति का बोधक है। 'जामि' समानजातीय अर्थ में 'जा' में 'मि' का आगम करने से सिद्ध होता है। एकस्मिन्कुले जायते इति जा, जा एव जामि-यह निर्वचन सज्ञाति अर्थ में होगा।

दुर्गाचार्य ने अपनी व्याख्या में 'असमानजातीयस्य ऐसा पदच्छेद किया है। पं० चमूपति जी ने भी बिना विचारे उसे ही मान लिया है। परन्तु यह उन की नितान्त भूल है। एक तो निघण्टु-व्याख्याकार देवराजयज्वा ने 'अतिरेकबालिशसमानजातीयानां वाचको जामिशब्दः' लिखते हुए 'समानजातीय' ही पाठ माना है। और दूसरा 'असमानजातीयस्य वा उपजनः' इस पाठ से कोई आशय ही नहीं निकलता। 'असमानजातीय' मानने से जामि का निर्वचन क्या होगा? और तीसरे, सायणादि भाष्यकारों ने 'समानजातीय' के आधार पर अनेक स्थलों पर जामि का अर्थ 'ज्ञाति' या 'बन्धु' किया है। अतः 'समानजातीयस्य' ऐसा पाठ मानना ही संगत है।

यास्काचार्य ने 'आ घा ता गच्छान्' की व्याख्या में 'जामी' का पहिला अर्थ 'अतिरेक' दिया है। अतः प्रस्तुत मंत्र में यह अर्थ अवश्य होना चाहिए।

अतिरेक के बारे में देखिए सायण क्या कहता है—

(क) जामि अतिरेकनाम, अतिरिक्तं अहितं प्रयोजनरहितम् । ऋ. ८.६.३.

(ख) जामि प्रवृद्धं सर्वमतिरिच्य वर्तमानम् । ऋ०=८.६१.४

(ग)अजामि दोषरहितम्।ऋ० ५.१९.४

(घ) जामि योग्यमनुरूपम् ।ऋ० १०.८.७

यहां तीसरा अर्थ पहिले अतिरेक के भाव को बतलाता है और चौथा अर्थ दूसरे अतिरेक का निर्देश करता है । 'अजामि' के 'दोषरहितम्' अर्थ में 'जामि'(बालिश)मूर्खता के भाव को भी प्रकट करता है।

एवं, आप देखिये कि 'जामि' के यास्ककृत तीनों अर्थ किस प्रकार 'आ घा ता गच्छान्' मंत्रमें सुसंगत होते हैं । अतएव 'यत्र जामयः कृण्वन् अजामि' का अर्थ मनें यह किया है-जहां कि सगोत्र (सजाति) स्त्री पुरुष महत्वयुक्त योग्य अनुरूप कार्य्य करेंगे ।

वाचक वृन्द! यद्यपि पं० चमूपति जी लिखते हैं कि ब्राह्मणग्रंथ, यास्काचार्य, ऋषि दयानन्द, और व्याकरण–सब उन के मत का पोषण करते हैं, परन्तु यहां तक के मेरे लेख से आप को भली भांति विदित होगया होगा कि इन में से कोई भी इनके मत का पोषक नहीं प्रत्युत सब के सब नितान्त विरुद्ध हैं । परन्तु मेरे पक्ष में ब्राह्मण, यास्काचार्य ' ऋषि दयानन्द, व्याकरण, सायणाचार्य, बृहद्देवता आदि सभी हैं । इन सब का समन्वय सिद्धान्त रूप से मेरे पक्ष में ही हो रहा है।

"सुभगे" शब्दका प्रयोग।

"वैदिक मेगजिन" के श्रावण के अंकमें श्री. पं. चमूपतिजीने द्वितीय वार यमयमीसूक्तके विषयमें लिखा है और सिद्ध करने का यत्न किया है कि यमयमी परस्पर भाई बहिन नहीं थीं परंतु विवाहित पतिपत्नी थी। यह सिद्ध करने के लिये उन्होंनें जो विलक्षण प्रमाण दिये हैं, उनमें एक "सुभगे" शब्द का प्रयोग भी एक है । पं०जी लिखतें है कि—

"न तेभ्राता सुभगे वष्टयेतत। ऋ. १०।१०।१३में सुभगे शब्दका प्रयोग सिद्ध करता है कि यमयमी विवाहित थीं। यदि भाई बहिन होती तो इस शब्दका प्रयोग होना संभव ही नहीं था।"

उक्त लेखमें पं० चमूपतिजिका कहना है कि "सुभगे" शब्दका प्रयोग सिद्ध करता है कि यम और यमी विवाहित थी । यदि विवाहित न होती तो यम कदापि यमीको "सुभगे" नामसे संबोधित न करता।

पं. चमूपति जीके विचार से "सु-भगे" शब्दका अर्थ केवल "उत्तम योनि वाली स्त्री" ही है । परंतु यह गलत है और केवल असत्य है । केवल इसी

अश्लील अर्थ से "सुभगे" शब्दका प्रयोग किसी भी संस्कृत सभ्यग्रंथमें नहीं है।

संस्कृत वाङ्मयमें "सुभगा" शब्दका अर्थ यह है ही नहीं जो कि पं. चमूपतिजीने माना है।

जो हम कह रहे हैं उसको सिद्ध करनेके लिये बडे प्रमाण देनेकी भी आवश्यकता नहीं यही, महाभारतका श्लोक देखिये—

तां तथा ब्रुवतीं श्रुत्वा भृशं लज्जान्वितोऽर्जुनः। उवाच कर्णौ हस्ताभ्यां पिधाय त्रिदशोपमः ॥३६॥ दुःश्रुतं मेऽस्तु सुभगे यन्मां वदसि भामिनि। गुरुदारैः समाना मे निश्चयेन वरानने ॥३७॥ यथा कुंती महाभागा यथेंद्राणी शची मम। तथा त्वमपि कल्याणी नाऽत्र कार्या विचारणा ॥३८॥ महाभारत. वन. अ० ४६

अर्जुन ने उनके ऐसे वचन सुनकर लज्जामें भरकर अपने हाथोंसे कानोंको बंदकर लिया, और ऐसा कहने लगे; हे सुभगे! हे भामिनी! जो तुम कह रही हो, सो हमारे सुननेके योग्य नहीं है, क्यों कि तुम निश्चय करके हमारी गुरुपत्नीके समान हो जैसे शची कुंती आदि हैं। तुम भी हमको वैसी ही हो हे कल्याणि! इसमें कोई भी विचार और संदेह स्थान नहीं है।

यह अर्जुन का भाषण है। इसमें "सु-भगे" शब्द का प्रयोग है वह देखने योग्य है।

अर्जुन इंद्रके राज्यमें इंद्रसे अस्त्र विद्या सीखने के लिये गया था। वहां उर्वशी अप्सराका मन अर्जुन पर मोहित हुआ। एक रात्रीके समय उर्वशी अप्सरा अर्जुन के पास आगई और अपना मनोभाव उसने अर्जुनसे कहा। उर्वशीका भाषण श्रवण करके अर्जुन लज्जायुक्त होकर कानोंपर हाथरखकर बोला कि-

"हे सुभगे! हे देवी! तू हमारी माता जैसी हो। जैसे कुंती मेरे लिये है वैसी ही तू है"

इस कथनमें "सु- भगे" शब्दका प्रयोग माता के विषयमें किया है। अर्जुन उर्वशी को अपनी माता मानता हुआ, उनके साथ अपना मातृ संबंध मानकर "सुभगे" शब्दका प्रयोग करता है। इससे हि पता लग सकता है कि इस शब्द में जिस हीन भावको पं० चमूपति जी देखरहे हैं वह भाव इस शब्दमें है ही नहीं। क्यों कि यदि वह अश्लील भाव इस शब्दमें थोडाभी होता तो कदापि यह संभव नहीं कि इस शब्द का प्रयोग माताके विषयमें महाभारतमें किया जाता। "मातृदेवो भव" यह धर्मवाक्य आर्योंमें सब जानते ही हैं। माताके विषयमें सर्वदा निःसंदेह पवित्र अर्थवाले शब्द ही प्रयुक्त होते हैं। सदासे यही परंपरा आर्योंमें रूढ है। इसका विचार करनेसे स्पष्ट पता लगता है कि, यह शब्द पवित्र अर्थ वाला ही है। और उसमें वह अर्थ है हि नहीं, कि जो पं० चमूपति जीने माना है।

यमयमी सूक्त वेदका सूक्त है, इसमें स्त्री विषयक पवित्रता अधिक है, यह बात सब जानते ही हैं। यमयमीके संबाद रूप सूक्त में यम यमी के लिये "सु-भगे" इस शब्दका प्रयोग करता है। यह शब्द माताके लियेभी प्रयुक्त होता है, इतना पवित्र अर्थ इस शब्दका है, इसी लिये यमने अपनी बहिन के लिये इस शब्दका प्रयोग इस सूक्तमें किया है।

"सुभग अथवा सुभगा" शब्दका अर्थ "सुंदर मनोहर" इतनाही है। जो स्त्री अति सुंदर होती है। उसको "सुभगा" अर्थात "सुंदरी" कहते हैं। इसी लिये यह शब्द माता, बहिन या कोई सभ्य स्त्री इस विषयमें प्रयुक्त होता है।

जब यमयमी सूक्त के शब्दों पर इतना अत्याचार करने की आवश्यकता प्रतीत हुही है तब यहबात स्पष्ट है कि उनका माना हुआ तात्पर्य कितना भ्रम मूलक है।

महान् स्वप्न ।

[ले० श्रीयुत टी० एल० वास्वानी]

'स्वतंत्र भारत'—अभी तक हमारे लिये स्वप्न ही बना हुआ है ! 'वैध आन्दोलन' अधिक आगे नहीं बढ़ा सका । जब तक भारत एक परतन्त्र देश है तब तक उसका विधान ही क्या हो सकता ? राजनीति में अडँगा नीति का स्थान अवश्य है परन्तु केवल अड़ङ्गा नीति से अधिक से अधिक कुछ और रियासतें कुछ और सुधार मिल सकते हैं, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती । मैंने जहां तक समझा है स्वतन्त्रता की समस्या जनता की शक्ति और बल से ही हल हो सकती है। मेरा मतलब उस शक्ति से है जिससे रचना होती है, उस शक्तिसे नहीं जिससे विनाश होता है । एक प्राचीन लैटिन कहावत मशहूर है कि जो रोग औषधि से अच्छा नहीं होता वह लोहे से अच्छा होता है और जो लोहे से अच्छा नहीं होता वह आग से अच्छा होता है । यह बिलकुल सत्य है कि पश्चिमी राष्ट्र सदियों से इसी लोहे और आग का विश्वास करते चले आरहे हैं । परन्तु फल क्या हुआ ? उन्होंने कौनसा रोग अच्छा कर लिया ? पिछले युद्ध में २० राष्ट्रों ने भाग लिया और दो करोड आदमी शामिल हुए परन्तु क्या फल मिला ? प्रत्येक राष्ट्र कमजोर हो गया । सरकार अब भी पाशविक और शारीरिक बल में विश्वास रखती है । मैं स्वतंत्रता को जिस रूप में देखता हूं, उसका घर जनता के दिल में बनाना पड़ेगा । सच्ची स्वतंत्रता वह हो ही नहीं सकती । जिससे जनताका कल्याण न हो । परन्तु तुम कहते हो कि स्वतंत्रता की रचना में देर लगेगी । हाँ जल्दी की रचना, सदा दृढ-रचना नहीं हुआ करती ।

मैं विश्वास करता हूं कि एशिया में शीघ्र ही एक नवीन शक्ति का उद्भव होगा । भविष्य में चीन और जापान एक दूसरे का सहयोग करेंगे और गोरे राष्ट्र तथा एशियाई राष्ट्रों में एक जबर्दस्त संघर्षण होगा । मेरा हृदय यह स्वप्न देख रहा है कि उस समय संसार के भाग्य निर्णय में भारत में इस समय नवयुवकों के एक आदर्शवादी आन्दोलन की आवश्यकता है। हर प्रांत में यदि एक भी आदर्शवादी युवक हो तो वह बहुत काम कर सकता है । फिलिपाईन्स टापू के तरुण देशभक्त जोज रिजलको गोली से मार कर स्पेन सरकार ने एक प्रकार से अपनी हत्या कर डाली । रिजल ने जेल में बैठ कर जो ओजपूर्ण कविता लिखी वह फिलपाईन वालों के लिए राष्ट्रीय संगीत बन गई । उसकी याददाश्त न

देश में स्वतन्त्रता की अग्निको अभीतक प्रज्वलित रक्खा है। फिलिपाइन वालों को एक प्रकारसे विजय प्राप्त हो चुकी है। स्वतन्त्रता पर विश्वास रखने वाले नवयुवक राष्ट्र की भावनाओंको जगाने में बहुत कुछ कर सकते हैं। भारतको अब स्कीमों की ज्यादा जरूरत नहीं है, उसे जरूरत है आत्माओंकी-ऐसे नर और नारियोंकी जो जनता में कुछ न कुछ नई भावना उत्पन्न कर सकते हैं, क्यों कि जनताके हृदयमें आग बुझी नहीं है, और न वह बुझ सकती है।

नवीन ग्रंथ।

१ प्राचीन भगवद्गीता—(ले०—श्री. मंगलानंद पुरी अतर सूया, इलाहाबाद मू. ॥)

श्रीमद्भगवद्गीताके ७०० श्लोक हैं उनमें केवल ७० श्लोकही मूल और प्राचीन हैं, यह इस ग्रंथकार का कथन है। इस पुस्तकमें ७० श्लोकोंका अर्थ और उनकी संगति लिखी है।

सप्तश्लोकी गीता-(ले० श्री मंगलानंद पुरी, मू.।)

इस पुस्तकमें गीताके सात श्लोकोंका तात्पर्य बताया है। इसी पुस्तकमें गीताका एक श्लोक भी दिया है। अर्थात् (१) एक श्लोकी गीता, (२) सात श्लोकों की गीता (३) ७० सत्तर श्लोकों की गीता और (४) सातसौ श्लोकोंकी गीता, ये भगवद्गीताके चार ग्रंथ हमारे सन्मुख आगये हैं। इनमें ग्रंथकारका कथन है सत्तर श्लोकोंकी गीता ही प्राचीन है। इसका कारण क्या? ग्रंथकार कोई प्रबल प्रमाण नहीं दे सके। वास्तवमें जितनी टीकाएं हुई हैं उन सबमें ७०० श्लोक पाये जाते हैं इसलिये सत्तर श्लोकोंकी भगवद्गीता प्राचीन और सातसौ श्लोकोंकी अर्वाचीन कहना प्रमाणयुक्त प्रतीत नहीं होता। किसी भी स्थान पर सातसौं से कम श्लोकोंकी भगवद्गीताका उल्लेख भी नहीं है। इस कारण प्राचीन भगवद्गीताके लेखक के साथ हमारी सहानुभूति नहीं है। बाली द्वीपमें प्राप्त टूटे फुटे पुस्तकों के आधार पर अपने पुस्तकोंको तोडना योग्य नहीं है।

३ वैदिक प्रार्थना—(ले.-श्री. अमरनाथजी औदीच्य, शंकर सदन, देहरादून) विना मूल्य।

ऋग्वेदके अंतिम सूक्त का अर्थ इस पुस्तक में दिया है। ऐसे पुस्तक में दवाओंके विज्ञापन न दिये होते तो अधिक अच्छा होता। वेद मंत्रोंको विज्ञापन के काममें लाना उचित नहीं है।

४ ब्रह्मयज्ञ—(ले. श्री. मंगलानंद पुरी, प्रकाशक पं. नरदेव शर्मा सरस्वतीन्द्र पुस्तकालय, काशी मू. ॥)

श्री स्वामिजी कृत संध्याका भाषानुवाद तथा आंग्रेजी अनुवाद.

५ Congress and The Dal = (लेखक—डा. एन. एस. हर्डीकर, दी वॉलंटीयर आफिस, हुबळी कर्नाटक। मू. ~)

कांग्रेस के साथ स्वयंसेवक दलका संबंध क्या है इसका वर्णन इस अंग्रेजी पुस्तकमें है।

६ क्या इसलाम शांति दायक है? = (ले.-श्री. मंगलानंद पुरी आर्य समाज कानपूर। मू-॥)

पुस्तक के नामसे ही पता लग सकता है कि अंदर क्या है। दूसरोंके दोष देखनेकी अपेक्षा यदि हम दूसरोंसे उत्तम गुण सीखनेका यत्न करेंगे तो अधिक उन्नतिका संभव है।

(७) संजीवन = (संपादक श्री. चतुरसेन शास्त्री प्रकाशक - दा. भद्रसेन शर्मा चांदनी चौक देहली वा. मू. ४)

स्वास्थ्य संबंधी मासिक पत्र। स्वास्थ्य साधनके लेख इस में पढने योग्य हैं।

(८) शिक्षामृत — (सं. श्री. गोपालदास रेंजा नरसिंगपुर। वा. मू.३)

शिक्षा विषयपर इसमें उत्तम लेख आते हैं।

आसन।

(लेखक- श्री. पं कवि. अत्रिदेव गुप्तजी विद्यालंकार)

" कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः।
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥"

शरीर --

यह हमारा शरीर शुक्र और आर्तव के संयोग के कारण और चेतना धातू के मेलसे उत्पन्न हुआ है। इस उत्पत्ति में चेतना धातूके अतिरिक्त चौवीस तत्व मूलप्रकृति, महत, अहङ्कार पंचतन्मात्रा और ११ इन्द्रिय, पांच भूत यह १६ विकृति भी सहायक हैं। इसमें वात अंग प्रत्यंगका बिभाग करता है। तेज उन को पकाता है अर्थात् एक रूपसे अन्य रूप में बदलता है। जल उनको गीला रखता है। पृथ्वी इनको संहति और मूर्तिरूपमें लाती है। और आकाश ऊपर-तिरछी- और नीचेकी ओर बढाता है।

दोष—

न ऋते कफादास्ति न पित्तान्न च मारुतात्।
शोणितादपि वा नित्यम्--

यद्यपि यह शरीर शुक्र शोणित संयोगसे बना है तथापि-वात पित्त कफ यह तीन ही शरीर की प्रकृति और विकृति को बनाने वाले हैं-चूं कि शरीर की विकृति अवस्थामें (चाहे अवस्था शरीर में उत्पन्न हो चाहे बाह्य कारण चोट आदीसे हो) इनमें ही विकार आता है अर्थात यही दूषित होते हैं इस लिये इन्हें दोष कहते हैं। यद्यपि इनका स्थानका वर्णन संक्षेप से है परन्तु मुख्यतः यह सब देह में व्याप्त हैं।

धातू--

''एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधाति यन्नृणाम्।
रसासृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥

आहार के सम्यक् पचने के उपरान्त रसका निर्माण होता है, और रससे रक्त, रक्तसे मांस-मेद-मज्जा-अस्थि-शुक्र यह सात धातू बनते हैं चूं कि यह शरीर को धारण करते हैं इस लिये यह धातू हैं। त्रिदोष वात-पित्त-कफ भी इनमें व्याप्त होकर रहते हैं।

यथा—		वात	पित्त	कफ
वात	Nervous system Respiratory system	अस्थि	रस-रक्त	मांस-मेदा (Fat)
अस्थि	Generatory system		1 Lymh-System	मज्जा Bone Marrow
			रक्तसंस्थान	शुक्र --
पित्त रस रक्त	Lymph system Circulatary system Digestive system Urinary system	वातसंस्थान श्वास संस्थान	2Cirulatary system 3 Digestive system (पाचनसंस्थान)	मांस पेशी muscles organs जैसे Liver
कफ			4 Urinary system	यकृत
मांस-मेदा	Muscles organs जैसे		(मूत्रसंस्थान)	प्लीहा- –
मज्जा-शुक्र	यकृत आदि			मस्तिष्क–

इन में से उत्पादक संस्थान त्रिदोष सम्मिलित है-उसमें कफ वात पित्त तीनों समान हैं ।

प्रधानता-

इन सब धातू और दोषों में प्रधानता वात की अर्थात Nervous system की है—सब अवयव-हृदय-आमाशय -यकृत् आंत्र आदि और सब दोनों प्रकार की पेशियां (Involantary & Volantary) तथा सब system वात के ही आधीन है—उसके विना कुछ भी गति नहीं हो सकती।

"पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छान्ति मेघवत् ।"

अर्थात् पित्त स्वयं लंगडा है और कफ स्वयं लंगडा है-वह वायु की गति से ही चलते फिरते हैं जिस प्रकार बादल को वायु इधर उधर उडाती है उसी प्रकार वात भी इन को ले जाता है ।

२ वात ही सारे शरीर को धारण करता है जैसे कि अत्रिऋषिने कहा है---

" वायुस्तन्त्रयन्त्रधर :"

अत्रिसंहिता ।

वात ही इस शरीर को धारण करता है –

३ " कालेन महाताह्यानां यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा " निदान

शरीरका प्रत्येक रोग चाहे वह आगन्तुज हो या निजोत्पन्न हो अपना प्रभाव Nervous system वातसंस्थान पर अवश्य थोडा बहुत डालता है – प्रत्येक यदि चिकित्सा न किया जाये तो वातसंस्थानिक रोग बन जाता है जिससे कि वह कष्टसाध्य या असाध्य हो जाता है । जैसाकि-उपदंश ।

४–शरीर को स्थिर रखनेमें तीन बातें हैं, उन तीनोंका सम्बन्ध वातसंस्थान सेही अधिक है ।

"त्रयो विष्टम्भाः शरीरस्य आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति "

आत्रेय

आहार–

भोजन को पचानेमें जीर्ण करनेमें रस के साथ मांस पेशियोंका काम करना आवश्यक है, उनको Vages Nerve मुख्यतः नियमित करती है ।

स्वप्न– नींद आनेका मुख्यतः कारण अंगों का ढीली या सुस्त हो जाना है तामसिक गुण को प्रादुर्भाव होना निद्रा है-—

'तमोऽभिभूते तस्मिंस्तु निन्द्रा प्रविशति देहिनाम्'सुश्रुत

हृदय में तमोगुण का ज्यादा होजाना निंद्राका कारण है हृदय को Nervous system Control करता है ।

ओ३म्

ब्रह्मचर्य---

ब्रह्मचर्यका वातसंस्थान के साथ कितना सम्बन्ध है इस बातको एक चिकित्सक भली प्रकारसे जानता है संक्षेपसे कुछ यहां लिखता हूं।

स्वप्न दोष (Night Emassan) की चिकित्सा में मुख्य यह है —

१-गाढी नींद लानेवाली औषधियोंका देना Hypnotic जैसा Bromides, Belladonna

२ रात को स्नान करके सोना जिससे कि कामशक्ति उद्दीप्त न हो ढीली रहे।

३कमर के बल उत्तान न सोना चूं कि पीछे शुक्रवाही नसों को नियमित करनेवाली नसे हैं।

४ भारी पेट-मूत्र न करके सोना--कब्ज और पानी पीके सोना इत्यादि बातोंसे भी उन शुक्रवाहिनीयों पर दबाव हो जाता है।

५मानसिक वृत्ति को बदलना इस लिये गाढी नींद आवश्यक है शुक्रच्युति में वात की ही प्रधानता है चूं कि—

"वायुर्महनमार्गेण पातयत्यंगनागमे"

यह सब आपने देखा कि वातसंस्थान या Nervous systemके साथ वातका कितना संबन्ध है।

६ प्रत्येक जहर का प्रभाव सबसे प्रथम वातसंस्थान पर ही पडता है।

७ सुश्रुतने तीन प्रकृति वालों के गुणों को बताते समय वातवालों को तामसिक, पित्तवालों को राजासिक, और कफवालों को सात्विक कहा है।

इस में वातसंस्थान में प्रभाव होने से बुद्धि तामसिक हो जाती है जैसे कि कामसूत्रमें वात्स्यायनने बताया है कि "नयनप्रीति" आदि दशलक्षणों से स्मृतिभ्रंश हो जाता है-

"स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्पणश्यति।"
गीता

वातसंस्थानपर प्रभाव होनेसे बुद्धि और स्मृति का नाश हो जाना अवश्यंभावी है।

इन उपरोक्त सब बातोंसे स्पष्ट है कि शरीर की स्थिरता में वातसंस्थान कोही सब से प्रधान माना है। इस लिये संक्षेपसे उसके सम्बन्धमें लिखता हूं।

वातसंस्थान के मुख्य भाग तीन हैं-

१-पृष्ठवंश— Spinal Cord

२-मन्या (घाटा) Modulla

३ मास्तिष्क Brain

यह २९ मोहरों (Vertebræ) से मिलकर बनी है। जिसमें ऊपरके मोहरे छोटे हैं और नीचेके मोहरे उत्तरोत्तर दृढ और मोटे होते चले गये हैं। इनमें से धमनी-शिरा-नसों को जानेके लिये बहुतसे सुराक बने हुवे हैं।

ध्यान देने योग्य बातें।

१ इसमें से गुजरते समय बहुतसे नसेNerves अपना रास्ता बदल लेती हैं अर्थात् दाक्षिण ओर के तन्तु वाम ओर और वामके दाक्षिण होकर गुजरते हैं।

२ कटिके (Lumber) मोहरे सब से दृढ और मजबूत हैं जिस से कि सारे शरीर का भार बैठते समय उन पर से पडे, न कि पीठ के मोहरों पर।

३ बहुतसे स्थानों के केन्द्र जैसे शुक्र आदिके बह इसीमें हैं।

४ हमारा पृष्ठवंश स्वभावतः चारस्थान से वक्र है उस को उन्हीं स्थानों से वक्र रखना चाहिये न कि अन्य स्थानों से जिस से कि सारे शरीर का भार एक मकान की नींव की भांति सीधा मोहरों पर ही पड़े।

सूचना—जो लोग झुक कर बैठते हैं उनकी आयु छोटी होती है। जिसका मेरुदण्ड जितना सीधा स्वाभाविक रीति से होगा उसकी नसों पर बिल्कुल जोर नहीं पडेगा और नहीं किसी प्रकार की बाधा ही पडेगी परन्तु जो झुककर बैठते हों उनमें छातीपर जोर पडता है और पीठका भाग बाहर की ओर निकल आता है इसके साथ कटिके ऊपर Sacrun भागके करीब जिस का यह भाग जितना अन्दर को गया होगा अर्थात् दोनों ओर की मांस पेशीयाँ जितनी ज्यादा मोटी और दृढ होंगी और मोहरों का स्पर्श जितना अन्दर को गहरा होगा वह उतना नीरोग और दीर्घायु होगा।

युक्ति--

१ चूंकि निर्बल आदमी प्रायः चिकित्सक के पास कमरमें दर्द होने की शिकायत करते हैं। वह कहते हैं कि बैठकर खडा होने में दर्द होती है।

२ यह सर्व सम्मत है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कामवासना आठगुनी है, इसलिये उनके अन्दर कमजोरीके लक्षणों का प्रादुर्भाव शीघ्र हो जाता है। उनके कमर दर्द ज्यादा होती है और हिस्टिरिया आदि भी वातसंस्थान के रोग इनमें ही अधिक होते हैं।

३ वीर्यच्युति के बाद कमर में दर्दका अनुभव होता है और आर्तवकालमें स्त्रियोंमें कटिशूल होना एक प्रधान लक्षण है।

४ कमरमें दर्दका होना एक कमजोरी की निशानी है यह दुनियामें मशहूर बात है। मेरुदण्डको एक कुल्याकी भांति गहरा और सीधा रखना चाहिये। इसलिये ढासने की अपेक्षा सीधा पीठ के बल ही बैठना उत्तम है।

मन्या--

इसका विशेष वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं परन्तु मन्या पर यदि दोनों हाथों की उंगलियों एक दूसरे में फंसा कर फिर हम मन्या का सीधे सीधे पैरोंपर खडे दबायें तो चेहरा लाल होजाता है और शरीर में एक विशेष स्फूर्तिका अनुभव होता है। जिसका कारण—

स्नायु और नसों पर दबाव है चूंकि मेरुवंश के बाद नसें इसमें से होती ही मस्तिष्क में जाती हैं—

मस्तिष्क—

यह सब मज्जासंस्थान का केन्द्र है—सब प्रकार के ज्ञान और सब प्रकारकी आज्ञायें इससे ही उत्पन्न होती हैं, इस लिये इसका ठीक रखना आवश्यक है-मेरूदण्ड तो इसके लिये रास्ता है, यदि वहठीक है तो मस्तिष्क भी ठीक है चूंकि ज्ञान ठीक आयेगा यदि वह खराब होगया तो यह भी खराब हो जायेगा।

सूचना—शिरको सोते समय अपने शरीर की समान उंचाई पर अर्थात् जितना कि गर्दन से कन्धे तक लम्बाई है इतनी उंचा ही रखकर सोना उत्तम है चूं कि अन्य अवस्थाओंमें मार्ग में बाधा आजाती है।

इसी प्रकार जो झुककर भोजन खाते या पढते हैं उन्हें भी चाहिये कि शिरको ऊंचा रखें-छाति के रास्ते में बाधा डालने से लाभ के बदले हानि ही मिलती है।

किसी भी वस्तु को देर तक रखने के लिये आवश्यक है कि वह वस्तु अपनी लचक का बनाये रखे जिस वस्तुमें से लचक निकल गई वह वस्तु शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी जैसे—

एक हरी फहदनी है वह सुखी लकडी की अपेक्षा स्थायी है चूं कि वह परिस्थिति के साथ अपने ाप को बदल लेती है कि एक ढढा भारी सुखा

स्वाध्यायमंडल।

औंध (जि. सातारा)

का

" सप्तम वर्ष का कार्य "

(१ जनवरी १९२४ से ३१ दिसंबर १९२४ तक)

स्वाध्यायमंडल का उद्देश्य।

(१) वेदोंका स्वाध्याय करना और कराना।
(२) वैदिक शब्दों के मूल अर्थ की खोज करना।
(३) मूल वेदोंका अर्थ मूल वेदोंके आधारसे ही करना।
(४) लोगों में वैदिक धर्म की जागृति करना।
(५) वैदिक धर्म के सुबोध ग्रंथ प्रसिद्ध करना।
(६) वैदिक धर्मके साथ अन्य धर्मग्रंथोंकी तुलना करना।
(७) वैदिक धर्मके साथ अन्य मत ग्रंथोंकी तुलना करना।
(८) वेदकी दृष्टिसे गाथाओंका अर्थ निश्चित करना।
(९) प्रचलित युरोपीयन मतकी समालोचना करना।
(१०) प्रतिपक्षियोंके आक्षेपोंका सप्रमाण उत्तर देना।

ये **स्वाध्याय मंडल** के उद्देश्य हैं और इसी दृष्टिसे आज सात वर्ष इस मंडलका कार्य चल रहा है जिसका वृत्त इस लेखद्वारा प्रसिद्ध किया जाता है। आशा है, कि वैदिक धर्मके प्रेमी इस कार्यको बढानेके लिये सहायता देंगे।

औंध (जि. सातारा)
१ जनवरी १९२५

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल।

स्वाध्यायमंडल ।

" वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना, सब आर्योंका परम धर्म है ।

(१) नाम — इस संस्थाका नाम 'स्वाध्याय मंडल' है ।

(२)उद्देश –(पूर्व स्थानमें दिये हैं ।)

(३) **कार्यक्षेत्र** – उक्त उद्देशोंके अनुसार वैदिक तत्त्वज्ञान और वैदिक धर्मके सुबोध ग्रंथ प्रचलित अनेक भाषाओंमें प्रसिद्ध करना तथा वेदके पठन पाठनके लिये उचित सहायता और उत्तेजन देना ।

(४) **स्वाध्याय-मंडल का व्यय**-पुस्तक प्रकाशन में लाभकी आशा न करनेके कारण, स्वाध्याय मंडलके व्यय आदिके लिये, उदाराचित '**दानी महाशयोंकी उदारता**' परही विश्वास रखा है । आशा है कि धनिक लोक स्वयं द्रव्यकी सहायता करेंगे और दूसरे लोक सहायता करवायेंगे ।

सहायक आदिके नियम ।

(५) स्वा० मंडलके **प्रतिपालक** —जो धनिक पांच सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वा० मंडलको दान देंगे, वे स्वाध्याय मंडलके '**प्रतिपालक**' हो सकते हैं । इन को "**स्वाध्याय मण्डल**"के सब पुस्तक मिलेगें ।

(६) स्वाध्याय मंडलके **पोषक** —जो धनिक सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वाध्याय मंडलको दान देंगे वे स्वाध्याय मंडल के '**पोषक**' हो सकते हैं । इनको वह पुस्तक मिलेंगे कि जो इनकी रकम आने के पश्चात् मुद्रित होंगे ।

(७) **सहायक**— — जो यथाशक्ति **द्रव्यकी सहायता** करेंगे वे स्वाध्याय मंडलके '**सहायक**' हो सकते हैं ।

(८) **स्थिर-सहायक**— जो १००,५० अथवा २५ रु. स्वा० मंडलके पास अनामत रखेंगे वे '**स्थिर सहायक**, होंगे । (दो वर्षके पश्चात् जिस समय चाहे उस समय इनका धन वापस हो सकता है)इनको क्रमशः १०, ४॥ और २ रु. के पुस्तक डाकव्यय समेत प्रतिवर्ष भेट किये जायंगे ।

(९) **मासिक-सहायक**—जो प्रतिमास यथाशक्ति सहायता करेंगे वे '**मासिक सहायक**'होंगे ।

सूचना –**सहायक, स्थिर सहायक,** तथा **मासिक– सहायक** आदिको उनकी रकम प्राप्त होनेके अनुसार स्वा० मं० के पुस्तक मिलेंगे ।

सबको उचित है कि वे स्वा० मंडलके पुस्तक स्वयं पठन करें,इन पुस्तकोंका प्रचार करनेमें सहायता करें, और उक्त प्रकारके

पालक, पोषक, सहायक आदिकोंकी संख्या बढानेमें सहायता दें। क्यों कि आर्थिक सहायताके विना स्वाध्याय 'मंडल' का कार्य चल नहीं सकता।

(१०) **वार्षिक वृत्त** — स्वाध्याय मंडलका वार्षिक वृत्त प्रतिवर्ष प्रसिद्ध होगा जिसमें स्वाध्याय मंडलके सब कार्यका विवरण आदि प्रसिद्ध होगा।

(११) **प्राप्ति पत्र**—प्रत्येक दानका प्राप्ति-पत्र स्वाध्याय मंडलसे दानी महाशयके पास पहुंचेगा। तथा वार्षिक-वृत्तमें उसका उल्लेख रहेगा।

पुस्तक विक्रीके नियम।

(१२) **उधार पुस्तक देना बंद किया है।** सब पुस्तक वी. पी. द्वारा ही भेजे जाते हैं अथवा पेशगी मूल्य आनेपर भेजे जाते हैं।

(१३) **कमिशन**—व्यौपारियोंके लिये निम्नप्रकार कमिशन दिया जाता है।

१०० रु. पुस्तकोंपर	२० '	फी सैंकडा
५० ,,	,,	१५ ,,	,,
२५ ,,	,,	१० ,,	,,
१० ,,	,,	५ ,,	,,

(१४) **बदलेमें पुस्तक नहीं दिये जाते,** क्यों कि उनकी बिक्री करनेका साधन यहां नहीं है।

(१५) **पेशगी मूल्य भेजने से लाभ- जो लोग ५) पांच अथवा अधिक रु. की** पुस्तकें, पुस्तकों का सब मूल्य पेशगी म. आ. द्वारा भेजकर मंगवायेंगे, उनको उक्त कमिशनके अतिरिक्त पांच फी सैंकडा कमिशन अधिक मिलेगा और डाक व्यय माफ होगा। वी. पी. से पुस्तकें मंगवाने वालोंको यह लाभ नहीं होगा। पुस्तकें मंगवाने के समय ग्राहक इस बातका विचार अवश्य करें।

उक्त नियमोंमें परिवर्तन करनेका अधिकार स्थानिक कार्यकारी मंडलको होगा। परंतु, स्वा० मंडलकी उन्नतिके लिये सब सभासद अपनी सूचनाएं मंडलके पास भेज सकते हैं, जिनका निःपक्षपातसे विचार कर के योग्य सूचनाओंका अवश्य स्वीकार किया जायगा।

स्वाध्याय मंडल.

औंध, जि. सातारा, १ जनवरी १९२५ — **श्रीपाद दामोदर सातवळेकर**

[स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित]

वैदिक धर्म ग्रंथ ।

[१] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

बालक और बलिकाओंकी पाठशालाओंमें "धर्म-शिक्षा" की पढाईके लिये तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक पढाईके लिये ये ग्रंथ विशेष रीतिसे तैय्यार किये हैं ।

(१) बालकोंकी धर्म-शिक्षा । प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू. -)

(२) बालकों की धर्म-शिक्षा । द्वितीय भाग। द्वितीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू. =) दो आने ।

(३) वैदिक-पाठमाला। प्रथम पुस्तक । तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू. ≡)

अन्य श्रेणियोंके लिये पुस्तक तैय्यार हो रहे हैं।

[२] स्वयं-शिक्षक-माला ।

(१) वेदका स्वयं-शिक्षक। प्रथम भाग। मू. १॥) डेढ रु. ।

(२) वेदका स्वयं-शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु. ।

[३] आगम-निबंध-माला ।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है । इस वेद समुद्रका मंथन करनेसे अनेक 'ज्ञानरत्न' प्राप्त होते हैं, उन रत्नों की यह माला है ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।-)

(२) मानवी आयुष्य । मू. ।)

(३) वैदिक सभ्यता । मू. ।।।)

(४) वैदिक चिकित्सा शास्त्र । मू. ।)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥)

(६) वैदिक सर्पविद्या । मू. ॥)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥)

(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥)

(९) शिवसंकल्पका विजय । मू. ॥।)

(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥)

(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥)

(१२) वेदमें रोग जंतु शास्त्र । मू. ॥)

(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. ।=)

(१४) वेदमें लोहेके कारखाने मू. ।-)

(१५) वेदमें कृषिविद्या । मू. ≡)

(१६) वैदिक जल विद्या । मू. =)

(१७) आत्मशक्तिका विकास । मू. ।-)

(१८) वैदिक उपदेशमाला । मू. ॥)

इस मालाके अनेक निबंध लिखकर तैयार हैं, उनका क्रमशः मुद्रण हो रहा है।

[४] योग-साधन-माला।

"योग साधन" का अनुष्ठान करनेसे शारीरिक आरोग्य, इंद्रियोंकी स्वाधीनता, मानसिक शक्तिका उत्कर्ष, बुद्धिका विकास और आत्मिक बलकी प्राप्ति होना संभव है। इसलिये यह " योग-साधन " हरएक मनुष्यको करने योग्य है।

(१) **संध्योपासना।**— योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू० १॥) डेढ़ रु०

(२) **संध्याका अनुष्ठान।** — (यह पुस्तक पूर्वोक्त " **संध्योपासना** " में संमिलित है, इस लिये " **संध्योपासना** " लेनेवालोंको इसके लेनेकी आवश्यकता नहीं है) मू. ॥) आठ आने।

(३) **वैदिक-प्राण-विद्या।**— प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार "**मनकी भावना**" रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है। मू. १) एक रु.

(४) **ब्रह्मचर्य।**— इस पुस्तकमें " **अथर्व वेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त।** " का विवरण है। **ब्रह्मचर्य साधनके योगासन तथा वीर्यरक्षण के अनुभव सिद्ध उपाय** इस पुस्तक में दिये हैं। यह पुस्तक " **सचित्र** " है। इसमें लिखे नियमोंके अनुसार आचरण करनेसे थोडेही दिनोंमें वीर्य स्थिर होनेका अनुभव निःसंदेह आता है। मू० १।) सवा रु.

(५) **योग साधन की तैयरी।**— जो सज्जन योगाभ्याससे अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उनको अपनी तैयारी किस प्रकार करनी चाहिये, इस विषयकी सब बातें इस पुस्तकमें लिखीं हैं। मू.१) एक रु.।

(६) **आसन।**— इसमें उपयोगी आसनोंका वर्णन चित्रोंके समेत दिया है। मू. २)

(७) **सूर्यभेदन व्यायाम**— (सचित्र) बलवर्धक योगके व्यायाम। मू. ।=)

"योग साधन" के अन्य पुस्तक छप रहे हैं। मुद्रित होतेही सूचना दी जायगी।

[५] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

"यजुर्वेद" ही कर्मवेद किंवा पुरुषार्थ वेद है, इसलिये यजुर्वेदका अध्ययन पुरुषार्थियों के लिये आवश्यक है। एक एक अध्याय का एक एक पुस्तक इस मालामें पासिद्ध होता है, इस समयतक निम्न ग्रंथ छप चुके हैं—

(१) यजुर्वेद अ. ३० की व्याख्या।— **" नर-मेध " मनुष्योंकी उन्नति का सच्चा साधन।** वैदिक नरमेध कितना उपयोगी है, इस विषयका ज्ञान इस पुस्तकके पढनेसे हो सकता है। मू.१) एक रुपया।

(२) यजुर्वेद अ. ३२ की व्याख्या **"सर्व-मेध"। एक ईश्वर की उपासना।**

य. अ. ३२ में एक ईश्वर की स्पष्ट कल्पना बताई है। मू. ॥)

(३) यजुर्वेद अ. ३६ की व्याख्या। 'शांति-करण'। सच्ची शांति का सच्चा उपाय। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् में सच्ची शांति कैसी स्थापन की जा सकती है, इस के वैदिक उपाय इस पुस्तक में देखिये। मूल्य ॥)

[६] उपनिषद् ग्रंथ-माला।

तत्वज्ञान के भंडारमें "उपनिषद ग्रंथ" अमूल्य ग्रंथ हैं। तत्त्वज्ञान की अंतिम सीमा इन ग्रंथोंमें पाठक अनुभव कर सकते हैं। जीवनके समय ये ग्रंथ उच्च तत्त्वज्ञान के द्वारा सदाचार की शिक्षा देते हैं, और मृत्युके समय अमृतमयी शांति प्रदान करते हैं। हरएक मनुष्य के लिये इन ग्रंथोंका पठन, मनन और अधिक विचार करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

(१) "ईश" उपनिषद्---- इस पुस्तक में ईश उपनिषद्की व्याख्या है। मू. ॥।=)

(२) "केन" उपनिषद– इस पुस्तकमें केन उपनिषद् का अर्थ और स्पष्टीकरण, अथर्ववेदीय केन सूक्त की व्याख्या और देवी भागवत की कथाकी संगति बता दी है। उमा, यक्ष आदि शब्दोंके अर्थ वैदिक प्रमाणों से निश्चित करके बताया है, कि उनका स्थान आध्यात्मिक भूमिका में कहां है और उसकी प्राप्तिका उपाय क्या है। मू. १।)

[७] देवता-परिचय-ग्रंथमाला।

"वैदिक देवता"ओंका सूक्ष्मज्ञान होनेके विना वेदका मनन होना असंभव है, इसलिये इस ग्रंथमाला में "देवताओंका परिचय" करानेका यत्न किया है। पुस्तकोंके नामोंसेही पुस्तकोंके विषयका बोध हो सकता है—

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू.॥)

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू.॥=)

(३) ३३ देवताओंका विचार मू.≡)

(४) देवता विचार। मू. ≡)

(५) वैदिक अग्नि विद्या। मू. १॥)

"अन्य" देवताओंका विचार और परिचय करानेवाले ग्रंथ तैयार हुए हैं, शीघ्रही मुद्रित होंगे।

[८] ब्राह्मण-बोध-माला।

वेदके गूढ तत्त्वोंका आविष्कार ब्राह्मण ग्रंथों में किया गया है।

(१) शत-पथ-बोधामृत। मू. ।)
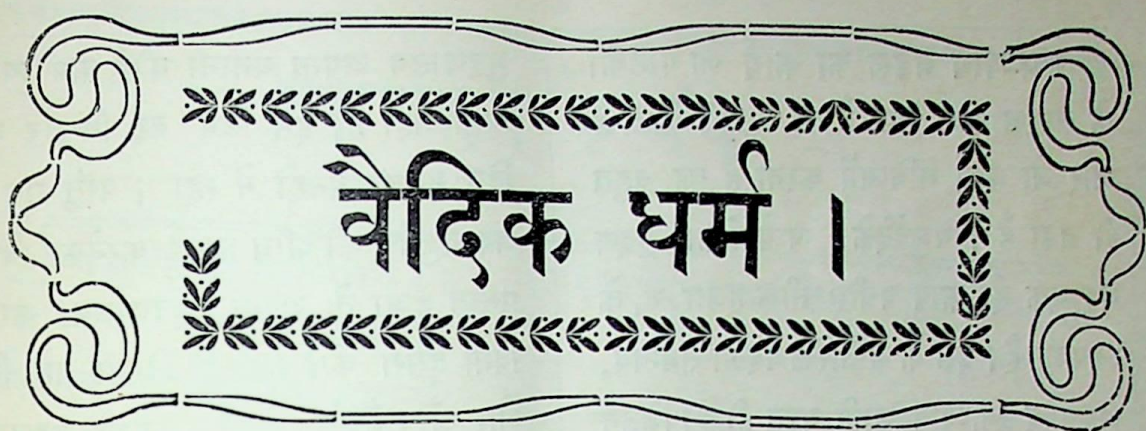
सचित्र मासिक पत्र ।

वैदिक धर्म ।

वैदिक तत्त्वज्ञान का विचार और प्रचार करनेवाला यह एक उत्तम मासिक पत्र इस भारतभूमिमें है । इस मासिक पत्रमें "**वैदिक धर्मके ओजस्वी विचार, तेजस्वी मंत्र और स्फूर्तिदायक उपदेश** " प्रसिद्ध होते हैं। इस समय पंचम वर्ष समाप्त होकर षष्ठ वर्ष चल रहा है ।

इसका वार्षिक मूल्य म. आ. से ३॥) साढे तीन रु. है । और वी. पी. से ४) है और विदेश के लिये ५) है

"विना मूल्य वैदिक धर्म"

उनको एक वर्ष मिल सकता है कि, जो पांच नये ग्राहकोंका चंदा १७॥) रु. **साढे सतरह इकट्ठा भेजें गे** । तीन नये ग्राहकोंका चंदा १०॥) **साढे दस रु. इकठे भेजनेसे** आधे मूल्यमें वैदिक धर्म प्राप्त किया जा सकता है । आशा है कि इस सुविधासे ग्राहक लाभ उठावेंगे ।

पुरुषार्थ

मराठी मासिक वैदिक धर्म ।

"**वैदिक धर्म**" का मराठी भाषामें रूपांतर गत वर्षके श्रावण माससे प्रारंभ हुआ है, व्यवहारकी सुविधाके लिये वैदिक धर्म के मराठीरूपान्तर का नाम "**पुरुषार्थ**" रखा गया है क्यों कि 'वैदिक धर्म' में चतुर्विध **पुरुषार्थ** करना ही मुख्य उद्देश्य है । और उसीकर स्वरूप जैसा '**वैदिक धर्म**" द्वारा भाषामें प्रकाशित हो रहा है, उसी प्रकार मराठी भाषामें "**पुरुषार्थ**" मासिक द्वारा प्रसिद्ध होरहा है । मासिक की कर्तव्य नीति वैसीही है जैसी वैदिक धर्मकी है ।

प्रचारके उद्देश्यसे "**पुरुषार्थ**' मासिक का मूल्य २॥) अढाई रु. है और आकार आदि वैदिक धर्म जैसा ही है । अर्थात् इस मासिक में घाटेकी संभावना अधिक है, इस लिये धनिक लोगोंसे प्रार्थना है, कि वे इस वैदिक धर्मके प्रचार के कार्यमें उचित सहायता प्रदान करें ।

स्वाध्याय मंडल का कार्य जो पाठकों के सन्मुख रखा गया है वह बहुतही थोडा है और जो कार्य भविष्यमें करना हैं वह बहुत ही बडा है। यजुर्वेदके अध्यायोंका मुद्रण यह एक ही कार्य पचीस तीस हजार रु. के व्ययका है। इस के अतिरिक्त वेदका समन्वय, अथर्ववेद स्वाध्याय आदि बहुत ही हैं। जितने ग्रंथ लिखे गये हैं और मुद्रण के लिये तैयार हैं, उनमें से तीसरा हिस्सा भी मुद्रित नहीं हुए हैं। इसका कारण पाठक जानते ही हैं। द्रव्य के विना इनका मुद्रण होना असंभव है। यदि धनिक लोग इस कार्यकी उचित सहायता करेंगे तो यजुर्वेद के अध्यायोंका मुद्रण अतिशीघ्र हो सकता है। तथा अथर्ववेद के स्वाध्याय का भी क्रमशः मुद्रण हो सकता है।

मुद्रण की कठिनता।

मुंबई में मुद्रण-व्यय बहुत होता है, यह अनुभव गत पांच वर्षोंमें आ रहाथा। परंतु कुछ उपाय सूझता नहीं था। मुंबईका मुद्रण निः संदेह अच्छा होता है, परंतु मुंबईका मुद्रणव्यय भुगतनेका सामर्थ्य स्वाध्याय मंडलमें प्रतिदिन कम हो रहा था। इसलिये उपाय करना आवश्यक प्रतीत हुआ। यह उपाय अपना मुद्रणालय शुरू करना। परंतु मुद्रणालय अपना बनाना कोई कम व्ययका कार्य नहीं है, इस लिये वह विचार बहुत दिन मनका मनही में रहा। परंतु गत वर्ष जब यजुर्वेद की शीघ्र छपाई करनेका विचार प्रस्तुत हुआ तो अपना मुद्रणालय करनेके विना दूसरा कोई मार्ग ही दिखाई नहीं दिया और औंध बैंकसे कर्जा करके मुद्रणालय शुरू किया गया।

भारत मुद्रणालय।

इस प्रकार स्वाध्यायमंडल के भारत मुद्रणालय का प्रारंभ हुआ है। अपना मुद्रणालय होनेसे वैदिक धर्मका आकार बढाने में सुविधा हुई है पहिले छोटे आकारके २४ पृष्ठ थे, उसके स्थानपर दुगणे आकार वाले अब ३२ पृष्ठ हुए हैं। मुंबई के मुद्रण के समय इस प्रकार पृष्ठ संख्या बढाना असंभव ही था। तात्पर्य वैदिक धर्म के ग्राहकोंका इस प्रकार यह पहिला लाभ हुआ है। अपना मुद्रणालय होनेसेही **महाभारत** का मुद्रण होना संभव हुआ। यह पाठकोंका दूसरा लाभ है।

अन्य पुस्तकें भी इसी प्रकार जो यहां मुद्रित हो जायंगी वह सस्ती दी जायगी। इस प्रकार अपना मुद्रणालय होनेसे निः संदेह प्रचार के कार्य में लाभ होगा।

स्वाध्याय के ग्रंथ

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध।
मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।१)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वधर्म।
" एक ईश्वरकी उपासना। " मू. ॥)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण।
" सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू.।॥)

[२]देवता-परिचय ग्रंथ माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥=)
(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=)
(३) ३३ देवताओंका विचार। मू.≡)
(४) देवताविचार। मू. ≡)
(५) वैदिक अग्नि विद्या। मू. १॥)

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। मू. १॥)
(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥)
(३) वैदिक-प्राण-विद्या। मू. ३)
(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।)
(५) योग साधन की तैयारी। मू. १)
(६) योग के आसन मू. २)
(७) सूर्यभेदन व्यायाम। मू. ।=)

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग -)
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग =)
(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक ≡)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१)वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। १॥)
(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-)
(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)
(३) वैदिक सभ्यता। मू. ॥।)
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।)
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥)
(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥)
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय।मू.॥)
(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥)
(९) शिव संकल्पका विजय। ॥।)
(१०) वैदिक धर्मकी विषेशता।मू.॥)
(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡)
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. =)
(१४) वेदमें लोहेके कारखाने।मू ०।-)
(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≡)
(१६) वैदिक जलविद्या। मू. =)
(१७) आत्मशक्ति का विकास। मू. ।-)

[७]उपनिषद् ग्रंथ माला।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या।
॥।=)
(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला।

(१) शतपथ बोधामृत। मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;
औंध (जि. सातारा)

महाभारत के पठन से लाभ।

(१) आर्यजातीका अत्यंत प्राचीन इतिहास विदित होगा।

(२) आर्यनीति शास्त्रका उत्तम बोध होगा।

(३) भारतीय राजनीति शास्त्रका ज्ञान होगा।

(४) आर्यों की समाजसंस्थाओंकी उत्क्रांतिका बोध होगा।

(५) आर्य राजशासन पद्धतिका पता लगेगा।

(६) ऋषियोंके धर्मवचनों का बोध होकर सनातन मानव धर्मका उत्तम ज्ञान होगा।

(७) चार वर्णों और चार आश्रमों की प्राचीन व्यवस्थाके स्वरूपका पता लग जायगा।

(८) कई आलंकारिक कथाओंके मूलका पता लग जायगा।

(९) वैदिकधर्मके प्राचीन आचार विचारोंका ज्ञान होगा और—

(१०) प्राचीन आर्य लोगों का सदाचार देखकर हमें आजकी स्थितिमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इसका निश्चित ज्ञान होगा।

तात्पर्य हरएक अवस्थामें अपने प्राचीन पूर्वजोंके इतिहास का ज्ञान प्राप्त होनेसे अनन्त लाभ हो सकते हैं।

इसलिये आप स्वयं महाभारत का पाठ कीजिये, मनन कीजिये, और बोध प्राप्त कीजिये; तथा दूसरोंको वैसा करनेके लिये प्रेरणा कीजिये।

स्वाध्याय मंडलका सप्तम वर्षका आयव्यय। (ता. १।१।३४ से ता. ३१।१२।३४ । तक)

परिशिष्ट संख्या १

आय.	रु.	आ.	व्यय.	रु.	आ.
गतवर्षकी रोकड ...	१०	९	**मुद्रणालय—**		
वैदिक धर्म चंदा ...	३८५२	१२	मकान— ९१०३–६		
महाभारत "	२८७०	१०	यंत्रादि— २४४–६		
पुरुषार्थ "	६२९	१४	टाइप आदि ७७५–०		
विज्ञापनसे प्राप्त ...	६६	१०			
पुस्तक विक्रीसे प्राप्त	५५४५	११	फर्निचर आदि ५१८–७	१०६४१	३
दान प्राप्त—			**पुस्तकालय ....**	१६९	११
प्रतिपालक वर्ग १२००–०					
पोषक " २७५–०			**पुस्तक छपाई ...**	९४६	८
मासिक सहायता १२०–०			**कागज आदि ...**	३४९९	१३
इतर " १६३–४	१७५८	४	**वेतन ....**	३६५४	१४
स्थिरग्राहक चंदा ...	६९	८	**डाकव्यय ....**	१४११	११
कर्जा—			**स्टेशनरी ...**	७९३	"
स्थिर सहायक २००–०					
स्टेट बैंक आदिसे १००००–०	१०२००		**रेलवे व्यय ...**	३१९	१५
			कमिशन ...	१११५	१२
			विज्ञापन	३८३	११
			मकान किराया	३००	"
			भोजनादिव्यय	७१६	८
			यंत्र दुरुस्ती	७६	"
			साधारण व्यय	६४	६
			स्टेटबैंक (कर्जा निवृत्ति)-	६००	"
			रोकड--		
			औंधमें २०२–६		
			म. बापुलालजी केपास		
			मुंबईमें — १०८–८	३१०	१४
रु.	२५००३	१४	रु.	२५००३	१४

स्वाध्याय मंडल का हानि लाभ पत्रक सन १९२४ वर्षका (ता. १।१।२४ से ता. ३१।१२।२४ तक)

परिशिष्ट संख्या २

आय	रु.	आ.	व्यय	रु.	आ.
वैदिक धर्म चंदा—			वर्षारंभमें पुस्तक संग्रह	८०३७	८
गतवर्षका शेष १०००-०			पुस्तक छपाई	४१६	८
इसवर्ष प्राप्त ३८५२-१२			कागज आदिका व्यय	५७२७	७
रु. ४८५२-१२			प्रबंध व्यय		
बाद पेशगी ९००-०	३९५२	१२	वेतन ३६५४-१४		
महाभारत चंदा—			डाकव्यय १४११-११		
गतवर्षका २४०-८			विज्ञापन ३८३-११		
इसवर्ष प्राप्त २८७०-१०	३१११	२	मकानकिराया ३००-०		
पुरुषार्थ चंदा—			भोजनव्यय ७१६-८		
इसवर्ष प्राप्त ६२९-१४			यंत्रदुरुस्ती ७६-०		
बाद पेशगी ३६७-१०	२६२	४	स्टेशनरी ८०८-०		
विज्ञापनसे प्राप्त	६६	१०	रेलवेव्यय ३१९-१५		
पुस्तक विक्रयसे प्राप्त			साधारणव्यय ६४-६	७७३५	१
पुस्तक विक्रय ५४८१-१३			घटाव		
बाद कमिशन १११५-१२	४३६६	१	टाइपका ८५०-०		
पुस्तक संग्रह (वर्षके अंतमें)	११७६९	०	यंत्रका २५०-०		
स्थिर ग्राहक चंदा—			पुस्तकालयका १००-०	१२००	०
गतवर्षका शेष १६९-०			आयका शेष	५७२	५
इसवर्षमें प्राप्त ६९-८					
२३८-८					
बाद पेशगी ७-८	२३१	०			
रु.	२३७५८	१३	रु.	२३७५८	१३
आयका शेष (लाभ)	५७२	५	स्थिरकोशमें जमा	२३३०	९
दान प्राप्ति —					
प्रतिपालक वर्ग १२००-०					
पोषक वर्ग २७५-०					
मासिक सहायता १२०-०					
इतर " १६३-४	१७५८	४			
रु.	२३३०	९	रु.	२३३०	९

स्वाध्यायमंडल औंधका आर्थिक अवस्था पत्रक (ता. ३१।१२।२५ के दिन)

परिशिष्ट संख्या ३

कोश और कर्जा	रु.	आ.	संपत्ति	रु.	आ.
स्थिरकोश—			**मुद्रणालय—**		
गतवर्षका शेष ११२२०-१३			मकान १०४३७- १		
इसवर्षकी आय			यंत्रादि ५१४९-११		
मेंसे २३३०- ९	१३५५१	६	टाइप आदि ३०६०- ७		
यंत्रादि घटाव कोश—			अन्यसामान १२२१- ८	१९८६८	११
गतवर्षका ४६७- ३			फरनिचर	१४७	४
इसवर्षमें १२००- ०	१६६७	३	**पुस्तकालय**	१७७१	०
कर्जा —			**संग्रह**		
१ स्थिरसहायकोंसे	१०५०	०	पुस्तक का ११७६९- ०		
२ कागज आदिके लिये	२०३१	९	कागज आदि २५०- ०		
३ चंदा पेशगी			स्टेशनरी २३५- ०	१२२५४	०
स्थिरग्राहक ७- ८			**रोकड—**		
पुरुषार्थ ३६७-१०			औंधमें २०२- ६		
वैदिक धर्म ९००- ०	१२७५	२	म. बाबुलालजी १०८- ८	३१०	१४
४ स्टेटबैंकआदिसे	१४७७६	९	केपास		
	३४३५१	१३		३४३५१	१३

गुजराती पुस्तकोंका सन १९२४ वर्षका आयव्यय (ता. १।१।२४ से ता. ३१।१२।२४तक)

परिशिष्ट संख्या ४

आय	रु.	आ.	व्यय	रु.	आ.
गतवर्षकी रोकड	१८६	१३	**कामिशन**	२	८
पुस्तक विक्रयसेप्राप्त	१२	८	**रोकड शेषवर्षके अंतमें**	१९६	१३
रु.	१९९	५		१९९	५

दान का व्यौरा ।

मासिकदान ।

बा. शिवप्रसाद जी गुप्त काशी रु.६५)
श्री. वा. स. मराठे मुंबई ५५)

रु. १२०)

इतर दान ।

पं. हरिशरण जी गुरुकुल कांगडी ४२)
म. रामशरण रामरत्नजी पूर्णा २५)
श्री. आर्यसमाज डे. इ. खान २०)
म. निरंजनदासजी जम्मू ११)
" पन्नालाल शामलालजी, कोंच १०)
" मुन्शीरामजी. समराला ९)
पं. सत्यदेवजी नागपूर ८)
" ठाकुरदास शर्मा मिंटगुमरी ५)
" शालिग्रामजी जोशी ५)
" गणपति शर्माजी देहली ५)
म. बलदेवजी सारंग ५)
" गुरुप्रसादजी रायकोट ५)
श्रीमती तापीबाई जी मुंबई ५)
म. गणपतरावजी आर्य अवलियापूर ४)
पं. मूलचंदजी मानपूर २)
म. गणेश बिहारीलाल जी २)
म. देवीप्रसादजी ।)

१६३।)

प्रतिपालकवर्ग ।

श्री. कृष्णराव भाईजी मुंबई १०००)
" वामनरावजी नाइक बेगमपेठ२००)

१२००

पोषकवर्ग ।

म. कुलभूषणजी श्रीगोविंदपूर १००)
पं. ठाकुरदत्तशर्मा वैद्य
अमृतधारा, लाहोर ५०)
राय. ठाकुरदतजी धावन
डे. इ. खान ५०)
पं. रामचंद्रजी अंबाला २५)
" पंढरिनाथ इनामदार औंध २५)
डा. गं. कृ. किर्लोस्कर हैदराबाद २५)

२७५)

स्थिरसहायकवर्ग

म० ठोठाराम चूडामणी २५)
" हंसराजजी सेठी २५)
" गंगा प्रसादजी टिहरी ५०)
पं. मेहर चंदजी वैद्य श्रीगोविंदपुर १००)

२००)

स्थिरग्राहकवर्ग ।

श्री० धर्मपत्नी म० जिंदारामजी लाहोर १०)
म. तखतरायजी मदन केटा ९)
" ख्याली रामजी गुप्त नीमचद ॥)
" हरनारायण जी, तलैयाघूरण ६)
पं० श्रीकृष्णजी जोशी आलमोडा ५)
म० जयशीरामजी धर्मशाला ५)
" नत्थूरामजी बल्लवगढ ५)
" शिवप्रसादजी जसीदीह ५)
" शादीरामजी मेरठ ५)
श्रीमती तापीबाईजी मुंबई ५)
म. सत्यदेवजी नागपुर ४)
" मैकूलालजी महरौली ४)

६९॥)

वृक्ष एक पतले हर वृक्षकी अपेक्षा हवा के झाक से गिर जाता है छोटीसी वेंत का क्षुर पानी के बडे से बडे प्रवाह का खुशीसे स्वागत करता है इसमें लचक है इसी प्रकार हमारी मांस पेशीयोंमें परमात्माने स्वभावत: लचक संकोच विकाश पैदा किया है यदि हम इसे पूर्ववत् बनाये रक्खें तो हम निरोग और दीर्घायु रह सकते हैं-और यदि हम इनको नष्ट कर दें अथवा सर्वदा एक ही अवस्था में चाहे संकोच की चाहे विकाश की वहभी हानिकारक है।

(क्रमश:)

शास्त्रार्थ सहायता।

आज ता. ३०।७।२५ तक जो शास्त्रार्थ सहायता हमारे पास प्राप्त हो चुकी है वह यहां नीचे दी जाती है।

शास्त्रार्थ की तिथि अभीतक अनिश्चित है। तथापि आनंद की बात यह है कि इतने समयमें हमारी तैयारी परिपूर्ण हो गई है। अब किसी भी दिन शास्त्रार्थ शुरू होगया तो हम उस समय विना संदेह अपना कदम आगे रख सकते हैं।

आर्य शास्त्रों के वचन इकट्ठे हो गये हैं, उनकी प्रकरण व्यवस्था बन चुकी है, उनके बलाबलका विचार होगया है अब हम प्रति पक्षीकी सूचना का ही इंतजार कर रहे हैं।

यज्ञ विषयक हमारी पुस्तक भी तैयार हो चुकी है। आज तारीख तक शास्त्रार्थ सहायता ग्यारहसौंसे ऊपर हो गई है और हमें अब पूर्ण आशा है कि अगले मास तक यज्ञविषयक पुस्तक मुद्रणार्थ जितनी आर्थिक सहायता आवश्यक है हो जायगी। इस लिये अब यह पुस्तक मुद्रणार्थ भेजी है। इस लिये जो महाशय इसकार्यके लिये सहायता देना चाहते हैं वे अपनी सहायता शीघ्र भेज दें।

इस समय तक प्राप्त सहायता यह है—

म. काशी प्रसाद जी.	५)
पं. प्रसाद राम जी	१)
म. कुलभूषण जी	५)
श्री. मेहरचंद शर्माजी	२)
म. भूषणलाल के शाह	१०)
म. विष्णु चन्द्रजी सँगल	३)
मुं. दुर्गाप्रसादजी	१)
सेठ चातूमलजी	१)
मुं. बनवारीलाल जी	१)
म. जैराम सिंहजी	१)

नाम	रकम
मुं. श्याम सुंदरलालजी	२)
पं. धूलजी	१)
गुप्त दान	१)
बा. दामोदर दास जी	१)
बा. राम दयाल जी	१)
पं. बल्लभ दास जी	१)
मुं. चन्दर भानजी	१)
बा. राम गोपालजी	१)
सेठ सोभाग मलजी	२)
पं. भगवानदासजी	१)
पं. वासुदेव महादेवजी	१)
बा. भगीरथलाल जी	१)
बा. शंभू दयाल जी	२)
पं. महादेव नारायण जी	१)
बा. गेंदालाल जी	१)
पं. ननूलालजी	१)
सेठ पंचम सिंहजी	१)
" गोपाल जी	१)
मुं बद्रू लालजी	१)
सेठ धूलजी	१)
" लखमी चन्दजी	१)
मुं. जगन्नाथ प्रसादजी	१)
मुं. गंगा सहायजी	१)
सेठ देवचन्दजी	१)
जती कल्याण विजय	१)
बा. हीरालाल जी	१)
पं. शंकरलालजी	१)
मुं. जालम सिंहजी	१)
बा. हजारी लालजी	१)
बा. शिवबरन सिंहजी	१)
सेठ नाथु लालजी	२)

नाम	रकम	रकम
पं. गोकुलदासजी		१)
सेठ अमृत लालजी		२)
" जीत मालजी		१)
मुं. माधव लालजी		१)
पं. कुन्दन प्रसादजी		१)
पं. गौरी शंकरजी		१)
मुं. राम प्रसादजी		१)
सेठ मोजी लालजी		१)
म. छोगमलजी		१)
म. बाल गोविंदजी		१०)
म. भीमसेन जी		४)
मंत्री आर्य समाज बल्लभगड		२)
म. भोज राजजी नायडू		१५)
म. लूनकारणजी		५)
पं. बलदेव शर्माजी वैद्य		१)
म. कान्तिलालजी		२)
कारकून जगन्नाथजी		१)
कोषाध्यक्षजी आर्यसमाज मूलतान	३९)	
मालिक गुरदयालजी	२५)	
	६४)	
म. ऑ कमिशन	।।।~)	
	६३≡)	६३≡)
पं. गियन चंदजी		५१।=)
डॉ॰ एस्. आर. सिंहजी		५)
म. बुध रामजी		४)
म. महाराज जी		१०)
बा. राम प्रसादजी		५)
योग		२५२।। ~)
पूर्वमास में प्रकाशित		८७७।।=)
सर्वयोग		११३०।≡

मेधा- याचना

(ले०— श्री०पं० सूर्यदेवशर्मा साहित्यालङ्कार)

ॐ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य
मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यजु० ॥

शिखरिणी = जिसे पाते ज्ञानी, विबुधवर, जो देव वरते ।
सुधी मेधा नामी, पितर जन, जो प्राप्त करते॥
वही सर्वज्ञाग्ने! सदय अब, दीजै श्रुतिपते !
बनूँ मेधावी मैं, विमल चित, सद्भाव भरते ॥

ॐ मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्ने प्रजापतिः ॥
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता दधातु मे स्वाहा॥यजु.

प्रवरललितावृत्त= मुझे मेधानामी, वरुणवर, ही बुद्धि दीजै ।
प्रजा के हे स्वामी, श्रुति श्रवण, से शुद्धि कीजै॥
विधाता हे वायो! विभववर, विज्ञान दीजै ।
प्रभो! मेधा द्वारा, पद अमर, का दान कीजै ॥

सर्पविष दूर करनेका वैदिक उपाय ।

सर्प विष बहुत प्रखर है । प्रतिवर्ष सहस्रों मनुष्य इस विषसे मृत्युके घर पहुंचते हैं । वास्तवमें डाक्टर और वैद्यों का ध्यान इस ओर अधिक आकर्षित होना चाहिये । परंतु इस भारत वर्षमें हमने इस समयतक ऐसे एकभी वैद्यका या एक भी डाक्टरका नाम नहीं सुना कि जो इस विषबाधाके कष्ट दूर करनेका उपाय ढूंढनेमें पूर्ण रीतिसे लगा हो ।

जहां विष उत्पन्न हुआ है वहां उसकी निवृत्तिका उपायभी बना है, मनुष्यको चाहिये, कि वह प्रयत्न करे, पुरुषार्थ करे और उसे ढूंढकर निकाले और अपना आरोग्य बढाकर अपने धार्मिक कर्तव्य करनेमें दत्तचित्त हो ।

सर्प विष निवृत्तिका उपाय ढूंढनेके लिये हमने जो

यथामति प्रयत्न किया था, और जो खोच की थी उस विषयका पुस्तक "वैदिक सर्प विद्या" नामसे स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रसिद्ध हो चुका है। इसके पश्चात् अग्नि-पुराण आदि ग्रंथोंमें बहुतसे उपाय हैं इस विषयका पता लेखद्वारा श्री. वैद्यराज पं० तिलकरामजी अमृतसर निवासी ने हमें दिया जो लेख हमारे पास रखा है। समय आनेपर प्रसिद्ध किया जायगा।

इतना होनेपर भी जैसा सुगम उपाय चाहिये वैसा अभीतक प्राप्त नहीं हुआ। यह विचार मनमें था ही इतनेमें निम्नलिखित वेदका सूक्त पढनेमें आगया और इसमें विषहारक अनेक उपाय लिखे हुए प्रतीत हुए। "वैदिक सर्प विद्या" पुस्तक लिखनेके पूर्व यह सूक्त पढा तो था परंतु इसके निर्देशों की ओर जैसा जाना चाहिये वैसा ध्यान गया नहीं था। अब प्रतीत होने लगा है कि, इसमें विषबाधा और सर्पविषबाधा हटाने के भी उपाय हैं और विशेष विचार करनेपर इस सूक्तमेंसे बहुतसे बोध प्राप्त हो सकते हैं। इस लिये अधिक विचारणार्थ यह सूक्त पाठकों के सन्मुख हम रखते हैं। इसका छंद ऋषि निम्न प्रकार है—

कंकतः षोळशोपनिषदानुष्टुभमप्तृणसौर्यं विषशं-
कावानगस्त्यः प्राब्रवीत् । दशम्याद्याश्चतस्रो
महापंक्त्यो महाबृहती चेति।

"कंकतः इस सूक्तके सोलह मंत्र हैं। यह उपनि-षद् अर्थात् रहस्यविद्या बतानेवाला सूक्त है। इसकी देवता आप् तृण और सूर्य है। इसका ऋषि अग-स्त्य है और इसमें अनुष्टुभ, महापंक्ती और बृहती ये छंद हैं।"

इस अनुक्रमणिकाकार के कथन में यह सूक्त उप-निषद् है अर्थात यह रहस्यविद्या है ऐसा एक वाक्य आया है। अर्थात् यह एक अपूर्व गुप्तविद्या है इस रहस्यविद्या की खोज करना आर्योंका परम धर्म है।

"वेदका पढना पढाना सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है," इसका स्वीकार हर एक करते हैं, परंतु वैदिक रहस्य विद्याकी सच्ची खोज करनेमें कितने विद्वान समर्पित होगये हैं यही एक विचारणीय प्रश्न है। अस्तु।

इसकी देवतायें तीन हैं आप्, तृण और सूर्य। आप् शब्द जलवाची है और जल नामों में "विष" एक नाम है इस लिये आप शब्दसे ही जल और विष दोनों का ग्रहण यहां होता है और विषनाशनका इस प्रकार बोध इस मंत्रसे प्राप्त हो सकता है।

"तृण" देवता दूसरी है। इस शब्दका अर्थ सामान्य औषधिमात्र है। औषधि और वनस्पतियोंका इस शब्दसे ज्ञान होता है।

"सूर्य" शब्द बाह्य सूर्य और जीवोंका आत्मा का भी वाचक प्रसिद्ध है।

ये इन देवतावाचक शब्दोंके भाव संक्षेप से यहां हैं। पाठक इनका अधिक विचार करें और अधिक विस्तार से तात्पर्य जानने का यत्न करें। शौनकाचार्य इस सूक्तके विषय में कहते हैं—

कंकतो नेति सूक्तं तु विषार्तः प्रयतो जपेत्।
विषं न क्रमते चास्य सर्पाद् दृष्टिविषादपि ॥
यत्कीटलूतासु विषं दंष्ट्रिवृश्चिकतश्च यत् ।
मूलं च कृत्रिमं चैव जपन्सर्वमपोहति ॥

ऋग्विधान १ । २८

"कंकतो न यह सूक्त विषबाधासे दुःखी मनुष्य शुद्ध होकर जपे, दृष्टिसे विषबाधा करनेवाले सांपका विष भी इससे चढता नहीं। सांप, बिच्छू, तथा दूसरे विषैले कृमि इनका विष तथा कृत्रिम अथवा अकृत्रिम विषभी इससे उतरता है।"

इस सूक्तके जपका महात्म्य इस प्रकार शौनका-चार्य देते हैं। सूक्त के केवल जपसे यह सिद्धी होती है वा नहीं इस विषयमें हमें बडा संदेह है। परंतु हमारे

पास कई विद्वानों के पत्र हैं, जो कहते हैं कि केवल मंत्र पाठसे सर्पविष दूर होता है। परंतु हमने इस विषयमें इस समयतक जो खोज की है उससे हम यह कहने को इस समय तैयार नहीं हैं कि केवल मंत्र जपसे यह सिद्धि हो सकती है।

आचार्य शौनक का यह वचन हमने यहां इसलिये दिया है कि, उनका यह विश्वास था और उस समयके कई विद्वानोंकाभी यह विश्वास था। तथा इस समय के कई विद्वान भी ऐसे मंत्रसिद्धि पर विश्वास करते हैं। इन सब को इतनाही कहना है कि, केवल आचार्य या ऋषि वा मुनिका वचन है, इसी लिये उसको प्रमाण माननेके दिन बिलकुल चलेगये हैं उन दिनों में से एक क्षण भी अब अवशिष्ट नहीं रहा है। अब ऐसे दिन आगये हैं कि, प्रयोगसे अपनी विद्याकी स्थापना करनी चाहिये, तभी उसकी मान्यता हो सकती है अन्यथा नहीं। इसलिये जो लोक मंत्रसिद्धिके पक्षपाती हैं, वे अपना विश्वास कृतिके रूपमें सिद्ध करके बतावें और केवल प्राचीन वचनों पर ही हवाला देते न रहें। जब तक उनका विश्वास कार्य रूपमें नहीं दिखाई देता तबतक उनपर विद्वानोंका विश्वास स्थिर नहीं रह सकता।

इस समय हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस सूक्त में रहस्य अर्थात् गुप्त रूपसे कई प्रयोग ऐसे बताये हैं कि, जिनके करनेसे सर्पविष जैसे भयंकर विषभी दूर हो सकते हैं। इस सूक्त के सभी प्रयोग करके देखने योग्य हैं, परंतु सब मंत्रोंका ठीक ठीक अर्थ इस समय तक हमारे ध्यानमें नहीं आया है इस लिये जितने मंत्रोंका थोडासा अर्थ हमारी समझमें आगया है उसीके विषयमें हम अपने विचार किये हुए प्रयोग के साथ पाठकों के सन्मुख रखना चाहते हैं।

इयत्तिका शकुंतिका सका जहास ते विषम्।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार। ऋ. १।१९१।११

सायनभाष्य—इयत्तिका… बाला शकुंतिका… कपिंजली। सा ते विषं जघास भक्षितवती। सा विषहर्त्रीति प्रसिद्धा। सा उ चित् न मराति न म्रियते नित्यप्रतिपक्षत्वाद्विषस्य। नो वयं मराम। …"

तात्पर्य—यह… बालिका कपिंजली पक्षिणी है। यह तेरा विष भक्षण करती है। वह विष हरण करनेवाली प्रसिद्ध है। वह स्वयं नहीं मरती क्यों कि उसका स्वभाव ही विषनाशक है और हम भी नहीं मरते…"

इस सायन भाष्यको देखनेसे पता लगता है, कि शकुंति पक्षिणी विषको दूर करनेवाली है। अब इसी मंत्रका स्वामिभाष्य देखिये –

स्वामिभाष्य—इयत्तिका बाला …… शकुंतिका कपिंजली सा ते विषं जघास अत्ति। सो सा चित नु न मराति। नो वयं मराम अस्य योजनं आरे भवति। हरिष्ठाः त्वा मधु चकार। एषा अस्य मधुलाऽसि।

अर्थ—हे विषभयसे डरे हुए जन! जो इतने विशेष देशमें हुई कपिंजल पक्षिणी है वह तेरे विषको खालेती है। वह भी शीघ्र नहीं मरे और हम लोग न मारे जांय। इस पक्षिणी के संयोगसे विषका योग दूर हो जाता है। हे विषधारी! विषहरनेमें स्थिर विष हरने वाले वैद्य तुझे मधुरताको प्राप्त करता है। इसकी मधुरता ग्रहण कराने और विष हरने वाली विद्या है।

(स्वामीदयानंद भाष्य ऋ. १। १९१। ११)

अब इसीसूक्तका और एक मंत्र देखिये—

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः।
तास्ते विषं विजभ्रिर उदकं कुंभिनीरिव॥
ऋ. १। १९१। १४

सायन भाष्य — त्रिः सप्तैव विंशतिसंख्याका मयूर्यः मयूरस्त्रियः। ता विषकारिसर्पद्वेषिण्य इति

प्रसिद्धाः । .... तथा सप्तैतत्संख्याकाः सर्पणस्वभावाः स्वसारः स्वयमेव सरणा अग्रुवः। सुरगंगाद्याःप्रसिद्धा नद्यः सन्ति। तास्ते....तव विषं विजभ्रिरे विशेषेण हरन्तु ॥

तात्पर्य – इक्कीस मोरनीयां । विषकर सर्पोंका द्वेष करनेवालीं प्रसिद्ध हैं । तथा सात नदियां - गंगा आदिक भी -- तेरे विषका हरण करें ।

इस मंत्रपर स्वामी भाष्य देखिये –

स्वामिभाष्य-- त्रिःसप्त एकविंशतिधा मयूरस्त्रियः सप्त स्वसारः भगिन्य इव सर्पादिनाशने सुखप्रदाः अग्रुवः अग्रगामिन्यो नद्यः । ते विषं प्राणहरं विजभ्रिरे हरंतु । उदकं कुंभिनीः इव यथा जलाधिकारिण्यः ॥

अर्थ-हे मनुष्य! जो सात बहिनियोंके समान तथा आगे जानेवाली नदियों के समान इक्कीस मोरनी हैं, वे जलको जलका जिनके अधिकार है वे घट ले जाने-वाली कहारियोंके समान तेरे विषको विशेषतासे हरें ।

(स्वामी दयानंद भाष्य मं० १।१९१।१४)

इस सूक्त के ये दो मंत्र हैं जो इस लेखमें विचार करनेके लिये लिये हैं । इस मंत्रमें वास्तवमें १६ मंत्र हैं और उनमें रहस्य की बातें अनेक हैं, परंतु हमारे पास इस समय इतने साधन उपस्थित नहीं हुए कि, उनके प्रयोग किये जांय और कुछ परिणाम तक हमारी खोज पहुंचे । इसलिये अन्य मंत्रों का विचार छोड कर इन दो मंत्रों को ही इस लेखमें विचार करने के लिये लिया है ।

पूर्व स्थान में दो मंत्र और दोनों भाष्यकारों के भाष्य दिये हैं। दोनों भाष्यकार इन मंत्रों में विषहारक कपिंजली और मोरनी का वर्णन देखते हैं। और मानते हैं कि, इन पक्षिणीयोंके कुछ योगसे विष दूर होता है ।

सायनने कुछ भी प्रयोग दिया नहीं है, जिससे कि ज्ञात हो सके कि इन पक्षिणियों का किस विधिसे उपयोग करना । श्री० स्वामिजी ने अपने भाष्यके भावार्थ में निम्न लिखित बातें लिखी हैं–

भावार्थ—(मंत्र ११) = मनुष्य जो विष हरनेवाले पक्षी हैं उन्हें पालन कर उनसे विष हराया करें। (मंत्र १४) = मनुष्योंको जो इक्कीस प्रकारकी मयूर की व्यक्ति हैं वे न मारनी चाहिये किन्तु सदैव उनकी वृद्धि करने योग्य है । ... ”

इस भावार्थ में ये विष हरने वाले पक्षी हैं और इनकी पालना करनी चाहिये इतनी ही बात है । किस प्रयोग से विष हरण करना चाहिये इसका विवरण नहीं है ।

ग्यारहवें मंत्रमें एक शकुंत पक्षीण का वर्णन है जो विष हरण करती है । परंतु चौदहवें मंत्रमें (त्रिः सप्त) तीन सातवार अथवा सात तीनवार अर्थात् इक्कीस मोरनी- मयूर स्त्रियों का वर्णन है । क्या ये इक्कीस मोरनियों की जातियां हैं जिनकी कि रक्षा करनेका उपदेश हुआ है अथवा यह इक्कीस मोरनीयोंकी संख्या यहां अभीष्ट है ।

यही शंका (सप्त स्वसारः अग्रुवः) सात बहिनों के विषय में है । अग्रुवः शब्द नदी वाचक वैदिक वाङ्मय में हैं और पूर्वोक्त दोनों भाष्यकारोंने इसका अर्थ नदी हि इस मंत्र में लिया है । सप्त नादियां किस रीतिसे विष का नाश करतीं हैं यह एक विचार करने योग्य विषय है । सात नादियोंका जल विष दूर करनेवाला है यह अर्थ इस वाक्य का है, वा इसका कुछ अन्य अर्थ है यह प्रश्न है । अनेक वार विचार करनेपर भी इसका कोई उत्तर नहीं निकल आया । इसलिये मंत्रकी यह बात इस समय तक अज्ञात ही रही है ।

पूर्वोक्त दो मंत्रोंमें “शकुंतिका और मयूरी” ये दो शब्द पक्षिणी के वाचक हैं । “शकुंतिका” शब्दका

अर्थ "कौवी, मुर्गी, भास पक्षीण" है अर्थात् ये तीन जातीकी पाक्षिणी इस शब्दसे ली जाती हैं। इनमेंसे कौनसी विष नाशक है इसका विचार सुयोग्य वैद्योंको करना चाहिये।

"मयूरी" मोरनी का अर्थ एक ही है। इस लिये इस शब्दके अर्थ के विषयमें कोई संदेह नहीं है, परंतु इसके साथ जो संख्या "तीन गुणा सात" यह लगाई है वह संदेह उत्पन्न करती है। श्री॰ स्वामिजीके भाष्यमें "इक्कीस प्रकारकी मयूरकी व्यक्ति" लिखा है इस विषयमें यह विचार करके ही निश्चय करना चाहिये कि मयूरियोंमें इक्कीस जातियां यहां अपेक्षित हैं वा इक्कीस मोरनियां अपेक्षित हैं।

मोरोंमें अथवा मोरनियोंमें कितनी जातियां अथवा प्रकार हैं, उनमें विषहारक कौन कौन हैं और विषके साथ संबंध न रखनेवाली कितनीं हैं। इस प्रश्नका उत्तर हमारे पास इस समय नहीं है क्यों कि मोरकी कितनी जातियां हैं इसकी खोज इस समय तक किसीने की नहीं है। इस कारण मोरकी इक्कीस व्यक्तियों अथवा इक्कीस प्रकारकी मोरनीयोंके विषयमें हम कुछ कह नहीं सकते। पाठक इस विषयकी खोज करें।

विष हारक पाक्षिणीयों के विषमें जो खोज यहां हुई है उस विषयमें यहां इस समय थोडासा लिखते हैं। इस खोज से पूर्वोक्त मंत्रोंपर बहुत प्रकाश पड सकता है।

प्रथम मंत्रमें "शकुंतिका" शब्द है जिस शब्दका अर्थ "कौवी, मुर्गी और भास पक्षीण" है। इन में से "मुर्गी" का प्रयोग किया गया। जिसका वर्णन डा. ग. य. वाटवे (M. B. B. S.) सिरहट्टी (जि. धारवाड) महोदय जी के शब्दोंमें ही हम पाठकों के सन्मुख रखते हैं—

(१) सर्पदंश होते ही पहिली बात यह करनी आवश्यक है कि दंशस्थानके ऊपर ७। ८ अंगुल पर रस्सीसे अच्छी प्रकार बांधा जावे। इससे विषका ऊपर हृदयकी ओरका प्रवाह रुक जाता है।

(२) दंश के स्थानपर चक्कूसे अच्छी प्रकार काट कर खून निकालना चाहिये। जिससे खून के साथ विषभी बाहर आने लगता है। इस समय इतना अवश्य ध्यान में धरना चाहिये कि चक्कू दिवेपर अथवा आगमें धर कर उसको अग्निद्वारा शुद्ध करना योग्य है। अन्यथा चक्कूके ऊपर के मलका प्रवेश खूनमें होकर कुछ व्रणकी अवस्था बिगडने का संभव होता है। इस विधिसे सर्प दंश के स्थान से अच्छी प्रकार खून बहाना अत्यावश्यक है! यह इस ढंगसे जखम का मुंह बडा करना मुर्गी के प्रयोग के लिये आवश्यक ही है।

(३) पश्चात् मुर्गियां कमसे कम दस लानीं चाहिये। प्रायः प्रत्येक ग्राममें जितनी चाहिये उतनी संख्यामें मुर्गीयां हरएक समय मिलजाती हैं। तथापि सर्प विष बडा प्रबल होनेके कारण दस पंद्रह मुर्गीयां मिलनेतक इंतजार करना योग्य नहीं। जितनी मुर्गीयां मिलजांय उनको लेकर प्रयोगका प्रारंभ करना योग्य है।

(४) मुर्गी हाथ में पकडकर उसके गुदा के पासके पर झटपट निकाल कर उसकी गुदाके पासका भाग स्वच्छ करना चाहिये, और दंशके स्थानपर गुदाका भाग लगाना चाहिये। मुर्गी उड न जाय और इधर उधर न हिले इस लिये जोर से उसको सर्पदंशके स्थान पर दबाकर रखना चाहिये। मुर्गीके गुदद्वार में विष चूसनेका गुण धर्म है, इस लिये मुर्गी की गुदा वहां लगते ही वह विष आकर्षित करने लगती है। इसकी गुदामें विषका आकर्षण करनेकी विलक्षण शक्ति है। परमात्माकी अद्भुत लीला है जिसने ऐसी विलक्षण शक्ति मुर्गी की गुदा में रखी है।

प्रायः एकदो मिनिटोंके अंदर ही मुर्गी को मृत्यु आनेके चिन्ह होने लगेते हैं, उस का श्वास बढता है और मूर्च्छना भी आने लगती है । दो ढाई मिनिटोंमें मुर्गी अपनी गर्दन संभाल नहीं सकती इतनी मूर्च्छित हो जाती है और चार मिनिटोंके अंदर ही मर जाती है । इसलिये दो ढाई मिनिटके पश्चात् अर्थात् अपनी शक्तिके अनुसार उसके विष खींचनेके पश्चात् उस मुर्गी को छोड देना और पूर्वोक्त प्रकार दूसरी मुर्गी जखमपर लगानी चाहिये । इस प्रकार सावधानतासे मुर्गी लगानेपर मुर्गीभी मरती नहीं और विषभी दूर हो जाता है ।

तीन मिनिट तक जितना विष मुर्गी अपनी गुदासे खींचलेती है उतने विषसे उसके शरीरपर कोई बुरा परिणाम नहीं होता । अर्थात् इतना विष हाजम करनेकी शक्ति उसके शरीरमें है अथवा उस विषका नाश करनेका बल उसके खून में है ।

इस विधिसे और इतनी सावधानतासे एक के पीछे दूसरी, दूसरीके पीछे तीसरी इस प्रकार मुर्गीयां लगाते जाना चाहिये । इस प्रकार करते करते अंतमें ऐसी अवस्था आजाती है कि मुर्गीके ऊपर कोई परिणाम नहीं होता । जब ५ । १० मिनिट मुर्गी उस स्थानपर पकडने से भी कोई परिणाम नहीं दिखाई देता, तब समझना चाहिये कि अब विष सब का सब दूर होगया है ।

यदि मुर्गीयां बहुत होंगी तो दो दो मिनिट के पश्चात् मुर्गी बदलनी चाहिये । ऐसा करनेसे मुर्गी को भी कोई क्लेश नहीं होते और विषभी दूर होता है । परंतु यदि मुर्गीयां पर्याप्त संख्यामें प्राप्त नहीं हुई तो मुर्गीकी शक्ति समाप्त हो जानेतक उसको जखमपर लगाकर मनुष्यको बचाना चाहिये ।

केवल दो मिनिट तक लगानेसे मुर्गी नहीं मरती, परंतु अधिक देर लगानेसे मुर्गी बचती नहीं । इसलिये मुर्गी योंं की संख्या का विचार करके ही उसको कितनी देर लगाना इस बात का विचार करना चाहिये ।

उक्त प्रकार मुर्गियोंसे सब विष आकर्षित हो जानेपर जो मुर्गी लगायी जायगी उसपर कोई परिणाम नहीं होता । यह अवस्था प्राप्त होनेपर " पर मैंगनेट आफ़ पोटाश तथा आसीड टार्टारिक " समभाग एकत्र मिलाकर वह मिश्रण जखम में भरदेना चाहिये । इस मिश्रण का परिणाम विष पर तो होता ही है । परंतु इससे और एक लाभ होता है वह यह है कि जखम के स्थानपर बडी जलन शुरू होती है । और इस कारण उस आदमी को कई घंटे तक निद्रा नहीं आती । इस प्रकार निद्रा न आना अत्यावश्यक है । सर्पसे काटे मनुष्यको पूर्व उक्त उपाय करनेके पश्चात् भी अठारह घंटे तक निद्रा नहीं आने देनी चाहिये । निद्रा आनेसे बडी हानी होना संभव है । अतः उक्त उपाय अवश्य करना चाहिये ।

यह उपाय करनेके पश्चात् रोगी को आराम है, पसीना आना कम हुआ है, मूर्च्छा कम हुई है, सुस्ती हट गई है, इत्यादि आराम प्राप्त होनेके लक्षण दिखाई देनेपर रस्सीका बंध छोडनेका विचार करना चाहिये । तथापि एकदम सब बंध छोडना नहीं चाहिये । यदि एकदम सब रस्सीका बंध छोड दिया जायगा तो संभव है कि किसी स्थानपर रहा हुआ विषका अल्प अंश अंदर घुसकर पुनः बिगाड करेगा । इस लिये रस्सी छोडने के समय आधमिनिट ढिली करके पुनः सख्त बांध देनी, फिर १०।१५ मिनिट के पश्चात करना । इस प्रकार दोचार वार करके अनुभव देखना चाहिये । यदि विषका परिणाम कुछभी न रहा तो रस्सी का बंध बिलकुल छोड देना चाहिये ।

रोगी के पेट में जलन अधिक हुआ तो ठंढा दूध और उत्तम मिश्री पीनेको देना योग्य है। उत्तेजक मिश्रण भी घंटे घंटे के बाद देना उत्तम है।

पूर्वोक्त बातों में (१) रस्सीका बंध, (२) चक्कूसे जखम का मुख बडा करना और (३) मुर्गी का गुदा प्रदेश जखमपर लगाना ये तीन उपाय मुख्य हैं। अन्य उपाय गौण हैं। इनके करनेसे रोगी सर्पके विषकी बाधासे मुक्त होकर आरोग्य प्राप्त कर सकता है। अनेक बार यह उपाय अजमाया है।

इसलिये पाठकोंसे भी निवेदन है कि जो पाटक सर्प विषपर यह उपाय अजमायेंगे, उनको उचित है कि वे अपने परिणाम से हमें सूचित करें।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें शकुंतिका शब्दके अनेक अर्थों में मुर्गी भी एक अर्थ है। यदि उक्त मंत्र में शकुंतिका का अर्थ मुर्गी मान लिया जाय, तो इस प्रयोग के साथ मंत्र का संबंध स्पष्ट प्रतीत होता है। मंत्रका कथन है कि "शकुंतिका विष भक्षण करती है, स्वयं भी नहीं मरती और रोगी को भी बचाती है।"

हमने ऊपर के प्रयोग में बताया कि "मुर्गी सर्पका विष जखम से अपनी गुदा द्वारा चूस लेती है। थोडी देर के चूसनेसे स्वयं नहीं मरती और इस प्रकार अनेक मुर्गियों का उपयोग करनेसे रोगी भी बच जाता है।"

मंत्रका कथन इस प्रकार क्रिया रूपमें दिखाई देता है। मंत्रमें कहे हुए ज्ञानका प्रत्यक्ष यह उपयोग और लाभ है। द्वितीय मंत्रमें इक्कीस मोरनीयों का उल्लेख है। यद्यपि हमने मोरनीयों का प्रयोग नहीं किया, तथापि मुरगी के समान ही मोरनी का भी उपयोग होना संभव है। ग्रामोंमें जितनी मुर्गीयां मिल सकती हैं उतनी मोरनियां नहीं मिल सकतीं और मोरनीको पकडना और लगाना भी कठिन है। तथापि गुण की दृष्टीसे समान गुण धर्म होना संभव है।

मंत्रका "त्रिः सप्त" शब्द इक्कीस संख्या का वाचक यहां मुरगी या मोरनी की संख्या बताता है ऐसा हमारा ख्याल है। अर्थात् विष बिलकुल हटाने के लिये इक्कीस मुरगीयां अथवा मोरनियां उपयोग में लानी चाहिये। यह हमने भी देखा है कि कठोर विष वाले सांपके विषके दूर करने के लिये बीस से अधिक ही मुर्गीयों का उपयोग करना पडता है। दो मिनिट के अंदर मुर्गीको हटाने से ही मुर्गी बच सकती है। अतः मुर्गीकी हिंसा यदि करना अभीष्ट नहीं है तो मुर्गीयां २१ अवश्य लगतीं हैं। यह विचार मनमें लानेसे मंत्रकी इक्कीस संख्या अवश्य अर्थपूर्ण प्रतीत होती है।

इस ढंगसे प्रयोगके साथ मंत्रका मनन करनेसे मंत्रके शब्दोंकी सार्थकता स्पष्ट नजर आजाती है। जिन शब्दोंका कोई विशेष अर्थ प्रतीत नहीं होता वेही शब्द विशेष महत्व पूर्ण हैं ऐसा प्रयोग करनेके पश्चात प्रतीत होने लगता है।

पूर्वोक्त सूक्तमें "सूर्य, शकुंतिका, विष्फुलिंगक, मयूरी, स्वसा (अग्रुवः), कुषुंभक" इतने पदार्थ विषहारक होनेका वर्णन है। इन सब के प्रयोग करके किस रीतिसे और किस प्रयोग से इनका उपयोग विष दूर करनेमें हो सकता है इसका निश्चय करना वैदिक धर्मियोंका ही कार्य है।

वेदने ज्ञान आर्योंके सन्मुख रखा है अब देखना है कि वे इसका कैसा उपयोग करते हैं और किस रीतिसे लाभ उठाते हैं।

संकल्प शक्ति।

परिच्छेद १

(ले०—श्री. उदयभानु भैय्याजी)

पाठ १

संकल्प शक्ति का स्वरूप।

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक कार्य्य में यह अनुभव करता है कि जो कार्य्य उसने किया है उसके अन्दर किसी न किसी मानसिक शक्ति की आवश्यक्ता थी कि जिससे वह उस कार्य्य में सफल हुआ है। प्रत्येक कार्य्य चाहे वह सुगम हो या कठिन संकल्प की आवश्यक्ता रखता है। प्रत्येक मनुष्य के पास स्वाभाविक एक संकल्प–शक्ति होती है कि जिसकी सहायता से उसे इस संसार में विजय प्राप्त होती है।

संकल्प–शक्ति किसी विशेष आकार या रंगकी नहीं है अर्थात् वह एक मानसिक क्रिया है न कि किसी इन्द्रिय का विषय। इस कारण उसका ज्ञान उसकी उन्नति और उसके द्वारा प्रयास करने से ही प्राप्त हो सक्ता है अन्यथा नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति के पास संकल्प-शक्ति है जैसा कि उपर बतलाया जा चुका है और उसकी उन्नति प्रत्येक कर सक्ता है। संसार में कई मनुष्य उंचे होते हैं और कोई छोटे होते हैं कि जिस सीमापर दूसरे मनुष्य यदि उनमें वे बातें प्राकृतिक न हों तो प्रयत्न करने पर भी नहीं पहुंच सक्ते। ठिंगना मनुष्य ऊंचा नहीं बन सक्ता और ऊंचा मनुष्य न नीचा हो सक्ता है; यह कार्य्य प्रकृति का है। बरन संकल्प शक्ति के संबंध में यह नियम नहीं है। निःसंदेह कई मनुष्य स्वभाव से ही अधिकांश संकल्प-शक्ति वाले होते हैं कि साधारण पुरुष को उस अंश तक पहुंचने में बहुत परिश्रम और उचित समय की आवश्यक्ता पडती है। बरन यह निर्विवादित है कि संकल्प-शक्ति न्यून वा अधिकांश में प्रत्येक के पास होती है और प्रत्येक मनुष्य उसकी उन्नति कर सक्ता है।

संकल्प शक्ति की उन्नति संकल्प शक्ति की सहायता से ही हो सक्ती है। यावत् संकल्प को संकल्प शक्ति की उन्नति में न लगाया जावे, संकल्प–शक्ति की उन्नति होना असंभव है। संकल्प शक्ति मानसिक क्षेत्र की अन्तिम वृत्ति है और उसीसे प्रत्येक कार्य्य प्रारंभ होता है।

संकल्प शक्ति से क्या लाभ है, उसकी उन्नति में क्यों प्रयत्न किया जाए; इस प्रश्न का उत्तर केवल यही है कि प्रत्येक कार्य्य संकल्प-शक्ति द्वारा ही होते हैं; अतएव कठिन कामों में सफलता प्राप्त होने निमित्त अधिक संकल्प शक्ति की आवश्यक्ता पडती है, बनिस्बत सरल कामों के। आप यह जान गए होंगे कि आज पर्यंत जितने भी मनुष्य हुए हैं कि जिन्होंने

संसारमें अपने लिए या संसार के लिए कुछ भी किया है वे वेही व्यक्तिऐं थीं कि जिनके पास संकल्प-शक्ति पर्याप्त अंश में थी। कठिन से कठिन काम को असह्य आपत्तियों एवं प्रलोभनों के आते हुए भी नहीं छोडा कि जहां साधारण व्यक्ति कुछ भी अनुमान नहीं कर सक्ते। हम दूसरों की प्रशंसा करते हैं बरन यदि वही कार्य्य हमारे सन्मुख विद्यमान होता तो हम उसे किंचित भी न कर सके होते। क्या कारण है कि उस व्यक्ति ने उसे धैर्य्य के साथ समाप्त कर लिया। कई प्रलोभन आए बरन उन सब पर विजय प्राप्त की।

उस व्यक्ति और सर्व साधारण में क्या भिन्नता थी; अवश्य ही कुछ शक्ति थी और वह साधारण न थी। विजय प्राप्त कराने वाली वह एक संकल्प-शक्ति थी; कि जिसके सन्मुख कोई कठिनता, प्रलोभन या असफलता नहीं ठहर सक्ती। संकल्प-शक्ति अनेक दैविक-शक्तियों को मनुष्य में उन्नत करती है, जहां वह अपने से संपन्न मनुष्य को आनन्द देती है वहां उस मनुष्य से संबंधित जनों को भी सुखदाई होती है। इससे वंचित पुरुष जहां हतोत्साहित होकर चिन्ता और तृष्णा की प्रचंडाग्नि में तडफते हैं वहां इससे संपन्न मनुष्य अदम्य उत्साह के साथ **पुरुषार्थ** द्वारा विजय प्राप्त करते हैं.

यह दिव्य गुणवाली शक्ति अपने आप ही उन्नत होती है और और शक्ति की अपेक्षा नहीं रखती। उसका जितना सदुपयोग किया जायगा वह उतनी ही बढेगी, उसका अनुपयोग ही उसकी क्षति करता है। अन्य शक्तियोंकी उन्नति में अपर शक्तियों की सहायता और द्रव्य की आवश्यक्ता पडती है; बरन संकल्प- शक्ति अपने आप की ही शक्ति द्वारा बढती है, और अपने स्वामी को कभी घाटा नहीं देती। दूसरी शक्तियां संकल्प का आश्रय लेती हैं बरन संकल्प शक्ति किसी का आश्रय नहीं ढूंढती।

इस पुस्तक में संकल्प की उन्नति करने के लिए जिन साधनों का वर्णन किया है उनमें से कुछ साधन बालक के खेलवत् सरल एवं अनुपयोगी प्रतीत होंगे बरन सरल मार्ग का अनुसरण करने से ही मनुष्य उन्नति के उच्च शिखर पर पहुंच सक्ता है। कठिन कामों को प्रथम लेकर कार्यारंभ करने से मनुष्य मार्ग में ही अविजय प्राप्त कर हतोत्साहित हो जाता है।

हमारे कई पाठकगण संकल्प का इतना परिचय पाकर इस शक्ति को उन्नत करने में इतने उत्सुक हो गए होंगे और प्रायः आज ही इस लेख को समाप्त कर उध्दृत की गई शिक्षाओं में से कई एक का अनुसरण प्रारंभ कर देंगे बरन यह अशुभ चिन्ह है, क्योंकि इतना उत्तेजित उत्साह चिर-स्थायी नहीं होता। दो चार या आठ दिन में ही यह उत्साह अपनी प्राथमिक स्थिति पर पहुंच जाता है और परिणाम कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

हमारे पास न कोई यंत्र है और न कोई ताबीज कि जिसकी भेंट कर हम आपमें भीम-संकल्प उत्पन्न कर सकें। न कोई जादू की अंगूठी है और न कोई इन्द्रजाल की हस्तक्रिया। हमने न कोई ग्रह का आविष्कार किया है और न कोई टेलिसमन् का, कि जिस उपहार को हम समर्पित कर शीघ्रोत्साहित होनेवाले पाठकों की सांत्वना कर सकें। बरन् एक छोटी सी कुंजी ही हम सविनय भेंट करते हैं और वह है सतत परिश्रम और दृढता। अंग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि "Rome Was not built in a day" अर्थात् "रोम एक दिन में नहीं बना था।" यदि पाठक इस बातको समझलें कि जो वस्तु जितनी जल्दी उत्पन्न होती है उतनी

शीघ्रता से ही उसका पतन भी हो जाता है। इस कारण यदि आपको संकल्प शक्ति प्राप्त करना है तो धैर्य्य रख सतत-पुरुषार्थ की ही शरण लेना चाहिए। जिस दिन से आप इसका प्रारंभ करेंगे उसी दिन से आपको लाभ प्रतीत होने लगेगा।

पाठ २

संकल्प शक्ति का इतिहास।

कुछ अंग्रेज विद्वान यह कहा करते हैं कि भारतवासी हमसे कुछ सीख वैदिक मंत्रोंका कपोलकल्पित अर्थ कर लेते हैं और जिसका हम आविष्कार करते हैं उसका परिचय वैदिक सूक्तों में बतला देते हैं। 'Spiritualism' "प्रेतात्मा से बातें करना" इस विद्या का विरुद्ध पक्ष लेकर मैं एक अंग्रेज महोदय से बातें कर रहा था। उस समय उक्त महोदय ने यह भी कहा था कि योरोप अन्य विद्याओं के समान मानसिक विज्ञान में भी भारत से आगे बढ़ गया है और हिन्दी भाषा में मानसिक विज्ञान पर लिखित पुस्तकों को अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर लिखी हुई बतलाया। हमारे कई देशवासी भी इसे स्वीकार कर लेते हैं। अतएव इस पाठ में मैं यहां बतलाने का प्रयत्न करूंगा कि संकल्प-विद्या की उत्पत्ति और उन्नत्ति प्रथम कहां हुई—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति........

शिव संङ्कल्पमस्तु

यजु. ३४।१

इस मंत्र में मानसिक तत्त्वोंका विचार है और परमेश्वरसे प्रार्थना की गई है कि हमारा मन शुभ संकल्प करने वाला बने।

(२) संकल्प शक्ति के गुण।

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु। यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टम ॥ अथर्व १९-४-२ ॥

अर्थात् दिव्यगुणों से युक्त उत्तम भग को उत्पन्न करने वाली (आकूतिम्) संकल्प-शक्ति को मैं आगे रखता हूं, चित्तकी जननी यह शक्ति हमारे लिए सहज मे बुलाने योग्य हो। जिस आशा को मैं प्राप्त होऊं वह मेरी कामना अकेली हो मन में प्रविष्ट हुई इस संकल्प-शक्ति को मैं प्राप्त होऊं !! इस मंत्र में संङ्कल्प-शक्ति के निम्न लिखित गुणों का वर्णन है।

(१) देवीं अर्थात् दिव्य गुणोंवाली

(२) सुभगां=ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य ए ६ भग हैं संकल्प-शक्ति इनको प्राप्त कराने वाली है।

(३) चित्तकी माता

(४) केवली=एक और असङ्कीर्ण.

(५) सुहवा=सहज में प्राप्त होने योग्य।

(३) महां यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।

अथर्व ० ५।३।४

मेरे किए हुए दान इत्यादिक मुझे प्राप्त रहें मेरे मन का संकल्प सत्य हो। इस मंत्र में असत्य संकल्प के त्याग करने का वर्णन है।

वेदों में और भी वर्णन इस संकल्प-शक्तिका है बरन् यहां इतनाही देना पर्याप्त होगा। अब अन्यान्य ग्रंथों में देखिए।

मनुमहाराज ने भी संकल्प की महिमा इस प्रकार वर्णन की है। यथा:—

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमनियमाश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥

अर्थ-संकल्प, इच्छा-सिद्धि का मूल है। संकल्प से यज्ञ होते हैं। व्रत, यम और नियम भी संकल्पजन्य हैं॥

पद्म पुराण में लिखा है कि "संकल्पेन विना राजन्! यत्किंचित्कुरुते नरः फलस्याल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्धक्षयो भवेत् ॥

अर्थः- हे राजन्? संकल्पके विना मनुष्य जो कुछ भी करता है उसका धर्म आधा रह जाता है और उसके कार्य्य का फल भी अल्पाल्प होता जाता है। लिङ्गार्चनतन्त्र के पांचवें पटल में लिखा है कि —

संकल्पं मानसं देवि! चतुर्वर्ग प्रदायकम्।

अर्थः—हे देवि! मन का संकल्प चतुर्वर्ग का साधक है। चतुर्वर्ग नाम है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अर्थात् संकल्प से ही इन चारों की सिद्धि होती है।

रामायण और महाभारत सरीखे गौरवपूर्ण ग्रंथों के पढने से ज्ञान होता है कि संकल्प - शक्ति की उन्नति किस प्रकार की जाती थी। महाराजा दशरथ ने अपने संकल्प बल के ही कारण अपने वचनों को नहीं तोडा और मृत्यु जिससे कि सब प्राणी भय खाते हैं, के समर्पित अपने आपको कर दिया। इन ग्रंथों में असंख्य उदाहरण हैं बरन् उनकी कथा आज भी सर्व प्रसिद्ध होने के कारण उनका वर्णन कर इस लेख का कलेवर बढाना अभिष्ट नहीं है।

मि. फ्रेडरिक एनथोनी मेस्मर (१७३४—१८१५) जोकि वायना Vienna का एक डाक्टर था। उसने मानसिक विज्ञान के कुछ नियम निकाले थे। बरन योरोप में उसकी बात को किसी ने स्वीकार नहीं किया। बरन उसकी मृत्यु के पश्चात् योरोप के विद्वानों ने उन नियमों के अनुसंधान से मानसिक विज्ञान में उन्नति करना प्रारंभ की।

हजरत ईसा के जन्मके पहिले ही वेद निर्मित हुए हैं और इस बात में योरोप के इतिहासज्ञ भी हमसे सहमत हैं तो अब पाठकवृंद ही इस बात का निर्णय करें कि मानसिक—विज्ञान का इतिहास कब और किस देश से प्रारंभ होता है।

वेद और शास्त्रों में यह विषय भरा पडा है और हर्ष है कि देश के विद्वानों का ध्यान अब इस ओर आकर्षित हुआ है।

पाठ ३

अदीन विचार।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥

मैं. उ. ६। ३४

स्वतंत्रता और परतंत्रता का कारण मन ही है। अर्थात् जिन मनुष्योंके मन में शुद्ध विचार उत्पन्न होंगे वे मनुष्य कभी परतंत्र नहीं रह सकते। जो मनुष्य सदा दीन और निर्बल विचारों का मनन करते हैं वे कभी स्वतंत्र नहीं हो सक्ते।

वेद उपदेश देता है कि "अदीनाः स्याम शरदः शतम्" दीन न बनते हुए सौ वर्ष जीवित रहें। दीन हीन, निर्बल एवं कुत्सित विचारों के त्याग के लिए और सारी आयुष्य भरके लिए कह रहा है कि मनुष्य शुद्ध संकल्प शुभ विचार वाला हो।

अर्थ और इन्द्रिय का संयोग होने से मन में क्रिया उत्पन्न होती है। प्रत्येक क्रिया कालान्तर में प्रतिक्रिया अवश्य उत्पन्न करती है प्रत्येक क्रिया मन में संस्कार उत्पन्न करती है बरन् ये संस्कार विना किसी विशेष प्रयत्न के या अकारण ही स्मरण नहीं होते, और न नष्ट होते हैं। किंतु जब हम उसे खोजने के अर्थ एक नई क्रिया उत्पन्न करते हैं तब ये संस्कार इस नई क्रिया की शक्ति पाकर सबल हो जाते हैं और प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। अतः जितनी बार हम किसी विचार को दुहराएंगे और जितना ध्यान और महत्व उसे देंगे उतनी ही सहायता प्रतिक्रिया को दृढ एवं सुगम होने में मिलेगी। क्योंकि क्रिया और प्रतिक्रिया का संबन्ध समान है अर्थात जिस प्रकार क्रिया होगी

उसी अंश में प्रतिक्रिया भी होगी। विचारों द्वारा ही शरीर कार्य्य करता है। अतः बुरे विचार द्वारा मन में फिर बुरे विचार उठना और शरीर द्वारा बुरे काम किए जाना सिद्ध होता है। हमारा शरीर निर्बल है हम दलित हैं यदि हम इसी फिक्र में पडे रहें और अपने को बार बार निर्बल कहें और औरों से भी इसी प्रकार सुनते रहें तो इस क्रिया और प्रतिक्रिया के सिद्धांतानुसार हमारा स्वास्थ्य प्रतिदिन बिगडता ही जाएगा। जब क्रिया के बराबर प्रतिक्रिया का होना आवश्यक है अतः हम कुविचारों के संबंधमें जितनी मानसिक क्रिया कर आए हैं उतनी प्रतिक्रिया जब हो जाएगी तभी विचारों से मुक्त होंगे. प्रतिक्रिया भी उसी प्रकार होनी चाहिए कि, उसपर ध्यान न दिया जाए नहीं तो फिर प्रतिक्रिया के चक्कर में पडना पडेगा।

बहुधा मनुष्य किसी बुरी वस्तु के त्याग करने में उसकी बुराइ का निरंतर चिन्तन किया करता है। उस पर शोक और चिन्ता किया करता है। बरन् परिणाम यह होता है कि त्याग के बदले में वह उन प्रतिक्रियाओंके लिए मार्ग सुगम बना रहा है कि जिनकी क्रिया अभी हो रही है। इस कारण प्रत्येक मनुष्य को ऐसी परिस्थिति, मनुष्य, पुस्तक, दृश्य या शब्दों का त्याग करना चाहिये जो मनमें कुत्सित भाव उत्पन्न करें। मनको सदैव शुभ विचारोंसे प्रसन्न रखना चाहिये कि जिससे उसे बुराई या दुष्परिणाम के विचार करने का अवकाश ही न मिले। वेद कहता है:—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

अर्थात् हे यजनीय प्रभो? हे देवेश्वर ! हम कानोंसे सदा कल्याण को सुनें, आंखों से कल्याण को देखें, हमारे अङ्ग और उपाङ्ग दृढ होवें और आयुभर महात्मा सन्तजनों की सेवा करें।

आप अपने अंदर से दीन हीन और दुर्बल विचारों का त्याग कीजिये और मन में धरिये कि मैं जो चाहूं सो कर सक्ता हूं.। बहुतसे लोग अपने भाग्य या तकदीर के भरोसे, तो कोई गृह या तारे के भरोसे तो कोई और किसीपर विश्वास करते हैं बरन उन्हें यह विचारना चाहिये पुरुषार्थ के विना फल की प्राप्ति नहीं होती। योगवाशिष्ठ के वैराग्य प्रकरण में लिखा है कि पुरुषार्थ ही देव है और कोई दूसरा देव नहीं।

मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही मनुष्य बनता है। जैसे आप बोलते हैं,सुनते हैं, विचारते हैं या जो कुछ भी कर्म करते हैं वे सब ही आपके चित्त में संस्कार रूपसे अंकित होते हैं. दीन विचारों से दीन कर्म होते हैं जिससे उन्नति नहीं होती बरन् आत्मा और मन दोनों ही दीन बनाजाते हैं।

दीनता और परतंत्रता आत्मा के अनुकूल नहीं है। कई मनुष्य परमेश्वर से प्रार्थना करते समय यह कहा करते हैं कि मैं पापी हूं, नीच, दुष्ट, मूर्ख, खल और कामी हूं। बरन् यदि इन मनुष्यों को जनता में कोई पापी और मूर्ख कह कर पुकारे तो वे अति रुष्ट हो जाते हैं और इन्हें अपशब्द कह कर भविष्य में इन शब्दों का इनके प्रति व्यवहार करने के लिए निषिद्ध करते हैं. यदि ये वास्तव में ही पापी और दुष्ट हैं तो आत्मा में इतना क्रोध उत्पन्न करने की आवश्यक्ता न थी इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा के प्रसन्न करने निमित्त ये शब्द जाल थे। आत्मा अनुकूल पदार्थों से प्रसन्न और प्रातिकूल से क्रोधित होती है। इससे कभी सिद्ध होता है कि उच्च विचार ही आत्मा के अनुकूल हैं। अनुकूल कार्य्य से सफलता

और उन्नति दोनों होती हैं और प्रतिकूल से असफलता और अवनति होती है। इससे भी सिद्ध होता है कि मनुष्य को उच्च विचार जो कि आत्मा के अनुकूल हैं रखना चाहिए। तुफान का वायु बडा पराक्रमी है। जनता में अधिक समुदाय के भाव शिक्षित नहीं हैं, अतएव सोच विचार कर दृढता से विचारों में परिवर्तन करना चाहिए।

क्या आपने यह कभी अनुभव नहीं किया कि जब एक बडा भारी वजन जो कि मजदूरों से नहीं उठता है उसको उठाने केलिए "बहादुर ? वीरो !! उठालिया है !!!" इत्यादि उत्साहवर्धक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उत्साहवर्धक शब्दों को सुनकर मनुष्य में अदम्य उत्साह और नवीन शक्ति उत्पन्न होती है।

वीर नेपोलियन, कि जिसका नाम सुनकर सारा योरोप कांप उठता था, का सिद्धांत था कि असंभव कुछ संसार में है ही नहीं। मैं सब कुछ कर सकता हूं, मैं विजयी हूं, मेरी विजय है, मेरे पास पराजय कभी भी नहीं आसक्ती।

यदि आप यह विचारें कि किस प्रकार आपके विचारों द्वारा आपका भावी जीवन आपके हाथ में हैं तो निःसंदेह आज ही से आप दीन विचार कभी भी नहीं आने देंगे।

उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि॥ ऋग्वेद १०। १८६

हे महा शक्ति संपन्न परमात्मन्! तू हमारा पालक और संरक्षक है, तू हमारा भ्राता और हितकरने वाला सखा है। हे प्रभो! हमारा आयुष्य बढाओ।

जब एक राजा का साधारण नौकर भी अपने स्वामी का अभिमान रखता है और दीनता का त्याग कर देता है तो आप अमृत जो परमात्मा है उसके पुत्र हैं सखा हैं और भ्राता हैं और सदा उसीके समीप रहते है, कितने अभिमानी होना चाहिए।

एक अंग्रेज कवि का कहना है किः—

Though plunged in ills, and exercised in care
Yet never let the noble mind despair.

अर्थात :- चाहे चिन्ता और आपत्ति कितनी भी आवे बरन मनुष्य को हतोत्साहित कभी भी नहीं होना चाहिए।

हीन और मलीन विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान न दीजिए सदा ऐसे ओजस्वी विचार अपने मस्तिष्क में रखिए कि जो उत्साह का वायुमंडल अपने चारों ओर उत्पन्न कर सकें। अपने मित्र ऐसे ही चुनिए कि जो उक्त प्रकार के विचारधारण करते हों। बस, यही संकल्प शक्ति की उन्नतिका प्रथम सौपान है।

लन्दन में प्रेतात्मविद्या के अद्भुत दृश्य।

(श्री. पं. ठाकुर दत्त शर्म्मा वैद्य लिखित)

श्री. पं. जी योरूपकी यात्रा से अभी वापिस आये हैं। आप ने कई लेख पंजाब के पत्रों में प्रकाशित कराये यह उनका पत्र नं १० है जो एक आवश्यक विषय का प्रकाश डालता है मैं ने पिच्छले लेख में रुहों (प्रेतात्माओं) की बातें लिखने की प्रतिज्ञा की थी। इनको आज लिखता हूं। —

योरुप तथा अमेरिका में प्रेतात्मविद्या के बडे मानने जानने बढ रहे हैं। इस विद्याको Spiritualism कहते हैं। इन लोगों का विचार अब यह हुआ है कि यह संसार केवल सरायेके सदृश है, और इस के आगे दूसरा संसार है जिसमें सूक्ष्म शरीर के साथ सब कोई सदैव रहते हैं वह हमको और यद्यपि हम उनको नहीं देखते परन्तु वे हम से बात चीत भी करना चाहते हैं, हमको दिखाई देना भी चाहते हैं, हमको प्रयत्न करना चाहिए, तब देख भी सकते हैं बात चीत भी कर सकते हैं। मिस्टर सटैड जैसे प्रसिद्ध पुरुष पत्र सम्पादक इस में विश्वास रखते हैं। आज कल सर आलिवर लाज जैसे पुरुष परलोकविद्या समिति के सदरूप हैं इस विषय पर इतनी पुस्तकें लिखी गई हैं कि अलमारियों की अलमारीयां भर जाती हैं। कई पत्र परलोकविद्या के विषय में ही निकलते हैं। पत्रों की बातें पढ कर भारतवर्षी पत्रों में इस विद्या की अजीव अजीव बातें लिखी जातीहैं। लन्दन में रहते हुए मैं ने इस विषयका भी परिचय लेना चाहा।

विज्ञापन बहुत से निकलते हैं, थोडे पुरूष और अधिक स्त्रियें कई प्रकार की बातें फीस लेकर बतलाते हैं इन में किसी के पास जाऊं?पहिले मेरे लिए काठिनता यही थी, प्रथम कई लेखकों के पास गया जिन की प्रेतात्मविद्या की पुस्तकों का बढे चाव से पठन पाठन किया जाता है परन्तु मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वे स्वयं रूह के अभ्यासी नहीं समाचार पत्रों के सम्पादकों के पास गया उनको भी अभ्यासी न पाया, हां इनसे पते जरूर प्राप्त किये।

मिस्टर स्टैड की लडकी मिस स्टैड भी इस विषय में बडा काम करती रहती हैं। इनको मिलने से बडी सहायता मिली। परलोक विद्याकी आमिल यहां अधिक तर स्त्रियें पायीं।

साधारण बातों की मुझे इच्छा न थी मैं तो कोई बडी बात देखने का उत्सुक था, मैं यहां कुछ स्त्रियें ऐसी हैं जो समझा जाता है कि वह प्रेतों को देखती हैं और इनको रुहें सदैव दृष्टीमें आती हैं, कई ऐसी हैं जो रुहों के शब्द सुनती हैं, रूहें इनको सब कुछ बतलाती हैं सारे इन्गलिस्तान में चन्द एक पुरुष तथा स्त्रियें ऐसी हैं जो कि चाहें किसी पुरुषका चित्र ले लेवें तो इसके साथ रुह जो जो उनके साथ होगी उसका भी चित्र आ जावेगा और ऐसे चित्र समाचार पत्रों में कई बार हम ने देखे थे और पाठकों ने भी देखे होंगे। एक और स्त्रियों की ऐसी शक्ति है कि यदि वह किसी स्थान में बैठी हों, तो रूहों को ऐसी शक्ति इन से मिल जाती है कि वह बोलती हैं और आप सुन सकते हैं। पहिली दो बातों में कोई संशय भी हो, परन्तु दूसरी दो बातें यदि ठीक हों तो फिर मनुष्य कैसे इस विद्या में शंका कर सकता है यह सब विचार थे। यह लोग अपने पबलिक अधिवेशन भी करते हैं, जिस में जांच पडताल करने वालों वा दर्शकों को जांचने का भी अवसर मिलता है, सब से प्रथम इनके एक जलसे में गया, पूर्ण गम्भीरता से कार्य्य हो रहा था, भजन गायें गये, प्रार्थना की गई इसके पश्चात् मिस्टर जार्ज प्रा स्टर ने व्याख्यान दिया, उन्होंने कहा कि हम को विश्वास हो गया है कि इस जीवनके पश्चात् दूसरा नित्य जीवन है। इसाई आदि हमको काफिर कहें या कुछ कहें परन्तु हमको जो सत्यता प्रतीत होती है इससे अस्वीकार कैसे किया जावें? हम सबको निमंत्रण करते हैं कि आवें और परीक्षा करें तत्पश्चात मिसिज फलारेंस किङ्गस्टन खडी हुई, यह भूत प्रेतोंको देखती और सुनती

हैं, उन्होंने किसी किसी को बतलाना आरम्भ किया कि अमुक स्त्री जो बैठी है या अमुक पुरूष जो वहां बैठा है आपके समीप एक रूह खडी है इसकी ऐसी आकृति है ऐसे वस्त्र हैं। जब आकृति का भली प्रकार वर्णन हो चुका तो, तब वह पूछती कि क्या कोई ऐसी आकृति का इसका सम्बन्धी मरा है जब वहां हां में उत्तर आता है तो वह और बातें बतलाती है कई हालतों में पुरुष स्त्रियों ने कहा, कि हां इनका अमुक एक सम्बन्धी मरा है परन्तु कईयों ने न में उत्तर दिया, कि हमारा ऐसा कोई सम्बन्धी नहीं मरा है। कोई लोग प्रसन्न थे परन्तु मुझे इस से सन्तोष नहीं हुआ, ऐसी कई बातें रावल भी बतला दिया करते हैं कुछ का कुछ कहते जाने से भी कई बातें सत्य निकल आती हैं। मैं ने भी एक दिन यह कौतुहल किया था, एक दिन कई जैंटिलमैन तथा लेडियां एकत्र थीं, यहां ऐसी सूरत हो मेरी पगडी इन का ध्यान आकर्षण को पर्याप्त होती है। कुछ बीच में घुसकर दिल्लगी सूझी। मैं ने पास ही बैठी हुई लेडी को कहा कि मैं हस्तरेखा देखना जानता हूं, उसने हाथ मेरे सन्मुख कर दिया छोटी आयू में कभी कभी कोई हाथ की रेखाओं के सम्बन्ध में सुना हुआ था। मैंने उसको बतलाना आरम्भ किया, एक बार तुम पर अत्यन्त भयानक रोगका आक्रमण हुआ था, हां ठीक है, एक बार तुमको जलभय प्राप्त हुआ था। हां, एक पुरूष मुझ को नौका में ले गया था, नौका भंवर में आगई थी उसदिनसे मैं कभी नौका पर नहीं चढी। मैंने कहा तुम्हारी दो बार सगाई हुई प्रतीत होती है। वह तो अत्यन्त चकित रह गई। हां मेरे दो पति हो चुके हैं परन्तु यह तो बतलाओ कि अब मेरे विवाह की आशा है अथवा नहीं? मैंने कहा हां अभी आशा है। अब तो सबका ध्यान हुआ कोई इधरसे कोई उधरसे हाथ मेरे सामने होने लगे। एक पुरुषने कहा कि मेरे विवाह की आशा है वा नहीं, मैंने कहा कि तुम्हारा विवाह तो साफ एक लिखा है मेरा अभिप्राय तो और था परन्तु वह शीघ्र कह उठा कि इस स्त्रीने तो मेरा सत्यनाश कर दिया है अब मैं उसको छोड चुका हूं, अब दूसरा विवाह होगा वा नहीं। वह एक स्त्रीसे अधिक हिला मिला था मैंने उसी की ओर ईशारा करके कहा कि आशा तो है, वह दोनों समझ गये और दोनों प्रसन्न हुए, परन्तु कहां तक यह आडम्बर चले, अंत में मैं ने गर्व दिखाना शुरू किया, केवल कोई कोई बात किसी को कह देता। इसी प्रकार कुछ बातों का ठीक निकल आना कोई सत्यता की युक्ति मेरे लिये न थी अब मेरी इच्छा हुई कि ऐसी किसी स्त्री को सन्मुख मिलना चाहिये। मिस्टर ब्रिटन एक इसी प्रकार कीसमितिके जो स्पिरिच्युऑलिझम सिखती है मन्त्री हैं। इनकी धर्मपत्नी इस कार्य्य में बडी प्रसिद्ध है। मैं ने उन से प्रार्थना की, और उन्हों ने मेरी प्रार्थना को बडे प्रेम और सत्कार पूर्वक स्वीकार किया। मिसिज ब्रटन तथा मैं एक कमरे में बैठे थे। साधारण ऋतु की बात चीत के पश्चात् जो कि यहां का नियमसा है उसने नेत्र थोडे बन्द किये और कहा कि आपके साथ मैं एक छोटेसे लडके को देख रही हूं कोई बारह वर्ष की आयु का प्रतीत होता है। जब कि वह मरा था परन्तु अब वह युवावस्थामें होगया है। वह सदैव आपके अंग संग रहता है। आप जो परलोक सम्बन्धी बातों का शौक रखते हैं इस से वह बहुत प्रसन्न है। उसके मुखकी कान्ति उस की ऐसी है। मैं ने कहा आकृति तो मैं भूल चुका, मेरा लडका आठ वर्षकी आयु में मरा था, उसने कहा ठीक आयु बतलाना कठिन ही है। मस्तिष्क की व्याधि से वह मरा था, मैं ने

कहा ठीक है, प्रथम तो उसके उदर में रोग था, परन्तु मृत्यु समय उसके मस्तिष्क पर प्रभाव हो गया था, हां इसके साथ एक मनुष्य खडा है, सम्भव है आप के पिता हों, इसकी दाढी भरी हुई है मैं ने कहा वह भी मरे थे परन्तु वह किस रोग से मरे थे? इसका उत्तर ठीक नहीं था, फिर उसने कहा एक स्त्री भी उनके साथ खडी है लडका नानी बतलाता है यह स्थूल सी सुन्दर स्त्री है बहुत वृधा प्रतीत नहीं होती, मैं ने कहा वह अधिक स्थूल कभी नहीं थी परन्तु उसकी किस रोग से मृत्यु हुई थी, इसका उत्तर भी ठीक न था, फिर उसने कहा कि यह सब जो, आप काम कर रहे हैं इस से प्रसन्न हैं और आप से बात चीत करना चाहते हैं आप के अन्दर शीघ्र ही प्रेतात्माओं को देखने सुनने की शक्ति आ सकती है इस प्रकार की बातें होती रहीं परन्तु एक महाशय ने मेरे साथ प्रतिज्ञा की थी कि वह ऐसे पुरुष को मिला देंगे जिस के पास एक रूह हिन्दुस्तान से आती है और अपनी भाषा में बातें करती है इस लिये मैं ने शीघ्र जाने की इच्छा प्रकट की, और दो तीन प्रश्न करने चाहे। मैं ने कहा कि प्रेतात्मा का सूक्ष्म शरीर तो हो सकता है परन्तु वस्त्र आप कैसे वर्णन करती हैं। उसने उत्तर दिया, कि रूहें बहुधा अपने आपको ऐसे भेषमें पेश करती हैं जो उनको अधिक रुचिकर था। अथवा जो मरण समय था, और रूपभी बहुधा वही होता है जो मृत्यु के समय था। यह इनके विचार की शक्ति है। मैंने कहा कि हिन्दुस्तान की रूह आपसे अंगरेजी में बात चीत कैसे कर सकती है ? इसका उत्तर उसने यह दिया कि दूसरी रूहें जो समीप होती हैं वह हमारे अनुवादक का काम कर सकती हैं। मैंने कहा आप इस विद्याका क्या लाभ समझती हैं ? और आपपर इसका क्या प्रभाव हुआ है? मिसिज बृट्टन ने कहा कि हमें इससे उत्तम जीवन का विश्वास हो गया है , इस जीवन की अपेक्षा आगामी जीवनको बहुत चाहती हैं। और दूसरों के लिये भी कई वार प्रसन्नता का कारण हुये हैं जो लोग जीवनसे मरण को उत्तम समझते थे उनको जब इनके सम्बन्धियों की बातें बतलाईं तो वह अपनी सर्व सम्मातियों का परिवर्तन करते हुए सहर्ष कार्य में लग गये, मिसिज बृट्टन का धन्यवाद करके बाहिर मिस्टर वर्टन महोदयके समीप आया उन्होंने चित्र निकाल रखेथे जो कि प्रेतोंके चित्र इनके एक साधक ने भी ली हैं, किन्तु एक चित्र साथ भेजता हुं जो बहुत मनोरञ्जक है। मैं शीघ्र जाने के लिये क्षमा मांग कर बाहिर आया और उस महोदय के पास पहुंचा परन्तु शोक है कि वह रुग्ण थे और अपनी देशी रूह की बातें न सुनसका। मिसिज बृट्टन की बातोंसे कुछ विस्मयात्मक अवस्थामें था न इधरका न उधरका, यद्यपि निश्चय यह सारे सम्बन्धी मर चुकें हैं यह इसको ज्ञान तो थाही नहीं परन्तु यदि यह दिखाई देती हैं और वह इनकी बातों को सुनती हैं तो बातें मिथ्या भी क्यों होतीं है। अब तो अन्वेषणेच्छा और भी बढी परन्तु यहां भी यही कठिनता थी कि अगस्त मास अवकास का इनके उत्सव बन्द इनके अभ्यासी या साधक बाहिर। अन्तमें मिस स्टैडके पास पहुंचा मैं ने कहा कि रूहोंसे बातें करा दो और उनके चित्र ले दो, उन्होंने मेरे साथ दोनों स्त्रियोंसे समय नियत करा देने की प्रतिज्ञा की और वास्तवमें ही उनसे समय नियत करके मुझे लिख दिया।

———

छप गया ! छप गया ! ! छप गया !!!

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य।

(लेखक — प्रो० चद्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न कांगडी)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के वेदोपाध्याय श्री. पं. चंद्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य—जगत् का बडा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है। मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजु पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते हैं—

"मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है। मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था। इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशन में समर्थ हो सकें।

श्री मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बडोदा लिखते हैं।

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा। इस ग्रन्थ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है। इस अनुसंधान-युगमें प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए —ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगलवाद कहता हूं। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को आवश्य पढना चाहिए। पृष्ठसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥) रु० है।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य। ५ आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६ आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेगी।

पत्ता— प्रबन्धकर्ता अलंकार गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

स्वाध्याय के ग्रंथ

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन। १)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वधर्म। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥)

[२] देवता-परिचय ग्रंथ माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥=)

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=)

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. ≡)

(४) देवताविचार। मू. ≡)

(५) वैदिक अग्नि विद्या। मू. १॥)

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। मू. १॥)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥)

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। मू. ३)

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।)

(५) योग साधन की तैयारी। मू. १)

(६) योग के आसन मू. २)

(७) सूर्यभेदन व्यायाम। मू. ।=)

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग -)

(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग =)

(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक ≡)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। १॥)

(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-)

(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)

(३) वैदिक सभ्यता। मू. ॥।)

(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥)

(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥)

(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥)

(९) शिव संकल्पका विजय। ॥।)

(१०) वैदिक धर्मकी विषेशता। मू. ॥)

(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)

(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡)

(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्नं। मू. =)

(१४) वेदमें लोहेके कारखाने। मू. ।-)

(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≡)

(१६) वैदिक जलविद्या। मू. =)

(१७) आत्मशक्ति का विकास। मू. ।-)

[७] उपनिषद् ग्रंथ माला।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या। ॥।=)

(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला।

(१) शतपथ बोधामृत। मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;

औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय,
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक ९ क्रमांक ६९ भाद्रपद सं. १९८२ सितंबर स. १९२५

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ हमारी उन्नति ....पृ.२६५
२ वैदिक यज्ञ.. ....२६६
३ संकल्प शक्ति २७२
४ पशुहिंसा निषेधः २८०
५ शास्त्रार्थ सहायता........... "
६ शुद्धि विषयक कार्य २८२
७ आसनका प्रभाव २८४
८ नारदकी नारदी...................२८५
९ प्रेतात्माओंके फोटो २८८
१० आसन २९१
११ सदाचार नियम २९३

पुनर्जन्म.

निश्चय जानिये आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं, और सदा रहेंगे । इसलिये यदि आप को "मृत्यु" के इस भीषण नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह जानना हो कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्माकी क्या गति होती है । पितृयान और देवयान मार्ग क्या हैं। उपनिषदों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कितने ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना चाहते हैं । यदि आप जानना चाहते हैंकि। किस प्रकार आजकल के धुरन्धर पश्चमीय विद्वान आपके प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते जाते हैं । पश्चिमके घोर नास्तिक बाद तथा डार्विन के विकासवाद की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं तो इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

इस ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपक्षियों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा। सृष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकारण को अधुनिक विज्ञानके साथ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है । इस ग्रन्थसे आपको जर्मनी में किये गये घोडों पर नवीन परीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा । ग्रन्थका विषय दार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रक्खा गया है - इस लिये यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है । श्री. स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान् क्या लिखते हैं देखियेः—

"ग्रन्थकर्त्ताने 'पुनर्जन्म' की सचाई को साधारण जन के आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषतः हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की है।"

श्रीयुत डाक्टर गङ्गनाथ झा,वाइस चान्सलर अलाहाबाद युनिवर्सिटी ।

"मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें 'पुनर्जन्म" सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशदरूपमें रखनेमें ग्रन्थकर्ताको पूर्णतया कृतकार्यता हुई है । और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं

(श्री० डॉ०प्रभुदत्त शास्त्री एम०ए०पी एच.डी, प्रेसिडेंन्सी कालेज-कलकत्ता युनिवर्सिटी)

"ग्रथकर्ताकी मूल पुस्तकको मैंने देखा था और प्रशंसा की थी-मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ता ने इसे प्रकाशित किया और हिंदी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है ।मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो । (बा० भगवानदास एम ०ए०बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।)

मैनेजर गोबीला अँण्ड कम्पनी ८।२ होस्टिंग्स स्ट्रीट, कलकता ।

अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।

यजुर्वेद. अ. ३६।२४

हम सौ वर्ष की पूर्ण आयुतक अदीन हों।

आम्हीं शंभर वर्षेंपर्यंत दीन न होतां रहावें.

May we live a life of self reliance for hundred years.
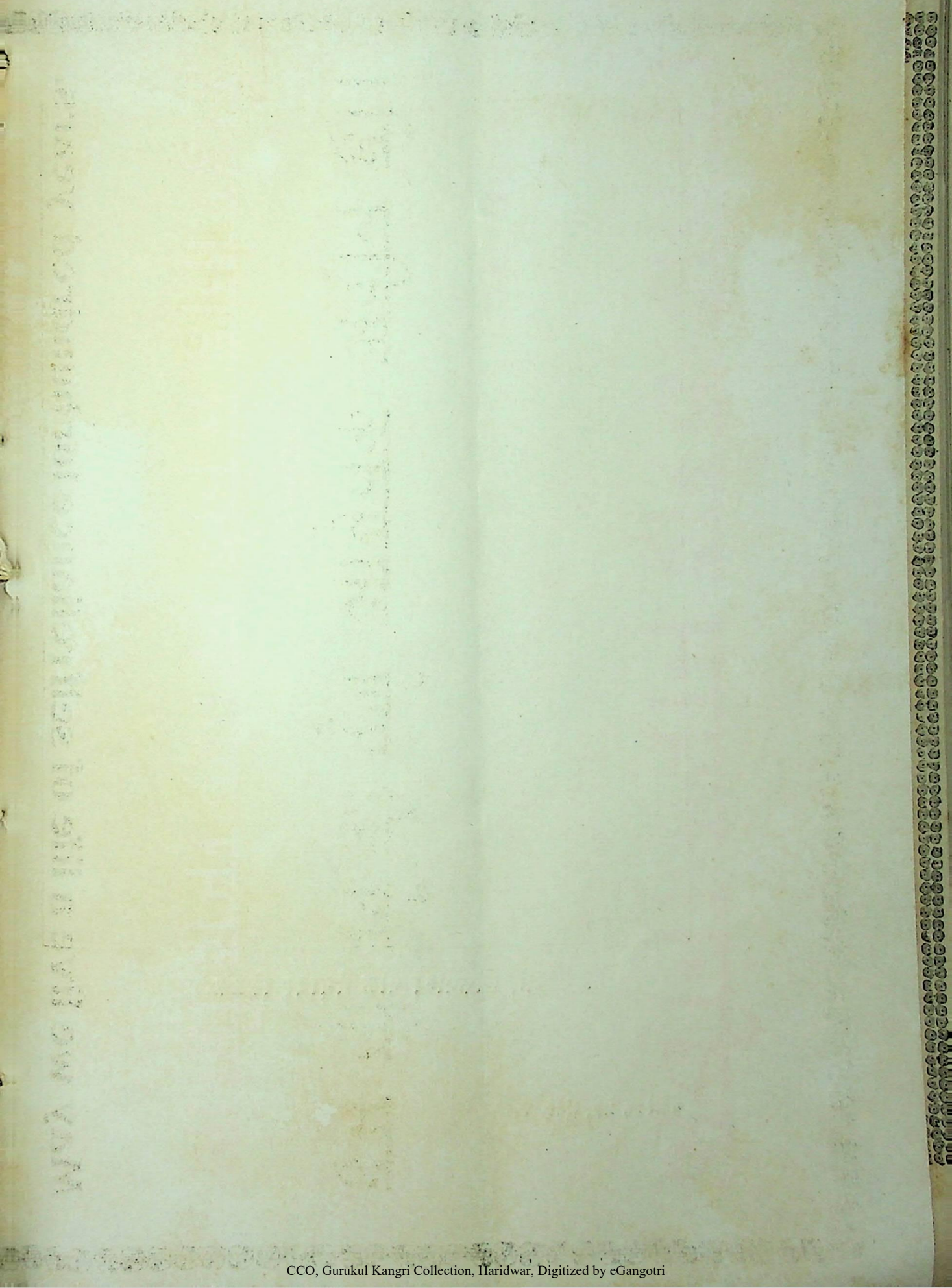
श्री. लोकमान्य बाळ गंगाधर टिळक.

मनोरंजन प्रेस, मुंबई ४.

वर्ष ६
अंक ९
क्रमांक ६९

भाद्रपद
संवत १९८२
सितंबर
सन १९२५

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।
संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)
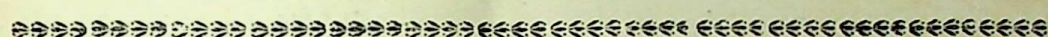
हमारी उन्नति ।

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥
अ. १२।१।३३

हे मातृभूमे ! (यावत्) जबतक (मेदिना) आनंददायक (सूर्येण) सूर्य प्रकाशसे (ते) तेरा विस्तार (अभि वि पश्यामि) चारों ओर विशेष प्रकार देखूंगा, (तावत्) तबतक (उत्तरां उत्तरां समां) अगली अगली आयुमें (मे चक्षुः) मेरी आंख आदि इंद्रियां (मा मेष्ट) क्षीण न हों ।

सूर्य प्रकाश के तेज के साथ तेजस्वी बनकर अपनी मातृभूमीके विस्तारका निरीक्षण करता हुआ मैं दीर्घजीवी बनूं, और आरोग्यसे युक्त होकर, प्रतिदिन मेरी संपूर्ण शक्तियां बढतीं रहें और हम सब सदैव उन्नतिको प्राप्त होते रहें । और कभी क्षिण और दीन न बनें ।

——:——

वैदिकयज्ञ और पशुहिंसा।

(कुछ आवश्यक उपयोगी निर्देश।)

(ले०—श्री. पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालङ्कार)

वैदिक यज्ञों में पशुहिंसाका विधान है वा नहीं इस विषयमें बहुत देरसे विवाद जारी रहा है। स्वयं वैदिक साहित्यमें ऐसे भाग हैं जिनका अभिप्राय पशुहिंसा का समर्थक प्रतीत होता है, जब तक निम्नलिखित आवश्यक निर्देशों को ध्यानमें न रक्खा जाए। इस लेखमें निम्न लिखित निर्देश देना पर्याप्त समझता हूं जो इस विषयमें अवश्य उपयोगी सिद्ध होंगे।

(१) सम्पूर्ण वैदिक और लौकिक साहित्य में यज्ञ का एक प्रसिद्ध पर्यायवाची शब्द "अध्वर" पाया जाता है। निरुक्तकार यास्काचार्यने 'अध्वर' की 'ध्वरति-हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः' यह निरुक्ति बताई है जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि हिंसारहित कर्म ही का नाम अध्वर अथवा यज्ञ है। क्या यह माना जा सकता है कि हमारे पूर्वज आर्य इतने असम्बद्ध प्रलापी थे कि यज्ञको अध्वरनामसे पुकारते हुए वे उसके अन्दर गायों बैलों घोड़ों बकरियों और यहांतक कि पुरुषों कीभी बलियां देना धर्म समझते थे! हमारे विचारमें यह बात नहीं आसकती।

(२)पर इस पर यह कहा जाता है कि साधारण तौर पर अहिंसाको अच्छा मानते हुए भी प्राचीन आर्ययज्ञोंमें हिंसा को वेदविहित होनेसे अहिंसाके तुल्य पुण्य हेतु समझते थे इसी लिये शास्त्रकारोंने कहा है "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"

इसके उत्तरमें हम यह कहना चाहते हैं कि (१) "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" यह किसी प्रामाणिक ग्रंथका वचन नहीं। (२) मनुस्मृतिमें इस आशयके—

या वेदविहिता हिंसा विहिताऽस्मिंश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्यात्।"

इत्यादि श्लोक आये हैं। इस प्रकारके वाक्यों को प्रामाणिक मान लेने परभी उनका इतना ही अभिप्राय है कि वेदमें हिंस्रपशु दुष्ट सर्प इत्यादि और दुष्ट राक्षस शत्रुओंकी हिंसाका जो प्रतिवादन यजु०अ०१३

मयं पशुं मेधमग्ने जुषस्व ....मयं ते शुगृच्छतु(मं० ४७)गौरं ते शुगृच्छतु (मं०४८) गवयं ते शुगृच्छतु (मं.४९) शरभमारण्यमनु ते दिशामि....शरभं ते शुगृच्छतु (मं ०५१)

तथा—'चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहे म्रियस्व मा जीवी ॥अथ० ५।१३।४
सहमूलमिन्द्र वृश्च मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।

इत्यादि मंत्रों में किया गया है वह पापजनक नहीं क्यों कि उसका उद्देश्य जनता की रक्षाका है। यज्ञ का मुख्य तात्पर्य ही जनता के हितसम्पादन का है इसी लिये ब्राह्मणों में कहा है —

"यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते॥"

इसी भाव से ही यजुर्वेद के प्रथम अध्यायके प्रथम ही मन्त्र में यज्ञको 'श्रेष्ठतम कर्म' के नामसे पुकारा गया है। जब सब धर्मशास्त्र तथा योगदर्शनादि-

अहिंसा सत्यमस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः॥
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥
'अहिंसा सत्यास्तेयऽपरिग्रहा यमाः'

के अनुसार अहिंसा को सब से उच्च स्थान देते हुए उसे सब वर्णोंके लिये धर्म बतलाते हैं तब यज्ञ जैसे श्रेष्ठतम कर्म में उसका प्रत्यक्ष उल्लंघन किस प्रकार ठीक माना जा सकता है !

(३) यज्ञ इस शब्द के यौगिकार्थ में भी पशुहिंसा की गन्धतक नहीं। यजधातु के देव-पूजा, संगतिकरण और दान ये तीन अर्थ बताये गये हैं। इन के अन्दर हिंसा का भाव प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किसी रूपसे नहीं पाया जाता इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

(४) मुख्यतः यज्ञ के पर्यायवाची मेधशब्दको 'अजमेध, गोमेध, पुरुष मेध, अश्वमेध' इत्यादि शब्दों में देखकर वैदिकयज्ञों में पशुहिंसा विधान का भ्रम हुआ यह साफ प्रतीत होता है। मेध धातुके अर्थोंमें से एक अर्थ हिंसा है इस में सन्देह नहीं किन्तु केवल वही अर्थ नहीं है। बुद्धिवृद्धि तथा संगमन अथवा एकता उत्पन्न करना और पवित्र करना ऐसा भी उसका अर्थ है। ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं कि हिंसा अर्थ पर ही क्यों आग्रह किया जाए जब कि निम्नलिखित अन्य पुष्ट प्रमाणों तथा सामान्य बुद्धि द्वारा हिंसा अर्थ का ग्रहण सर्वथा असंगत प्रतीत होता है।

क—पुरुषमेध, पुरुषयज्ञ और नृयज्ञ ये तीनों शब्द पर्यायवाचक हैं और मनुस्मृति में नृयज्ञ की व्याख्या

'नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्'

इस प्रकार की गई है जिसका अर्थ यह है कि नृयज्ञ वा नृमेधसे मनुष्यों की यज्ञमें बलि देनेका मतलब नहीं बल्कि उत्तम विद्वानों विशेषतः अतिथियों की पूजासे उसका तात्पर्य है।

ख—गोमेध का ही विधान 'गोमेज' के नामसे पारसियों के धर्मग्रन्थ 'जिन्द अवस्ता' में पाया जाता है वहां हॉग इत्यादि सद विद्वान टीकाकारोंने उसका अर्थ कृषिद्वारा भूमिका सुधार लिया है क्योंकि वैदिक संस्कृत की तरह जिन्द की भाषामें भी गौ-शब्द के गाय और भूमि दोनों अर्थ हैं। वैदिक साहित्य में क्यों न गोमेध शब्दका वही अर्थ स्वीकार किया जाए और क्यों गाय की बलिपर ही कमर कसली जाए यह कुछ समझमें नहीं आता? इस के अतिरिक्त जब कि हम सारे वैदिक साहित्यमें गौको अघ्न्याके नामसे पुकारा हुआ पाते हैं।—

'अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीम्'

'वत्सं जातमिवाघ्न्या' इत्यादि)

और उसके मारनेका

'गां मा हिंसीरदितिं विराजम्' यजु० १३।४३

इत्यादि में स्पष्ट निषेध पाते हैं इतना ही नहीं इतिहास में दिलीप इत्यादि बडे सम्राटोंतक को गोरक्षार्थ प्राणों की आहुति देने के लिये उद्यत पाते हैं तब तो हमें निश्चित तौर पर इसी परिणाम पर पहुंचना पडता है कि गोमेध का अर्थ गोपदवाच्य भूमि इन्द्रिय वाणी इत्यादि को पवित्र करना है नकि गरीब गाय की गर्दन पर छुरी चलाना जिसके महा अनर्थ होने में कोई शंका नहीं हो सकती जैसा कि महाभारत में एकस्थान पर कहा है —

अघ्न्या इति गवां नाम,क एता न्हन्तुमर्हति।
महच्चकाराऽकुशलं, वृषं गामालभेत्तु यः॥

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें —

"यज्ञो वै गौः" "अन्नं वै गौः"

इत्यादि वचनों से भी गोमेधका यथार्थ अभिप्राय पता लग सकता है।

ग.—इसी प्रकार अजमेध, अश्वमेध इत्यादिके भी अन्य अर्थों का ब्राह्मणग्रन्थों तथा महाभारत में स्पष्ट निर्देश किया गया है। उदाहरणार्थ —

अजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः ।
अजसंज्ञानि बीजानि छागन्नो हन्तुमर्हथ ॥ म० भा०अनुशासनपर्व। और शतपथ के —

राष्ट्रं वा अश्वमेधः, वीर्यं वा अश्वः ॥ शत०ब्रा० १३।१।६।७ इत्यादि वचन सुस्पष्ट हैं ।

महाभारत की इसविषयक साक्षि कि पशुहिंसा का वेदमें प्रतिपादन नहीं पर इसे वेद का अर्थ न समझनेवाले नास्तिक धूर्तों ने प्रवृत्त किया है विशेष दर्शनीय है ।

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसमासवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद वेदेषु विद्यते॥
अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः ।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥

इतनी स्पष्ट साक्षिके होते हुए भी वैदिक यज्ञों में हिंसा का विधान है इस बात को कौन बुद्धिमान पुरुष माननेको तैय्यार हो सकता है ?

(५) ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञप्रकरण में आलम्भका बहुत प्रतिपादन है। अग्नीषोमीयं पशुमालभेत इत्यादि वाक्यों की वहां भरमार है।यजु०अ०२४में—भी

'वसन्ताय कपिंजलानालभते, ग्रीष्माय कलविंकान् , वरुणाय चक्रवाकान् , मित्रावरुणाय कपोतान्, भूम्या आखूनालभते प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलभते "

इत्यादि अनेक मंत्रांश पाये जाते हैं । ऐसे वाक्यों में एकदमसे आलंभका अर्थ मारना कर लिया जाता है । पर निम्न लिखित वाक्योंमें 'आलभ' का प्रयोग स्पष्ट प्रमाणित करता है कि उसका सीधा अर्थ स्पर्श करना है ।

(क) कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्ययेन प्राशयेत् । पारस्कर गृ० सू०

यहां आलंभ का अर्थ मारना कोई भी न करेगा। सीधा अर्थ यही है कि बालक के उत्पन्न होनेपर अन्योंके स्पर्शसे पूर्व उसे घृत और शहद चटावे।

(ख) पारस्करगृह्य सूत्र उपनयन प्रकरणमें—

'अथास्य दक्षिणांसमधि हृदयमालभते ।'

ऐसा पाठ है । यहां भी विद्यार्थी के दक्षिण कन्धे और हृदयके पास के प्रदेश को छूनेका विधान है न कि बेचारी गरीब विद्यार्थीके हृदयको फाड डालने का।

(ग) विवाह प्रकरण में भी-

'दक्षिणांसमधि हृदयमालभते'

इन्ही शब्दों द्वारा वरके वधूके स्कन्ध तथा हृदय स्पर्श करनेका विधान है । यहां कौन मूर्ख मारनेका ग्रहण करेगा ?

(घ)—सुश्रुत कल्पस्थान अ० १ में—

'आलभेदसकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान् । '

इस वाक्य में "दीन बार बार हाथ से सिर के बालों का स्पर्श करता है" यही अर्थ स्पष्ट है। मीमांसा दर्शन अ० २ पा० ३ सू० १७ पर सुबोधिनी टीकाकार ने भी—

'वत्सस्य समीपे आनयनार्थं अलंभःस्पर्शो भवति'

इस लेख द्वारा आलम्भका स्पर्शार्थकत्व बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है । इस विषयमें अन्य भी अनेक वाक्य सारे वैदिक और लौकिक साहित्य में से उद्धृत किये जा सकते हैं पर लेख विस्तार के भयसे ऐसा करना उचित नहीं । आशा है मांसलोलुप, वैदिक साहित्य में 'आलभेत' पद देखते ही गरीब जानवरों के गलों पर छुरी चलाने पर कमर न कसलेंगे बल्कि प्यार से उन्हें स्पर्श किया करेंगे । विशसन संज्ञपन को भी मारनेके अर्थ में ग्रहण किया जाता है पर जैसा कि इन के धात्वर्थसे स्पष्ट है इन पदों से उचित शिक्षा देने और ज्ञान दिलानेका अभिप्राय है। उपनिषदों में-

" कामक्रोधलोभादयः पशवः"

ऐसा अनेक स्थानोंपर स्पष्ट लिखा ही है अतः इन आन्तरिक पशुओंका हनन करके मनुष्यको वास्तविकरूपमें मनुष्य बनाया जाए यही यज्ञका तात्पर्य है और इस प्रकार गरीब पशुओंकी नहीं बल्कि पशुभाव की हिंसा का वहां विधान है ऐसा तत्त्वदर्शी लोग मानते हैं।

(६) महाभारत पुराणादि पढ़ने से साफ पता लगता है कि यज्ञ में पशुहिंसा के विषयमें बहुत देरसे विवाद चलता आया है यहांतक कि 'देव' पशु हिंसा के समर्थक बताये गये हैं। पर एक बात सर्वत्र स्पष्ट दिखाई देती है जो मेरे विचार में बडी महत्त्वपूर्ण है वह यह कि ऋषिलोग सब जगह अहिंसात्मक यज्ञ का ही समर्थन करनेवाले रहें हैं। वे एक स्वरसे —

' न हिंसा धर्म उच्यते । '

'नैष धर्मः सतां देवा यत्र बध्येत वै पशुः॥

इत्यादि पवित्र नाद को ही सदा सर्वत्र गुंजाते रहे हैं। यहां तक कि पक्षपातवश वसुमहाराज के अन्याय करने परभी ऋषि निःशंक होकर उसे शाप दे डालते हैं और उसकी अधोगति हो जाती है। किसीभी कथा को देख लीजिये ऋषियों का सर्वत्र अहिंसात्मक पक्ष बताया गया है। यह बात इतनी महत्त्वपूर्ण इसलिये है कि ऋषि साक्षात्कृत धर्मा और मन्त्र-द्रष्टा होते हैं वेद और धर्म के विषय में सबसे अधिक प्रामाणिकता उन्हीं की है इस विषयमें कोई अणुमात्र ही संदेह नहीं कर सकता। '(देव)' विद्वा-नों को अवश्य कहते हैं पर वे सब वेदों के तत्त्वदर्शी होते हैं ऐसा नहीं कह सकते। देवशब्दका प्रयोग पारसियों के धर्मग्रन्थोंमें भी सर्वत्र निन्दात्मक है पर वेदमें भी उसका सब जगह अच्छे ही पुरुषों के विषयमें उपयोग नहीं कहा जा सकता उस के क्रीडा, स्वप्न मद इत्यादि धात्वर्थ लेकर निन्दात्मक प्रयोग संभव है।

' मा शिश्न--देवा अपि गुर्ऋतं नः '

इत्यादि मन्त्र इस सम्बन्धमें देखने योग्य हैं। ऐसी अवस्था में ऋषियों का सर्वत्र एक स्वरसे यज्ञमें पशुहिंसा का निषेध करना और अजमेध इत्यादिकी अन्य व्याख्या महत्त्वपूर्ण है। देवों का मांस गृध्र यह विशेषण भी महाभारत पुराणादि में प्रयुक्त हुआ है वह उनके चारित्रपर अच्छा प्रकाश नहीं डालता। केवल पठित लोगोंकी अपेक्षा तत्त्वदर्शी ऋषियों की बातों और सिद्धान्तों का बहुत अधिक महत्त्व है इससे कौन इन्कार कर सकता है। कई जगह म-न्त्रार्थ के विषय में संशय तो बडे बडे विद्वानों को भी रहे हैं अबभी हैं और बहुत देरतक रहेंगे इससे हम इन्कार नहीं करते।

(७) वेदसंहिताओंकी तरह जिन्द अवस्ता नामक पारासियोंके धर्मग्रन्थ में भी 'यस्न' के नामसे यज्ञों का विधान है। दर्श पौर्णमास गोमेध इत्यादिकी भी थोडे नामभेदसे विधान है पर हिंसा का प्रतिपादन नहीं विशेषतः गौके प्रति तो बहुत ही अधिक आदर भाव दिखाया गया है यह बात भी वैदिक यज्ञोंका वस्तुतः अहिंसात्मक होने का साफ समर्थन करती है।

(८) प्रायः यह माना जाता है कि गौतमबुद्ध के आनेसे पूर्वतक सब यज्ञों में पशुहिंसा को मानते और किया करते थे। और भारतवर्षमें सब से पूर्व हिंसात्मक यज्ञों के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाने वाले श्री गौतमबुद्ध ही हुए हैं। वास्तव में देखा जाए तो यह बात अशुद्ध है। सुत्त निपातके ब्राह्मण धाम्मिक सुत्त नामक ग्रन्थमें गौतमबुद्धके प्राचीन ब्राह्मणों के धर्म के विषयमें प्रश्न किया गया है। उस प्रश्नके

उत्तर में अन्य विषयों की व्याख्या करते हुए गौतम बुध्दने स्पष्ट बताया है कि "प्राचीन ब्राह्मण लोग तथा मुनिलोग अहिंसा व्रतका सदा पालन करते थे। यज्ञ भी वे धान्य तिल बीज इत्यादि से किया करते थे पशुओं की बलि वे न डालते थे। पीछे से इक्ष्वाकुराजा के समय ब्राह्मणों को लोभने आसताया। बहुतसे मन्त्र श्लोक इत्यादि के बनाकर वे राजाके पास गये और बोले कि हम तुम्हें अजमेध, गोमेध, अश्वमेध इत्यादि यज्ञ कराएंगे जिन के करनेसे तुम्हें सीधे स्वर्ग की प्राप्ति होगी। जब गौएं यज्ञवेदिमें काटी गईं तब ३ रोगों के स्थान में १०१ रोग हो गये और संसार में अशान्तिका साम्राज्य होगया" ऐसा बुध्द भगवान् ने कहा है। यज्ञ में पशुहिंसा की परिपाटी कबसे चली इस विषय में बुध्द भगवान् की उस उक्ति को यदि यथार्थ माना जाए तो स्पष्ट पता लगेगा कि वैदिक कालमें यज्ञोंमें पशुहिंसा न की जाती थी पीछेसे स्वार्थ परायण मांसलोलुप घमंडियोंने उसे चलाया। यही बात महाभारतके —

कामात्क्रोधाच्च लोभाच्च, लौल्यमेतत्प्रवर्तितम् ।
अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः ।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥

इत्यादि श्लोकोंमें भी कही गई है। मांसलोलुप इस लिये कहा है कि यज्ञ में इस प्रकार बलि देकर खाने का विधान किया गया है यहांतक कि न खानेवाले के लिये मनुस्मृति इत्यादि के प्रक्षिप्तभागों में —

नियुक्तस्तु यथान्यायं, यो मांसं नात्ति मानवः ।
स प्रेत्य पशुतां याति , संभवानेकविंशतिम् ॥

इत्यादि श्लोकों द्वारा २१ जन्मतक पशुयोनिमें जाना लिख मारा है। इस सब को मांसलोलुप स्वार्थियों की लीला को छोडकर और क्या कहा जा सकता है! इस प्रकार स्वयं गौतमबुध्द के वचनसे भी वस्तुतः प्राचीन कालमें प्रारम्भ में हिंसा न की जाती थी यह बात साफ प्रमाणित होती है ॥

(९) धर्मग्रन्थों को वैद्यक ग्रन्थों के साथ तुलना करके अध्ययन करने से इस विषय पर नया प्रकाश पडता है। हमें वैद्यक ग्रन्थोंके अनुशीलन से पता लगता है कि अश्व ऋषभ, वराह, अज, महिष, मेष, मृग, रुधिर, इत्यादि शब्द क्रमशः अश्वगन्धी, ऋषभ नामक कन्द, वराही कन्द, अजमोद, महिषाक्ष गुग्गुल, चक्रवड वा मेषपर्णी, सहदेवी बूटी, केशर इत्यादि औषधिवनस्पतियों के वाचक भी हैं। उदाहरणार्थ चरक चिकित्सा प्र० अं० १ में 'अजा नामौषधि रजश्रृंगीति विज्ञायते'

इत्यादि अजा के विषयमें लिखा है ऐसे ही अन्योंका औषधिवाचकत्व स्पष्ट प्रमाणोंद्वारा सिध्द किया जा सकता है। इस दृष्टि से विचार करने पर बहुत से मन्त्रों का अर्थ खुल जाता है।

(१०) अन्त में मैं इतना ही यहां निर्देश करना चाहता हूं कि सामान्य बुद्धि द्वारा इस विषयका विचार किया जाए तो एक नादान से नादान बच्चा भी कह देगा, कि यज्ञ जैसे कर्म में हिंसा करके उससे स्वर्गप्राप्ति की आशा सरासर मूर्खता है। धर्मके निर्णय में तर्क भी एक साधन शास्त्रकारोंने स्वीकार किया है।

'आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

इत्यादि मनुस्मृति के श्लोकों में तो शास्त्रानुकूल तर्क को धर्मशास्त्रमें अत्यावश्यक माना गया है उस दृष्टिसे विचार करनेपर हम यज्ञमें पशुहिंसा के सिद्धान्तपर हँसेविना नहीं रह सकते। चार्वाकसम्प्रदाय चाहे कितना भी निन्दित क्यों न हो पर उसका यह तर्क कि —

पशुश्चेन्निहत: स्वर्गं ज्योतिष्टाम गामष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥

अर्थात् यदि ज्योतिष्टोमादिमें मारा हुआ पशु स्वर्गको चला जाता है तो यजमान अपने पिता को यज्ञमें क्यों नहीं मार डालता ताकि उसे भी सीधे स्वर्गकी प्राप्ति हो ? तर्क की दृष्टिसे अशुद्ध नहीं कहा जा सकता ! इस विषयमें विशेष विस्तारसे लिखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं प्रतीत होती ।

इन निर्देशोंको ध्यानमें रखनेसे हमें पता लग सकता है कि वैदिक यज्ञ वस्तुत: पशुहिंसाके समर्थक नहीं हैं। कई कई मन्त्रों के अर्थोंको ठीक तौर पर हम अभी समझने में असमर्थ हैं उनपर विचार करना चाहिये पर इतना तो हमें निश्चय है कि वेदमें परस्पर विरोध नहीं अत: हमें अपने अज्ञान की दशामें यह कहने का अधिकार नहीं कि वेदके अमुक अमुक मन्त्रो में पशुहिंसाका समर्थन है । अन्त में हम वेदके शब्दों में यही प्रार्थना करते हैं कि–

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्तां मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ इन्द्रो विश्वस्य राजति शं नो अस्तु द्विपदे शंचतुष्पदे॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

क्या वेदों में यज्ञों में पशुओं की बलि करना लिखा है?

(लेखक- श्री पुरुषोत्तमलाल मुख्याध्यापक गुरुकुल बेट सोहनी)
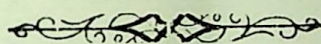
जो मनुष्य मांस खाते हैं और यज्ञों में पशुओं की बलि करना मानते हैं वह इस वेद मन्त्र की ओर दृष्टि डालें-:

" अक्ष्यौ निविध्य हृदयं निविध्य जिह्वां नितृन्द्धि प्रदतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि " ॥ अथर्व५ । २९ । ४

(अक्ष्यौ)दोनों आंखें (निविध्य)छेद डालो(हृदयं) हृदय (निविध्य)छेद डाल(जिह्वां) जीभ(नितृन्द्धि)काट डाल (दतः) दांतको (प्रमृणीहि) तोडदे । (यतमः) जिस किसी (पिशाचः) मांस भोजी पिशाचने (अस्य) इसका (जघास) भक्षण किया है (यविष्ठ) हे महाबलवान (अग्ने) विद्वान पुरुष (तम्) उसको (प्रति) प्रत्यक्ष (शृणीहि) टुकडे करदे ॥ और देखिये:-

"न कि देवा इनीमसि न क्यायोपयामासिमन्त्र श्रुत्यं चरामसि । " सामवेद छ० अ० २ व०७मं२

(देवाः) हम उपासक लोग (न कि इनीमसि) हिंसा न करें (आ)सब ओरसे (नाकि योपयामसि) किसी को अज्ञानयुक्त नकरें । वेद तो कहते हैं कि सब का कल्याण हो, पशु हो या मनुष्य, यथा-

" ॐ इन्द्रो विश्वस्य राजति शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे। " (य० ३६ । ५)

(विश्वस्य) जगत् का (राजति) राजा है, व (नः) हमें और (द्विपदे) दोपाय, मनुष्यादिके लिये(शम्) सुखकारक और (चतुष्पदे) चौपाय, गौ आदिके लिये (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो। जो लाभदायक पशु हैं उनको मारना बडा पाप है । हां हानिकारक जो पशु हैं उनको मारना चाहिये जिससे यश भी प्राप्त हो ।

हमारे ऋषियोंका कथन है कि जो जिसकी हिंसा करता है वही उसी की योनि को प्राप्त होगा और उससे मारा जाएगा और खाया जाएगा । जो जैसा कर्म करता है उस को वैसाही फल प्राप्त होता है । यथा-

"मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः । "

यहां मैं जिसके मांस को खाता हूं वह परलोकमें मुझे भी खायगा ।

वेदों में कहीं नहीं लिखा कि यज्ञों में पशु ओं की बलि करनी चाहिये यह वाममार्गियोंका चलाया हुआ मत है । मांस और मदिरा का सेवन वैदिक काल में ऋषि और मुनियों से कभी भी नहीं किया जाता था ।

हम भी मानते हैं हमारे वेद और शास्त्र कहते हैं कि जो मद्य और मांस का सेवन करते हैं वे राक्षस और दस्यु हैं । हमारे वैदिक काल में ऋषि लोग मांस नहीं खाया करते थे । पुनरपि उस समय मांस मदिरासेवन करनेवाले मनुष्य अवश्य थे और वे राक्षस दस्यु कहलाते थे । परन्तु वेद भगवान प्राणी मात्रको हिंसा से बचनेका उपदेश देता है । ऋषिलोग स्वाभाविकतया अहिंसाप्रिय थे, क्योंकि विना हिंसा-त्याग किये मनुष्य ऋषि नहीं हो सक्ता और ईश्वर को भी कभी प्राप्त नहीं कर सक्ता । प्रिय सज्जनो ! यह वार्त्ता विचारनीय है जिन्हों ने वेदों को पढा है वे तो इस बात को मानते हैं और अनपढ मनुष्य भी जानते हैं कि " अहिंसा परमो धर्मः " यह वैदिक सिद्धान्त है ।

जब वेदों में एक स्थान नहीं सहस्त्रों स्थान लिखा है । "यजमानस्य पशून् पाहि, अविं मा हिंसीः गां मा हिंसीः, एकशफं मा हिंसीः" इत्यादि । अर्थात् यज-मान के पशुओं की रक्षा करो,भेड मत मारो । गाय मत मारो । एकशफ पशुओं को मत मारो । तब संदेह ही कैसे हो सकता है ?

संकल्प शक्तिका विकास ।

परिच्छेद २

(ले०- श्री. उदयभानु भैय्याजी)

पाठ १

सम्+क्लप् से संकल्प शब्द बनता है । सम् का अर्थ है अच्छा और क्लप् का अर्थ है सामर्थ्य । मन की उस कल्पना का नाम संकल्प है, कि जिससे कार्य्य करने के लिए अच्छा सामर्थ्य प्राप्त हो । यह भाव संकल्प पदकी रचनाही से सूचित हो रहा है।

शब्द स्तोम महानिधि में संकल्प का लक्षण कहा है कि "अभीष्ट सिद्धये इदमित्थमेव कार्यमित्येवंरूपे मनसो व्यापारभेदे" अर्थात् "इष्ट वस्तु की सिद्धि के लिए यह इस प्रकार ही करना चाहिए, इस प्रकार का जो व्यापार विशेष है उसे संकल्प कहते हैं वही कोष फिर आगे चलकर लिखता है "कर्मसाधनायाभिलाषवाक्ये" अर्थात् "कर्मकी सिद्धि के लिये दृढ निश्चय का द्योतक जो एक प्रकार का मानस - कथन है उसे संकल्प कहते हैं।"

इंद्रिय और अर्थ का संयोग होने से कल्पना उत्पन्न होती है। कल्पना से अनुभव अर्थात् ज्ञान होता है।

अनुभव+अनुकूलता=इच्छा अर्थात् वह कल्पना जिसका ज्ञान हो चुका है संचित संस्कारों के अनुकूल होने पर इच्छारूपमें परिणित हो जाती है। इच्छा मनकी दृढता पाकर संकल्प बन जाती है। अर्थात ज्ञान, अनुकूलता और दृढतासे संयुक्त कल्पना का नाम संकल्प है। जिस क्रमसे संकल्प मनमें उदय होता है, वह क्रम संकल्पकी उक्त परिभाषा सूचित कर रहा है।

ज्ञान प्रत्येक मनुष्यको कार्य्य आरम्भ करने के प्रथम इस बात को भलीभांति समझ लेना चाहिए कि उसे क्या करना चाहिए? जिस कार्य्य को प्रारंभ करना है और जिस विधिसे वह कार्य किया जायगा, ये दोनों ही उसे इतनी अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि जिस समय उनकी आवश्यक्ता पड़े ठीक उसी समय उसे स्मरण हो जाए।

आप संकल्प तथा अन्यान्य शक्तियां चाहे कितनी भी उन्नत करलें बरन् यदि उद्देश और उसकी विधि नहीं जानते तो इन शक्तियों से कुछ लाभ नहीं पहुंच सक्ता और शनैः शनैः आपकी संकल्प-शक्ति क्षीण होने लगेगी। जिस प्रकार विना निशाने के निश्चित किया हुआ तीर अपने तरकस को खाली करना है; परिश्रम करते हुए भी इष्टफल नहीं प्राप्त करा सक्ता ठीक इसी प्रकार विना उद्देश के संकल्प शक्ति का उपयोग वृथा है।

यदि कोई मनुष्य बड़ा तेज चलनेवाला है और बहुत दूर तक चल सक्ता है, वरन वह चलने के पहिले यह न समझले कि मुझे चलना कहां है और किस मार्ग से मुझे चलना है, चलने के लिए मेरा उद्देश क्या है, और इन बातों के उपर बिना विचार किए ही वह चलना प्रारंभ कर दें तो बातलाइए क्या उसका चलना सार्थक और निष्कंटक होगा। सर्वदा असंभव है।

जितना आपको उद्देश का ज्ञान भली भांति होगा उतनी ही आपकी मानसिक शक्तियां आपको सहायता देंगी। विना किसी विषय के निर्धारित किए ध्यान स्थिर नहीं रहता और विना ध्यान के मानसिक शक्तियों का यथार्थ उपयोग नहीं हो सक्ता।

प्रत्येक जहाज का संचालक अपने जहाज को चलाने के प्रथम अपना उद्देश और मार्ग दोनों निश्चित कर लेता है। यदि वह उस मार्ग का चित्र अपने सन्मुख न रखेगा तो निःसंदेह उसका जहाज न किसी स्थान को ही पहुंचेगा बरन समुद्रकी लहरों द्वारा बहाया जाकर किसी चट्टान इत्यादिक से टकरा कर नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा। ठीक इसी प्रकार मनुष्य इस संसार समुद्र में बहता है। जो मनुष्य अपने उद्देश और उसकी प्राप्ति के मार्ग का ज्ञान नहीं प्राप्त करते वे परिस्थिति रुपी तरङ्गों द्वारा बहाए जाकर आपत्तियोंसे टकराते हुए अकाल में ही प्राण विसर्जन कर देते हैं।

यदि किसी मनुष्य के पास विपुल द्रव्य है और वह बहुत से रुपयों को साथ में रखकर कुछ लेने के लिये निकले बरन यदि वह यह नहीं जाने कि मैं क्या खरीदने जा रहा हूं और कहांसे खरीदूंगा । इस प्रकार के मनुष्य धनी होने पर भी कुछ भी नहीं खरीद सकते । बरन् अमूल्य समय का नाश करते हुए अपना उपहास कराते फिरते हैं । जो मनुष्य अपने उद्देश को निश्चित कर लेते हैं वे शीघ्र ही आकर वांछित वस्तु लेकर उसका उपभोग भी करलेते हैं ।

परमपिता परमेश्वर ने हम सब को पुरुषार्थरूपी द्रव्य दिया है । उद्देश को निश्चितकरें और जो चाहें सो लें ।

मानवी-जीवन कितना कठिन है, उसमें कितनी कितनी आपत्तियां हैं और कितना क्लेश है, प्रत्येकको इस बातका पूर्ण अनुभव है। किसी एकका जीवन नहीं बरन् सम्राट से रंक तक का जीवन निष्कंटक नहीं है। जो चिन्ताएं एक दरिद्री मनुष्य को है यद्यपि उन चिन्ताओं से धनी मुक्त रहते हैं बरन् वेभी दूसरी चिन्ताओं से सताए जाते हैं । इस कारण भावी जीवन को उन्नत बनाने के लिए मनुष्य को अपना उद्देश और विधि दोनों निश्चित कर लेनी चाहिए ।

प्रारंभ में यद्यपि आपको विधि निश्चित करने में बडी कठिनता पडेगी बरन ज्यों ज्यों आप कर्म में आगे बढते जाएंगे त्यों त्यों आपका अनुभव बढता जाएगा और सरल उपाय सूझने लगेंगे ।

पाठ २

अनुकूलता ।

इसी परिच्छेद के पाठ एक में बताया जा चुका है कि इच्छा से संकल्प उत्पन्न होता है । इच्छा सदैव अनुकूल पदार्थों से होती है। जो पदार्थ हमसे प्रतिकूल है उसकी प्राप्ति में कभी इच्छा उत्पन्न नहीं होती । संकल्प शक्ति को उन्नत करने के लिए पहिले इच्छा को उन्नत करना चाहिए । इच्छा की शक्ति पाकर ही संकल्प जीवित रहता है ।

यह बात हमारे दैनिक अनुभव की है कि जब हम कोई कार्य्य करना चाहते हैं और उस कार्य्य को करने के लिए जब हमारे मन में प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है, उस समय माता पिता, तथा अन्य लोगों के रोकने परभी हम उस कार्य्य के करने के लिए अनेकानेक युक्तियां निकाल लेते हैं और उस कार्य्य को समाप्त करलेते हैं । जब हम किसी को नहीं चाहते उस समय उस कार्य्य में अनेकानेक विघ्न बतलाते हैं और सरल कार्य को भी अगम कहते हैं।

इच्छा, संकल्प का प्राण है । जिस संकल्प में जितनी इच्छा की शक्ति उन्नत रहती है उतनी ही शक्ति आपत्ति, कष्ट, त्याग और तपके सहन करने के लिये संकल्प में उन्नत होती है । अर्थात् इच्छा, संकल्प में त्याग, तप और आपत्तियों के सहन करने की शक्ति उत्पन्न करती है। ।

इतिहास इस बातका साक्षी है । वीर सावरकर जिस समय इंग्लेंड में राजद्रोह के मामले में पकडा जा चुका था और हिन्दुस्थान को वापिस आते समय जब फ्रेंच सीमा में जहाज चल रहाथा उस समय वह वीर यह सोचने लगा कि यदि इस समय मेरे प्राण न बचालिए गये तो अब भावी जीवन में देशभक्ति की कोई आशा नहीं है । इसी इच्छा से उत्तेजित होकर वह समुद्र में गिर पडा और प्राण बचाने के लिये तैर कर फ्रेंच सीमामें सामने एक पहाड था उस पर चढ गया । अपने पीछे अंग्रेज सिपाहीयों को आते देख फिर वहां से भी भागा । एक अंग्रेजी शिक्षासे पले हुये नव युवक के अंदर कि जहां विलासिता

और स्वास्थ्य हीनता की चरम सीमा तक पहुंचाने के लिये आवश्यकता ने भी कहीं अधिक साधन रहते हैं, इस प्रकार का अदम्य उत्साह और इतनी शक्ति का उत्पन्न होना क्या सिद्ध करता है। यदि उस मनुष्य, नहीं देव में देशभक्ति की इतनी उत्कट इच्छा नहीं होती तो क्या उसमें इतनी शक्ति उस समय में आसक्ती थी, कदापि नहीं।

स्वराज्य प्राप्ति की इच्छा प्रज्वलित होने के कारण ही महात्मा गांधी ने असह्य कष्ट सहे, लाठियों की मार सही और जेलों की यात्रा सुगम समझी। यदि उनमें इतनी इच्छा नहीं उन्नत होती तो निः संदेह वह महात्मा इतने कष्ट नहीं सहन कर सक्ता था।

इच्छा की शक्ति अर्थात् मनुष्य की आवश्यक्ता बढने के साथ साथ उसमें दूसरी शक्तियां भी बढती हैं, इसको सिद्ध करने के लिये असंख्य उदाहरण दिये जा सक्ते हैं वरन् प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में इस सिद्धांत का अनुभव कर सक्ता है और यही अभीष्ट है।

इच्छा शीघ्रगामी है अर्थात् थोडी देर में परिवर्तित हो जाती है। अभी हम एक वस्तु को चाहते हैं, थोडीसी देर के उपरांत ही हम उसके बलिदान करने में संकोच नहीं करते। एक बालक मिठाई को देखकर उसे खाने की इच्छा प्रगट करता है और यदि उसी समय उसे उसके मित्रों में मिला दिया जाए तो खेलने की इच्छा प्रगट करता है। प्रत्येक मनुष्य इस सिद्धांत का उपयोग करता दिखाई देता है वरन् इसे एक नियम के रूपमें समझने वाले बहुत थोडे हैं। इसका नियम यह है कि जिस समय जो वस्तु हमें अपनी आवश्यक्ताओं को पूर्ण करने वाली प्रतीत हो, कोई ग्रसित कष्ट या भावी कष्ट को निवारण करने वाली प्रतीत हो, सदैव उसी कार्य्य में हमारी इच्छाएं परिवर्तित हो जाती हैं। अभी जिस वस्तु की आप इच्छा कर रहे हैं, उस साधन को जो कि उस वस्तु की इच्छा उत्पन्न कर रहा है बदल दीजिए और दूसरी वस्तु जो अनुकूल हो सामने रख दीजिए। पहिले की इच्छा शांत हो जाएगी और नई वस्तु की इच्छा उत्पन्न हो जाएगी।

एक शराबी मनुष्य की स्त्री अपने पति को जब कभी उसे शराब पीये हुए देख लेती थी, खूब मारा करती थी। एक समय उस स्त्रीने उसे बहुत मारा और यह कबूल करवा लिया कि अब वह भविष्य में कभी शराब नहीं पीयेगा। दूसरे दिन उस स्त्री को घर के लिये कुछ सामग्री मंगवानी थी। उसे यह विश्वास हो गया था कि अब उसका पति कभी शराब नहीं पीयेगा, क्योंकि उसने रात्रि को कसम खाली थी। उसने यह सोचकर अपने पति को बाजार जानेके लिये रुपये दे दिये और कहा कि शराब मत पीना। उस पुरुष ने भी इसबात को स्वीकार कर लिया। रास्ते में वह बडी जल्दी जल्दी चलने लगा और शीघ्र सामान देकर अपनी स्त्री को प्रसन्न करने का विचार करने लगा। आगे जाकर उसने अपने एक मित्र को शराब पीये हुये आता हुआ देखा। यह देखकर उसके मुंहमें पानी छूटने लगा और उसने कहा कि यद्यपि कल मैं शराब छोडने का निश्चय कर चुका हूं वरन् केवल आज तो थोडी पीलूं, भविष्य में न पीयूंगा। इस प्रकार विचार करता जा रहा था कि रास्तेमें उसे एक दुकान दिखी। वह उस दुकान पर गया और सामान ही खरीदनेका निश्चय किया; क्योंकि उसे विचार हुआ कि अगरमैं शराब पीलूंगा तो मेरी स्त्री मुझे बहुत पीटेगी वरन् उस दुकान पर उसे सामान नहीं मिला और फिर वह आगे चला। इस समयभी उसके विचार शराबके विरोध में और सामग्री के पक्ष में

था । आगे चलकर उसे एक कलाली नजर आई कि जहां उसके बहुतसे पुराने मित्र प्याला उडा रहे थे ।इस के मनमें फिर शराबके पक्ष में विचार उत्पन्न होने लगे। स्त्रीके भयसे उसने पीछे देखा बरन् उसकी स्त्री उसे जब नहीं दिखी तब उसने बहुतसे विचार करने के उपरांत यह कहा कि मेरी पीठ शराबका विरोध कराती है और मेरा पेट शराबकी आज्ञा देता है।

अर्थात् भय शराब से रोकता है और आनंद शराब मांगता है । अंतमें उसने कहा कि क्या मेरा पेट मेरी पीठ से अधिक प्यारा नहीं है और ऐसा कह कर वह दुकान के अंदर चला गया । यदि वह दुकान में जाते समय अपनी स्त्री को हाथ में एक दंड लिए हुए आती देख लेता तो निःसंदेह वह पेट के बदले अपनी पीठको श्रेयस्कर समझता एक ही पुरुष को एकही दिन में स्त्रीको देखकर शराब के विरोध में विचार होता है जब शराबी को देखता है तो उसे त्यागके बदले ग्रहण की इच्छा उत्पन्न होती है, दुकानको देखकर सामग्री की इच्छा होती है और फिर शराब देखकर पीने की इच्छा होती है । आशय केवल यह है कि विषयों के बदलने से मनुष्य की इच्छाओंमें किस प्रकार परिवर्तन होता है और किस प्रकार इच्छा मन में पैदा होकर. विजय का मार्ग निष्कंटक कर लेती है । मार्ग में विघ्न आते हैं, भय उत्पन्न होता है, कष्ट और आपत्तियां आती हैं बरन् इच्छा सभी को नष्ट कर देती है।

इच्छाके अन्दर एक और गुण है और वह यह है कि इच्छा इच्छित पदार्थोंका आकर्षण करती है । इच्छा और इच्छित पदार्थ दोनों ही आपस में एक दूसरे को आकर्षण करते हैं। (प्रश्न) यह कहना कि इच्छा और इच्छित पदार्थ आपस में एक दूसरे को आकर्षण करते हैं, मिथ्या है और प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध है, क्या कि यदि यह सिद्धांत सत्य है तो हम राजा और धनी बनना चाहते हैं बरन् हैं तो अभीतक निर्धन हैं। आकर्षण क्रिया तो चुंबक है कि जो लोहे को तुरंत अपनी ओर खींच लेता है लेकिन इच्छा में हमें ऐसी कोई शक्ति नहीं दिखाई देती। परंतु पुरुषार्थ से सब कुछ प्राप्त होता है। (उत्तर) आपने कहा कि "चुंबक लोहे को खींच लेता है" । आपके कथनानुसार सिद्ध होता है कि लोहा और चुंबक दोनों ही पहिले वर्तमान और पृथक पृथक थे और आकर्षण शक्ति के होते हुए भी प्रयत्न के न होने के कारण अलग अलग रहे हम पुरुषार्थ के सिद्धांत का खंडन नहीं करते. जिस प्रकार लोहा और चुंबक दोनों में एक दूसरे की आकर्षण शक्ति होते हुए भी विना प्रयत्न के एक दूसरे से पृथक रहते हैं । ठीक इसी प्रकार ही विना पुरुषार्थ के इच्छा और इच्छित पदार्थ दोनों में आकर्षण शक्ति के होते भी पृथक पृथक रहते हैं ।

मन में जितनी इच्छा उत्कट होगी उतना ही विजयका मार्ग निष्कंटक होगा महात्मा बुद्ध के मन में धर्म की भावना जागृत हो चुकी थी और इसी कारण प्रत्येक रुकावट परास्त हुई और अंत में उसकी इच्छा फलीभूत हुई। परिस्थिति मनुष्यके अनुकूल नहीं उत्पन्न होती बरन मनुष्य परिस्थिति को अपने अनुकूल बना सकता है ।

जिस प्रकार एक क्षुधा से पीडित व्यक्ति रमणीय उद्यान में फिरना नहीं चाहता बरन् अपनी क्षुधाको शांत करने की उत्कट इच्छा रखता है, विना अपनी इच्छा की पूर्ति हुये विश्राम लेनेको तैयार नहीं, जिस प्रकार मृगतृष्णा की आशा में थाका हुआ मृग केवल जल के और कुछ नहीं चाहता, जिस प्रकार विरहसे वियोगित स्त्री अपने प्रियतमकोही चाहती है

अन्य कुछ भी नहीं, ठीक इतनी ही तीव्र इच्छा मनुष्य को अपने अंदर उत्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार की इच्छा उत्पन्न करने पर मनुष्य प्रत्येक वस्तु प्राप्त कर सक्ता है। भगवान् दयानंद, वीर नेपोलियन इत्यादि महान् आत्माओं के जीवनचरित्र देखने से मालूम होता है कि इन्होंने जो कुछ भी किया है उसके लिये इनके अंदर प्रथम इतनी ही उत्कट इच्छा उत्पन्न हो चुकी थी; और इतनी इच्छा के उत्पन्न होने के कारण ही इन महापुरुषों ने कठिन से कठिन कार्य्य से मुंह नहीं मोडा अपि तु विजय प्राप्त की।

तीव्र इच्छा और उसके विषय में इतनी आकर्षण शक्ति है कि चित्त विना विचार के प्रयत्न करता है और फल प्राप्त हो जाता है। साधारण जन इस क्रिया की गतिको न समझने के कारण अनेकानेक काल्पनिक बातें अपनी इच्छा की पूर्ति में साधन समझते हैं। कोई कहता है कि यह वस्तु जो मुझे प्राप्त हुइ है और जिसकी मैं बहुत इच्छा करता था, अकस्मात् मिली है, कोई भाग्य को इसकी प्राप्ति का कारण मानता है, कोई गुप्त शक्तियों का मन गढंत विचार कर कहता है कि किसी देव, भूत, पिशाच, चुडेल या किसी और अन्य शक्ति की कृपा का परिणाम है।

इच्छा—शक्ति और उसके नियमों का विवेचन इतना विस्तृत है कि इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सक्ता है, इस कारण इसका विचार " इच्छा-शक्ति" नामकी अन्य पुस्तक में किया गया है। इच्छुक महोदय इसका पूर्ण विवरण उसमें देख लें। इस पाठ में केवल इतना बतलाया गया है कि संकल्प को अपना कार्य्य पूर्ण करने के लिये दृढेच्छा की अत्यंत आवश्यक्ता है।

पाठ ३

दृढता।

हम अथर्ववेद का एक मंत्र प्रथम परिच्छेद के द्वितीय पाठमें उद्धृत कर आये हैं और उसमें लिखा है कि हमारी संकल्प-शक्ति केवली हो अर्थात् अकेली हो, एक हो। हम यह भली भांति जानते हैं कि एक नदी जो कि एक ही मार्ग से प्रवाहित हो रही हो, उसमें अधिक शक्ति रहती है। यदि वही नदी अनेक मार्गों में प्रवाहित कर दी जाय तो निःसंदेह उसका प्रत्येक मार्ग कमजोर हो जायगा। ठीक इसी प्रकार संकल्प-शक्ति के लिए वेद कहता है कि एक समयमें संकल्प- शक्ति को एक ओर ही प्रवाहित करो।

एक कार्य्य को प्रारंभ करना, उसके पूर्ण करनेके लिये अपनी सब शक्तियों को लगा देना, विजय प्राप्त होने तक, आपत्तियों का कुछ भी विचार न कर, उत्साह से उस कार्य्य को करने का नाम दृढता है। दृढता के लिये वेदने कहा है कि वह दृढता केवली हो। एक समय में अनेक कामों को हाथ में ले लेना असफलता का कारण है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को किसी काम में दृढता रखने के प्रथम उसे केवली कर लेना चाहिए।

केवली का प्रयत्न तुलनात्मक विचार कहाता है। मन में कई इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक इच्छा अपने साथ न्यूनाधिक अंश में अनुकूल एवं सुखद भावों को लिये हुये होती हैं। उनमें से बहुतेक एक दूसरे के प्रतिकूल होती हैं। भिन्न भिन्न समय में अनेक कारणों से इच्छाओं की प्रधानता में भिन्नता आजाती है. जबतक जिस इच्छा की प्रधानता रहती है तबतक उसके अनुकूल कार्य्यों में प्रवृत्ति रहती है; परंतु किसी कारण से जब प्रधानता नष्ट हो जाती है तो प्रवृत्ती के स्थान पर निवृत्ति हो जाती है। इसका

रण फल प्राप्त होने के प्रथम ही हम कार्य्य छोड देते हैं ।

एक पंडित जो कि भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक थे, एक समय नाटक देखने के लिये गये। नाटक अति उत्तम रीति से खेला गया था और सबलोग मुग्ध हो नाटक खेलनेवालों की ओर विशेषतया उसके लेखक की मुक्त कंठसे प्रशंसा करते थे। पंडितजी उस प्रशंसा को सुनकर मन ही मन कहने लगे कि यदि मैं अपनी योग्यता का उपयोग यदि किसी नाटक के लिखने में करता तो निःसंदेह मेरी भी प्रशंसा लोग करते और मुझे बडी सन्मान की दृष्टि से देखते। उस प्रशंसा को सुनकर उनके हृदय में अदम्य उत्साह उत्पन्न हो आया और उन्होंने वहीं एक नाटक लिखने की प्रतिज्ञा की। जब वहां से वे लौटकर घर आये तब रातभर उन्होंने नाटक को किस प्रकार लिखने, नाट्यरसों के विचार और कौनसा नाटक लिखने इत्यादि के विचार में रात्रि व्यतीत की और प्रातःकाल उठते ही उन्होंने नाटक का प्रथमांक लिखना प्रारंभ कर दिया। दोचार दिनमें उनका यह उत्साह शिथिल होगया तथापि उन्होंने लिखना बन्द नहीं किया, वे बराबर लिखते रहे। कुछ दिनोंके पश्चात् जब कि उनका प्रथमांक भी समाप्त न हो पाया था कि उनको एक सभा में जाना पडा। वहां कई ओजस्वी भाषा में व्याख्यान दाता आये थे। सभाका उद्देश था "विधवा-विवाह प्रचार।" करुणा जनक विधवाओं के विषयमें प्रभावशाली व्याख्यान सुनकर पंडित जी के हृदयमें दया उपज आई और पंडित महोदय ने विधवाओं का कष्ट निवृत करने का निश्चय किया। उस विषय पर अनेकानेक लेख लिखने, पुस्तक प्रकाशित करने इत्यादि कार्य्य प्रारंभ किए कि जिनसे प्रचार का काम भली भांति हो सके। पंडित महोदय ने अब अपना समय विधवा विवाह प्रचार के कार्य्यमें लगाना प्रारंभ किया।

कुछ दिनों के पश्चात् पंडित महोदय ने एक सूचना पढी और उसमें शुद्धि—महासभा के अधिवेशन का समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। शहर में नई नई तैय्यारीयां हो रही थीं। जहां देखो वहां महासभा में चलने के विचार सुनाई देते थे। विद्वान लोग व्याख्यान और पुस्तकों की रचना का प्रबंध कर रहे थे। हमारे पंडितजी भी मन में नई नई पुस्तकों की रचना का विचार करने लगे.

उक्त पंडितजी के सदृश कई मनुष्य इस संसार में हैं जो कि वायु की गति सूचित करने वाले यंत्र के समना अपने विचारों में परिवर्तन किया करते हैं.

निःसंदेह पंडितजीने पुरुषार्थ किया वरन सब निष्फल हुआ-सिवाय समय के ह्रास और शक्ति की दुर्गति के परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। पंडित जी ने अपने जीवन के लिये कोई प्रतिभा निश्चित न की थी और न कोई उनका निश्चित उद्देश ही अपने जीवन के लिये था और इसी कारण उनके विचारों में इतनी अदृढता रही.

हम प्रतिमा के विषय में तृतीय परिच्छेद में लिखेंगे और उसके प्रथम हम तुलनात्मक विचार और दृढता के विषयमें कुछ लिखना चाहते हैं।

मनुष्य जबतक तुलनात्मक विचार का आश्रय नहीं लेता तब तक सत्य और असत्य, भले और बूरे का निश्चय नहीं कर सक्ता। तुलनात्मक विचार से ही मनुष्य सरल और सत्य मार्ग का अनुसरण कर सक्ता है। तुलनात्मक विचार के विना दृढता नहीं हो सक्ती और यदि वह निश्चित भी कीगई तथापि अस्थिर रहजाती है।

आज एक मार्ग का अनुसरण किया है कल दूसरा मार्ग उससे सरल और अधिक आनन्दप्रद प्रतीत हुआ कि हमने उसे आज ही छोड दिया । इस कारण तुलनात्मक विचार का अभाव मन में ग्रहण और त्याग का एक व्यापार उत्पन्न कर देता है कि जिस कारण लाभ के बनिस्बत हानि पहुंचती और व्यापारी सदा नुकसान में रहता है । इसलिये दृढता के प्रथम, विचारों की तुलना को प्रथम स्थान दीजिये।

तुलना दो या दो से अधिक पदार्थों या विचारों के होने पर हो सक्ती है । यावत् दो पदार्थों के किसी न किसी गुण की समानता नहीं होती तावत् तुलना नहीं की जा सक्ति ।

तुलना मूलक विचार में मनुष्य को तर्क, बुद्धि एवं पूर्व अनुभव का उपयोग अवश्य करना चाहिये। तुलनात्मक विचार में औरों के विचार या व्यवहार को देख या सुनकर किसी निश्चय पर पहुंचना महा हानिकारक है ।

तर्क का नाम सुनकर कई लोग घबरा उठते हैं । परंतु तर्क से बहुत सहायता मिलती है । किसी सिद्धांत की पुष्टि करना और पुष्ट किये हुए सिद्धांतपर दृढता और बिश्वास रखवाना तर्क का ही कार्य्य है। जो व्यक्ति तर्क की प्रतिष्ठा को नहीं समझते और उसकी सहायता नहीं लेते वे अंधश्रद्धालु होते हैं और श्रद्धा के वास्तविक सिद्धांत को न समझकर उसका उपयोग कदापि नहीं कर सक्ते ।

इस कारण तर्क का जहां उपयोग होता है वहां संकल्प-शक्ति की दृढता करने में वह तर्क मनमें स्मृति, अनुमान तथा अन्य शक्तियों को जागृत कर अपने सिद्धांत की पुष्टि में उपयोग कराता है । कभी कभी आपको बहुधा ऐसे विचार उत्पन्न होंगे कि जिससे आपके मनमें असमंजस के विचार उत्पन्न होवें और आप कहेंगे कि मैं यह काम करूं या नहीं करूं, करना तो चाहिये बरन् संभवतः इसके परिणाम में अनिच्छित पदार्थ की प्राप्ति हो जावे । जिन पदार्थों से मैं डरा करता हूं, उनकी प्राप्ति तो मुझे न हो जावे । केवल तर्क ही इस सबका यथावत् समाधान कर तुलनात्मक विचार की क्रिया पूर्ण कर सक्ता है ।

एक कार्य्य को एक मनुष्य अभी अच्छा समझता है परंतु थोडी देर के उपरांत ही उसे बुरा कहने लगता है । इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न समयमें उसके बुराई और भलाई के पहिचानने के साधन भिन्न भिन्न थे । पहिले साधन जिनसे भले और बुरे की पहिचान की जाती है और जिन्हें हम प्रतिमा कहते हैं निश्चित किये जाते है और उनसे तौल कर मनुष्य अच्छे और बुरे का निर्णय करता है । विना प्रतिमा के तुलनात्मक विचार नहीं हो सक्ता अतएव इसका विशेष विवरण हम अगले परिच्छेदमें करेंगे ।

यज्ञेषु पशुहिंसानिषेधः ।
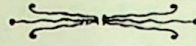
अयि प्रिय महाशय ! नमस्ते ॥

वेदेतिहाससूत्रपुराणादिग्रन्थविचारे पूर्वापरविमर्शपूर्वकं क्रियमाणे मद्यमांसोपयोग आर्षयज्ञेषु नास्ति इति निर्धारयितुं शक्यते॥ यद्यपि—

"मा नो मित्रो वरुण"

(ऋ० १। १६२, १६३ सू०)

इत्यादि मन्त्रेषु पशुवधादिलिंगानि दृश्यन्ते, तथापि—

"यजमानस्य पशून्पाहि। अविं मा हिंसीः।

अनागास्त्वं नः। मा गामनागामदितिं वधिष्ट।"

इत्यादिषु यज्ञस्याहिंसार्थकाध्वरविशेषणदानात्—

"सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं"

इत्यादिरूपेण महाभारतमनुस्मृत्यादिषु धूर्तप्रकल्पितत्वादिकारणोपन्यासाच्च सावकाशा वधादिलिंगाःमन्त्रा निरवकाशनिषेधपरमन्त्रसमानार्थका व्याख्यातव्याहि। वेदेषु परस्पर विरोधस्य केनाप्याचार्येण सर्वथाऽनभ्युपगतत्वात्। किंच अनागसां मूकप्राणिनां हिंसायाः प्रेक्षावतां - वृत्तिबाहिर्भूतत्वात् सुराजनितदोषस्य सर्वजनविदितत्वाच्च सुरामांसरहिता एव यज्ञा भवन्तीति सुदृढं वयं विश्वसिमः ॥

इति भवन्मित्रं

अनन्तोपाध्यायः ॥

"वैदिक धर्म" के पाठकोंको इस संक्षिप्त संस्कृत लेखके लेखक श्री० पं० अनन्तोपाध्यायजीका परिचय कराते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता होती है। वे सेंट अलोशिअस कालेज, मंगलोर में संस्कृतके प्रोफैसर हैं। सारे दक्षिण कर्नाटक प्रांतमें वे शायद एक ही महानुभाव हैं जिन्होंने वैदिक स्वाध्याय में अपने जीवनको लगाया हुआ है। उनकी संमतिको दक्षिण भारतके उदार विचार युक्त सब धुरंधर वैदिक विद्वानों के विचारोंका प्रतिनिधि समझा जा सकता है। उनके लेख का तात्पर्य यह है कि--

"वैदिक यज्ञका तात्पर्य निर्मांस और सुराहीन यज्ञोंमें ही है।"

पाठक इस लेखको महत्त्वकी दृष्टीसे देखें।"

(संपादकीय)

स्वाध्याय के ग्रंथ

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या । नरमेध ।
मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन। १)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या । सर्वमेध ।
" एक ईश्वरकी उपासना । " मू. ॥)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या । शांतिकरण ।
" सच्ची शांतिका सच्चा उपाय ।" मू. ॥)

[२]देवता-परिचय ग्रंथ माला ।

(१) रुद्र देवताका परिचय । मू. ॥=)
(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥=)
(३) ३३ देवताओंका विचार । मू. ≡)
(४) देवताविचार । मू. ≡)
(५) वैदिक अग्नि विद्या । मू. १॥)

[३] योग-साधन-माला ।

(१) संध्योपासना । मू. १॥)
(२) संध्याका अनुष्ठान । मू. ॥)
(३) वैदिक-प्राण-विद्या । मू. १)
(४) ब्रह्मचर्य । मू. १।
(५) योग साधन की तैयारी । मू. १)
(६) योग के आसन मू. २)
(७) सूर्यभेदन व्यायाम । मू. ।=)

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग –)
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग =)
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक ≡)

[५] स्वयं शिक्षक माला ।

(१)वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । १॥)
२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम-निबंध-माला

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।–)
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।)
(३) वैदिक सभ्यता । मू. ॥)
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र । मू. ।)
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥)
(६) वैदिक सर्प-विद्या । मू. ॥)
७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू ॥)
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥
(९) शिव संकल्पका विजय । ॥)
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता ।मू.॥)
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥)
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≡)
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. =)
(१४) वेदमें लोहेके कारखाने।मू०।–)
(१५) वेदमें कृषिविद्या । मू. ≡)
(१६) वैदिक जलविद्या । मू. =)
१७) आत्मशक्ति का विकास । मू. ।–)

[७]उपनिषद् ग्रंथ माला ।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या ।
॥=)

(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला ।

(१) शतपथ बोधामृत । मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;
औंध (जि. सातारा)

ओ३म्

पशुयागशास्त्रार्थ ।

इस समय तक पशुयाग शास्त्रार्थके विषयमें जो सहायता प्राप्त हुई है उसका व्यौरा नीचे दिया है।

यहां इस संबंध में ग्रंथनिर्माण का कार्य हुआ है और छपनेका कार्य पूर्ण होते ही वह ग्रंथ ग्राहकों के पास भेजा जायगा। शीघ्रसे शीघ्र छपनेका कार्य करनेका विचार है, तथापि दो मास तो अवश्य लगेंगे। बहुधा यह ग्रंथ नवंबर के अंतमें छपकर तथा जिल्द बनकर तैयार हो जायगा और दिसंबरमें ग्राहकोंको प्राप्त होगा।

इस ग्रंथ में वेद और ब्राह्मणादि अन्य ग्रंथोंके प्रायः संपूर्ण विशेष वचनों का विचार हुआ है तथा कई अन्यान्य विषय जोकि यज्ञ से संबंधित हैं उन सबका पूर्ण विचार हुआ है।

यज्ञविषय के समझानेके लिये इस पुस्तकमें कई चित्र दिये हैं जिससे यज्ञविषयका तत्त्व पाठकोंके मनमें सुगमतासे उतर सकता है और वैदिक यज्ञका महत्त्व भी ज्ञात हो सकता है।

कई लोग इस समय इस पुस्तक की मांग कर रहे हैं परंतु यह ग्रंथ कितना बडा होगा और छपाईपर व्यय कितना होगा इसका पता इस समय नहीं हुआ है। अंदाजा व्यय हमने दो हजार किया है, परंतु चित्रादि निर्माण पर भी व्यय होनाही है। जिल्द भी अच्छी बनेगी। इसलिये इस समय मूल्य निश्चित नहीं कह सकते। चूंकि इसके व्यय का बहुतसा भाग पाठकों की ओर से आया है, इस कारण इस पुस्तक का मूल्य जितना कम रखा जा सकता है उतना कम रखेंगे और इस कारण सभी ग्राहकोंको यह पुस्तक लेना सुगम हो जायगा।

शास्त्रार्थ की तिथि निश्चयके विषयमें कई पत्र प्रति दिन आरहे हैं। उनको कहना इतनाही है कि जो तिथिनिश्चित होगी उसकी सूचना हरएक को अवश्य दी जायगी और वृत्तपत्र में भी सूचना जरूर दीजायगी। इस विषयमें हमने अपनी ओर से बहुत प्रयत्न किया परंतु इस समय तक कुछ निश्चय नहीं होने पाया।

इसी सप्ताहमें यज्ञकर्ता श्री० पं० धुंडीराज दीक्षित आहिताग्नि यहां औंध में पधारे थे और उनका मुकाम यहां ४।५ दिन था। इतने समय में उन्होंने स्वाध्याय मंडलमें दो तीन वार दर्शन दिया था और स्वाध्याय मंडलके संचालक भी उनको मिलने के लिये उनके स्थानपर गये थे। इतने अवकाशमें शास्त्रार्थके विषयमें कई वार बातचीत हुई, परंतु तिथिनिश्चय नहीं हुआ। श्री० पं० दीक्षित जी चाहते हैं कि शास्त्रार्थ संपूर्ण महाराष्ट्रीय ब्राह्मण वृंदकी ओर से किया जाय न कि अकेले पं० दीक्षित जी कि ओर से। हम इस विषय में पूर्ण सहमत हैं। और यदि ऐसा हुआ तो इस शास्त्रार्थके अंतिमनिश्चय का संबंध संपूर्ण महाराष्ट्रीय ब्राह्मण संध तक पहुंच जायगा। हमारी संमतिमें इस से अधिक अछा कोई विचार नहीं है। आशा है कि हम अब शीघ्रही कुछ नतीजे तक पहुंच जांयगे। अगले मासमें इस विषय में हम अधिक लिखनेकी आशा करते हैं।

अब इस तारीख तक जो सहायता आगई है उसका व्यौरा यह है।

नाम	रकम
म. जगनलाल	७)
म. मोतीभाई लखाभाई	१०)
म. मणिलाल भोगीलाल.	५)
म. मूलाशंकर जगजीवन.	५)
म. अंबालाल प्रभुदास.	५)
म. बापुलाल के. पटेल.	३)
म. नानालाल वर्मा.	२)
श्री. मंत्री आर्य समाज. मंडाले.	१४॥।=)
श्री. विद्यावती जी.	३)
डा. बेगरजी.	५)
श्री. तापीबाई शिवगीरजी.	२)
टी. रामकृष्ण.	२)
श्री. मंत्री आर्य समाज टिमरपुर देहली.	१०)
गुप्तदान	२५)
ठा. सवाई सिंह	५)
पं. सूरज नारायण	२१)
कुं. रघुपति सिंह	१)
श्री. मंगलानन्द जी	१)
श्री. नरदेव शर्मा	१)
म. महताब	१)
डा. नाहर सिंह	१)
ठा. मदन सिंह	१)
सेठ बालचन्द	१)
" सीताराम	१)
" सेठ मनसुखलाल	१)
पं नाथूलाल	१)
पं. घासीलाल	१)
सेठ नाथूलाल किशनलाल	१)
सेठ कस्तूरचन्द	१)
सेठ विनोदीराम	२)
सेठ कुंवरलाल	१)
" प्यारचन्द	१)
पं. विश्वनाथ	१)
सेठ किशनलाल	१)
गुप्तदान	१)
श्री. नारायण जानकीदास	१)
सेठ हरनारायणजी	२)
" नारायण मोतीलाल.	१)
" इन्दरमलजी	१)
" पूसारामजी	१)
पं. विक्रमादित्य	५)
पं. हरिशरणजी	५)
पं. ज्ञानचन्द्र	१)
पं भगवानदास	३)
पं. माताप्रसाद	१)
पं. सत्यदेव	१)
पं. ओंप्रकाश	१)
पं. नोबतराय	१)
म. खुशहाल	=)
पं. ईश्वरचन्द्र	१)
ठा. आर्यन	१)
श्री. गुरुजी रामजी दयाल	१)
म. मक्खन जी	॥)
म. मोहन	।)
म. हरप्रसाद	॥)
म. भूदेव जी	॥)
म. लाला	॥)
म. माडी	।)
म. बुध्दुराम जी	=)
म. कल्लू	।)
म. जीवन	।)
म. उमराव	॥)
म संगत.	=)
म. कल्लू	=)
" देवीराम.	॥)
" सीनईया	=)

म. लक्ष्मण	।)	म. कुडवाजा	॥)
म. राधेलाल	॥)	म. हरिवंशजी	॥।)
म. नत्थू	१)	योग	१७४।
म. सुखानन्द	≈)	पूर्व प्रकाशित	११३०॥≡
म. दुर्गादास	॥)	सर्व योग	१३०४॥≡

क्षात्र तेज।

मैं अकसर यह सोचा करता हूं कि किसी जातिने किसी खास महापुरुष की यादगार में त्यवहार क्यों बनाये हैं, तीर्थ यात्रा का अनुष्ठान क्यों किया है। हिन्दुओं ने श्रीराम और श्रीकृष्ण दो महापुरुषों को इतना प्यारा क्यों बना रक्खा है उनके नाम हमारे जातीय रत्नों में गिने जाते हैं। इन यवहारों का आरम्भ बहुत अर्से से है, इस लिए पता नहीं चताल कि पहले पहले यह किस प्रकार जारी हुये थे। लेकिन खुद समझने की बात है कि इन महापुरुषों में कोई खास गुण थे, और उन्होंने जाति और देश के लिए बहुत बडी बडी खिदमतें की हैं। बरन् लाखों और करोडों आदमी कभी उनकी इतनी इज्जत न करते। श्रीकृष्णचन्द्र का समय तरह तरह के रंगों से धनुष्य की तरह सुहावना दिखाई देता है क्यों कि उनका जीवन बहुत ही लाभदायक था। उन्होंने न सिर्फ दुनियवि, बाल्कि जिस्मानी और दिमागी विकास के जरिये से अपने आप को एक ऊंचे दरजे तक पहुंचाया था, महाभारत और अन्य प्राचीन ग्रन्थों के पढने से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य का धर्म है कि वह अपने शरीरको व्यायाम से, अपनी बुद्धि को स्वाध्याय से और अपनी आत्मा को सदाचार से सदा उन्नति पर चलाये, श्री कृष्ण जी की जीवनी से हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि संसार में रह कर अपने आचरणों को ऐसे बनाना चाहिए जिन्हे मृत्युके बाद भी लोग सदा याद करते रहें, और उनपर चल कर अपना जीवन सार्थक बनायें। परन्तु शोक के साथ लिखना पडता है कि भारतवर्ष के कुछ कार्य प्रचारकों ने बाद में एक अधूरे और घातक और छोटे आदर्श का प्रचार करना आरम्भ कर दिया यानी यह शिक्षा देना आरम्भ कर दिया कि सिर्फ आत्मा की मुक्ति ही अवश्यक है। संसार के सारे काम धंदे छोड कर लोग अभ्यास और ध्यान से ही पूर्ण जीवन लाभ कर सकता है और सिर्फ अध्यात्म विद्या ही काफी है। इस हानिकारक विद्या की शिक्षा के कारण ही अब हम बहुत से अनपढ भाई बेअकल, बेजान, नंगे, दुबले और मूर्ख सन्यासियों और योगियों को आदर्श मानने लगे और महाभारत तथा रामायण के प्राचीन पूर्ण आदर्श को भूल गये हैं। अब हम समझते हैं कि सौंदर्य विद्या,

राजनीतिक ज्ञान और गृहस्थ धर्मके पालन किए विना भी कोई मनुष्य धर्म्मात्मा बन सकता है। अगर वह घर दार त्यागना तयकर ले और इधर उधर अनाथ सांड की तरह फिरता रहे। ऐसे बेलगाम और निकम्मे सांड और साधू भारतवर्ष में बहुत फिरते हैं। अधूरे संन्यास का आदर्श आज कल बहुत बढा चढा है और बिलकुल जाहिल व बेअकल आदमियों को परमहंस माना जाता है। परन्तु भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की जीवनी पर विचार करने से पता लगता है कि प्राचीन सभामें हिन्दु जातिमें यह झूठा आदर्श नहीं था।

श्रीकृष्ण जी कुंवारे और अनपढ संन्यासी नहीं थे। बरन विद्वान, जानकार, सौंदर्यवान, कृपाशील, गृहस्थ थे। उन्हें हर कार्य का ज्ञान था। वह जंगम बनने की कोशिश नहीं करते थे। बल्कि बहुत से गुणों से अपने आपको भूषित करने का यत्न करते थे। वह दुनियाँ से अलग नहीं रहते थे, बाल्कि दुनियाँ के झगडों के अन्दर रह कर उपकारी होने की बात साबित करते थे, वह सिर्फ अहिंसा का नाम नहीं लेते थे, बल्कि शिशुपाल जैसे बदमाश को जान से मार देते थे। वह जीवन का आदर्श सेवा का साधन समझते थे। वे केवल अध्यातम विद्या की बाल कि खाल नहीं निकाला करते थे। बरन् संपूर्ण जीवों के प्रेमी थे, इस प्राचीन जीवन के आदर्श को अब फिर जीवित करने की आवश्यकता है इस लिये भारत के नवयुवकों को इस मार्ग पर चलना चाहिये।

श्रीकृष्ण भगवान की शिक्षा के साथ साथ देश में शस्त्रधर्म का भाव भी नये सिरे से लोगों में पैदा करना चाहिये।यद्यपि हमारा राजनीतिक आन्दोलन कानून की हद के अन्दर रह कर शान्ति के साथ प्रचार करना और स्वराज्य माँगना है ; तो भी देशकी रक्षा के लिए तो हमें सिपाहियों और शूरवीरोंकी आवश्यकता है ही और हमेशा रहेगी। हिन्दुस्तान को अफगाणिस्तान से वा दूसरे दुश्मनों से हर समय भय रहता है इस लिए शस्त्रधर्म की जय बोलनी चाहिये। जिस धर्म में अस्त्र शस्त्र का मान नहीं है वह मानवधर्म दुर्बल हो गया है। वह शीघ्र ही दुःख और गुलामी के नर्क में गिर जायगा।

आज कल सब विचारशील देशभक्त पूंछ रहे हैं कि हिन्दुओं में क्या दोष हैं और उनमें किस बात की कमी है। मेरी राय में हिन्दुओं की अधोगति का एक मात्र कारण यह है कि बहुत सदियों से यह लोग क्षात्रधर्म को भूल गये हैं। पहले तो क्षत्रियों ने सिर्फ अपने लिये क्षत्रिय धर्म का ठेका ले लिया। जिसका फल यह हुआ, शेष अन्य जातियां हथियारों का काम में लाना ही भूल गईं। सब व्यापारी किसान और मजदूर भेंड बकरियों की मानिन्द बन गये। जब आक्रमणकारी मुसलमानों ने थोडे से क्षत्रियों पर आक्रमण करके उन्हें हरा दिया तो फिर सब जातियां उनके आधीन हो गईं। क्योंकि दूसरी जाति के लोग मैदान में मुकाबिला करना जानते ही नहीं थे और न क्षत्रिय धर्म से उनका कोई सम्बन्ध था। इसी तरह बाद में हिन्दुओं की कमजोरी यही रही है अर्थात् इनमें लडने और मरने मारने का मादह कम हो गया। इनमें जो प्रचारक उठता है वह शांति और आहिंसा का राग गाता है। इस लिए शांत स्वभाव वाले लोग हमेशा गुलाम रहते हैं। और उनका शीघ्र नाश हो जाता है क्योंकि यह संसार मर्दोंके लिये है हिजडों के लिये नहीं। भारतवर्ष में हिजडेपणही को धर्म और ज्ञान का आदर्श समझा गया है। बस इस क्षत्रियधर्म की ज्योति को जगाना ही हमारे उद्धार का साधन है। बाकी सब गुण हमारी कौम में हैं इस लिये श्रीकृष्णजी ने जो उपदेश अर्जुनको दिये थे उस पर ध्यान देना

चाहिए। और यह समझना चाहिए कि इस समय हर एक आदमी का फर्ज है कि क्षात्रधर्म का भाव अपने मन में पैदा करें। आज कल ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र सभी को क्षात्रधर्म की सेवा करनी पडेगी। केवल क्षत्रियों ही को नहीं सबको देश की रक्षा के लिये प्राण देने का प्रण करना होगा। और अर्जुनकी तरह लढाई के मैदान में दट कर खडा रहना पडेगा। अर्जुन ने बहुत वादविवाद के बाद यह साबित करना चाहाथा कि क्षात्रधर्म ठीक नहीं है और मरने मारने में कुछ अधर्म जरूर होगा, गोया न्याय और परोपकार की दृष्टि से क्षात्रधर्म जू प्यार दांत वाले जानवर का शोबा मालूम होता है। परन्तु श्री कृष्णचन्द्र ने उन्हें समझाया कि धर्मसंग्राम मनुष्य का पहला कर्तव्य है। न्याय और सत्य के लिये लडना और मरना मारना पाप नहीं बरन् पुण्य है। धर्म संग्राम से ही दुष्ट और जालिमों तथा अत्याचारियों का संहार हो सकता है। और प्रजा की रक्षा की जा सकती है। क्षात्रधर्म के बगर देश में सिर्फ लंगडे, लूले दुर्बल, गुलाम रह जायंगे, इसलिये क्षात्रधर्म की जागृति करना हमारा धर्म है। श्रीकृष्ण जी स्वयं वीर थे और दूसरों को वीर बनने का उपदेश देते थे।

सब शक्तियों का पूर्ण विकास करके शरीर, बुद्धि और आत्मा तीनों की उन्नति करना और क्षात्रधर्म की महिमाको समझना ही आज विपत्ति काल में भी श्रीकृष्णजी का संदेश और उपदेश हैं।

शुद्धि विषयक कार्य की रचना।

(लें. कुँवर चांदकरण शारदा)

मुझे पूर्ण आशा है कि सब: स्थितिका विचार कर आपको अब शुद्धि विषय में कोई भी शंका नहीं रही होगी। अब मैं आपका ध्यान आपके कर्त्तव्य के प्रति आकर्षित करना चाहता हूं। हिन्दू जाति में से गुप्त-रीति से लाखों की तादाद में पुरुष और स्त्रियां मुसलमान और ईसाई बनाई जा रही हैं। भारत का कोई प्रदेश नहीं है जहां ईसाइयों और मुसलमानों के बडे बडे अड्डे न जमे हुये हों। ईसाई पादरियों ने अपने गुप्त कार्य्यों से ग्रामों में अद्भुत तेजी के साथ ईसाइयत फैलादी है और मुसलमानों की चालें तो "दाइये इस्लाम" उर्फ "खतरे के घंटे" से सब जनता को भली भांति विदित हो गई हैं। उसमें मौलाना हसन निजामी साहब लिखते हैं "मैंने दस हजार आदमी इस काम के लिये तय्यार किये हैं। मैं मुसलमानों को

यह घोषणा करने के योग्य समझूंगा कि वह एक वर्ष के प्रयत्न से ५० लाख हिंदुओं को मुसलमान कर लेंगे। मुसलमानों का दावा बिलकुल सच्चा होगा। क्योंकि आर्य्यों में जज्ब करने की शक्ति नहीं है । ” उपरोक्त वाक्य पढकर हिन्दुओं को चाहिये कि इस समय परस्पर का द्वेष छोडकर शुद्धिकार्य्य में लगें और सच्चे दिल से बिछुडे भाइयों को गले लगावें । मैंने गुजरात प्रांत में भाई आनन्दप्रियजी के साथ महीनों भ्रमण कर आंगाखानियों के हथखण्डे देखे हैं ।

वे गांव गांव में “जमातखाने” खोलकर उनमें दलित लोगों को चाय पिलाकर बराबर उन्हें मुसलमान खोजे बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं । उनकी पाठशालायें, बोर्डिंगहाउस, रिक्रीयेशन क्लब आदि सब मुसलमानी धर्म प्रचारार्थ खुले हुए हैं । इसी प्रकार ईसाइयों के ग्राम ग्राम में गिर्जे बने हुये हैं और प्रत्येक गुजरात के “ढेढवाड़े” में मुक्तिफौज का एक एक पादरी रहता है, जो दिन रात अछूतों को ईसाइयत की ओर झुकाता रहता है और उनके बालकों को पढाता रहता है । तबलीग वालों की कान्फ्रेंस जो हाल में ही अजमेर में हुई थी उसके देखनेसे तथा रिपोर्ट पढने से यह स्पष्ट विदित होता है कि मुसलमान किस तेजी के साथ पक्का काम कर रहे हैं । अकेले अजमेर जिले के गांवों में तबलीग वालों की ओर से १८ स्कूल खुले हुये हैं जिनके द्वारा बिछुडे हुये राजपूतों, मेहरातों को पक्का मुसलमान बनाया जा रहा है । और जयपुर, भावलपूर, भोपाल, निजाम हैदराबाद आदि सब ही रियासतों के मुसलमान अफसर खुल्लमखुल्ला न केवल तबलीग वालों की कमेटी को रुपैये देते हैं बल्कि अधिकारी बनकर काम कर रहे हैं । इनके विरुद्ध कुछ हिन्दू रियासतें कायरता से डरती हैं और विशेष कर अलवर व जोधपुर आदि शुद्धि के विरोधी बनकर शुद्धि के प्रचारकों को हिन्दू होते हुये भी अपने राज्य में शुद्धि नहीं करने देते । इस प्रकार करोडों हिंदुओं का धर्म भयानक स्थिति में है और हिंदू जाति पर महान आपत्ति का समय है । ऐसे समय व्याख्यानबाजी और बातें बनाना छोडकर हमें रचनात्मक काम में लग जाना चाहिये ।

(१) मलकाने, मेघ, मेहरात, चीते, कायमखानी, लालखानी, लोहार, हलवाई, जोगी, दासी, गद्दी, अहीर, भाट, संयोगी, तगे, मुसलमान—कायस्थ, मूले जाट, मूले गूजर, मोमनजादे, मेमन, मोमना, सतपंथी, परिणामी, आगाखानी, अलीवाले, मुसलमान, सूद, जैनियों के गन्धर्व, बनजारे आदि अनेक जातियां जो भारत के भिन्न भिन्न विभागों में बसी हुई हैं और अब तक हिन्दू रीतिरिवाज मान रही हैं, उन्हें शीघ्र ही हिन्दू धर्म में सम्मिलित करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये । ताकि प्राचीन आर्य्यधर्म और हिन्दू-सभ्यता की रक्षा हो ।

(२) शुद्ध हुओं के साथ छूतछात आदि के भाव बिलकुल हटा देने चाहियें । सब का खानपान एक साथ एक हि पंक्ति में बैठकर होना चाहिये शुद्ध हुओं को गुण कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कहना चाहिये । और उनके साथ विवाह सम्बन्ध में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिये। बल्कि अपने योग्य लडके लडकियों का उनके योग्य लडके लडकियों के साथ विवाह संबन्ध कर देना चाहिये ।

(३) सदा शुद्ध हुओं के साथ ऐसा प्रेमपूर्ण व्यवहार रखना चाहिये ताकि उसकी हिन्दू-धर्म को छोडकर जाने की इच्छा ही न हो ।

(४) प्रत्येक हिन्दू को मुसलमान ईसाई के सामने सदा वैदिकधर्म का महत्त्व बतलाते रहना चाहिये ।

बाइबिल और कुरान की असंभव तर्कशून्य कथाओं का पवित्र वेदों से मुकाबला कर बाइबिल और कुरान की निःसारता दर्शाते रहना चाहिये और आर्य्य-सभ्यता के गौरव की छाप उनके हृदयों पर लिख देनी चाहिये।

(५) किसी भी हिन्दू को जब कभी कोई विधर्मी मिले और शुद्ध होने की इच्छा प्रकट करे तो विलम्ब न करना चाहिये परन्तु स्वयं ही दो चार आदमी मिलकर हवन कर कर शीघ्र ही शुद्ध करलेना चाहिये।

(६) शुद्धि का विरोध विधर्मी अब भी कर रहे हैं और भविष्य में भी करेंगे परंतु हमें तनिक भी नहीं डरना चाहिये और आपना काम चुप चाप विना समाचारपत्रों में लेख दिये करते चले जाना चाहिये। यदि आपकी नसों में ऋषि मुनियों का रुधिर प्रवाहित हो रहा है और अब भी वैदिक धर्म पर अभिमान है और हिंदू जाति की दुर्दशा देख-कर आपको गैरत आती है और आप अपने सामने अपने पूर्वजों और आर्य्य सभ्यता की मान मर्यादा कायम रखना चाहते हैं और पुनः चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने के सुख-स्वप्न देखते हैं तो उठो और शुद्धि में लगो तब ही शान्ति फैले-गी तब ही सच्ची सफलता प्राप्त होगी और भारत में निश्चय ही दूध और घी की नदियां बहेंगी और वैदिक धर्म की जय होगी। बोलो वैदिक धर्म की जय।

आसन का प्रभाव।

एक सुप्रसिद्ध डाक्टरकी अविवाहित तरुण कुमारिका लिखती है —

ता. १८।४।२५

" महाशय

आपके पत्र में मैंने पढा कि शरीरका स्वास्थ्य (Thyroid gland) निकंठ मणिके आरोग्यपर है, तबसे मैंने सर्वांगासन का अभ्यास प्रारंभ किया। पंद्रह दिनोंके अभ्यास से ही मैं बीस मिनिट तक यह आसन करने लगी।

दस बरस के करीब समय व्यतीत हुआ जबसे कि मेरे सिरके पीछे लाल दादके धब्बे बन गये थे और उन पर कई प्रकारके इलाज किये जानेपर भी वे धब्बे हटते नहीं थे।

पंद्रह दिनोंके सर्वांगासन के अभ्यास से वे धब्बे सूखने लगे और तीन मास के अभ्यास से बिलकुल हटगये! गत तीन मासों में मैंने इस आसन का अभ्यास छोडा हुआ है तथापि वह दाद फिर नहीं उत्पन्न हुई। तथा मेरी पाचन शक्ति जो बचपनसे सुस्त

थीं,इस आसनके अभ्याससे बहुत कुछ सुधर गयी..."

भवदीय...

(संपादकीय) सर्वांगासन के करने से निकंठ मणि का सुधार होकर उक्त कुमारिका के धब्बे हट गये अथवा सर्वांगासन में और कोई गुणधर्म है जिससे कि उक्त लाभ हुआ । इसका विचार सुविज्ञ वैद्यों और डाक्टरोंको करना चाहिये ।

(ये.गर्भमीमांसा)

नारदकी नारदी और नारदी का नारद ।

पुराणों में नारद की कथा सुप्रसिद्ध हैं कि वह अपनी कुछ आयुतक प्रथम पुरुष रहा, पश्चात् स्त्री बना, तत्पश्चात् पुनः पुरुष बना । हमें यह कथा पहले पहले गप्पसी प्रतीत होती थी और अबभी वैसी ही प्रतीत होती है तथापि आजकल कई कथाएं स्त्रियोंके पुरुष बन जानेकी प्रसिद्ध हुई और ज्ञात हुई हैं, इसलिये पूर्व उक्त नारद की कथा में भी कुछ सत्य अंश होने की संभावना प्रतीत होने लगी है ।

स्त्रीका पुरुष बन जानेकी कथा जो वृत्तपत्रोंमें आजकल प्रसिद्ध हुई वह प्रथम यहां देते हैं । --

लडकी से लडका बन गया !

बाम्बे क्रानीकल के कुस्तुन्तुनिया के संवाददाता लिखते हैं कि:—

" पहले हम लोग पढा करते थे कि जिस समय इसलाम की कीर्तिध्वजा फहरा रही थी उस समय हकीमों ने इस बातकी अन्वेषणा की थी कि कुछ मनुष्योंमें स्त्री तथा पुरुषेन्द्रिय दोनों के चिन्ह प्रारम्भिक अवस्था में वर्तमान रहते हैं जो कि किसी कारण से शनैः शनैः बढकर पूर्णतया पुरुषेन्द्रिय के रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं । ठीक इसी प्रकार की आश्चर्य जनक घटना कुस्तुन्तुनियां में भी हुई जिसे पाठक पढ कर हैरान रह जायेंगे । १३ वीं जून की रात्री के समय केवल एक ही विचार "सेमे हनूम" स्त्री के हृदय में था जिसने रात्री भर उसे जागृत रक्खा " क्या कल मैं पुरुष हो जाऊंगी अथवा मेरे भाग्य में स्त्री ही रहना बंधा है " ? सेमे हनूम , २१ वर्ष तक अतालिता के प्रान्तिक नगर की कन्या पाठशाला की प्रधानाध्यापिका थी तथा गत १४ वर्षों से वह पुरुषेन्द्रिय की उन्नतिको अनुभव कर रही थी । वह अपने कुटुम्ब के बार बार कहने पर भी विवाह नहीं करती थी क्यों कि वह अपने को स्त्री नहीं समझती थी इसी संदेह

में वह दिन रात व्यतीत करती थी।

उसकी कक्षा की कुछ सहेलियां इस बात को जान-कर कि वह वास्तव में स्त्री नहीं थी अपि तु किसी रूप से उसमें पुरुषेन्द्रिय का चिन्ह था उसकी काली आखों तथा स्निग्ध चितवन पर मुग्ध हो गई और इस प्रकार से अपना प्रदर्शन करने लगीं कि मानों वह पुरुष थी वह कन्याओं की समस्त प्रेम प्रार्थनाओं को अस्वीकृत कर देती थी। दूसरी ओर नवयुवकों ने भी अनेक प्रलोभन दे कर उस से विवाह करना चाहा किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। अन्त में वह दिन भी आ पहुँचा जब कि वह पुरुष होने के विचार को न दबा सकी। जब दाढी मूंछ आने लगीं उस समय वह अधिक खिन्न हुई। वह खूब अच्छी तरह से दाढी बनाती थीं तथा अधिक पाउडर लगाती थी ताकि स्त्री की भांति सुन्दर चेहरा मालूम पडे। किन्तु वह अपनी आवाज को किस प्रकार बदल सकती थी? उसकी आवाज स्त्रियोंसे विरुद्ध थी तथा प्रत्येक मनुष्य को उसके पुरुषत्व में सन्देह उत्पन्न कर देती थी। इसके पश्चात् स्टेम्बूल जाने के पूर्व ही उसने अपने कुटुम्ब को इस आश्चर्य जनक घटना को बतलाया। इसको सुन कर उपस्थित जन स्तब्ध हो गये। उसकी माता ने डाक्टर से पूछने की सलाह दी थी। पहले भी जिस समय उनका वक्षःस्थल उन्नति नहीं कर रहा था, उस समय उसकी डाक्टरी परीक्षा हुई थी।

परन्तु डाक्टरों ने वक्षःस्थल की उन्नति न होने का कारण शारीरिक निर्बलता बतलाई। किन्तु उसके कौटुम्बिक डाक्टर ने अब परीक्षा करने के पश्चात् यह बतलाया कि यह पुरुष है। किन्तु पुरुषोंकी पवित्र सोसाइटी में प्रवेश करने तथा स्पष्ट रूप से स्त्री सम्बन्धि लज्जाको तिलाञ्जली देनेके पूर्व यह पर्याप्त नहीं था। क्योंकि यह उसकी धारणा थी की पहले एक अच्छे 'मेडिल कमीशन' कि उपस्थिति में उसकी परीक्षा की जाय।

१३ ता० के प्रातः काल उसकी परीक्षा अच्छी तरह की गई। उसने अब पुरुष होने का प्रमाण पत्र प्राप्त किया तथा अस्पताल से पुरुष होकर निकली तथा ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह स्त्रियों की जाति से बाहर हुई। उस ने पुरुषों का बाना धारण किया तथा अपने जीवन में प्रथम बार जुमा नमाज पढने के लिये बडी मसाजिद में गयी या वह (पुरुष) गया?"

इस कथा में स्त्रीका पुरुष बननेका विधान है। जो कई वर्ष स्त्री रही, वही आगे पुरुष रूपमें परिवर्तित होगई, अथवा जिसको कुमारिकावस्थामें डाक्तरोंनेभी स्त्री मान लिया था, उसीको आगे की आयु में डाक्टर लोग पुरुष माननेको सिद्ध हुए!

इस में वास्तविक बात यह है कि बालकपन में स्त्री पुरुष पहचानने के चिन्ह उनके इंद्रियही होते हैं। जब आयु बढ जाती है तब अन्य चिन्ह प्रकट होते हैं। यदि किसी कारण पुरुष बालक को पुरुषेंद्रिय के स्थानपर स्त्रीसमान इंद्रिय रहा, तो उसको बालिका माननेमें किसी को भी संदेह नहीं होगा। परंतु आयु के बढ जाने पर वास्तविक स्वरूप प्रकट होगा ही। इसी नियमानुसार उक्त कथा में जो पहिले स्त्री समझी जाती थी वह वास्तवमें पुरुष ही था, परंतु इंद्रियोंकी विकृतिके कारण प्रारंभिक आयुमें उनके पुरुष होनेकी कल्पना किसी को भी नहीं हुई, पश्चात जब अन्य चिन्ह प्रकट हुए तब लोगोंको संदेह हुआ और परीक्षा करनेके पश्चात् उसका पुरुष होना सिद्ध होगया। ठीक इसी प्रकार यहां औंध में भी एक वृत्तांत हुआ जो कि अब यहां देते हैं।—

औंध में स्त्रीका पुरुष ।

चौदह वर्षके पूर्व सन १९११ में यह घटना हुई। यहां पासही कोरेगांव नामक एक स्थान है वहां श्रीयुत पांडुरंग शास्त्रीजी रहते हैं। उनकी पुत्री गोदावरी, इस का विवाह सन १९०६ में एक स्टेशन के गुड्स क्लार्क के साथ हुआ था ।

महाराष्ट्रमें रिवाज है कि विवाह होते ही श्रावण मासके मंगलवार के दिन मंगलागौरी की पूजा बडे ठाठ से की जाय । इस पद्धतिके अनुसार श्रीमती गोदावरी बाई भी इस दिन सन १९११ के श्रावण मास के मंगलवार में मंगलागौरी की पूजा कर रही थी। इस समय उनकी आयु करीब सोलह वर्षकी थी । गोदावरी बाईजीके साथ मंगलागौरीकी पूजा करनेके लिये कई विवाहित लडकियां बुलाई गई थी और बडा ठाठ चल रहाथा, परंतु गोदावरी बाई का चित्त पूजा में न था, वह अपने अंदर स्त्रीत्व के विरुद्ध कुछ लक्षण अनुभव कर रही थी और इस कारण उनका मन अप्रसन्नसा था ।

स्त्रियों की कोमलता उनमें न थी, छाती पुरुष के समानही थी, कमर भी पुरुषों के समान थी तथा अवाज भी मर्दानी था। तथापि उनका इंद्रिय स्त्रीके समान ही होने के कारण उनके स्त्री होनेमें किसी को संदेह नहीं होता था। उनकी प्रवृत्ति भी पुरुषों के कर्म करनेमें अधिक थी और स्त्रियों के कर्म करना उनको वैसा पसंद नहीं था ।

तथापि आयु के सोलह वर्ष गुजर जानेतक यह गोदावरी बाई अपने आपको स्त्रीही समझती थी । परंतु सोलह वर्ष होनेके पश्चात भी ऋतु प्राप्ति नहीं हुई, रजोदर्शन नहीं हुआ, इसलिये बडी फिक्र में पडी रहती थी । सभी स्त्रियों में यही विषय चलता था ।

श्री.शंकर शास्त्री थिटे वैद्य, नरसोबावाडी में रहते हैं, ये इस गोदावरी बाई के चचा हैं। ये इस गोदावरीबाई को लेकर औंध में आगये । और परिचित डाक्टरों से परीक्षा की गई तो प्रतीत हुआ कि उपर से स्त्री इंद्रियके समान यद्यपि आकृति है तथापि अंदर से पुरुष इंद्रिय की संभावना है। यह विचार स्थिर होते ही उनका आपरेशन करने का निश्चय हुआ ।

यहांसे समीप मिरज नगरमें डा० वालनेस अमेरिकन मिशनरी डाक्टर आपरेशनमें अत्यंत प्रवीण हैं उनके पास जाकर आपरेशन किया गया तो पता लगा कि सचमुक यह पुरुष ही था और उसको स्त्री मानना धोखा ही हुआ था। उक्त डाक्टरनें स्त्री इंद्रियका पर्दा काटकर पुरुष इंद्रिय खुला किया और पहला सूत्र मार्ग बंद करके नवीन मार्ग खोल दिया ।

इस रीतिसे अपनी आयुके सोलहवे वर्ष यह स्त्रीका पुरुष बन गया और अब इसका नाम म. गोविंदराव है । थोडे ही दिन हुए इनकी स्कूलकी परीक्षाएं उत्तीर्ण हुई हैं और अब विवाह करनेकी तैयारी चल रही है !!

स्त्री रूपमें एकवार इनका विवाह हो चुका था, अब पतिरूपमें इसीका दूसरा विवाह होने वाला है !! अस्तु ।

ये दोनों उदाहरण अवयवोंकी विकृतिके हैं । अवयवोंके बदल जानेकी संभावना भी कई हालतों में होती है ऐसा कई लोगोंका कथन है । हम नहीं कह सकते कि वह कहां तक सत्य है । नारद की नारदी बन जाना और पुनः उस स्त्रीका नारद बनना यह संपूर्ण अवयवों के परिवर्तन का उदाहरण है । यह बात पूर्वोक्त दोनों उदाहरणों से सिद्ध नहीं होती । डाक्टरों और वैद्योंको इसकी खोज करनी चाहिये कि कहांतक इतना परिवर्तन संभवनीय है ।

प्रेतात्माओं का फोटो।

(ले०– श्री. पं. ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य)

नियत समय पर मैं मिसिज डीनके पास पहुंचा। उन के कमरे में बैठाया गया, कमरा एक छोटासा सुन्दर सजा हुआ था जिसके अन्दर एक अलमारी परलोक विद्या की पुस्तकों से पूर्ण यह दर्शाती थी कि यहां के निवासियों को पुस्तकों से कितना प्रेम है। कुछ देरके पश्चात् एक वृद्धा स्त्री प्रविष्ट हुई और अत्यन्त प्रेमसे मिली। यही मिसिज डीन थीं। ऋतु आदि की बात चीत के अनन्तर उसने पूछा क्या मिस स्टैड ने आप को सब कुछ बताया था। मैं ने कहा मुझे तो बतलाया गया था कि आपकी फीस २५ शिलिंग (लग भग १८ रुपैये) हैं। और कोई बात हो तो बत लावें। उनहों ने कहा कि मैं गारंटी नहीं करती कि अवश्य आप के चित्र के साथ किसी रूह का चित्र आवेगा, कभी आता है कभी नहीं आता है, मैं ने कहा मेम साहिबा! मुझे यह भी स्वीकार है, परन्तु यह बतलावें कि चित्र आता है और वस्त्रों समेत कैसे आ जाता है! सूक्ष्म शरीर न दिखाई देनेवाला छाया चित्र के शीशा पर कैसे प्रतिबिम्ब दे देता है ? उन्होंने कहा मुझे ज्ञान नहीं परन्तु इतना जानती हुं कि मेरे अन्दर कोई शक्ति है जिसको रूहें लेती हैं और अपनी प्रकृत आकृति प्लेटपर देती हैं और नग्न प्रकट होने की अपेक्षा मानसिक वस्त्रों से युक्त अपने आप को प्रकट करती हैं, इस प्रकार की बातें होती रहीं तब हम फोटो के कमरे में गये, ग्रामो फोन चला दिया, जिसमें एक भजन गायन किया गया, जब वह बन्द हुआ, तब एक प्लेट मेरे हाथों में रख कर उपर अपने हाथ रख कर मिसिज डीन ने प्रार्थना आरम्भ की। अपने धार्मिक विचारों के अनुसार मंगल चाहा और रूहों से कहा कि ऐसी कृपा करें कि हमारे इस मित्र को परलोक विद्याका दृढ निश्चय हो किसी एसी रूहका चित्र हो जिसको यह पहचान सकें इस के पश्चात् प्लेट को कमरों में रख कर मेरा चित्र उतार दिया गया और लग भग दो मिंट के हाथ फैलाये नेत्र बन्द किये कैमरा के पास वह लेडी खडी रही। मुझे चुप चाप रहने को कह दिया था। मेरा विचार है कि चित्र तो शीघ्र लिया गया था शेष बात विश्वास दिलाने के लिये ही थी। तब वह लेडी मुझे अपने साथ डार्क रूम (अन्धेरी कोठरी) में जहां प्लेट डिवलप की जाती है साथ ही ले गई। मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ जब कि मैंने देखा, कि मेरे चित्र के ऊपर एक और स्त्री का चित्र था जिसका एक साधारण सा प्रूफ मैंने ले लिया था और अब साथ भेजा जाता है, इस को मैं पहचान नहीं सकता था, परन्तु यह आवश्यक नहीं कोई भी प्रेतात्मा वहां पर विद्यमान हो सकती है कहिये महाशय जी अब क्या शंका शेष रही परन्तु मेरे हृदय ने साक्षी अभीतक न दी। नाना प्रकार के विचार उठने

लगे और मैंने कहा कि मेरा चित्र एक और लिया जावे परन्तु उसने कहा कि अब वह शक्ति चली गई है। मैं दिन भर की थकी हुई भी हूं, कल प्रातः आप पधारें और दूसरा चित्र भी लिया जावे। अगले दिन प्रातः मैं वहां पहुंच गया। मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्या यह सम्भव नहीं है कि कोई चित्र प्लेट के ऊपर के भाग में पहिले ले रखी जाती हो और फिर दूसरा चित्र उस मनुष्य का लिया जाता हो, मैं ने समझा कि बजाये एक के दो चित्र लिये जावें, विचार मेरा यह था कि एक प्लेट मांग लूंगा और फिर स्वयम् इस को डिवलप कर के देख लूंगा कि इस में कोई चित्र है वा नहीं जब ग्रामोफोन बज चुका और प्रार्थना हो चुकी तो मैं ने प्रार्थना की, कि फीस तो मैं ने पूरी ही देनी है मुझे एक प्लेट बिना चित्र लेने के दी जावे इस से वह क्रुद्ध हुई और कहा यदि मुझ पर विश्वास नहीं तो आप जा सकते हैं। मैंने कहा मेम साहिबा ! मैं जिज्ञासु हूं मुझे अपना पूर्ण विश्वास इस विषय में कर के फिर इस में प्रविष्ट होना है अतः आप को क्रोध न कर के मेरी सन्तुष्टि करना चाहिये परन्तु उसने कहा कि एक वार मैं ने ऐसा किया था तो कोई चित्र उस प्लेट पर पीछे लेकर मुझे बदनाम किया गया था, कि मैं ने प्रथमही चित्र ले रखा था, वार्तालाप के पश्चात् बात यहां ठहरी कि वह एक प्लेटको चित्र लेने के विना डिवलप करें जब वह प्लेट डिवलप की गई तो उस पर कुछ न था अब तो मैं विश्वास करने पर उद्यत था परन्तु एक विचार एकदम ही और उठा। मैं ने कल मेम साहिबा को, एक और चित्र लेने को कहा था सम्भव है एक ही प्लेट तैयार कर के रखी हो, और जब मैं ने दो कहा, तो दो चित्र लेने को उद्यत हो गई, क्यों कि एक पर कोई रूहका चित्र न आया। तब भी कोई बात न थी क्यों कि पहिले वह कह चुकी थी कि मैं गारंटी नहीं करती। तब प्रार्थना के पश्चात् जब वह दूसरी प्लेट कैमरे में रखने लगी, तो मैंने कहा मेम साहिबा, इस प्लेट को भी मेरे चित्र लेने के विना ही डिवैलप किया जावे तब उसने कहा रूहों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह जब आपका चित्र लिया जावे तब ही अपना चित्र दें जब कि प्लेट बन्द है। वह तब भी अपना प्रतिबिम्ब इस पर डाल सकते हैं और यह सम्भव है कि इस शीशा पर कोई चित्र और आगया हो या न आया हो अतः यदि कोई चित्र आगया तो इस से यह नहीं समझना चाहिये कि इस में कोई धोखा था चित्र ठीक किया गया और उस पर मेरे चित्र के विना एक रूह का चित्र विद्यमान था आश्चर्य यह था कि रूह का वह चित्र भी प्लेट के ऊपरले भाग में था जिससे मुझे यह शङ्का नहीं, प्रत्युत विश्वास करने का पूरा अवसर मिला कि इस में सत्यता नहीं प्रत्युत ठीककोई चित्र पहिले प्लेट पर लिया जाता है। मैं ने समझ लिया कि यह विद्या सत्य है वा झूठ, इसका निर्णय तो अभी क्या करूं यह मैं कह सकता हूं कि बडी विख्यात रूहों के चित्र लेने वाली स्त्री ने रूहों का चित्र नहीं लिया है और मैं चकित हूं कि ऐसा क्यों किया जाता है। वह तसवीर पीछे भेजनेकी प्रतिज्ञा करके अभी तक मेम साहिबा ने मुझे नहीं भेजी नहीं तो यहां देता लेडी साहिबाकी फीस दे कर एक —

रूहों (प्रेतात्माओं) से बात चीत

करने की धुन में मिसज कूपर के पास मैं पहुंचा जो कि मिस स्टेड ने बताया था कि वह केवल एक स्त्री है जिसकी संगत में बैठ जाने से इधर उधर से

रूहें बोलना आरम्भ कर देती हैं। वह चाहे किसी स बात चीतकर रही हों परन्तु इसकी उपस्थिति रूहों के अन्दर प्राकृतिक शक्ति शब्द की उत्पन्न करती है। मिस स्टैड ने कहा कि अपने पिता के मरने के १४दिन पश्चात् मैं नें स्वयम् उनसे बात चीत की भी मिसेज कूंपर एक सुन्दर और चतुर समझदार लेडी है मुझे एक कमरा में ले गई, यहां चारों ओर श्याम परदे कर के सर्वथा अन्धेरा किया गया, हाथ पसारा दिखाई नहीं देता था बाजेकी मशीन चलाई गई, दो कुरसियों पर हम पास पास बैठ गये, मेरा एक हाथ मिसिज कूंपर ने अपने हाथ में ले लिया, और भजन प्रार्थना आरम्भ की, थोडी देर के पश्चात् मिसिज कूंपर ने कहा कि मिस बर्टन एक रूह आई है वह बात चीत करेगी, रूह का शब्द क्या था जैसे कोई पुरुष वा स्त्री लम्बे तूते में से शब्द निकाल रहा हो और दो तूते अन्धेरा करने से पहिले एक ओर इस ने रख दिये थे और बतलाया था कि प्रेतात्माएं इसी के अन्दर से बात चीत करती हैं। मूंह फुलाकर मोटे शब्द करके भी जैसे कोईभी पुरुष वा स्त्री बात करे, इसी प्रकार का शब्द था कुछ अपने सम्बन्ध में बतलाये जाने के अनन्तर जिससे मुझे कोई सम्बन्ध नहीं मैं ने श्रीमती प्रेतात्मा को कहा कि हमारे हां कि कोई रूह मंगावो शब्द आया पञ्जाब! पञ्जाब !। लेडी साब साथ कहती जाती थी कि पंजाब से रूह आई है, धन्यवाद करो, परन्तु जब लेडी बोलती थी तब रूह बात चीत न करती थी मैंने पञ्जाबी में बात की कि जब तुम पंजाब से आई हो पञ्जाबी बोलो। परंतु रूह साहिबा कुछ बोलती तो रही परन्तु मुझ को समझ नहीं आया, जान पडता है कि कुछ शब्द लेडी साहिबा को हिन्दुस्तानी के स्मरण थे। तब मैंने इंगलिश में कहा, मेरे पिता पण्डित भूलचन्द जी को जानती हो ? हां ! वह किस प्रकार मरेथे ? चोटसे ! यह ठीक बात थी, फिर मैंने कहा कि मेरी माताकी किस प्रकार मृत्यु हुई थी, कहा कैंसर फोड़े से, यह ठीक न था, मैंने कुछ और पूछना चाहा तो शब्द आया कि पहिली बार अधिक परीक्षामें न डालो, यह शब्द रूह का था, तब लेडी साहिबाने यह कहा कि रूह कहती है कि पहिली बार इतनी परीक्षा में नहीं डालना चाहिये। मैं समझ गया कि यह क्या हो रही है। फिर एका एक एक और जरासा प्रकाश प्रकट हुआ, देखो, देखो ! ! आत्मिक प्रकाश ! वह देखो बढ रहा है ! वह देखो रूह अपना मुख दिखलाना चाहती है, नहीं इसने केवल अपना हाथ ही प्राकृतिक क्या है, वह उंगलियां स्पष्ट दिखाई देती हैं, क्या तुमने देखी हैं ! मैंने कहा हां देखी हैं ! वह प्रकाश मेरे कितने दूर हट गया, फिर एक ओर मेरे मुखके पास आता हुआ प्रतीत हुआ मैं ने हृदय में विचारा कब तक हाथ पाँव न हलाऊंगा अवसर हाथ से जाता है, मैंने शीघ्र प्रकाश पर जो कि मेरे मुखपर पहुंच गया था हाथ मारा तो वह श्रीमती लेडी साहिबा का हाथ ही प्रतीत हुआ, क्योंकि झट उन्होने परेकर लिया, और तत्क्षण जोशसे कहा कि आपने हाथ क्यों हिलाया यह तो तुमहारी माताने अपने आप को प्रकट किया है, रूहें हानि नहीं पहुचातीं, वह कोमल स्पर्श करती हैं। बोलने वाला लम्बा तूता एकवार रखते हुए मुझे स्पर्श कर गई तब भी झट कहा कि यह तुमहारी माताने आपको स्पर्श किया है, मैंने हाथ को इधर उधर लम्बे तूते पर भी मारा, परन्तु मिला नहीं कुछ देर के पश्चात वह गिरा लेडी साहीबाने कहा कि रूह फैंक गई है अब वह चली गई है प्रकाश किया गया और मैं लेडी साहिबाकी फीस १।। पौंड प्रदान करके अत्यन्त शोक में वापीस आया, क्योंकि यहां भी मुझे सत्यता दिखाई न दी। मैंने बहुतेरा समय

और रुपया व्यय किया बहुत प्रयत्न किया परन्तु मुझे कुछ न मिला। शीघ्र प्रत्येक बात पर विश्वास करने वाले-सम्भव हैं, शीघ्र निश्चय कर लेते होंगे परन्तु मैं सदैव से बात की जडतक पहुंचने का प्रयत्न करता हूं,मैं ने धोखाही देखा अतः कोई महाशय मुझे ऐसे पुरुष बतलावें जो कि ठीक मेरी बात चीत रूहों से करा सकें या उनके दर्शन करावें, तो मैं उनका कृतज्ञ हुंगा मैं विस्मित हुं कि यह संसार में हो क्या रहा है, मैं इंग्लैंड से इसके एक दिन पीछे चल पडा था जर्मनी पहुंचकर मैं ने मिस स्टैड को पत्र लिखा कि फोटो और बात चीत दोनो बातें गलत हैं और मैं इसको साबित कर सकता हूं यदि न करूं तो ३०० पौंड हरजाना दूंगा और यदि उनका पोल खोल दूं तो वह मुझे केवल २०० पौंड दे दें यह शर्त स्वीकार हो तो मैं फिर आने को तय्यार हुं आप उनसे बात चीत करके इटली में वेनस शहर के पतेपर पत्र मुझे डालदो परन्तु वहां पहुंच कर जहां शेष मेरे सब पत्र मिल गये श्रीमती मिस स्टैड का कोई पत्र न मिला। शोक है कि २०० पौंड न मिले पढने वालों से कोई जावें तो वह बेशक ले लें।
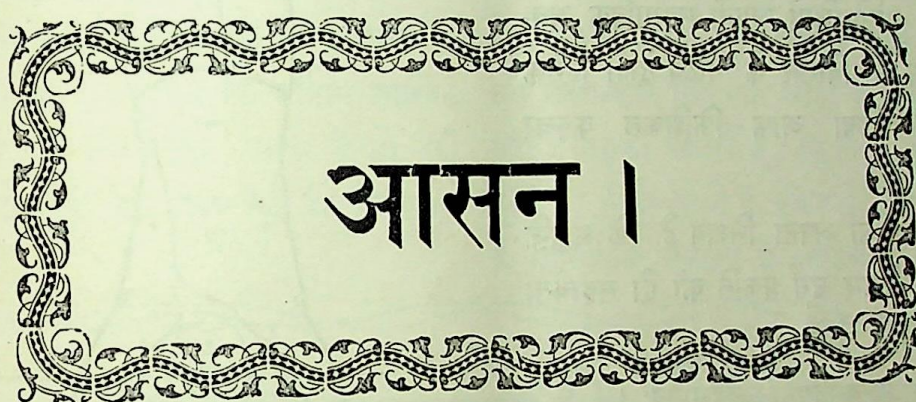
आसन।

(ले०-श्री-पं. कविराज अत्रिदेवजी गुप्त)

(पूर्व अंकसे समाप्त)

व्यायामसे जैसा कि अखाडों के मल्ल किया करते हैं - कि उससे यह बात स्पष्ट है उनका शरीर बहुत पुष्ट हो जाता है मांस पेशियों खूब उभर आती हैं परन्तु उन मांस पेशियों में संकोचशक्ति घटजाती है अर्थात् वह अब एक अवस्थामें ही रहने लगती है वह अवस्था उनकी अस्वाभाविक होती है- इसके बाद यदि वह और व्यायाम करते हैं अति-विकास हो जाता है - इससे मांस पेशियों को आराम नहीं मिलता और इसकी वही नुकसान जो कि एक बैलसे अधिक काम लेनेसे होते है, हो जाते हैं - जैसे यक्ष्मा "साहासिको यक्ष्मा" इसी प्रकार दूसरा पहलू जोकि बिलकूल व्यायाम नहीं करते उनमेंसे विकाश शक्तिघट जाती है-उनमें संकोच ही रहता है- वह भी हानिकारक है-उससे मांसपेशी की स्वाभाविक विकाशशक्तिभी घट जाती है जैसा कि किसी अंगसे बहुत देरतक काम न लेनेपर शक्तिक्षय हो जाता है—

इसलिये वह आवश्यक है कि व्यायाम ऐसा होना चाहियें कि जिसमें प्रकृतिके नियमसेही स्वभावतः ही अंगोंमें संकोच विकाश नियमित रीतिसे होता है- मांस पेशीयोंमें कठोरताकी अपेक्षा लचक ही होना उत्तम है- यदि लचक-के साथ कठोरता हो और भी उत्तम है।

बच्चेमें लचक वृद्धके अपेक्षा अधिक है वह दीर्घायु होता है - यही कारण है कि यदि कठोरमांस वाले को बीमारी होजावे तो वह कष्टसाध्य होती है, परन्तु लचकवाले की सुखसाध्य होती है इसके लिये वाग्भट का सूत्रस्थान देखना चाहिये -

इसलिये स्वाभाविक व्यायाम ही करना उत्तम है जिसमें कि कोई मांसपेशियां अपनी स्वाभाविक अवस्थामें ही रहें इस के विस्तार के लिये देखो (मैकफाडन एन्सायक्लोपीडिया आफ फिझिकल कल्चर भाग४ और ५।)

इस लिये लेखक का अपना निश्चय है कि प्रकृति से उत्पन्न सब विकार उस प्रकृति की ही सहायता से अच्छे हो सकते हैं चूंकि

"जायन्ते हेतुवैषम्याद्विषमा देहधातवः।
हेतुसाम्याच्छमस्तेषां स्वभावोपरमः सदा॥"

आत्रेय.

हेतुके विषम होनेसे देह धातु विषम होकर विकार करते हैं उन के साम्य होने से रोग शान्त हो जाता है चूंकि अपनी पूर्वावस्थामें आना ही सब का स्वभाव है इस लिये प्रकृति का ही अनुसरण करना चाहिये।

आसन-यह एक ऐसी व्यायाम है जो कि प्रकृति के साथ ही ज्यादा मिलती है जिसमें कि शरीर के किसी भी अंगभी अनुचित दबाव या भार नहीं पडता

"स्थिरसुखमासनम्"

पातंजल योगसूत्र।

अपि तु भिन्न भिन्न आसनों में भिन्न भिन्न अंगोंपर विशेष प्रभाव पडकर उनमें सौष्ठव निरोगता पैदा होती हैं- आसन वही है जिस से सुगमतासे देरतक बैठ सकें

आसन और वात संस्थान—
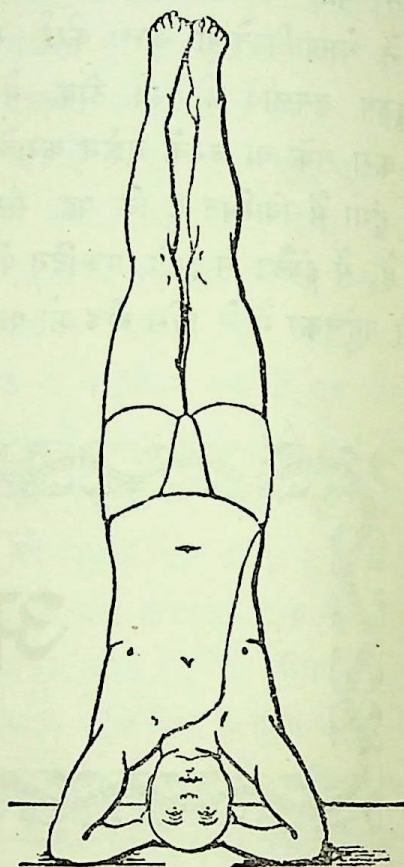
उपरोक्त पंक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि वातसंस्थान हमारे शरीरको धारण करता है- उस को नियमित और नियंत्रित करने के लिये एवं मिथ्याहार विहार से उत्पन्न विकारों के शमन के लिये किसी एक उपाय की आवश्यकता है वह उपाय प्रकृति के अनुसार जितना स्वाभाविक हो उतना ही उत्तम है। क्षयरोग की चिकित्सामें हम प्रकृतिके अनुसार ही चिकित्सा करते हैं जैसे मोती शंख वंशलोचन का देना खुली वायु और धूपका सेवन इत्यादि। इसलिये आसन और उसके सहायक आपदेवता की आवश्यकता है - जैसा कि मैं अपने आसनों के वर्णन में साफ करूंगा-

वातसंस्थान को अपने स्वाभाविक अवस्थामें आसनोंसे अतिरिक्त कोई और व्यायाम नहीं कर सकती। जिस प्रकार की नींद का न आने का "शीर्षासन" के द्वारा, स्वप्नदोष का "सुखासन" जानुपादासन से चला जाना सिद्ध है।

चिकित्सा सूत्राणि —

" आभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम्
प्रयोगे शमयेद् व्याधीनन्योन्यमुदीरयेत् ।
नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ।
या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते।
दोषधातुमलानां या साम्यकृत्सैव रोगहृत् ।

जिस क्रियासे शरीरके विषम धातु साम्यावस्थामें हो जावें वही चिकित्सा है। जिससे कि वर्तमान उपस्थित रोग नष्ट हो जावें और दूसरा उत्पन्न न हो वही चिकित्सा है जो दूसरों को उत्पन्न करे वह चिकित्सा नहीं.

वातपित्त, कफ और सप्त धातु साम्यावस्थामें रखना ही निरोगता है विषमावस्थामें होना ही विकार या रोग है इसलिये —

"अच्छा होने की अपेक्षा रोगी न होना उत्तम है" और यह बात आसन व्यायाम से सुगमतासे सिद्ध हो सकती- इसलिये यही व्यायाम-- अथवा दूसरे शब्दोंमें शारीरिक व्यायाम करना उत्तम है-- इससे ऋषि आत्रेय का यह सूत्र भी —

"त्रयो विष्टम्भाः शरीरस्य आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति" अक्षरशः चरितार्थ होता है इस लिये इन्हीं तीनों वस्तुओंको उत्तम रूपमें रखना ही आरोग्यता है और इस आरोग्यता का एक मुख्य साधन आसन व्यायाम है—जिसका भली प्रकार आहार जीर्ण हो जाता है उसे भलीप्रकार नींद स्वप्न आती है जिसकी नींद अच्छी है उसका ब्रह्मचर्य है। यह तीनों अपने आप एक दूसरे पर निर्भर करते हैं एकेक विकार होनेसे दूसरे में भी विकार आजाता है इसलिये इनकी रक्षा करें।

सदाचारसम्बन्धी नियम ।

(ले०— श्री० पं०युधिष्ठिरजी आचार्य गु० कु० हरियाना)

१ महर्षि दयानन्द महाराज प्रोक्त व्यवहारभानु की आज्ञानुसार निम्नलिखित दोषोंपर यथापराध कठिन दण्ड दिया जायेगा ।

(१) बुरी चेष्टा करना।
(२) मलिनता ।
(३) मलिनवस्त्र धारण करना ।
(४) अनुचित विधि से बैठना ।
(५) विपरीताचरणकरना ।
(६) निन्दा ।
(७) ईर्ष्या ।
(८) द्रोह ।
(९) व्यर्थ विवाद ।
(१०) लडाई बखेडा करना ।

(११) चुगली करना
(१२) किसीपर मिथ्यादोष लगाना
(१३) चोरी करना
(१४) जारी करना
(१५) अनभ्यास
(१६) आलस्य
(१७) अतिनिद्रा
(१८) अति जागरण
(१९) अतिभोजन
(२०) व्यर्थ खेलना
(२१) इधर उधर अर सर मारना
(२२) अनुचित शब्दस्पर्शरूपादि विषयोंका सेवन
(२३) बुरे व्यवहारोंकी कथा करना वा सुनना
(२४) दुष्टों के संग बैठना॥

२— संस्कार विधिमें वर्णित २२ कर्मसूत्रों द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मचारियोंके निम्नलिखित कर्तव्योंका विधिपूर्वक परिपालन करनेमें न्यूनता होने पर भी यथापराध कठिन दण्ड दिया जायेगा। (१) विधिपूर्वक आचमन करना (२) दिनमें शयन न करना (३) आचार्य तथा अध्यापकों के आधीन रहना (४) क्रोध न करना (५) सत्यका परिपालन करना (६) मैथुनका परित्याग करना (७) बुरे गीतों को गाने और बजानेका परित्याग करना (८) अति स्नान न करना। (९) लोभ और भय का परित्याग करना (१०) मोह तथा शोक कभी न करना (११) रात्रिके चौथे प्रहर में जागकर शौच, व्यायाम, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासना, ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना और योगाभ्यास का आचरण करना (१२) सात्विक भोजन करना (१३) ग्राममें निवास न करना (१४) जूते और छत्र को धारण न करना (१५) शरीरके किसी अंगको व्यर्थ स्पर्श न करना (१६) अति खट्टा (इमली आदि), अति तीखा (लाल मिरचादि), अति कषैला, अतिक्षार, अतिलवण और रेचक द्रव्यों का सेवन न करना (१७) विद्या ग्रहण में यत्नशील होना (१८) मितभाषी होना (१९) सभ्यताका व्यवहार करना (२०) मेखला और दण्ड धारण करना (२१) अग्निहोत्र का अनुष्ठान नियमपूर्वक करना (२२) आचार्य जी तथा गुरुकुलके अन्य माननीय कार्यकर्ताओंको प्रातः सायं नमस्कार करना।

३—प्रत्येक अध्यापक महानुभाव सब ब्रह्मचारियोंके गुण दोषों को एक पृथक् पंजिका में प्रतिदिन लिखा करेंगे, जिस का नाम "बृहद् शुक्ल कृष्ण चरित्र पुस्तक" होगा। दोषों के अनुसार दण्ड तथा गुणों के अनुसार साधुवाद भी अवश्य दिया जावेगा। सोलह वर्षसे न्यून आयुवालोंको ताडन द्वारा और उससे उपरकी आयुवालों को प्रायश्चित्त के द्वारा (अभोजन, अल्पभोजन, अल्पनिद्रा, मौन तथा जप इत्यादि) दण्ड दिया जावेगा।

४—प्रत्येक ब्रह्मचारीके नामकी शुक्ल कृष्णजन्मचरित्र पुस्तक भी बनाई जायेगी। जिसमें उसीके छांट कर (बृहत पुस्तकसे) लिखा जावेगा। इस कार्य को करनेके लिये एक विश्वास पात्र लेखक नियत किया जावेगा।

५—गुरुकुल के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता का यह कर्तव्य होगा, कि वह अध्यापक आदि कार्यकर्ताओंके गुणदोषों को भी अवश्य लिखें। उनके समीप एक पृथक् पंजिका रहेगी जिसको वे पूर्ण रूपसे सुरक्षित रखेंगे।

६—इस बातका विशेष ध्यान रखा जावेगा कि ब्रह्म

चारियों तथा अध्यापकादि कार्यकर्ताओंके जीवन में ब्रह्मचर्य संबन्धी न्यूनता किंचिन्मात्र भी उपस्थित न हो सके । किन्तु यदि अभाग्यवश ऐसी कोई घटना उपस्थित होगई तो उसका वृत्तान्त सामान्य पंजिकाओंमें नहीं लिखा जायेगा । उसके लिये एक विशेष पंजिका बनाई जावेगी । उसमें केवल श्री आचार्य जी अथवा श्री मुख्याधिष्ठाताजी ही इस विषय की घटनाओंको लिखेंगे । इस विशेष पंजिका को विशेष रूपसे सुरक्षित रखा जावेगा ।

७ ब्रह्मचारियोंने अपनी वस्तुओंको भली भान्ति सुरक्षित रक्खा वा नहीं इसकी जाच पडताल के लिये एक बडी द्रव्यनिरीक्षणपंजिका बनाई जावेगी प्रत्येक मासके शुक्लपक्ष की अष्टमीको ब्रह्मचारीयों की समस्त वस्तुओंका निरीक्षण करके उसका वृत्तान्त इस पंजिका में लिखा जावेगा । प्रत्येक ब्रह्मचारीके पास " द्रव्यदमन पंजिका " पृथक् भी रहेगी । उसमें वह अपनी विवेचना स्वयं ही करेगा ।

८ इस गुरुकुल में केवल वेदाभ्यास की शिक्षा नहीं दी जावेगी किन्तु व्रताभ्यास अर्थात सदाचार की भी क्रमबद्ध और नियमपूर्वक शिक्षादी जावेगी ।

सदाचार का शिक्षाक्रम ।

यह शिक्षाक्रम दो भागोंमें विभक्त है ।

(१) व्रतारंभ वर्ग वा योगारंभ वर्ग (२)योगसाधनवर्ग ।

व्रतारंभ वर्गमें पांच कक्षायें होंगी ।

(१) प्रथम शौच वा पवित्रता (२) सत्सङ्गति (३) आज्ञापालन(४)श्रद्धा(५)सुपुरुषार्थ (६)सरलता (७) सीधा रहना(८)सामान्य वाचिक जप(ओ३म् तथा गायत्रींमंत्रका इस प्रकार पुनःपुनः उच्चारण करना कि दूसरे को भली प्रकार सुनाई दे सकें वाचिक जप कहाता है) (९) संध्या हवनका अनुष्ठान (१०)शरीरसम्बन्धी उन्नति ।

द्वितीयकक्षा ।

(१)निर्मल जल, विशुद्ध वायु, पवित्र अन्न का सेवन ।(२) विद्या (३) सम्यग्ज्ञान (४) सत्य (५) शीत-उष्ण को सहन करना (६) प्रेमयुक्त व्यवहार (७) सुगम आसन (८) दीर्घश्वास (९) सामान्य वाचिक जप (१०) इन्द्रियसम्बन्धी उन्नति ।

तृतीयकक्षा ।

(१) निर्भयता (२) सहनशीलता (मान अपमान आदि सहन करनेका स्वभाव) (३) निश्चिन्तता (४) निर्लोभता (५) ह्री (पापकर्ममें लज्जा करना तथा धर्मानुष्ठानमें लज्जा न करना (६) निर्मोहता (७) निरभिमानता (८) सरल आसन (९)दीर्घश्वास (१०)विशेष वाचिक जप (ओ३म् तथा गायत्री मंत्रका अर्थ समझते हुए वाचिक जप करना) (११) इन्द्रियार्थसम्बन्धी उन्नति ।

चतुर्थ कक्षा ।

(१) धृति (२) क्षमा (३) दम (४) अस्तेय (५) इन्द्रियनिग्रह (६) धी (७) अक्रोध (८) कठिन आसन (९)सुगम प्राणायाम (१०) उपांशु जप (ओ३म तथा गायत्री मंत्रका इस प्रकारसे जप करना कि दूसरे को सुनाई न दे केवल ओष्ठमात्रही हिले(११)मनसम्धी उन्नति

पंचम कक्षा ।

(१) धृति, क्षमा, दम आदि के मिश्रण का अभ्यास (यथा सावधानता—धी और दमका मिश्रण है तथा एकाग्रता दम और इन्द्रियनिग्रह का मिश्रण है।) (२) कठिन आसन (३)सरलप्राणायाम (४) उपांशु जप (५) वीर्यसम्बन्धी उन्नति ।

योगसाधन वर्ग ।

षष्ठकक्षा

(१) अहिंसा (२)ब्रह्मचर्य (३) अपरिग्रह (४) सन्तोष (५)स्वाध्याय (६) ईश्वरप्रणिधान (७) अतिकठिन

आसन (८) कठिन प्राणायाम(९) मानसजप (केवल मनसे ओ३म् तथा गायत्री मंत्रका अर्थ समझते हुवे जप करना जिसमें उच्चारण भी तथा ओष्ठभी न हिले। इस की एक विधि यह भी है कि जप करने वाला उपर्युक्त मंत्रको अर्थ समझते हुवे अपने मस्तकपर मनसे बारबार लिखे।)(१०) सरल प्रत्याहार (११) चित्तसंबन्धी उन्नति।

सप्तम कक्षा।

(१) यमनियमों के मिश्रण का अभ्यास (यथा वैराग्य सन्तोष और अपरिग्रहका मिश्रण है) (२) सम्पूर्ण आसन (३) अति कठिन प्राणायाम (४) मानस जप (५) कठिन प्रत्याहार (६) बुद्धिसम्बन्धी उन्नति

अष्टम कक्षा।

(१) पूर्वकृत व्रताभ्यासों को स्थिर रखना (२) सम्पूर्ण प्राणायाम (३) मानसजप (४) अहंकार सम्बन्धी उन्नति।

नवम कक्षा।

(१) पूर्वकृत व्रताभ्यासों को स्थिर रखना (२) प्रत्याहार की अति कठिन विधि (३) मानसजप (४) आत्मासम्बन्धी उन्नति।

दशम कक्षा।

(१) पूर्वकृतव्रताभ्यासों को स्थिर रखना (२) प्रत्याहार की संम्पूर्ण विधि (३) ध्यानजप (४) सामान्यतः संसार और विशेषतः राष्ट्रसंबन्धी उन्नति॥

९ — प्रति दो मासके पश्चात् नवीन ऋतुके आरंभकालमें उपर्युक्त व्रताभ्यासों की परीक्षा हुआ करेगी। इस परीक्षाके परिणामके अनुसार ब्रम्हचारियों की व्रताभ्यास की कक्षा तथा क्रममें परिवर्तन किया जावेगा। जिस ब्रह्मचारिने गत दो मासों में अपनी कक्षामें नियत किये हुवे कर्तव्योंका परिपालन भली भान्ति किया हो और जो अधिक उच्च कर्तव्यों पालन भी कर सकता हो। उसे अगली कक्षामें जावेगा। किन्तु जो कक्षामें नियत किये हुये कर्तव्यों पालनेमें बहुत न्यूनता करता हो और अपने से निच कक्षा के व्रताभ्यासों में भी ढीला हो। उसे निचली कक्षामें किया जावेगा। प्रति दो मासके पश्चात् दम दमन परीक्षा तथा स्वास्थ्य परीक्षा भी हुआ करेगी। व्रताभ्यास के प्रत्येक विषयकी परीक्षा के पूर्णांक ६० होंगे। अधिष्ठाता महानुभाव सभा करके सब ब्रह्मचारियों के गत दो मासके जीवन पर विवेचना किया करेंगे और उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट की कल्पना करके यथाशक्ति न्यायपूर्वक अंक दिया करेंगे।

१० — प्रति दो मास के पश्चात प्रत्येक ब्रह्मचारी के विशेष गुणों को उसके नामकी "शुक्लजन्मचरित्र पुस्तक" में और विशेष दोषों को "अशु जन्म चारित्र पुस्तक" में अंकित किया जावे।

११ — सब ब्रम्हचारी सभामें बैठते समय विद्याभ्यास की कक्षामें और व्रताभ्यास के क्रमके अनुसार पंक्ति बद्ध होकर बैठा करेंगे। किन्तु सन्ध्या हवन का अनुष्ठान करने तथा अपने गुणदोष लिखाने के समय केवल व्रताभ्यास के क्रमसे और आगम कालमें तथा स्वाध्याय कालमें विद्याभ्यास के ही क्रमसे बैठेंगे। इति

गुरुकुल विद्यापीठ हरियानामें इन नियमोंके अनुसार कार्य हो रहा है। अभी नियम अधूरे हैं। उनमें अनेक उत्तमोत्तम नियमों की आवश्यकता है क्यों कि इस आवश्यकता की पूर्ति उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि उच्चकोटिके विद्वान् महानुभाव इस विषयपर विशेष ध्यान न दें। अत एव धार्मिक विद्वान् सज्जनों की सेवामें मैं अतिशय विनय पूर्वक निवेदन करता हूं कि वे इस विषयपर विशेष ध्यान देनेकी कृपा करें॥

कायस्थ वर की आवश्यकता।

मेरे एक कायस्थ मित्र (सकसेना दूसरे)की चौदह वर्षीय कन्याके लिये वर की आवश्यकता है जो कायस्थों के बारह विभागों में से किसी भी विभाग का हो, आयु २०-२२ वर्ष की हो, पढा लिखा, सुंदर, सुशील, स्वस्थ, सदाचारी तथा आर्यसामाजिक परिवार का हो। यदि पढता हो तो कम से कम मैट्रिकपास हो। यदि व्यवसाय करता हो तो कम से कम ५०) मासिक उपार्जन करता हो। कन्या पढी, लिखी, सुशील, सुंदर, स्वस्थ तथा गृहकार्य में कुशल है।

आवश्यक पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर कीजिये।

शिवदयालगुप्त सबअसिस्टेंट सर्जन, इटावा

(कोटा राज्य) राजपूताना

छप गया ! छप गया ! ! छप गया ! ! !

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य ।

(लेखक-प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न कांगडी)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के वेदोपाध्याय श्री पं. चंद्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य—जगत का बडा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है । मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए ।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते हैं—

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है । मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था । इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यामान हैं। मुझे पूर्ण आशा है [illegible] आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहा[illegible] तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप [illegible] भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशनमें समर्थ हो[illegible]

श्री० मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन[illegible]क्टर बडोदा लिखते हैं ।

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य [illegible] इस ग्रन्थ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण कि[illegible] इस अनुसंधान-युगमें प्रत्येक समाज, पुस्त[illegible] गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस[illegible] योगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए — ऐसा [illegible] दृढ मत है । इस के प्रकाशन पर मैं आपको [illegible]वाद करता हूं । आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्या[illegible] पुस्तक को अवश्य पढना चाहिये । पृष्ठसंख्या [illegible] और कीमत डाकव्यय रहित ४॥)रु० है ।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तके

१ वेदार्थ करने की विधि १० आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य । ५[illegible]
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६[illegible]

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें [illegible] बारह आने में मिलेगी ।

पता—प्रबन्धकर्ता अलंकार गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य।

(लेखक ' राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति ' आत्मारामजी अमृतसरी)

संस्कारचन्द्रिका।

शताब्दी संस्करण बहुत उत्तम छपकर तय्यार है। मनुष्य मात्र के उपयोगी ग्रन्थ है। इस में हमारे जीवन में जो महत्व पूर्ण संस्कार होते हैं उनकी वैज्ञानिक खोज उनको कहां तक करने के लिए बाधित करती है यह सविस्तर बताया है। महर्षि दयानन्द प्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या है। प्रत्येक संस्कार की फिलासफि युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा बडी विद्वत्ता से सिद्ध की हैं। मू. सजिल्द ४) डा. व्यय |||)आजिल्द ३||)

सृष्टिविज्ञान पुरुषसूक्तका स्वाध्याय तथा वेदोत्पत्ति संबंधी मंत्रोंकी व्याख्या मू. २)

तुलनात्मक धर्म विचार १)ब्रह्मयज्ञ|||) शरीरविज्ञान |≡) आत्मस्थान विज्ञान~) नीति विवेचन १|) गीतासार |=) **गुजराती हिन्दी शब्द कोष** ६) समुद्रगुप्त ||=) आरोग्यता||) श्रीहर्ष||) मजहबेइस्लामपर एक नजर =) ऋषिपूजा की वैदिक विधि~) विज्ञापकके ग्राहकों को =) रुपया छूट। वा. मूल्य २)

विज्ञापक, बडोदा। अपने ढंग के अनूठे मासिक में प्रति मास **वैदिक समाजान्तर्गत** आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् राज्यरत्न आत्मारमजी, कुंवर चांदकरणजी शारदा, रावसाहब बाबु रामविलास जी, पं. आनन्द प्रिय जी, प्रोफेसर आर्ते एम.ए. के लेखों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रोचक विषय भी। वा. मू. २) नमूना |~) प्रकाशक)

जयदेव ब्रदर्स बडोदा।

वैदिक उपदेश माला।

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी।

मूल्य ||) आठ आने। डाकव्यय~) एक आना।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

संस्कृत पाठ माला।

स्वयं संस्कृत भाषा सीखने की अत्यंत सुगम पद्धति। इतनी सुगम पुस्तकें देखकर आपको भी आश्चर्य होगा !

१ इन पुस्तकों के अध्ययनसे आप घर बैठे, विना किसीकी सहायताके, संस्कृत सीख सकते हैं।

२ यदि आप प्रतिदिन आधा घंटा अध्ययन करेंगे तो एक वर्षके अंदर रामायण महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

३ जो साधारण हिंदी जानते हैं वे भी इन पुस्तकों का अध्ययन करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

४ जो स्त्रियां संस्कृत पढना चाहती हैं, उनके लिये ये पुस्तक अपूर्व लाभ कारी हैं।

५ आठ दस वर्ष की अवस्था के बालक और बालिकाओं को भी ये पुस्तक पढाये जा सकते हैं, इतनी सुगम पद्धति से ये लिखे गये हैं।

६ हरएक पाठशालाकी पढाईमें ये पुस्तक अत्यंत लाभ कारी हैं।

शीघ्र ग्राहक बन जाइये और अपने इष्टमित्रों को संस्कृत पढने का उत्साह दीजिये।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ।-) पांच आने है,
१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४) रु. है
नमूनेके अंकके लिये ।-) तिकिट भेजिये।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक १० क्रमांक ७० आश्विन सं. १९८२ अक्तूबर सन् १९२५

वैदिक धर्म

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-सचित्र-मासिक-पत्र
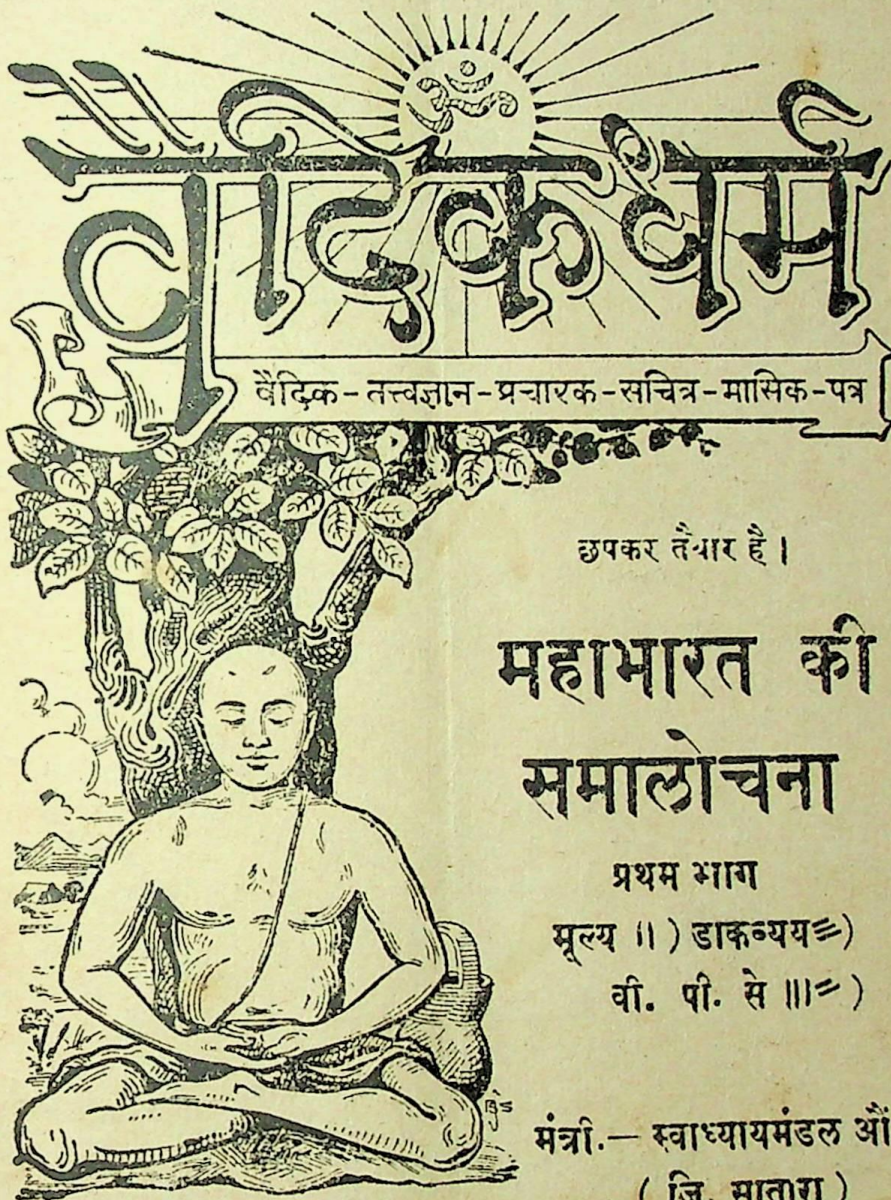
संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ मातृभूमिकी सेवा २९७
२ शुद्धि संस्कार २९८
३ दीर्घ श्वास..............३०९
४ एक अद्भुत कूवाँ ३११
५ शास्त्रार्थ ३१२
६ वैदिक धर्मका अगला वर्ष ३१३
७ आसनोंसें लाभ..............३१४
८ श्री. औंध नरेश ....”
९ प्राचीन भारत.... ....३१७
१० योगी देव..............३१८
११ संकल्प शक्ती ३१९

छप गया! छप गया!! छप गया!!!

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य।

(लेखक-प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न कांगडी)

श्री· स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडीके वेदोपाध्याय श्री. पं. चंद्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य-जगत् का बडा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है। मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते हैं---

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है। मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था। इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशनमें समर्थ हो सकें।

श्री० मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बडोदा लिखते हैं।

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा। इस ग्रंथ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है। इस अनुसंधान-युगमें प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए-ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगलवाद करता हूं। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को अवश्य पढना चाहिये। पृष्ठसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥)रु० है।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य। ५ आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६ आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेंगी।

पता—प्रबन्धकर्ता अलंकार, गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

श्रीमंत बाळासाहेब पंत, बी. ए., प्रतिनिधि, संस्थान औंध.

भारतमुद्रणालय, स्वाध्याय-मंडल, औंध, जि० सातारा.

मनोरंजन प्रेस, मुंबई.

वर्ष ६
अंक १०
क्रमांक ७०

आश्विन
संवत १९८२
अक्तूबर
सन १९२५

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

तपसे मातृभूमिकी सेवा ।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्त्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥
अथर्व १२ । १ । ३९

(यस्यां) जिस भूमिमें (पूर्वे) पूर्ण (वेधसः) ज्ञानी (भूत-कृतः) देशके भूत को बनानेवाले (ऋषयः) ऋषिलोग महा तपस्वी पुण्यपुरुष (सत्-त्रेण) सज्जनोंके पालन करनेके (यज्ञेन) सत्कर्म और (तपसा) शीतोष्ण सहन करनेके बलके (सह) साथ (सप्त) सात (गाः) इंद्रियों, छंदों या वेदवाणीका (उत् आनृचुः) उत्तम प्रकार से सत्कार करते आये हैं ।

हमारी मातृभूमिके संपूर्ण ज्ञानी जन प्रजापालक शुभ कर्म करते और उत्तम कर्मानुष्ठानसे गौ, वाणी, और भूमिका सत्कार करते आये हैं । इसी कारण हमारी मातृभूमि अत्यंत पवित्र है । और हमें इसीके लिये आत्मसमर्पण करना चाहिये ।

शुद्धि संस्कारकी आवश्यकता ।

[शुद्धि संस्कार कैसा होना चाहिये इस विषय की पृच्छा करने वाले कई पत्र हमारे पास आगये। हरएक का अलग अलग उत्तर देना असंभव है इसलिये इस विषयको आज इस लेखद्वारा हम पाठकोंके सन्मुख उपस्थित करते हैं।

यह लेख श्री० पं० सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव विद्यानिधि का लिखा हुआ है। पं० सिद्धेश्वर शास्त्रीजी सनातनी पुराणमतवादी पंडित होते हुएभी महाराष्ट्र में शुद्धिका कार्य बडे जोरशोरसे कर रहे हैं। इस समयतक बीसियों महाशयोंको इन्होंने पुनः स्वधर्म में लिया है और इनका कार्य आगे जारी है। महाराष्ट्र में पुराणमतवादी पंडितोंका जोर बहुत है। तथापि इस विरोधको सहन करके भी श्री० पं० सिद्धेश्वर शास्त्रीजी अपना कार्य चला रहे हैं। इसलिये इनका गौरव हरएक को करना उचित है।

आज जो लेख श्री० पं० सिद्धेश्वर शास्त्रीजीका हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं वह शुद्धिसंस्कारके लिये शास्त्रप्रमाणों से सुशोभित है। यद्यपि इस लेखके कई प्रमाणोंके साथ पूर्णांशमें पाठक सहानुभूति नहीं रख सकेंगे, तथापि यह लेख पुराणमतावलंबी लोगोंके आक्षेपोंका उत्तर उन्हींके प्रमाण ग्रंथों के वचनोंद्वारा देने के लिये लिखा है यह बात ध्यानमें धरने से इस लेख का महत्व उसी समय ध्यानमें आ सकता है।

आशा है कि स्मृतिग्रंथोंके वचनोंद्वारा इस शुद्धि का विचार पाठक करेंगे और शुद्धिके महत्त्वपूर्ण विषयसे अपने आपको पराङ्मुख नहीं रखेंगे और इस शुद्धिका कार्य अपने नगरमें करके अपने समाज का उद्धार करनेमें प्रमुख कार्य करनेके भागी होंगे—

संपादक—"वैदिक धर्म"]

शुद्धिसंस्कार ।

(लेखक-श्री. पं. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, विद्यानिधि, पूना)

शुद्धि संस्कार की विधि कई वर्षों से बनकर तैयार होने पर भी अनेक कारणों से वह आज तक छप न सकी। उनमें से मुख्य कारण यह था कि इस विधिको शास्त्रज्ञ लोगोंसे स्वीकृत होने में बहुत देर लगी। उनकी सम्मतिप्राप्त करने की, और हो सकी वहाँ तक विधि सशास्त्र बनाने की, हमने यथाशक्ति चेष्टा की। विधि परिषद में उपस्थित की गई, शास्त्रज्ञों को बताई गई, और विधि करने में निपुण याज्ञिक

लोगों के सम्मुख भी रखी गई । और उन सबसे विचार विनिमय करने के उपरान्त उनकी सम्मति से ही इस विधि की रचना की गई है ।

विधि बनाते समय यदि हमारे सामने कोई कठिन समस्या थी तो वह यही थी कि विधि सशास्त्र और व्यवहार्य दोनों किस प्रकार हो सकेगी । केवल विधि की सशास्त्रता पर ही ध्यान देने से सम्भव था कि विधि इतनी लम्बी चौडी और असुविधापूर्ण होती कि बिना याज्ञिक के काम न चलता । ऐसी दशा में विधिका होना न होना बराबर ही था । उसी प्रकार यदि वह केवल व्यवहार्य ही होती परंतु शास्त्र-सम्मत न होती, तो उसके आचरण से लाभ ही क्या ? ऐसे पेंच में से मार्ग निकालना एक अत्यंत दुष्कर कार्य था । सशास्त्रता केवल वचनों के द्वारा ही सिद्ध नहीं की जा सकती । पुराने मार्ग से चलने वाले लोगों के आचार विचारों से जब उस विधि का मेल हो तभी वह सशास्त्र मानी जा सकती है । ऐसी दशा में आवश्यक था कि विधि बनाते समय उन लोगों के आचार विचार और व्यवहार की ओर भी ध्यान दिया जाय । इसलिए इन बातोंका भी सूक्ष्म निरीक्षण करना पडा ।

इन दोनों बातों के साथ ही इस बात का विचार करना भी अत्यावश्यक है कि विधि करते समय साधक के मन में कहीं यह भाव न उत्पन्न हो कि मेरे महान् पापकी निष्कृति के लिए जो विधि की जा रही है वह निरा आडम्बर है ; उस में सत्य कुछ भी नहीं । कारण जिस एक कार्य ने उसे अपने धर्म से, अपने समाज से और अपने बंधुओंसे दूर किया, जिस एक कार्य के कारण वह समाज के द्वारा केवल बहिष्कृत ही नहीं तो मुखावलोकन के लिए भी अयोग्य ठहराया गया, उस बडे अपराध के लिए वह अवश्य ही समाज से किसी बडे दण्ड की अपेक्षा और उस योग्य भी समझेगा। परंतु जब वह देखेगा कि इतने बडे दण्ड का काम केवल छोटे से प्रायश्चित्त से ही लिया जा रहा है तो अवश्य ही उसके मन पर इसका अनिष्ट और विपरीत परिणाम होगा। ये बातें भी विधि तैयार करते समय विचारणीय थीं ।

विधि करते समय इन बातों की ओर भी ध्यान रहना चाहिए कि इस धर्मांतर की विधि के द्वारा हमें किस प्रकार के विचारों का प्रसार करना है, इससे साधक और प्रेक्षकों के मन में कौनसी भावनाएं उत्पन्न करना है । धर्मांतर करनेका समय तो इस लोकमें और परलोकमें शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होने का अवसर होता है । इस समय इष्ट है कि साधक के मन में अच्छी भावनाएँ उत्पन्न हों उसे इन बातों पर पूर्ण विश्वास हो जाय कि विधि करने के पूर्व जैसा मैं था वैसा अब न रहा; अब मैं अत्यंत पवित्र हूँ; मैं अत्यंत ऊँचे स्थान पर पहुंच गया हूँ; मेरे मन में सहसा विलक्षण परिवर्तन हो गया है; मै परमेश्वर के पास आगया हूँ; मेरे सहाय्यार्थ परमेश्वर दौडा आरहा है; श्री रामचंद्र, भगवान् श्रीकृष्ण इत्यादि मेरे साहाय्य के लिए तत्पर खडे हैं । अर्थात् इस विधि में इतनी गंभीरता , उदात्तता , शांतता , पवित्रता और सुसंबद्धता होनी चाहिए कि साधक अपने शरीर, मन, वचन, वस्त्र, आचार, विचार इत्यादि-में होने वाले परिवर्तन का अनुभव कर सके और उनकी सत्यता में उसे विश्वास आजाय ।

अपने शास्त्रों में उपनयन, विवाह इत्यादि संस्कारों की रचना इसी प्रकार की गई है । उन में से प्रत्येक बातको कोई ध्यान पूर्वक देखेगा तो उसे हमारे कथन की सत्यता प्रतीत होगी । बहुतसे

लोगों की कल्पना है कि उपनयन का अर्थ केवल पाठशाला में भरती करने का उत्सव या गायत्री मंत्र का उपदेश है; साथ की जाने वाली बाकी सब बातें झूठ हैं। परंतु यदि इस विधि का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो सहजही दिखाई देगा कि उस में की छोटी से छोटी बात भी साधक के मन में परिवर्तन करने में समर्थ है। साधक को अपने उत्तरदायित्व से परिचित कराने में उसका बहुत ही उपयोग होता है। इस विषय में अधिक कहने की कुछ आवश्यकता नहीं। इसी लिए ऐसे समय लोगों को निमंत्रित करना, विधि स्थानको स्वच्छ रखना झँडियों से, पेडों के हरेहरे पतों से जगह को सजाना बैठक का ठीक बंदोबस्त करना; विधि के लिये लगने वाला साहित्य साफ और व्यवस्थित रूप में रखना आदि बातें बहुत आवश्यक हैं। विधि करनेवाले को चाहिए कि वह पवित्र वस्त्र पहिनकर शुद्धता से अपने आसन पर बैठे। आस पास देखने से ही साधक के मन में यह भाव उत्पन्न हो कि आज कोई अत्यंत महत्वपूर्ण और गंभीर कार्य होनेवाला है। और दूसरों के मन में यह विचार हो कि आज किसी राह भूले हुए जीवको हम सन्मार्ग पर लाकर उसे परमेश्वर-प्राप्ति की सीधी रास्ता बता रहे हैं। इस विधि का इस प्रकार परस्पर परिणाम होना चाहिए। विधि की सशास्त्रता और व्यवहार्यता के साथ ही साथ और एक महत्वकी बात भी भूलना नहीं चाहिए। विधि करने वाला नया और अननुभवी हो पर भी उपर्युक्त उद्देश की पूर्ति होना चाहिए।

इनके सिवा दूसरी अनेक अडचनें हैं। परंतु उनका महत्त्व गौण होने से प्रत्यक्ष विधि करने में उनसे कोई रुकावट होने का संभव नहीं। इस लिए अब हम विधिविषयक शास्त्रीय बातों का विवरण देते हैं।

धर्म-शास्त्र के अनुसार यह बात अत्यंत महत्त्व की है कि प्रायश्चित्त लेने के पूर्व जिस पाप के लिये वह प्रायश्चित्त लिया जा रहा है उसकी जाति और दर्जा पहिले निश्चित करके यह देखा जाय कि उस प्रकार के पाप के लिये कौनसा प्रायश्चित्त बताया गया है; और इस प्रकार प्रायश्चित्त निश्चित हो जाने पर उसे लेकर मनुष्य शुद्ध हो। इस अनुक्रम से सब बातें होनी चाहिए। प्रायश्चित्त का अर्थ निम्न रीति से समझाया जाता है।

मनुस्मृति में प्रायश्चित्त शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है:—

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रयश्चित्तमिति स्मृतम्॥

अध्याय ११। ४८

अर्थ:–' प्राय:' अर्थात् तप और 'चित्त' अर्थात् निश्चय। जो तप और निश्चय से संयुक्त हो वह प्रायश्चित्त है।

कहीं कहीं प्रायश्चित्त का अर्थ यों भी किया जाता है:—

प्रायः पापं विजानीयात् चित्तं तस्य विशोधनम्।
' प्रायः' याने पाप और ' चित्त' याने पापकी शुद्धि। जो पापकी निष्कृति के लिये किया जाय वह प्रायश्चित्त है प्रायश्चित्त का यह अर्थ सर्व मान्य है।

विज्ञानेश्वर ने भी मिताक्षरी में ऐसा ही कहा है

प्रायश्चित्तशब्दश्चायं पापक्षयार्थे नैमित्तिके कर्मविशेषे रूढः।

प्रायश्चित्त लेने के कारण भी सामान्य और विशेष रूप से सब धर्म ग्रंथों में दिये गए हैं।

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः॥

मनु ११। ४४

इस अर्थ का याज्ञवल्क्य-स्मृति में दिया हुआ श्लोक इस प्रकार का है:—

विहितस्याननुष्ठानात् निंदितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥

या. प्राय. २१९ ।

शास्त्रविहितबातें न करनेसे, निन्द्यबातें करनेसे और इंद्रिय-लोलुप होनेसे मनुष्य प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

यदि मनुष्य सामान्य या महापातक सरीखा कोई विशेष पाप करे और प्रायश्चित्त न ले तो उसकी इहलोक में और परलोक में हानि होती है और उसकी आत्मा के विकास में बाधा होकर वह अधो गति को पहुंचता है ।

इसी लिए स्मृतिकारों ने कहा है कि ऐसे मनुष्य अवश्य प्रायश्चित्त लें । देखो —

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
निंद्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥

म. स्मृ. ११।२६

अर्थः--इसी लिए किए हुए पाप की निष्कृती के लिए अवश्य प्रायश्चित्त लेना चाहिए । कारण यदि प्रायश्चित्त न लिया जावे तो पापी मनुष्यों को निन्द्य जन्म प्राप्त होते हैं ।

तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
एवमस्यांतरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥

अर्थः--इसलिए पातकी मनुष्य को प्रायश्चित्त लेना चाहिए । प्रायश्चित्त लेनेसे मानसिक शुद्धि होती है और लोग भी प्रसन्न होते हैं ।

बडे बडे पातकों के करने से दो दोष उत्पन्न होते हैं एक तो आत्मा का पतन और दूसरा अव्यवहार्यता । किसी भी किए हुए पाप के लिए प्रायश्चित्त लेने से व्यवहार्यता तो अवश्य प्राप्त हो जाती है परंतु आत्मा का पतन नहीं टल सकता । परंतु जिन पातकों से मनुष्य विशेष दोषी नहीं होता उन में यह अडचन नहीं है । उस दशा में प्रायश्चित्त के द्वारा मनुष्य व्यवहार्य और पापमुक्त भी होता है ।

पातकों के दो प्रकार हैं; बुद्धिपुरःसर किये हुए पाप और अज्ञानतः किये हुए पाप । अज्ञानतः किये हुए पाप के लिये प्रायश्चित्त लेनेसे पापनिवृत्ति और व्यवहार्यता दोनों साध्य होती हैं । यह बात निम्न वचनों से स्पष्ट मालूम होती है:—

प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञानकृतं भवेत ।
कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायते ॥

प्राय ० २२६

परंतु मनुमें बताया गया है कि अनिच्छापूर्वक किये हुए पाप के लिये छोटा प्रायश्चित्त और इच्छा पूर्वक किये हुए पाप के लिये बडा प्रायश्चित्त लेनेसे मनुष्य पापनिर्मुक्त और संव्यवहार्य होता है और इस के लिये श्रुति का प्रमाण भी दिया गया हैं। देखीये-

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
कामकारकृते ऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥

मनुस्मृति ११ । ४५

अर्थ - अनिच्छापूर्वक किये हुए पातक के लिये विद्वानों ने प्रायश्चित्त बताया है। और कई श्रेष्ठ लोगोंका मत है कि इच्छापूर्वक किये हुए पातक के लिए भी श्रुति में प्रायश्चित्त बताया है—

इस का आधार यह है : —

इंद्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत् । तमश्लीला वागभ्यवदत् स प्रजापतिमुपधावत्।तस्मात्तमुपहव्यं प्रायच्छत् ।

इंद्रने जानते हुए भी सन्यासियों को कुत्तों के बीचमे फँसा दिया और उन्हे गालियाँ दीं। फिर वह प्रायश्चित्त माँगने के लिये प्रजापति के पास गया। प्रजा पति ने उसे 'उपहव्य' नामक प्रायश्चित्त बताया।

इस पर से सिद्ध होता है कि ज्ञान पूर्वक किये हुए पाप के लिये भी प्रायश्चित्त रहता है। इसी कारण मनुने भी कहा है कि जानते हुए किये हुये पापों के लिये प्रायश्चित्त लेने से मनुष्य शुद्ध होता है।

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः॥
॥ ११ । ४६

इन सब बातों पर से सिद्ध होता है कि हर एक पाप के लिये चाहे वह पाप बुद्धिपूर्वक किया हो या अज्ञानतापूर्वक, प्रायश्चित्त कर के पापी मनुष्य शुद्ध हो सक्ता है।

कोई भी प्रायश्चित्त लेने के पहिले जिस कार्य के बदले वह प्रायश्चित्त लिया जा रहा है उस का पश्चात्ताप होना चाहिए। पश्चात्ताप के सिवा प्रायश्चित्त न लिया जा सकता है और न दिया ही जा सकता है।

प्रायश्चित्तं तु तस्यैव कर्तव्यं नेतरस्य तु।
जातानुतापस्य भवेत्प्रायश्चित्तं यथोदितम्॥
नानुतप्तस्य पुंसस्तु प्रायश्चित्तं न विद्यते।
नाश्वमेधफलेनापि नानुतापी विशुध्यति॥
वृद्धहारीत ९। २२३। २२४

जिसे पश्चात्ताप हुआ हो उस मनुष्य को ही प्रायश्चित्त दिया जावे। दूसरों को नहीं। बिना पश्चात्ताप के यदि अश्वमेध भी किया जावे तो भी मनुष्य शुद्ध नहीं होता। इस प्रकार का विवेचन कई जगह पाया जाता है। परंतु इस बात का कहीं भी निषेध नहीं है कि पश्चात्ताप उत्पन्न करने वाला और असत्य धर्मावलम्बी लोगोंद्वारा फैलाए हुए जाल और कपट का ज्ञान कराने वाला धर्मोपदेश लोगों को किया जाय।

अब आगे इस बात का विचार किया जायगा कि परधर्म स्वीकार करना पातकशास्त्र के अनुसार किस प्रकार का पाप है और उस प्रकार के पातकों के लिये योग्य प्रायश्चित्त क्या होगा।

शास्त्रों में सामान्यतःपातकों के प्रकार निम्नानुसार किये जाते हैं —

१ महापातक २ अतिपातक ३ अनुपातक ४ उपपातक ५ प्रकीर्णपातक।

इनमें से महापातक, अतिपातक और अनुपातक प्रायः समान ही हैं। उपपातक पातकों का दूसरा प्रकार है। और जिनका प्रत्यक्ष उच्चार कर कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया वे प्रकीर्ण पातक हैं।

ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय, गुरुपत्नीगमन और तत्संसर्ग इत्यादि पातकों में धर्मांतर का समावेश नहीं हो सकता। क्यों कि धर्मांतर में उस प्रकार का कोई भी दोष नहीं होता।

यदि केवल मनु और याज्ञवल्क्य के ग्रंथानुसार ही विचार किया जावे तो जिन पापों का उपपातकों में समावेश किया गया है उन्हीं में इसे भी रखना चाहिये। 'असच्छास्त्राभिगमनं' और 'नास्तिक्य' (मनु. अ० ११। ६५ — ६६ और याज्ञ प्रा० २४२-- २३६) इत्यादि शब्दों से जो उपपातक संबोधित हैं उनका अर्थ केवल वैदिक धर्म को छोड़कर किसी दूसरे ऐसे धर्म का जो एक व्यक्तिनिष्ठ हो और जिसमें विचार वृद्धि का साधन न हो दीक्षापूर्वक स्वीकार करना है। कुछ विचार करने के उपरान्त ये बातें सरलतासे समझमें आसक्ती हैं।

धर्मभ्रष्ट होना उपपातक रूप है और इस लिये उपपातकों की निष्कृति के लिए जो प्रायश्चित्त दिए गए हैं वे ही प्रायश्चित्त इसके लिए भी करने योग्य होंगे। देखिए—

उपपातकशुद्धिः स्यादेव चांद्रायणेन वा।
पयसा वापि मासेन पराकेणाथवा पुनः॥
या० प्रा० २६५

अर्थ — उपपातक की शुद्धि एक महीने तक पंचगव्य लेने से, चांद्रायण करने से, या महिने भर दूध पर रहने से या पराक प्रायश्चित्त करने से होती है।

परंतु इस बात का भी विचार करना आवश्यक है कि जब लोग फंसाकर धर्मभ्रष्ट किए जाते हैं तब किस प्रकार का प्रायश्चित्त देना योग्य होगा।

म्लेच्छैर्नीतस्तु शूद्रस्त्वज्ञानात्तु कथंचन।
कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत ज्ञानात्तु द्विगुणं भवेत्॥
मि० प्रा० २२६

अर्थ—यदि म्लेच्छों ने शूद्र को कपट से धर्मभ्रष्ट किया हो तो कृच्छ्रत्रय प्रायश्चित्त करना चाहिए। इस विषयमें देवल स्मृति देखिए।

प्रसंगवशात् इस जगह धर्मांतर का अर्थ बताना अनुचित न होगा। धर्मांतर शब्द का प्रचलित अर्थ यह है कि मुसलमान या ईसाई बन जाना। और हम भी यही अर्थ लेते हैं। हिंदूधर्म को छोडकर बाकी के सब धर्म धर्मांतर शब्द से संबोधित होते हैं। उनमें से किसी भी धर्म को दीक्षा पूर्वक स्वीकार करना धर्मांतर कहलाता है। ईसाई धर्मको स्वीकार करते समय मद्य पीना पडता है। परंतु केवल मद्यमांस भक्षण से धर्मांतर नहीं होता। मिश्र विवाह से या किसी दूसरे धर्मका अभ्यास करने से भी धर्मांतर नहीं होता। आज भी कई हिंदू ऐसे हैं जिन्हें मद्यमांस– भक्षण की धर्मानुमति है वे ऐसे वैसे नहीं तो उच्च हिंदू हैं। केवल ब्राह्मण और उसी प्रकार के अन्य कुछ लोग मद्यमांस को नहीं छूते। बाकी सब हिंदू मद्यमांस का सेवन करते हैं। परंतु इस कारण वे पतित नहीं बन जाते। मिश्रविवाह भी हिन्दुओं में होते हैं। ज्ञानसंपादन का विरोध तो वैदिक धर्म में कहीं भी नहीं मिलता। ऐसी दशा में दीक्षापूर्वक परधर्म का स्वीकार यही धर्मांतर का अर्थ हो सकता है। जिसने इस प्रकार धर्मांतर किया हो वह प्रायश्चित्त के द्वारा हिंदुधर्म में वापिस लिया जाना चाहिये। इस पर से धर्मांतर का अर्थ स्पष्ट होगया होगा।

अब यह भी बताना चाहिए कि शुद्ध कर लेने का क्या अर्थ होता है। सत्य और मोक्षप्रद धर्म को छोडकर मिथ्या और अधोगति को ले जानेवाले धर्म का स्वीकार करने से जो पातक हुआ, उसकी निष्कृति के लिए प्रायश्चित्त लेकर फिरसे स्वधर्म के आचार विचारों का ग्रहण करना है।

पतित परावर्तन करते समय जाति -- समावेश का प्रश्न महत्वपूर्ण होता है। उसका संक्षेप में इस प्रकार निर्णय कर सकते हैं कि जबतक रक्तशुद्धि बनी रहती है अर्थात् विवाह आदि बातों में हिंदूधर्मानुसार जबतक रक्त-शुद्धि रखने का प्रयत्न किया जाता है तब तक कई वंशों के बाद भी जाति--समावेश हो सकता है। परंतु यदि रक्तशुद्धि न रही हो तो जाति समावेश नहीं हो सकता। (परंतु हिंदुओं में ऐसा भी एक पक्ष है जो जातिभेद नहीं मानता वह पक्ष इन्हें अवश्य आश्रय देगा।) यद्यपि जाति की दृढमूल कल्पनाओं को दूर करनेमें सफलता मिलने के कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते तो भी प्रत्येक हिंदूको यह बात मान्य है कि सब हिंदुओं का दर्जा समान है और परमेश्वर के दरबार में उनमें कोई भी भेद भाव नहीं किया जाता। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में ऐसेही वचन ग्रथित किए हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्‌।साधुरेव
स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥क्षिप्रंभवति
धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति । कौन्तेय प्रति-
जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

इन सब प्रश्नों का संक्षेप रूप से यह उत्तर है। इस विषय में अब लोगों के सामने शास्त्राधार रखने का कार्य ही बच रहा है।

देवल-स्मृति और उसमें के आधार अलग देने की कोई आवश्यकता नहीं। कारण कि इस प्रस्तावना के साथ ही हमें देवलस्मृति छपाकर प्रकाशित कर रहे हैं। हम पहिले ही निवेदन कर चुके हैं कि किसी भी पाप से प्रायश्चित्त के द्वारा छुटकारा हो सकता है। परंतु जिन सज्जनों के मन में यह प्रश्न उपस्थित हो कि इस विशेष पातक के लिए शास्त्रकारोंने कहाँ और कौन से प्रायश्चित्त बताए हैं उनके लिए शास्त्राधार उपलब्ध होने से हम यहाँ उध्दृत करते हैं। देवलस्मृति तो धर्म भ्रष्ट लोगों को पुनीत कर लेने के लिए ही निर्माण की गई है।

बलाद्दासीकृता ये तु म्लेच्छचांडालदस्युभिः।
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणहिंसनम् ॥
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथोच्छिष्टस्य भोजनम्।
खरोष्ट्रविड्वराहाणामामिषस्य च भक्षणम।
तत्स्त्रीणां च तथा संगास्ताभिश्च सह भोजनम्॥

ये श्लोक देवल स्मृति में (१७-२२) पाए जाते हैं। परंतु मिताक्षरा के २८९ श्लोक की व्याख्या में भी "अथ परिग्रहा-भोज्यभोजने प्रायश्चित्तं" प्रकरण में येही श्लोक दिए गए हैं और वहाँ कहा गया है कि ये आपस्तंब स्मृति के श्लोक हैं।

इसी प्रकार यमस्मृति में भी स्पष्ट रूप से यही अनुज्ञा दी गई है कि—

बलाद्दासीकृता ये च म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः।
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणहिंसनम् ॥
प्रायश्चित्तं च दातव्यं तारतम्येन वा द्विजैः॥

आजकल जो देवलस्मृति उपलब्ध है उसमें पतित परावर्तन का एक ही प्रकरण पाया जाता है। परंतु संभव है कि पहिले इस में ऐसे और भी प्रकरण रहे हों। परंतु अब वे उपलब्ध नहीं हैं। आजकल की देवलस्मृति में मिलनेवाले श्लोक मिताक्षरोंमें कई जगह उध्दृत किए हुए हैं।

संलापः स्पर्शनिश्वाससहयानासनाशनात्।
याजनाध्यापनाद्यौनात्पापं संक्रमते नृणाम्॥

उपलब्ध देवलस्मृति का यह ३३ वाँ श्लोक है और मिताक्षरा के २६१ वें श्लोक की व्याख्या में भी बृहस्पति के वचन सिद्ध करने के लिए यह दिया गया है।

उसी प्रकार—

याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम्।
कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः॥

देवल स्मृति का ३४ वाँ श्लोक है। यह भी उपरि निर्दिष्ट मिताक्षरा के प्रकरण में इसी संबंध से आया है और साथ ही स्मृति में के दूसरे श्लोक भी इसके सहाय्यार्थ उध्दृत किए गए हैं।

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
भोजनासनशय्यादि कुर्वाण : सार्वका
लिकम् ॥

यह देवल स्मृति का ३५ वाँ श्लोक है। इसका भी मिताक्षरा में उसी जगह उल्लेख है।

मनु के ११। १५० श्लोक पर कुल्लुकभट्टने "याजनं योनि संबंधं" आदि श्लोक उध्दृत किया है।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडश :।

प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥
अनेकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च ।
प्रायश्चित्तं चरेत् भ्राता पिता वान्यः सुहृज्जनः॥

विज्ञानेश्वर ने ये श्लोक अंगिरा और शंख के नाम पर दिए हैं । परंतु येही श्लोक देवल में जैसे के वैसे ही पाए जाते हैं । (३० । ३१)

इस प्रकार के और भी कई उल्लेख बताए जा सकते हैं । आशा है कि जो लोग देवल स्मृति की प्रामाणिकता के विषय में शंकित हैं उन की शंकाएँ इन सब बातों से नष्ट हो जावेंगी । देवलस्मृति का समर्थन करनेवाले बहुत से ग्रंथ हैं और कई बडे और सर्वमान्य ग्रंथोंमें देवलस्मृति के श्लोक उद्धृत किए गए हैं । इन सब बातों को जानते हुए भी देवलस्मृति की सत्यता पर विश्वास न करना दीर्घशंकी मनुष्य का ही काम है ।

कुछ वर्ष हुए कि महाराजाधिराज काश्मीर नरेश रणवीर सिंहजीने हिंदुस्थान के बडे बडे पंडितों से "रण वीर-प्रायश्चित" नामक ग्रंथ बनवाकर प्रकाशित किया था । महामहोपाध्याय शिवदत्त शास्त्रीजी ने उस में का कुछ भाग "म्लेच्छीभूतानां शुद्धि व्यवस्था" के नाम से अलग प्रकाशित किया है । उसमें पतित परावर्तन का सप्रमाण मंडन किया गया है । वह भाग नीचे दिया जाता है:-

"तीर्थ प्रत्याम्नाये विष्णु पुराणे—

"ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि भक्त्याऽभक्त्या पि-वा कृतम् । गंगास्नानं सर्वविधं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥ चांद्रायणसहस्रैस्तु यश्चरेत्कायशोधनम्। पिबेद्यश्चापि गंगाम्भःसमौ स्यातां न वासमौ॥२॥ भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् । गंगाया दर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥ पुण्य क्षेत्राभिगमनं सर्वपापप्रणाशनम् । देवताभ्यर्चनं पुंसामशेषाघविनाशनम् ॥४॥

भविष्ये—

"स्नानमात्रेण गंगायां पापं ब्रह्मवधोद्भवम् । दुराधर्षं कथं याति चिन्तयेद्यो वदेदपि ॥ तस्याहं प्रवदे पापं ब्रह्मकोटिवधोद्भवम् । स्तुतिवादमिमं मत्वा कुम्भीपाकेषु जायते । आकल्पं नरकं भुक्त्वा ततो जायेत गर्दभः ॥

इत्यादिवचनैः श्रीगंगातीर्थस्नानादेः सकलपाप नाशकता सिध्यति । एवं बृहन्नारदीये सर्वसाधारण प्रायश्चित्तानि प्रोक्तानि—

"प्रायश्चित्तानि यः कुर्यान्नारायणपरायणः। तस्य पापानि नश्यन्ति अन्यथा पतितो भवेत ॥ यस्तु रागादि निर्मुक्तो ह्यनुताप समन्वितः । सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरण तत्परः। महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः । सर्वैः प्रमुच्यते सद्यो येतो विष्णुरतं मनः ॥

"इत्यादिना विष्णुभक्तस्य नरमात्रस्य सकलपापनाशोऽभिहितः । इत्थं च बहुत्र प्रायश्चित्तविधायक वचनेषु "नर" इति सामान्य पदोपादानाद्युदाहृतवचनैर्म्लेच्छादीनामपि भगवद्भक्त्यधिकार सिद्धेः सर्वेषामपि स्वाधिकारयोग्यतानुसारेण वैदिकमार्गोन्मुखत्वं निराबाधं सिध्यति । इत्थं च त्रिपुरुषावधिनाश्रितसवर्णोत्पत्तीकानां कामतोऽकामतो वा म्लेच्छैःसंसृष्टानां प्रायश्चित्ताचारणे न पुनः स्वस्ववर्णान्तर्गतत्वपूर्वक धर्मप्राप्तिः । तदन्येषामपि व्रात्यतमानां मूलतो म्लेच्छादीनां वा सत्यामिच्छायां नास्तिक्यत्यागेन भक्तिशास्त्ररामंत्राद्युपदेशताधिकारः शूद्रकमलाकरोक्तसंस्कारोदप्राप्तिश्च सिध्यतीत्यत्र न कस्यचित्कटाक्षावसर इति सकल श्रुतिस्मृति पुराणेतिहासपर्यालोचनानिर्गलितो विमर्शो निष्पक्षपातधीभिः सुधीभिर्निपुणं विचारणीय इति दिग् ।

विष्णुपुराण में लिखा है —

"ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक भक्तिसहित या भक्ति रहित अन्तःकरणसे कैसे भी गंगास्नान किया जावे तो सब प्रकार के पातक नष्ट हो जाते हैं। एक मनुष्य वह जिसने हजारों चान्द्रायणों से अपना शरीर शुद्ध किया हो और दूसरा वह जिसने केवल गंगाजल पिया हो दोनों ही पवित्रता में समान हैं। पवित्रता की दृष्टि से उनमें कोई भी भेद नहीं। जिस प्रकार गरुड को देखने से सब सर्पों का विष नष्ट होता है उसी प्रकार गंगादर्शन से मनुष्य सब पापों से मुक्त होता है। तीर्थ स्थान की यात्रा करने से और देवताओं का पूजन करने से भी मनुष्य के सब पाप नष्ट होते हैं।

भविष्य पुराण में लिखा है —

जो मनुष्य कहे कि गंगास्नान से ब्रह्महत्या सरीखे पातकों का नाश कैसे हो सकता है उस मनुष्य को करोडों ब्रह्महत्या का पाप लगता है। और जो लोग कहते हैं कि यह केवल अर्थवाद है वे लोग कुम्भीपाक नरक में जाते हैं और एक कल्प तक नरक में रहकर अंत में गर्दभ जन्मको प्राप्त होते हैं। इन सब वचनों से सिद्ध होता है कि गंगा स्नान और तीर्थ गमन सबपापों को नष्ट करने वाले हैं। यही बात बृहन्नारदीय पुराण में भी दी गई है। जो मनुष्य भगवद्भक्तिपरायण हो कर प्रायश्चित्त लेता है उसके सब पाप नष्ट होते हैं। ऐसा न करने से वह पतित होता है। जो मनुष्य आसक्ति आदि छोडकर सब प्राणियों पर दया करते हुए विष्णु का स्मरण करता है उसे बडे बडे पातकों से और उपपातकों से छुटकारा मिलता है। कारण उसका मन विष्णु की ओर लगा रहता है।

इन वचनों पर से स्पष्ट मालूम होता है कि किसी भी विष्णुभक्त मनुष्य के सब पापों का नाश होता है।"

प्रायश्चित्त विषयक ऊपर के विवेचन में बताया गया है कि मनुष्य मात्र को प्रायश्चित्त लेने का और भगवद्भक्ति का अधिकार है। इस लिये सब मनुष्यों को अपने अपने अधिकार और योग्यतानुरूप वैदिक मार्ग की ओर प्रवृत्त होने में कोई आपत्ति नहीं। इस से सिद्ध होता है कि जिन स्वधर्मभ्रष्ट लोगों की उत्पत्ती अपनी अपनी सवर्ण जातियों में हुई हो वे तीन पीढियों तक भी शुद्ध होकर अपने अपने वर्ण में लौट सकते हैं। जो इस से भी अधिक पतित हों वे या जो यथार्थ में ही म्लेच्छ हों वे भी यदि उनकी वैसी इच्छा हो तो अपनी नास्तिकता छोडकर भक्तिशास्त्र के और राम आदि मंत्र के अधिकारी बन सकते हैं और "शूद्रकमलाकर" ग्रंथ की विधिसे इनके संस्कार भी किए जा सकते हैं। यह बातें सब श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासों में लिखी है। सब विद्वान् इस का पक्षपात राहित होकर विचार करें।

इसके सिवाय विद्यारण्य की सुप्रसिद्ध पंचदशी में भी स्पष्ट उल्लेख है कि धर्मांतर किए हुए मनुष्यको स्वधर्म में वापिस ले सकते हैं।

गृहीतो ब्राह्मणो म्लेच्छैः प्रायश्चित्तं चरन्पुनः।
म्लेच्छैः संकीर्यते नैव तथा भासः शरीरकैः॥

भक्ति लीलामृत में (मराठी। अ० ४४) उल्लेख है कि इस आधार पर ही बहिरंभट्ट को पैठन के ब्राह्मणों ने शुद्ध कर लिया था। यह तो सर्व विदित है कि शिवाजी महाराज के समय में बजाजी निं-बालकर शुद्धि के द्वारा हिंदू-धर्म में लिया गया था। उसी प्रकार के बहुत से निर्णय पत्र और कागजादि

कऱ्हाड में और अन्य दूसरे स्थानों में उपलब्ध हुए हैं। (भारत इतिहास संशोधक मंडल तृतीय संमेलन वृत्त पृष्ठ ८१से८७ तक देखिए) इतना ही नहीं तो ज्योतिर्मठ के और कोल्हापूर के शंकराचार्यों के आज्ञापत्र और शुद्धि करण के दूसरे प्रमाण भी मिले हैं। प्रो० द० वा० पोतदार ने उपरोक्त तृतीय सम्मेलन-वृत्तांत में इस विषयकी बहुत सी बातें दीं हैं। कै० न्या० रानडे ने अपनी मराठों संबंधी अंग्रेजी पुस्तक में पतित परावर्तन के चार उदाहरण दिए हैं। न्या. तेलंग ने अपनी "Gleanings from the maratha Chronicle" पुस्तक में २६६-६७ ६८-८१ पृष्ठों पर इस संबंध में कई ऐतिहासिक उदाहरण दिए हैं।

संभाजी महाराज के पंडितराव का लिखा हुआ एक आज्ञापत्र मिला है जिससे मालूम होता है कि पांच वर्षों तक मुगलों के साथ रहने पर भी गंगाधर रघुनाथ कुलकर्णी, मिताक्षरा आदि निबंध ग्रंथों के आधार से शुद्ध कर लिया गया। पेशवाओंके रोज नामों में इस प्रकार शुद्ध कर लेने के बहुत से उलेख हैं।

इतिहास शोधक म० सरदेसाईने अपनी 'ब्रिटिश रियासत' पुस्तक में लिखा है कि वसई के पास जो तीर्थस्थान है उसके आसपास के ब्राह्मण पोर्चुगीज लोगोंके द्वारा ईसाई बनाए हुए लोगों को, शुद्ध कर लेने का कार्य खुले तौर पर किया करते थे।

"जो हिंदू भ्रष्ट होकर ईसाई बन गए थे उन्हें अपने स्वधर्म में लेने के अनेक प्रयत्न उस काल के ब्राह्मणों द्वारा किए गए हैं। वे भ्रष्ट लोगों को अपने सनातन धर्म में आने का केवल उपदेश ही नहीं करते थे, बरन् जन्माष्टमी सरीखे बडे बडे मेलों के समय उनसे समुद्रस्नान या गंगास्नान कराकर उन्हें शुद्ध किया करते थे। वे लोगों को इस बात का विश्वास करा देते थे कि ऐसे पवित्र अवसर पर गंगा-स्नान करनेसे जैसे सब पाप का क्षालन होता है वैसे ईसाई बने रहने से कदापि न होगा। ब्राह्मणों की इन चालों को देखकर पादरी लोग खूब जलते और उनके प्रयत्न रोकने के लिये वे थाना, वसई, मुंबई आदि जगहों में खाडियों और समुद्रके किनारे खंबो पर क्रास लगा रखते थे। ऐसी हालत में जहाँ क्रास न लगे हो वहाँ जाकर ब्राह्मण अपना शुद्धि कार्य किया करते थे। अंत में ईसाइयों से तंग आकर ब्राह्मणों ने, वसई के निकट के जंगल में एक तलाव ढूँढ कर वहां छिप छिपकर अपना शुद्धिकार्य करना शुरूकर दिया। परंतु कुछ दिनों में उस स्थान का भी पता ईसाईयों को लगा और पोर्चुगीज सिपाहियों ने उन ब्राह्मणों पर हमला कर उन्हें भगा दिया। उस समय एक बैरागी जो ईसाई से हिंदू बना लिया गया था उनकी फौज के सामने अकेला निडर होकर खडा रहा। इस से वे पादरी इतने चिड गए कि उन्हों ने उस जगह को नष्ट भ्रष्ट कर डाला और गायें मारकर उनका मांस और रक्त उस तालाव में तथा आसपास की जगह में सींच दिया। इस प्रकार उन्होंने वह स्थान अपवित्र बना डाला (अगस्त १५६४ पृष्ठ १८३ - १८४)

इसको और इस प्रकार के अन्य उदाहरणों को देखकर किसी भी मनुष्य को संदेह नहीं हो सकता कि पतित परावर्तन सशास्त्र है।

इन सब बातों का विचार करते हुए कहना पडता है कि जिस मनुष्य ने धर्मांतर किया हो वह केवल शुद्ध ही नहीं हो सकता तो यदि रक्तशुद्धि बनी हो तो उसे अपनी जाति में समाविष्ट करलेने में भी कोई आपत्ति नहीं। देवलस्मृति के अनुसार

" दशादि विंशति" बीस साल तक मनुष्य स्वधर्म में लिया जा सकता है। पंडितप्रवर श्रीधर शास्त्री पाठक वगैरह महानुभावोंका कहना है कि 'शत-पत्रन्याय' से देवलोक्ति का अर्थ "अनेक साल" भी ले सकते हैं। मराठों के इतिहास में भी ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहाँ बीस वर्ष के बाद भी मनुष्य शुद्ध किए गए थे।

यदि प्रायश्चित्त के बारे में पूँछा जाय तो यही कह सकते हैं कि अज्ञान वश, फुसलाकर, या जबर-दस्ती भ्रष्ट किये हुये लोग अपने यहां होने से और उनकी शुद्धि के कार्य की सर्वत्र आवश्यकता होनेसे उन्हें पादकृच्छ्र से तीन कृछ्र तक जो प्रायश्चित्त योग्य हो दिया जावे। इस के लिये प्रमाण ऊपर ही दे चुके हैं।

कृछ्र का अर्थ सात दिन तक भिन्न भिन्न रीति से उपवास करना या दण्ड के रूप से धन दान करना है।

कृछ्र में कम से कम एक चवन्नी तो भी दान कर पंचगव्य लेकर पवित्रता के लिए आवश्यक किसी मंत्र का जप करना चाहिए। संक्षेप में यह विधि ऐसी है और इसे कोई भी बडी सुविधा से कर सकता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यमें से कोई उपनीत भ्रष्ट हो और यदि रक्तशुद्धि का कोई प्रश्न न हो तो उसका मेखलादण्डादिवर्जित पुनरुपयन कर उसे मंत्रोपदेश करना चाहिये। बाकी सब विधि उपरोक्त प्रकार से ही की जावे। सर्व प्रायश्चित्त आदि केवल धर्मांतर के द्वारा संचित पाप की निष्कृति के लिये ही नहीं किए जाते। परंतु यह बात सर्वसामान्य है।

चांद्रायण आदि के समान जो प्रायश्चित्त हैं वे व्यवहार में कभी भी प्रत्यक्ष नहीं किये जाते। सब लोग इस प्रायश्चित्त के बदले द्रव्यदान कर मुक्त होते हैं। उसके लिए प्रमाण भी हैं। देखिए-

प्राजापत्याक्रियाशक्तौ धेनुं दद्याद्विचक्षणः।
धेनोरभावे दातव्यं मूल्यं तुल्यमसंशयम्।
मूल्यार्थमपि निष्कं वा तदर्धं वा प्रदीयते॥
कृच्छ्रोऽयुतं तु गायत्र्या उदवासस्तथैव च। स्मृत्यंतरे
धेनुप्रदानं विप्राय सममेतच्चतुष्टयम्॥ पराशरः
प्राजापत्ये च गामेकां दद्यात्सान्तपने द्वयम्।
पराकतप्तातिकृच्छ्रे तिस्रास्तिस्रास्तु गास्तथा॥
चतुर्विंशातिमते॥

इन तीनों वचनों में कहा गया है कि प्राजापत्य आदि प्रायश्चित्तों के बदले, गाय, गाय का मूल्य, निष्क (एक सिक्का) रुपया, आठ आने, या चार आने, कुछभी दान किया जावे। हरेक अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इसका आचरण करे। कारण शास्त्रकारों की भी आज्ञा है कि देश काल और शक्ति का विचार अवश्य करना चाहिए।

सिवा इसके सब स्मृतिकारों का इस विषय में एक मत है कि ये प्रायश्चित्त सब पापों का हरण करते हैं। देखिए :—

पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः।
मनु ११।२५
चान्द्रायणं यावकश्च तुला पुरुष एव च।
गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम्॥ हारित।
यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तं महापातकनाशनम्।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शोधयेन्नात्र संशयः॥उशनाम्
यानि कानि च पापानि गुरोर्गुरुतराणि च कृच्छ्राति
कृच्छ्रचान्द्रैयैःशोध्यन्ते मनुरब्रवीत्। षटत्रिंशन्मत
दुरितानां दुरिष्टानां पापानां महतामपि।
कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव सर्वपापप्रणाशनम्॥ उशना
दुरितमुपपापकं, दुरिष्टं पातकमिति विज्ञानेश्वरः।

इन सब वचनों से ज्ञात होगा कि कृछ्र चांद्राय-

णादि प्रायश्चित्त सब पापों से मुक्ति दे सकते हैं।

यहाँ तक, भ्रष्ट लोगों को शुद्ध कर लेने के विषय में हमने अपने विचार संकलित रूप में प्रकट किए हैं। हम आशा करते हैं कि इनसे शुद्धिकार्य में लगे हुए लोगोंका उत्साह बढकर वे अपना काम अधिक स्फूर्ति से करेंगे और जो लोग शंका कुशंकाओं के कारण इस कार्य से अलग हैं उनकी शंकाएँ नष्ट होकर वे भी इस कार्य में हाथ बटावेंगे। इस शुद्धिकरण के कार्य का महत्व किसी भी विचार-शील मनुष्यको समझाने की हमें कुछभी आवश्यकता नहीं दीख पडती। आज तक धारण की हुई इस उपेक्षावृत्ति का पातक ही हिंदुस्थानको सात करोड मुसलमान और एक करोड ईसाइयों के रूप में सता रहा है। आगे भी यदि हिंदूसमाज की ऐसे ही बने रहने की इच्छा हो तो उसका भवितव्य लिखने के लिए किसी ज्योतिषी की कुछ आवश्यकता नहीं। प्रायश्चित्त लेकर हिंदूसमाज में लौटने के उद्देश से आज हजारों लोग हिंदूसमाज का दरवाजा खट-खटा रहे हैं। क्या हिंदू समाज उनकी उपेक्षा ही करेगा ?

आर्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः।
जानन्तो न प्रयच्छन्ति ते यान्ति समतां तु तैः ॥

अंगिरस मुनि कहते हैं कि प्रायश्चित्त की याचना करने वाले लोगों को जो जानते हुए भी प्रायश्चित्त नहीं देते वे उन्हीं के समान बन जाते हैं।

प्रायश्चित्तके विषय में भी मनूने कहा है —

कृत्वा पापं तु संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥
मनु ११। २३०

, पाप करने के बाद जिसे पश्चाताप होता है वह उस पापसे मुक्त होता है। "अब मैं" ऐसा न करूंगा इस भावना से वह शुद्ध होता है।

कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित्।
(मनु. ११। १९०)

प्रायश्चित्त लिए हुए लोगों की किसी भी कारण से कभी निन्दा या अनादर न करना चाहिए।

इन सब वचनों से शास्त्रकारों की आज्ञाओंको और भगवान् श्रीकृष्ण के संदेश का स्मरण कर और भारत माताकी पुकार सुनकर यदि प्रत्येक हिंदू इस कार्य में साहाय्य करेगा तो अवश्य ही परमेश्वर दयालु होकर भारतरूपी गजेंद्र को मुक्त करेगा।

दीर्घश्वासका महत्त्व।

भोजन के बिना आदमी सप्ताहों तक निर्वाह कर सकता है। जलके बिना घंटों तक वह रह सकता है, किन्तु श्वास के बिना एक क्षण भी प्राणी का जीवन चल नहीं सकता। शरीर के रुधिर की शुद्धी करनेका काम फेफडों का है। ये फेफडे हमारी बहुत ही सुन्दर सेवा करते हैं। हमारे फेफडों द्वारा दिन भर में हमारा शरीर इतना वाप निकाल देता है कि जिस से बारह हाथी मर जांय। प्रति

क्षण हमारे शरीर के पुटों का क्षय होता है। शरीर रूपी शहर में प्रतिक्षण इन पुटरूपी मुरदों का ढेर लग जाता है। किन्तु फेफडों का काम इस बात में बडा हि उपयोगी है। वे बाहर की शुद्ध हवा को इस शहर में ले जाकर प्रत्येक श्वास प्रश्वास द्वारा कार्बोनिक गेस नामक अनुपयोगी तत्त्व को लेकर अपने साथ रक्खे हुये प्राणवायु नामक उपयोगी तत्त्व को उन पुटों को देकर पुनः शरीर में भ्रमण करने के लिये भेज देते हैं। इस प्रकार प्रतिक्षण हमारे शरीर में रचनात्मक और खंडनात्मक क्रियाएं होती रहती हैं। श्वास प्रश्वास के स्वाभाविक सदैव होते हुये भी हमें बहुत बार शिरोवेदना अशक्ति आदिका कुछ अनुभव प्रतीत होने लगता है। क्यों कि हम श्वास प्रश्वास तो करते हैं किन्तु दीर्घ श्वास प्रश्वास नहीं करते हैं। हमारे फुप्फुस्सों की १४०० चौदहसौ फीट जगह का बहुत ही थोडा भाग हम श्वास प्रश्वास के उपयोग में लेते हैं। अतः उपयोग न किया हुआ शेष भाग रोगी बन जाता है, निष्क्रिय बन जाता है, इस लिये हमारे में से बहुत सारे विशाल छातीवाले तथा लाल बुझक्कड जैसे दीखते हुये भी न्यूमोनिया तथा क्षय से मरते दीख पड रहे हैं। अतः बडे शोक के साथ कहना पडता है कि वर्तमान में सभ्य गिनी जाने वाली पजा निर्बल फुप्फुसवाली होती चली जा रही है। बहुत सारे आदमी तो केवल जीने के लिये ही थोडा, श्वासोच्छ्वास ले रहे हैं। उन्हे जरासा परिश्रम लेने से श्वास भर आता है और वे थक जाते हैं। और सर्दी या जुखामके बलिदान बन जाते हैं। वर्तमान सभ्यताका अपना वेग इतना तो बढा है कि इस के साथ साथ रहने के लिये असाधारण फेफडों का तथा दीर्घ श्वास प्रश्वास की शक्ति का होना बडा आवश्यक है किन्तु वर्तमान सभ्यता में गर्क होनेवाली प्रजाओंमें यह बात प्रतीत नहीं होती। गोरीला नामक वानर को उसकी जंगली हालत में से उठा लेकर वर्तमान शहरों में रखने के प्रयोग किये गये तब पता चला कि ये क्षय आदि बीमारियों से मर गये। इसी तरह हिमाच्छादित ध्रुव प्रदेश के निवासी का भी हाल हुआ। कतिपय वर्षोंपर अमरिका में कितने एस्किमा जाति के स्त्री पुरुषों को लाकर रक्खा गया। उन में से एक के सिवाय अन्य सर्व क्षय और न्यूमोनियासे मर गये। इसका क्या कारण? हमारा जीवन वैभवी बन रहा है जीवनकी सादगी में रही हुई उपयोगिता को हम देख नहीं सकते। यदि आज हमें कोई डाक्टर कर्ण नलिका से देखकर कहदे कि तुह्मारे फेफडे अच्छे हैं तो हम मनमाने आहार विहार करने लग जाते हैं। किन्तु हमें यह जानना चाहिये कि अच्छे फेफडोंको अच्छा रखने के लिये सतत प्रयत्न और परवाह की जरूरत है और मुखद्वारा श्वास प्रश्वास न करते हुये नासिका द्वारा ही करना चाहिये। (प्रभात)

एक अद्भुत कूवाँ।

औंधसे करीब सात कोस की दूरीपर चितळी (मायणी) नामक एक ग्राम है। सात आठ मास के पूर्व एक गुजरने अपनी खेती के लिये एक कूवां खोदा। कूवेमें पानी बहुत नहीं लगा, परंतु जो थोडासा आता था वह पीनेसे दस्त लग जाते थे। इस लिये उस गुजरने समझा कि यह कूवां खराब है।

कई दिन पश्चात् कई पथिक मार्गसे जाते थे उन्होंने उस कूवेका पानी पीया उनको भी दस्त लगे, परंतु आश्चर्य यह हुआ कि उनमेंसे एक दमेका रोगी था, उसका दमा बिलकुल हटगया। इससे पता लगा कि इस पानीमें कुछ विशेष औषधिगुण है।

थोडेही दिनोंमें यह आश्चर्यकारक वृत्त सब आसपासके ग्रामोंमें फैलगया और सैंकडों रोगी वहां गये और प्रायः सबको आरोग्य मिला। कई बीमार दमेके थे, कई पेट दर्दके थे और कई अन्यान्य बीमारियोंके थे। महारोग जिसको अंग्रेजीमें लेप्रसी कहते हैं, कुष्टरोग आदीभी इस पानीके पीनेसें आरोग्य को प्राप्त हुए।

इस समय करीब दो तीन सौ महारोगी कुष्ट रोगी उस स्थानपर हैं और प्रायः सभी आरोग्य प्राप्त कर रहे हैं।

प्रतिदिन दोचार सौ मनुष्य उस ग्राममें जाते हैं और हर एक आदमी को दोपैसे देने पर एक लोटा पानी देने का इंतजाम वहां किया गया है। इस समय तक सहस्रों मनुष्य इस जलका अनुभव करचुके हैं और प्रायः सभी को कुछ न कुछ लाभ प्राप्त हुआ है।

जो मनुष्य आना चाहते हैं वे पूनासे रहिमतपुर स्टेशनपर उतरें और वहांसे मोटारद्वारा उस स्थानपर पहुंच सकते हैं।

विशेषतः हम चिकित्सक डाक्टरों और वैद्योंसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस स्थानको अवश्य देखें, उस जल का पृथकरण करें और देखें कि उस जलमें कौनसे द्रव्य हैं और उनसे किन रोगोंकी निवृत्ति होना संभव है।

इस समय भेडचाल चल रही है और कोई ज्ञानी पुरुष वहां नहीं है। इसलिये पृथकरण कर सकनेवाला डाक्टर वहां जाये और उस ग्रामके सभी कूओं के जलका पृथकरण करके देखे कि किस कूवे के जलमें कौनसे गुण हैं तो रोगियों केलिये बडा आराम हो सकता है। हम सुनते हैं कि उस ग्रामके अन्य कूवोंमें भी इसी प्रकारकी शक्ति है। और वहां के नालेके पानीमें भी ऐसी ही शक्ति कुछ अंशमें है।

दूर रह कर पानी मंगवानेसे कार्य नहीं चलेगा क्यों कि हमने यह भी सुना है कि आज कल दोपैसे लोटाभर पानी के लिये लेनेके लालचसे उसमें दूसरा पानी भी मिला देने लगे हैं और इस कारण प्रारंभमें जो गुण लोगोंने अनुभव किया था वह सबको इस समय प्राप्त नहीं होता है। इसलिये विद्वान डाक्टर स्वयं वहां जांय और देखें कि वास्तवमें ठीक ठीक क्या है।
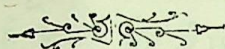
इस समयतक पशुयाग मीमांसा पुस्तक मुद्रणके लिये जो सहायता हमारे पास प्राप्त हो चुकी है वह यह है—

म० सोहनलालजी	२) रु.
ला० राजबहादुर वर्माजी	५)
म० चौथी सिंहजी	१)
पं० रामरतनजी	१)
म० मन्नालालजी	१)
" बुधसिंहजी	॥)
" घीसालालजी	।।)
" दीवान सिंहजी	२)
	१३
पूर्वांकमें प्रकाशित	१३०४॥≡
सर्वयोग	१३१७॥≡

शास्त्रार्थ के विषयमें अंतिमनिश्चय इस अंकमें प्रसिद्ध करनेकी हमारी हार्दिक इच्छा थी। जिस समय श्री-पं० धुंडीराज दीक्षित जी यहां आये थे उस समय हमने उनसे भी यही प्रार्थना की थी। और यहांसे उनके जानेके पश्चात् एक अंतिम पत्र भी उनके नाम हमने भेजा था। उसका उत्तर अभीतक आना चाहिये था परंतु अभीतक आया नहीं। अब हमें आशा है कि हम अगले वैदिक-धर्म में शास्त्रार्थ विषयक आवश्यक पत्र मुद्रित कर सकेंगे। हमारी यह इच्छा थी कि यह शास्त्रार्थ शीघ्रही प्रारंभ होकर समाप्त हो जाता, परंतु अब ऐसी कुछ अवस्था बन गई है कि उसके प्रारंभ होनेका समयही निश्चित नहीं होता है। धार्मिक लोगोंके शास्त्राभिमान का यह भी एक नमूनाही है। हमारा इसमें एकपक्ष होनेके कारण हम इस विषयमें इससमय प्रतिपक्षके विषयमें अधिक नहीं लिख सकते, क्योंकि वैसा करना इस समय उचित नहीं है। परंतु यदि अगले मासतक हमारे पास प्रतिपक्षसे निश्चयात्मक कुछ भी उत्तर नहीं आया तो हम खुले दिलसे इस विषयको जनताके सन्मुख रखनेमें स्वतंत्र होंगे।

वैदिक धर्मका अगला वर्ष।

इसके पश्चात् और दो अंक मुद्रित होनेपर यह वैदिकधर्म मासिकका षष्ठ वर्ष समाप्त होगा। तथा क्रमांक ७३ से इस मासिकके लिये सप्तम वर्ष प्रारंभ होगा। इस सप्तम वर्षसे हम इस मासिकमें विशेष परिवर्तन करना चाहते हैं।

(१) इस समय इसकी पृष्ठ संख्या ३२ है जो अगले वर्ष से ४० चालीस की जायगी।

(२) वार्षिक मूल्य म० आ० से ३ ॥=) है और वी० पी० से ३ ॥।=) रु० है, वह वार्षिक मूल्य ४) रु० होगा। अर्थात् नाम मात्र मूल्यको बढाकर प्रतिमास पृष्ठसंख्या आठ बढा दी जायगी। इससे ग्राहकोंको बडा लाभ होगा।

(३) प्रतिमास सुंदर वेदमंत्र अनेक रंगों में मुद्रित करके वैदिक धर्म मासिक के साथ दिया जायगा। इस का नमूना पाठकों के पास पहुंच चुका है। ऐसे वेदवाक्य घर में दिवारों पर लगाने योग्य हैं। ये वाक्य पढकर मनके अंदर दिव्य तेज का संचार होता है।

(४) प्रतिमास कमसे कम आठ पृष्ठ वेदमंत्रों के स्वाध्याय के लिये अवश्य दिये जांयगे। पहिले यह स्वाध्याय केलिये मंत्र दिये जाते थे, परंतु पाठकों के द्वारा अनेकवार सूचनाएं आनेके कारण उस सिलसिलेको बंद करना पडा।

(५) पाठकोंका कहना यह था कि वे संस्कृत नहीं जानते इसलिये वेद स्वाध्याय के पृष्ठोंसे उनको कोई लाभ नहीं होता। इस कठिनता को दूर करनेके लिये ही-

संस्कृत पाठ माला।

संस्कृत पाठ माला शुरू की गई। चोवीस भागोंमें इसकी पढाई समाप्त होगी। और जो ग्राहक इन चोवीस भागोंको एकवार पढेंगे उनके लिये संस्कृत की कोई कठिनता नहीं रहेगी। पाठकों की इस सुविधाके लिये ही अन्य कार्य छोडकर यह संस्कृत पाठमाला बनायी जा रही है और पाठकोंने इसको अच्छीप्रकार अपनाया भी है। इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि अब प्रायः सभी पाठक वैदिक-धर्म में प्रतिमास वेदका स्वाध्याय पढकर अधिक लाभ उठा सकेंगे और हम भी अपने उद्देश्य को पूर्ण कर सकेंगे।

आशा है कि पाठक इस वैदिक धर्म मासिक के आगामी वर्ष में होने वाले परिवर्तन के साथ पूर्ण सहानुभूति रखेंगे। और अपने इष्ट मित्रोंको ग्राहक बना कर हमारा उत्साह बढायेंगे।

आसनों से लाभ ।

(१)

(ले०--श्री. योगेन्द्रनाथ तिवारी, गुमला, रांची)

आपके आसन नामक पुस्तकको पढ उसके साधनों को स्वयं अभ्यास कर तथा अपने मित्रोंसे अभ्यास करा अत्यंत लाभ उठाया है। विशेष कर आपके शीर्षासन से। मसूडा फूलने और पकनेका रोगनिवारण के लिये तो यह अनन्य दवा और प्राकृतिक साधन है। दांत की कमजोरी और उससे रक्त प्रवाहको थोडे दिनोंके अभ्यास से सदा के लिये दूर कर देता है।

(२)

(ले०- श्री. भक्तरामजी, बी. ए. पलवल.)

पिछले महिने मेरे लडकेको ज्वर होगया था। जिससे वह २१ दिन पीडित रहा। उसकी माता यहां नहीं थी इसलिये मुझे ही उसकी सेवा शुश्रूषा करनी पडी। एक दिन कोई १०।१२ दिन पश्चात् मुझे सिर दर्द होगया। मैं उसके पाससे उठ आता, खुले सहनमें घूमता, प्राणायाम भी करता, सिरका व्यायामभी करता, पर सिर पीडा न गई। ऐसा प्रतीत होता था कि सिर फट जाता है। अकस्मात् मुझे शीर्षासन का ख्याल आगया। मेरे विस्मय का ठिकाणा न रहा जब की पांच मिनिट के शीर्षासनके पीछे सिर दर्दका नाम तक न रहा।

ज्वर दूर करनेको आजमाने के लिये हौसला न हुआ पर सिर पीडा दूर होनेका चमत्कार तो अनुभव में आगया है।

श्रीमंत बाळासाहेब पंत बी. ए. प्रतिनिधि सं. औंधका

स्वाध्याय मंडल में दर्शन ।

औंध नगरमें सन १९१८ में स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई, तबसे हमारी हार्दिक इच्छा थी कि श्रीमान औंध नरेश इस कार्य का अवलोकन करें, यह इच्छा गत ता० ३० अगस्त के दिन सफल हुई। ठीक निश्चित समयपर साढे चार बजे मध्यानोत्तर श्रीमान महाराजा साहेब अपने सब ओहदेदारोंके समेत स्वाध्याय मंडलमें पधारे। भारत मुद्रणालय के सब यंत्रोंका निरीक्षण उन्होने प्रथम किया। वेद छपाईके लिये जो बडा जर्मन यंत्र लाया था उसका निरीक्षण करनेके समय का चित्र इसी अंकमें अन्यत्र दियाही

है। इस समय तक छोटे छोटे ट्रेडलपर ही छपाई हो रही थी, इस कारण समयपर छपाई होना असंभव हो गया था। इस हेतु एक अच्छा जर्मन यंत्र मंगवाया गया है, जो चित्र में दिखाई देता है। यह यंत्र ऐसा है कि इस पर बीस तीस का कागज छपता है और रंगदार छपाई भी होती है। मुंबई के प्रेसों में छपाई करके वेदके सस्ते पुस्तक बिकना असंभव है, इस कारण यह यंत्र मंगवानी पडी।

इसका निरीक्षण करके तथा अन्य यंत्रोंका कार्य देखकर स्वाध्याय मंडल के कार्यकर्ताओंके कार्यका निरीक्षण किया। इस प्रकार संपूर्ण कार्य का अवलोकन करनेके पश्चात् अपने सब ओहदेदारोंके साथ तथा प्रतिष्ठित नागरिकोंके साथ स्वाध्याय मंडलके सभास्थान में श्री० महाराजा साहेब पधारे। वहां सब उपस्थित सज्जन अपने अपने स्थानपर विराजनेके पश्चात् स्वाध्याय मंडलके संचालक श्री० श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीने गत सात वर्षोंके कार्यका संक्षिप्त वृत्त सुनाया, जिसका तात्पर्य यह है —

सात वर्षोंके कार्यका संक्षिप्त वृत्त।

" श्रीमन् महाराजा साहेब और उपस्थित सज्जनों! आज सात वर्ष पूर्व मैं यहां आया और स्वाध्याय मंडल का कार्य प्रारंभ किया। वेदोंका पढना और पढाना अपने संपूर्ण धर्म और माननीय ग्रंथोंका स्वाध्याय करना यह स्वाध्याय मंडल का कार्य है। इस समय स्वधर्मके ग्रंथोंका पठन पाठन पुनः प्राचीन परिपाठी के अनुसार करना अत्यंत आवश्यक है और वही कार्य यथाशक्ति करने का हमारा प्रयत्न है।

" सात वर्षोंमें जो कार्य हुआ है उसका साधारण ब्यौरा यह है—

" इस समयतक करीब सवालाख रुपयोंका व्यय स्वाध्याय मंडलके कार्यमें हुआ है। इसमें करीब आधी रकम वैदिक पुस्तकों की छपाई के लिये व्यय हुई और शेष स्थानिक स्थिर और अस्थिर कार्य के लिये लगी। मकान और यंत्र स्थिर कार्य समझिये और अन्य वेतनादि अस्थिर कार्य समझिये।

" इस समय तक गत सात वर्षोंमें करीब ग्यारह हजार रु. दान के आगये और शेष पुस्तक विक्रीसे जमा हुए। मेरा धन जो लाहौर की मेरी दुकान विक्रित करके प्राप्त हुआ था वह सबका सब इसीमें लग चुका है।

" गत दो वर्षोंसे यहां मुद्रणालय शुरू किया गया इससे पूर्व मुंबईमें सब पुस्तकें मुद्रित होती थीं। मुंबई का मुद्रण अच्छा होता है परंतु बहुतही महंगा पडता है। मुंबईमें जबतक मुद्रण होता था उस समय तक वैदिक धर्म मासिक की पृष्ठसंख्या बढाना करीब असंभव था। अपना मुद्रणालय होनेसे यह संभव हुआ है। वेदोंके सस्ते पुस्तक छापकर प्रसिद्ध करनेकी जो हमारी हार्दिक इच्छा है वह अब होना संभव दीखती है। तथापि प्रतिदिन कार्य की व्याप्तिके साथ कर्जा का बोझभी बडाभारी उठाना पडता है। प्रथम वर्ष जो कर्जा हजार डेड हजार रु० था वह अब पंद्रह हजार सेभी अधिक होगया है। और अब यह कर्जा उठाना हमारी शक्तिसे बाहर हुआ है।

"धार्मिक पुस्तकोंके स्थानपर यदि हम उपन्यासादि पुस्तक प्रकाशित करते तो इतना बोझा हमें उठाना न पडता परंतु वैसा करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

" इस समय हमारे सामने वेदका कार्य पडा है। संपूर्ण मूल वेद शुद्ध पुस्तक रूपसे प्रसिद्ध करनेका कार्य प्रथम करना है। यह कार्य प्रारंभ हुआ है। वेद समन्वय का कार्य भी जारी है। यजुर्वेद के

संपूर्ण अध्यायोंका मुद्रण करना है। ये संपूर्ण कार्य इतने अधिक व्ययके हैं कि इनको किस प्रकार निभाया जा सकता है यह हमारे समझमें ही नहीं आसकता। यजुर्वेदके समन्वयका लेखन प्रारंभ हुआ है। यह ग्रंथ करीब दो हजार पृष्ठोंका बनेगा इसका मुद्रण भी बडा खर्चेका कार्य है।

" मेरा पूर्ण विश्वास है कि जिस दयामय परमात्माने मेरी प्रेरणा इस कार्यमें लगा दी और मेरे द्वारा इतना कार्य करवाया वही आगेकाभी कार्य करायेगा ही। तथा मैं उन धार्मिक प्रवृत्तिवाले सज्जनों का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूं कि जिन्होंने मुक्तहस्तसे इस कार्यमें आर्थिक सहायता की है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमें भी वेही सज्जन इस कार्य की पूर्णता करनेके लिये अपना सहायक हस्त इस वैदिक अन्वेषणकी सहायतार्थ अवश्य भेजेंगे।"

इस आशय का वृत्तकथन होनेके पश्चात् स्वाध्यायमंडलके कार्यकर्ताओंको योग्य पारितोषिक श्री. महाराजा साहेब के द्वारा दिये गये और तत्पश्चात् श्री. महाराजा साहेब का भाषण हुआ, आपने जो वक्तृत्वपूर्ण और उत्साहवर्धक भाषण किया उसका तात्पर्य यह है–

" सभ्य लोगो! जहां सत्यनिष्ठा और तत्त्वकी प्रीति है वहां यश अवश्य मिलता है। जो धार्मिक संस्थाएं चलती नहीं उनके बीचमें किसी न किसी रूप से धार्मिक भावोंका अभावही होता है। स्वाध्याय मंडलका जो सत वार्षिक वृत्त हमने सुना वह बडा समाधान कारक है। इस समय तक सवालाख रु. का व्यय करने की जो शक्ति इस संस्थामें आगई है उसका कारण इस संस्था की जडमें शुद्ध धर्म भाव है और जबतक यह धर्मभाव रहेगा तबतक इस संस्थाकी उन्नति ही होती रहेगी। धार्मिक संस्थाएं धनाभावसे डूबती नहीं, प्रत्युत धर्मभाव के अभाव के कारण डूबती हैं। यद्यपि संचालक जीके ऊपर इस समय कर्जोंका बोझा बहुत बढ गया है, तथापि और दोचार वर्षों तक इसी प्रकार ये कार्य करेंगे तो निःसंदेह इस का बोझा हलका हो जायगा। यह इनका कार्य देखकर हमें बडी प्रसन्नता होगई है और जिस धर्म भावना से यहां कार्य हो रहा है वह देखकर हमें निश्चय होता है कि इनका उद्देश अवश्य ही सफल होगा।"

इस प्रकार श्री० महाराजा साहेब का भाषण होनेके पश्चात् पान सुपारी इतर गुलाब और पुष्पहार अर्पण करने के पश्चात् सबको धन्यवाद गानेके समय मंत्री महोदयजीने कहा कि—

"श्री० महाराजा साहेब तथा सब ओहदेदार और औंधके प्रतिष्ठित नागरिक यहां संमिलित होकर उन्होंने हमारा जो उत्साह बढाया है, उसके लिये हम आप सबका धन्यवाद करते हैं। विशेषतः श्री. महाराजा साहेबका हम सब स्वाध्यायमंडल के कार्यकर्तागण धन्यवाद करते हैं क्यों कि उन्होंने यहां आवश्यक स्थानादि देकर यहांका हमारा कार्य बडा सुगम किया और अब पांच हजार रु० का दान यजुर्वेदके मुद्रण करनेके लिये दिया है। और शर्त यह लगाई है कि संपूर्ण पुस्तकमें एक भी अशुद्धि न रहे। इस शर्तको स्वीकृत करके हमने उक्त दानका स्वीकार किया है और यह कार्य प्रारंभ भी किया है। इस दान से यह बात सिद्ध हुई है कि श्री० महाराजा साहब की सहानुभूति इस वैदिक खोजके साथ पूर्ण है और यह देखकर हमारा उत्साह दुगणा होगया है। हमें पूर्ण आशा है कि भविष्यमें भी हमारे से इस से भी अधिक कार्य हो जायगे और इस कार्यद्वारा धर्मजागृति होने में भी सुगमता होगी।"

अंतमें सब उपस्थित सज्जनोंका पुनः धन्यवाद करने के पश्चात् यह कार्यवाही समाप्त होगई।

प्राचीन भारतकी जनसंख्या।

पुरातत्त्ववेत्ताओंने अनुसन्धान कर निश्चय किया है कि, आर्योंकी संसारमें तीन शाखाएं हैं। एक भारत में, दूसरी ईरान (परशिया) में और तीसरी युरोप में। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रंथों में लिखा है कि, बहुतसे आर्य पृथ्वीके विभिन्न देशोंमें गये और ब्राह्मणोंका दर्शन न होनेसे अनार्यभावको प्राप्त हुये। बहुत काल बीत जानेपर आर्योंकी यही पहचान रह गयी कि, वेदों और वैदिक क्रियाओंसे जिनका संबन्ध बना हुआ है, वे आर्य और इनसे भिन्न अनार्य हैं। यों अब संसारमें २२ करोड भारतवासी ही शुद्ध आर्य रह गये हैं। पारसियोंका धर्म वैदिक धर्मसे मिलता जुलता होनेसे उन्हें अर्ध-आर्य कह सकते हैं, किन्तु युरोपियन तो निरे अनार्य-भावापन्न हो गये हैं। २२ करोड आर्य कबसे रह गये? पुराण-ग्रंथोंमें आर्योंकी संख्या अरबों बतायी गयी है। जम्बूद्वीपमें आर्य रहते थे। यह द्वीप बहुत बडा था। काश्मीर (जम्मू) इसका मध्य या केन्द्र था। अर्थात् पूर्वीय युरोपका कुछ अंश और पश्चिमी आशियाखण्ड मिलाकर जम्बूद्वीप था। इतने विशाल द्वीपकी जनसंख्या अरबों खरबोंकी तादादमें होना असंभव नहीं है। जम्बूद्वीपके अन्तर्गत भरतखण्ड और भरतखण्डके अन्तर्गत आर्यावर्त है। हिमाचल और विन्ध्याचलके मध्यका भाग आर्यावर्त माना गया है। वर्तमान समय में भारतवर्ष की जो चतुःसीमा है, भरतखण्डकी चतुःसीमा इससे बडी थी। काबुल (काम्बोज), खाल्डिया, काकेशस आदि प्रान्त इसीके अन्तर्गत थे। द्वापरके अन्तमें आर्योंकी संख्या १०० करोडसे अधिक होनेके प्रमाण मिलते हैं। यादवोंके अन्तः कलहके समय उनकी संख्या ५६ करोड होनेका उल्लेख हरिवंशमें है। यह चंद्रवंश था। सूर्यवंशके क्षत्रियोंकी संख्या भी कम नहीं थी। क्षत्रियोंके अतिरिक्त अन्य तीन वर्णोंके मनुष्योंकी संख्या जोडनेसे कई करोड हो जाना स्वाभाविक है। यवन, म्लेच्छ, शक हूण आदिके आक्रमणों और अत्याचारोंसे क्रमशः भरतखण्डकी चतुः सीमा संकुचित हुई और आर्योंकी संख्या घटती गयी। बौद्धकालसे और भी आर्य घटे और मुसलमानोंके समय में तो उनकी संख्या बहुत ही घट गयी। फिर भी प्रसिद्ध मुसलमान प्रवासी फरिश्ताने लिख रक्खा है कि, हिंदुओंकी संख्या ६० करोड है। तबसे ५।६ सौ वर्षोंमें अब २० करोड अर्थात् एक तृतीयांश हिंदु रह गये हैं। यदि इस समय हम पतितपरावर्तन और हिंदुसंघटनमें पूरी शक्ति न लगावें, तो कितने दिनोंमें हिंदु जाति नामशेष होजायगी, इसका हिसाब लगानेके लिये किसी बडे भारी गणितशास्त्रज्ञकी आवश्यकता नहीं है। (भारतधर्म)

योगी देव ।

(ले० श्री. मलखान सिंहजी एम् ए. प्रीन्सीपल, श्री. राष्ट्रीय सरस्वती विद्यालय, हाथरस नगर)

रियासत हैदराबाद (दाक्षिण) के जिला बीड में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर श्रीयुत 'देव' शर्मा जी का सन् १९००ई. में जन्म हुआ । योगीजी के पिता का नाम पं० गोकुल प्रसाद था। आपको पांचवर्ष की अवस्था से ही परमेश्वर के ध्यान की बडी चाह थी। जब कभी बचपनमें पिताजीको सन्ध्या करते देखते थे तो आसन मार कर बैठे जाते थे। और मन में ओम् का जप किया करते थे । आपके पिताने आपकी प्रवृत्ति के अनुसार संस्कृत के पढनेही में डाल दिया । संस्कृत में दर्शन शास्त्रों में योग शास्त्रको पढकर आप को योग सीखने की अत्यन्त उत्कण्ठा हुई। इसी विचार से आप हिमालयके जंगलों में कई वर्ष तक भ्रमण करते रहे । परन्तु कोई अच्छा योगाभ्यासी न मिला। हिमालयसे लौटकर आप लखनऊमें पं. पृथ्वीनाथ रंगरू कश्मीरीके वहां छः महीना ठहरे । उसी बीचमें एकदिन पं. जी ने शर्माजी से मेस्मरेजम के विषयमें प्रश्न किया । आपने पन्द्रह दिनकी मौहलत मांगी। ठीक पन्द्रहवें दिन "अघटित घटना पटीयान" परमेश्वरकी कृपासे आपको स्वयं उसका ज्ञान प्राप्त हुआ । और पं० जी के समक्ष कई गण्य सज्जनों को केवल दृष्टि विक्षेपसे बेहोष करके दिखलाया । इसी प्रकार "हिप्नटाइज" के भी क्रमशः एक मासमें कृत्यकर दिखाये । क्रमशः शक्ति का विकास होने लगा। आपसे उडिया स्वामी से भेट होगई। जब शर्मा जी ने अपना सब वृत्त सुनाया तो उन्होंने कहा कि तुमको "योग" के पहिले जन्मके संस्कार हैं तुम बडी जल्दी इसमें उन्नति कर सक्ते हो । इस प्रकार प्रसन्न होकर "समाधी" का पूर्ण ज्ञान करा दिया। अभ्यास एवं परिश्रम से आप एक अच्छे योगी हो गये हैं। इस समय आपकी उम्र पच्चीस वर्ष की है। लोगोंके बहुत कहने सुनने से जो यौगिक शक्ति का एक मामुली चमत्कार हाथरस में दिखाया उसका नीचे विवरण देते हैं ।

यौगिक शक्ति का चमत्कार ।

हाथरस शहर के सुप्रसिद्ध बागला हाईस्कूल में ता. ५ आगस्टकी रात्री में राष्ट्रीय तथा गवर्नमेण्ट स्कूल के विद्यार्थियों तथा शहर के गण्यमान्य सज्जनों, जैसे —

सेठ चिरंजी लाल बागला, प्यारेलाल, श्यामलाल बगला तथा सेठ वंशीधरजी इत्यादि के समक्ष "श्री योगीराज महात्मा देवने, एक मनुष्य को अपने अनेक रूप दिखलाये । वह मनुष्य दाये, बायें, आगे, पीछे, चारों ओर महात्मा देव को ही देखता था । मैं स्वयं उसके सामने जाकर खडा हो गया । और कहा कि देखो

सामने क्या दीखता है । तो वह बोला कि आवाज तो किसी अपरिचित व्यक्ति की सुनता हूं परन्तु महात्मा देवको सामने देख रहा हूं । मैंने उसका मुंह छत की ओर फेर कर पूछा तो फिर भी उसने वही उत्तर दिया और वह चिल्ला चिल्ला कर महात्माजी नीचे आइये कहने लगा । यह मनुष्य उनमें से था जो कि यौगिक चमत्कार देखने आये थे । एवं अपरिचित नागरिक था। उसका यह कहना है कि न मालूम उस समय मुझको क्या होगया था , कि जिधर मैं देखता था उधर योगी जी की मूर्ति ही नजर आती थी।

इस यौगिक चमत्कार को देखकर हाथरसकी जनता में बडी खलबली मची है। कंसवध में जो भगवान श्रीकृष्ण ने अपने अनेक रूप दिखलाये थे वास्तव में वह कथा सच है । इस चमत्कार को देखकर जो कि कृष्ण की विभूतियों को नहीं मानते थे उनको सर पटक कर मानना पडेगी । अन्तमें योगी जी ने अपने लेक्चर में फर्माया कि जो भगवान कृष्ण ने अठारह अक्षौहिणी सेनाके समक्ष जयद्रथ वध में सूर्य के प्रकाश को छिपा दिया था वह सत्य है । श्री कृष्ण भगवान संसार के सबसे बडे योग विद्या के आचार्यों में से थे। उतनी उन्नति आजतक सृष्टि में न किसी ने की न कोई अन्ततक कर सकेगा ।
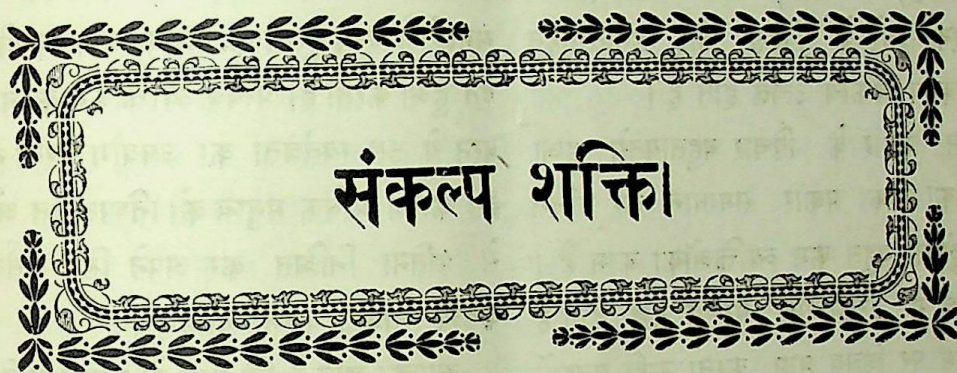
संकल्प शक्ति।

॥ प्रतिमा ॥

परिच्छेद ३ पाठ १

(ले.–श्री. उदयभानु भैय्याजी)

पिछले परिच्छेद में एक पंडित का उदाहरण दिया था उससे आप समझ गए होंगे कि पंडितजी की असफलता का मुख्य कारण उनके विचारों में दृढता का अभाव ही था। पंडितजी की प्रतिमा कि जिनसे वे अपने कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करते थे समय समय पर बदल जाया करती थी और यही कारण था कि वे एक भी काम को पूर्ण नहीं कर सके ।

यदि एक मनुष्य नदी में तैरता हो और वह अपने जाने का न कोई स्थान और न कोई मार्ग ही निश्चित करे बरन नदी के प्रवाह की ओर ही तैरता जाय, जिस ओर नदी का प्रवाह बदले उसी ओर वह भी फिर जाए तो क्या आप अनुमान कर सक्ते हैं कि वह किसी स्थानको पहुंच सकेगा किंचित नहीं, बरन वह अल्प काल में ही थक जाएगा

और संभवतः शीघ्र ही अपना प्राणांत संस्कार कर देगा. ।

संसार रूपी यह एक नदी है यदि इसमें हमने पैर रखकर अपना कोई निश्चित मार्ग नहीं सोचा बरन परिस्थिति के प्रवाह से बहाए गए तो निःसंदेह ही जीवन महान् कष्टमय हो जायेगा और हम अपनी इच्छा के अनुसार कोई भी काम नहीं कर सकेंगे ।

आपको अपने जीवनमें कई समय ऐसा हो चुका होगा कि आप अपने मन में एक कार्य को करने की इच्छा प्रगट करते हैं फिर उसे त्याग करने की सम्मति देते हैं, बहुधा कहते हैं कि एक मन तो मेरा इस कार्य्य को करने की आज्ञा देता है और दूसरा त्याग करने की, मैं इस कार्य्य को करू या नहीं, बडी दुविधा में पडा हूं, क्या करूं, कैसे करूं इत्यादि अनेकानेक एक दूसरे के विरुद्ध और हतोत्साहित करने वाले संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं ।

यद्यपि इस प्रकार के विचार बहुतायतसे हुआ करते हैं, इनका ठीक प्रकार समाधान कर उचित निर्णय पर पहुंचना बहुत कम व्यक्तिओंका काम है । मानसिक क्षेत्र में इच्छाओंके परस्पर युद्ध होते हैं और इस संग्राम पर विजय प्राप्त करना उन्हीं मनुष्यों का कार्य है जो परिस्थिति के स्वामी हैं या जो स्वामी बनने की दृढेच्छा रखते हैं। परिस्थिति के गुलाम शत्रु पर विजय प्राप्त कर स्वतंत्रता एवं सफलता के आनंद से सदा वंचित रहते हैं और वे भीरु मृत्यु के पहिले ही प्राण विसर्जन कर देते हैं ।

वेद कहता है कि 'अदीनाः स्याम शरदः शतं, अजिताः स्याम शरदः शतं' अर्थात् हम आयुष्य भर स्वतंत्र और स्वाधीन बनकर रहें, सर्वत्र हम विजय को प्राप्त करें, शत्रुओंसे हमारा बल बढाकर सदा विजयी होंवे।

इच्छा युद्ध का अन्त करने के लिए प्रतिमा ही उत्तम शस्त्र है। परस्पर एक दूसरे के विरुद्धइच्छाएं प्रतिमा के साधन से शांत की जा सक्ती हैं। अनेक इच्छाओं की एक इच्छा बनाकर सारी शक्ति उसी ओर प्रवाहित की जा सक्ती है ।

विचार शक्ति और प्रतिमा से रहित पुरुषों में जब कभी एक दूसरे के विरुद्ध इच्छाएं होती हैं तो उनपर ठीक विचार न कर सकनेके कारण वह किसी निर्णय को नहीं पहुंच सक्ते। वे "करुं या नहीं करुं"के फेर में ही पडे हुए इधर उधर गोते खाया करते हैं फलतः वे किसी परिणाम को न पहुंच कर अशांत हो जीवन व्यतीत करते हैं ।

संसार ऐसे व्यक्तियों से भरा हुआ है कि जो कार्य्य दूसरा प्रारंभ करे उसे आपभी विना विचारे शुरु कर देते हैं वह इस लिए नहीं कि वे उसे अपना कर्तव्य समझते हैं बरन् दूसरों का अनुकरण करनाही उनकी आदत हुआ करती है। प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है बरन ये उस स्वतंत्रता का उपयोग करना नहीं जानते। इस कारण प्रत्येक मनुष्य को निष्पक्षपात और स्वतंत्रता से प्रतिमा निश्चित कर अपने लिए कर्तव्य और अकर्तव्य निश्चित करना चाहिए ।

आपको ज्ञात है कि तोल के साधन(प्रातिमा) निश्चित होने के विना कोई "कम तोला या अधिक तोला गया" ऐसा नहीं कह सक्ता क्यों कि निर्णय करने का कोई साधन निश्चित नहीं है । जब तक कोई वस्तु अच्छी न समझ ली जाए तबतक कोई वस्तु बुरी नहीं कही जा सक्ती। न्यायाधीश के सन्मुख न्याय और अन्याय के जांचने निमित्त नियम निश्चित होते हैं तब ही वह एक निर्णय कर सकता है। एक विद्यार्थी ने एक भिन्न हल की हो बरन जबतक उसका उत्तर निश्चित नहीं कर लिया जाये तब तक उसे कोई गलती या सही नहीं कह सक्ता । अर्थात् तबतक प्रतिमा

ने तोलनेका साधन निश्चित न कर लिया जाए तब तक छोटे या बडे गुणवान या दोषयुक्त, भला या बुरा नहीं कहा जा सक्ता।

इस कारण प्रत्येक मनुष्यको अपनी प्रतिमा प्रथम निश्चय कर लेना चाहिए इसके विना कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं हो सक्ता और यावत् ज्ञान यथार्थ न होगा तावत् कर्म ठीक नहीं हो सक्ता और कर्मके विधि पूर्वक न होने से सफलता नहीं प्राप्त हो सक्ती ।

भिन्न भिन्न मनुष्यों की भिन्न भिन्न प्रतिमाएं हो सक्ती हैं। जिस प्रकार एक सच्चा वैदिक धर्म्मी अपने आचार और विचार के तोलने अर्थात् उनको भले और बुरे कहने या ठहराने का साधन वेद समझता है। वेद प्रतिपादित- सिद्धांतों के अनुकूल व्यवहार और विचारों को भला और उसमें (वेद) निषिद्ध कर्मों को बुरा समझता है। जिस प्रकार राम का सच्चा भक्त अपने व्यवहारों की तुलना राम के किए हुए कामों से करता है और उन्हीं कर्मों को और उनकी आज्ञाओं को भलाई और बुराई जांचने का साधन समझता है, जिस प्रकार एक सच्चा मुसलमान कुरान की आयतों में प्रतिपादित कर्मों को ठीक और उनके विरुद्ध कर्मों को निषिद्ध ठहराते हैं ठीक इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपने व्यवहार और विचारों को ठीक पहिचानने के लिए अपनी अपनी प्रतिमा निश्चित कर लेनी चाहिए।

हम न तो किसी वेद की ऋचा और न कोई आयत को अपनी प्रतिमा मानने के लिए कहेंगे बरन् प्रत्येक मनुष्य को इस कार्य्य में सब प्रकार के बंधनों को चाहे वे धर्मिक हों या सामाजिक, थोडी देर के लिए मुक्त होकर स्वतंत्रता से विचार करना चाहिए। स्मरण रखिए इस प्रकार स्वतंत्रता और निर्भयता से विचार नहीं करने से आप और किसी को नहीं बरन अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात करेंगे। यह कार्य्य आपका है और आपही को विना किसी की सहायता के निश्चय करना चाहिए।

हम महापुरुषों के वाक्यों को प्रतिमा निश्चित करने के लिए विरोध नहीं करते और न हमारी बतलाई हुई प्रतिमा वा आग्रह करते हैं बरन् स्वतंत्र और निर्भिक विचार पर जोर देते हैं।

भगवान् दयानंद ने अपनी प्रतिमा वेदों को निश्चित कीथी अपने विचार और कर्म को वेदों से मिलाते थे और वेदानुकूल आचरणों को विहित और वेद विरुद्ध को निषिद्ध बतलाते थे।

महात्मा गांधी और नेपोलियन की प्रतिमा स्वतंत्रता थी। एककी आशा देशको स्वतंत्र बनाने की है और दूसरेकी अपने आप स्वतंत्र बनने की थी।

प्रातःस्मरणीय राम और कृष्ण की प्रतिमा, धर्म थी। और उनके ऊपर असह्य आपत्ति से युक्त कार्य्य आए बरन उन्होंने अपनी प्रतिमा को नहीं छोडा।

भिन्न भिन्न महात्माओं की हमने भिन्न भिन्न प्रतिमाएं हमने उपर्युक्त वर्णित की हैं बरन् हमारा उद्देश उनमें से किसी एक अथवा सब का आपकी प्रतिमा बनाने का नहीं है। प्रतिमा किसी दूसरे पुरुष की कही हुई इतनी लाभदायी नहीं होती जितनी कि वह होगी जो आप स्वयं स्थिर करेंगे। उपर्युक्त वार्णित प्रतिमाओं में न कोई गुप्त शक्ति है और न किसी तरह का जादू जो आपकी निर्मित प्रतिमा में न हो। आप चाहें तो उनमें से एक पसंद कर लें या स्वयमेव अन्य कोई निश्चित करें।

जिन महात्माओं के नाम हमने ऊपर बर्णन किए हैं यद्यपि सब लोगों के हृदय में इतना समान आसन नहीं है तथापि निष्पक्षपात इतिहासों में इनका नाम मोटे और सुनहरी अक्षरों में लिखा जाता है। और

इसका कारण केवल यही है कि इन महा-पुरुषों ने अपने आपको प्रतिमासे बांधलिया था। अनेक आपत्तियां, असह्य क्लेश और अवर्णनीय बुराइयें आईं बरन अपनी प्रतिमा और उद्देश को नहीं छोडा। केवल प्रतिमा-दृढता और उसका अनुकरण ही इसकी सफलता की कुंजी थी।

प्राचीन ऋषियों की प्रतिमा दो अक्षरों में वर्णित की जा सक्ती है और वे अक्षर हैं अभ्युदय और निश्रेयस। शरीर, परिवार, गृह, जाति, समाज, नगर, राष्ट्र आदिकी उन्नति और इनकी शक्तियों का विकास अभ्युदय है और आत्मा, बुद्धि, मन इंन्द्रिय आदि की उन्नति और विकास निश्रेयस कहाता है।

अभ्युदय और निश्रेयस मिलकर ही मनुष्य की सच्ची उन्नति कर सक्ते हैं। इससे बढकर सर्वांगपूर्ण प्रतिमा और कोनसी हो सक्ती है कि जो मानवजीवन के प्रत्येक उन्नति के मार्ग में अपने वास्तविक उद्देश को पूर्ण कर सके।

हमने अनेक प्रतिमाओं का वर्णन किया है बरन् हमारा उद्देश किसी एककी प्रशंसा करने का नहीं है, हम कह चुके हैं और फिरभी कहते है कि प्रत्येक मनुष्य को पर्याप्त विचार करने के पश्चात् ही प्रतिमा निश्चित करनी चाहिए।

मनुष्य की प्रतिमा से उस मनुष्य के विचारों में प्रौढता, कर्मानुरागता और मानसिक शक्ति का परिचय मिल सक्ता है। समय समय पर अनेक इच्छाएं उत्पन्न होकर मनुष्य को अपने निश्चित संकल्पसे पतित करने लगेंगी बरन ठीक उसी समय में यह प्रतिमा सच्चे मित्र का कार्य करेगी।

यह प्रतिमा आपके आदर्श का परिचय देती हुइ प्रलोभनों का नाश करेगी जो, अन्यथा समय पाकर शक्तिशाली मनुष्यों को भी पतित कर देते हैं।

किसी कार्य्य को करने या न करने तथा ग्रहण या त्याग करने के विचार में जहां साधारण मनुष्य कई दिन और कई महिने व्यतीत कर देते हैं वहां प्रतिमा का निश्चित किया हुआ व्यक्ति एक मिनिट में अपना निश्चय कर सक्ता है। जिस प्रकार जहाज का निपुण संचालक अपने जहाज को चलाने के समय अपने सन्मुख मार्ग का चित्र रखते हुए जहाज को सुरक्षित पार कर सक्ता है ठीक इसी प्रकार मानव जीवन में आप को कठिनाइयां, आपत्ति और प्रलोभनों से टक्कर खाकर निरुत्साहित बना क्लेशमय अवसरों से बचाकर यह प्रतिमा सफल जीवन बनावेगी।

अपनी प्रतिमा को भलेही वह कोनसी भी क्यों न हो, कभी भी भुलना नहीं चाहिए और चाहे वैसी भी आपत्ति आवे उसे नहीं छोडना चाहिए। आप उस प्रतिमापर दृढ विश्वास रखिए और इतनी श्रद्धा और भक्ति रखिए कि उससे विरुद्ध कोई भी काम या मनुष्यसे जो आपको अपनी प्रतिमासे पतित करनेका प्रयत्न करे, अत्यंत क्रोधित हो जावे।

निःसंदेह प्रतिमा का निश्चय करना जितना सरल है उतना उसको कार्यरूपमें परिणित करना सरल नहीं है। एक कागज और पेंसिल लेकर अपने फुरसतके समयमें कोई भी मनुष्य थोडासा विचार कर प्रतिमा को निश्चित कर सक्ता है और बहुत से मनुष्य इसी निश्चय से ही अपने पुरुषार्थ की इतिश्री समझ कर फल ढूंढते हैं बरन इससे लाभ के बदले हानि ही सहना पडती है। प्रतिमा का निश्चय फल नहीं प्राप्त करा सक्ता बरन् उसका अनुशीलन वांछित फल दे सक्ता है।

इस कार्य्य को सुगम बनाने के लिए हम अपने पाठकोंसे निवेदन करते हैं कि यदि आपने कोई प्रतिमा निश्चित कर ली है और उसके अनुसार कार्य्य

करना कठिन प्रतीत होता हो तो उसे छोडें नहीं बरन जिस प्रकार आपने शुभ कर्मों की तुलना करने निमित्त यह प्रतिमा निश्चित की है ठीक इसी प्रकार बुरे कामों की परीक्षा करने निमित्त एक और प्रतिमा निश्चित कीजिए। यदि हम पहिली प्रतिमा को ग्रहण प्रतिमा के नाम से कहें और दूसरी को जो अभी निश्चित की है, त्याज्य प्रतिमा कहें तो ग्रहण प्रतिमा एक और आपके उच्च आदर्श और उन कर्मों को कि जिनका अनुसरण करना चाहते हैं सूचित करेगी, तो दूसरी और त्याज्य प्रतिमा उन आदर्शों को तथा कार्यों को सूचित करेगी कि जिन्हें आप सर्वदा घृणा की दृष्टी से देखते हैं। जैसे यदि आपने ऋषिप्रणीत प्रतिमा अभ्युदय एवं निश्रेयस को निश्चित की है और यदि उसे अपनी ग्रहण प्रतिमा मानते हैं तो अन्-अभ्युदय और अनिश्रेयस आपकी त्याज्य प्रतिमा होगी। उन्नति के बदले अवनति, नाश, अधोगति और शक्तियों की संकुचितता अनभ्युदय और अनिश्रेयस कहाती हैं।

प्रत्येक कार्य्य को करने के पहिले उसकी तुलना प्रथम अपनी प्रतिमाओं से करनी चाहिए, और पूछना चाहिए कि क्या यह कार्य्य अभ्युदय और निश्रेयस को प्राप्त कर सक्ता है? यदि उत्तर संतोषजनक मिले तो उसे अपना कर्तव्य समझकर आरंभ कर देना चाहिए और यदि उत्तर "नहीं" में मिले तो फिर त्याज्य प्रतिमा को लेकर पूछना चाहिए कि क्या यह कार्य्य अनभ्युदय और अनिश्रेयस प्राप्त करा सक्ता है? यदि उत्तर संतोष जनक "हां" में मिले तो उस कार्य्य का सदा त्याग कर देना चाहिए क्योंकि उससे आपका नाश और अवनति होगी।

जिस प्रकार कम या अधिक की जांच करने के लिए एक सबसे बडा और एक सबसे छोटा बाट होता है और इनके बीच और भी कई बाट रहते हैं और वे अपने क्रमानुसार संख्या पाते हैं ठीक इसी प्रकार आपभी एक कागज पर ऊपर अपनी ग्रहण प्रतिमा लिख लीजिए और सबके नीचे त्याज्य प्रतिमा; और इन दोनों के बीच में आपभी अपनी बुद्धि और तर्क के अनुसार और दूसरी प्रतिमाएं निश्चित कर उनकी योग्यतानुसार क्रम से लिखिए। शुभकर्म में प्रवृत्त करनेवाली प्रतिमाएं ऊपर और अशुभ कर्मसे निवृत्त करने वाली प्रतिमाएं अपनी योग्यतानुसार नीचे लिखिए।

सबसे प्रथम नीचे की प्रतिमा से कार्य्यारंभ कीजिए और उत्तरोत्तर उन्नति करते जाइए। ये सब प्रतिमाएं आपको कंठस्थ होनी चाहिए कि जिससे आप इन्हींका उपयोग सर्वत्र कर सकें।

प्रलोभन के वशीभूत हो, या किसी के खंडन किए जाने पर या किसी के विरुद्ध मत को सुनकर या और किसी किए गए प्रयत्नसे कभी भी अपनी प्रतिमा में परिवर्तन नहीं करना चाहिए। इस प्रतिमा में आप इतना प्रेम, श्रद्धा एवं दृढता रखिए कि आप इसे कभी भी नहीं छोडे, जबतक कि आप स्वयंही एकांत और स्वतंत्र विचार-द्वारा अपनी बुद्धि से उसमें शोध करना योग्य न समझें।

हम किसी अन्य पुस्तक में इसका विवेचन लिखेंगे कि तीव्र बुद्धि भी सदा न्याय नहीं करती और न इच्छाही सर्वदा हितकर पदार्थों की प्राप्ति में होती है। इस कारण, लोग बुरे कहते हैं या जनता इस सिद्धांत को घृणा की दृष्टि से देखती है या स्वार्थवश होकर अपनी प्रतिमा का उलंघन करना अच्छा नहीं।

जो कुछ भी हमने उपर वर्णन किया है उस सिद्धांत के आविष्कर्ता न हम हैं और न इसका गौरव आधुनिक जगत के किसी पुरुष को दिया जा सक्ता है, बरन ये सिद्धांत बहुत पुराने हैं और ऋषियों की सूक्ष्म

बुद्धि का परिचय दे रहे हैं । पूर्व काल के इतिहास से ज्ञात होता है कि इस सिद्धांत का प्रचार उस समय में अधिक था और मनोविज्ञान शिक्षा का मुख्य अंग समझा जाता था और यही कारण है यद्यपि इसका प्रचार उसकी वास्तविक दशामें नहीं हैं तथापि उसकी परिवर्तित दशा में अवश्य है।

यह एक सर्वमान्यनियम है कि प्रत्येक नियम की वह दशा जो उसके निर्माण कर्ता के काल में रहती है उसकी मृत्यु के पश्चात् नहीं रहती। काल के साथ साथ उस नियम में भी परिवर्तन हो जाता है । इतिहास इसका साक्षी है।

ऋषियों ने प्रतिमा का महत्व बतलाया, इसकी शिक्षा का प्रचार किया, इसकी पूर्ति के लिए त्याग और तप आवश्यकीय बतलाया यहां तक कि प्रतिमा के लिए सर्वस्व बलिदान देने को कहा। शिक्षा प्रणाली भी इसी प्रकार रखी जाति थी कि ये भाव जनता में जागृत और प्रबल हो जाते थे। धन्य है उनकी शिक्षा प्रणाली को कि यद्यपि इतना काल व्यतीत हो चुका है और उनके सिद्धांतोंका प्रचार बिलकुल नहीं है तथापि आजभी उन ऋषियों की संतान में अपनी प्रतिमा को निभाने की शक्ति अवश्य है । हम कह सक्ते हैं कि हमारी और ऋषियोंकी प्रतिमा में अंतर हो गया है । जो प्रतिमा उनकी थी वह निःसंदेह हमारी नहीं है तथापि प्रतिमा में दृढता और उसको कार्य्य परिणित करने की शक्ति में उतना परिवर्तन नहीं हुआ है कि जिसे हम " नहीं " कह सकें ।

कई लोगों को इसमें संदेह है बरन देखिए-प्राचीन काल के राजालोग अपनी प्रजा के हित में अपना हित समझते थे। राजा दशरथ को रामचंद्र के राज्याभिषेक करने की तीव्र इच्छा होने पर भी अपने सिद्धांत के अनुकूल प्रजा जनों को बुलाकर उनसे परामर्श ली। महाराजा रामचंद्रने अपनी प्रजा को प्रसन्न करने के लिए अपनी स्त्री तक का त्याग कर दिया और अपनी प्रतिमा को निबाही। आधुनिक काल के राजा अपने हित में प्रजाका हित समझते हैं और अपनी इस प्रतिमा को निभाने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं और रास्ते में चाहे कितनी भी आपत्ति आवे सबको सहन करते हैं। यह हमारा प्रत्येक का अनुभव है। दोनों राजाओं में भेद है तो केवल प्रतिमाका; कार्य्यपरिणितता का नहीं ।

महाराजा रामचंद्र ने रावण को मारने के लिये प्रत्येक उचित उपाय सोचे केवल उसके दुःष्ट स्वभाव और स्त्रीजातिका मान रखने के लिए । आज हमेंभी देश में असंख्य उदाहरण मिलते हैं कि जहां एक भाई अपने भाई का खून करने के लिए प्रत्येक अनुचित उपाय सोचता है केवल उसके भाई होने के कारण और अपना मान रखनेके लिए । यदि और कोई दुश्मन हमें लूट भी ले जाए या अन्य कोई अत्याचार कर जाए तो हम स्वतः ही उससे क्षमा याचना कर लेंगे दोनों के कार्य्य में कष्ट है, त्याग बुद्धि है, परिश्रम है बरन यदि अंतर है तो केवल प्रतिमाका। एकने अपने देश की रक्षाके लिए दुश्मनसे युद्ध किया तो दूसरे ने अपने मान के लिए गृह युद्ध किया। बरन त्याग और तपका अभ्यास (न्यूनाधिक अंशमें) अवश्य है ।

आदर्श चरित्र वाले भरत ने निर्दोष होते हुए भी रामचंद्र के चरण कमलों में प्रीति रखकर अपना भ्रातृधर्म निबाहा । लक्ष्मण ने चित्रकूट पर्वत पर भरत मिलापके समय भरत का हनन करने में कोई दोष न बताकर रामचंद्रसे उस कार्य्य के लिए आज्ञा मांगी । महाराजा रामचंद्र ने भी वनोवास से लौटते समय हनुमान से कहा था कि तुम जाकर

भरत की अवस्था पर विचार करना, अयोध्याके लोगों ने उसे कटु शब्द कहकर अनेक बार धिक्कारा और वनोवास के भयानक षडयंत्र का मुख्य कर्ता समझा बरन उस विमल हृदय ने सब कुछ सहकर अपना धर्म निबाहा । उसमें सहनशीलता और धर्मपरायणता ही अधिक थी। आज भी इन शक्तियोंसे युक्त पुरुषों की कमी नहीं है। एक अछूत चाहे हमसे उत्तम प्रकार रहे, परमेश्वर की भक्ति करे, मांस, मदिरा का सेवन चाहे न करे, हमारे ऊपर चाहे कितना भी उपकार करे बरन वह भले ही तडफ तडफ कर मरजाए बरन हमारा हृदय कभी उस से मस न होगा। हमारी क्या अवस्था है, देश की क्या हालत है, विधर्मीयोंद्वारा हमारे माता और पिता की क्या दशा हो रही है बरन हमारे धर्मका त्याग करना महापाप है चाहे सर्व नाश ही क्यों न हो जावे । देखिए ? कितनी दृढता और धर्मपरायणता है । हमें तो दोनों में समानता शक्ति दृष्टिगोचर होती है। हम हमारी समझ से हिन्दुओं-को कमजोर नहीं कहते बरन हिंदुओंके आदर्श को दुर्बल कहेंगे। किसी महात्माने कहा है कि उपदेशसे आदर्श अधिक प्रभावोत्पादक होता है । हिंदुओंके आदर्श के साथ साथ उनकी प्रतिमाएं भी कमजोर हैं कि जिनके कारण उन्हें कर्तव्याकर्तव्य भेद नहीं ज्ञात होता ।

हम आर्य्य–समाज और हिन्दू समाज की ओर जब विचार फैलाते हैं तो हमें इस सिद्धांत का रहस्य और भी खुल जाता है । आर्य्य-समाज में जीवन है, उत्साह है, कार्य्य करने की रुचि है और संगठन है बरन हिंदू समाज इतना विशाल होते हुए भी निर्जीव है। जब आर्य्य-समाज में सब लोग हिंदू-समाज के ही हैं तो फिर क्या कारण है कि दोनों में इतना भेद है। महर्षि दयानंद ने इस सिद्धांत को अच्छी तरह समझ लिया था और इसी करण उसने सबसे प्रथम आर्य्य-समाज का आदर्श और प्रतिमा बदल दी।

हम हिन्दू-समाज को कम जोर नहीं कह सक्ते बरन उसका आदर्श शिथिल है। यदि हिंदू समाज बल-हीन होती तो गुरु गोविंद सिंह पंजाब में उस भयंकर समय में हिन्दू राज्य की स्थापना नहीं कर सक्ते थे, वीर शिवाजी औरंगजेब सदृश एक योग्य मुगल सम्राट् को परास्त नहीं कर सक्ता था।

हमारा विषय इस पुस्तक में हिंदू-समाज पर प्रकाश डालना नहीं है बरन हमारा यह अभिप्राय था कि किस प्रकार उद्देश के निश्चित करने से व्यक्ति और समाज में एक नवीन शक्ति और उत्साह उत्पन्न होता है कि जिसकी सहायता से कठिन से कठिन कार्य्य साध्य हो सक्ते हैं। पहिले उद्देश में परिवर्तन होता है तत्पश्चात् शक्ति में विभिन्नता आती है ।

इस कारण जीवन के उद्देश और प्रतिमा को निश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। संकल्परूपी यंत्र में नवीन शक्तिका संचार और उसका मार्ग निष्कंटक हो जायगा।

पाठ २

तुलनात्मक विचार ।

मनुष्यकी इच्छाएं अनन्त हैं; वह अनेक कामों को करना चाहता है बरन् उसकी शक्तियां परिमित होने के कारण वह सब इच्छाओंको पूर्ण करने में असमर्थ है। मन में प्रवेश करने के लिए किसी भी इच्छा को रोक ठोक नहीं है। चाहे कोनसी भी इच्छा चाहे जिस समय मन में जा सक्ती है । एक इच्छा मन में उत्पन्न होती है वह अपने विषय को प्राप्त करने के लिए संकल्प की शक्ति का उपयोग करती ही है कि थोडी देरके पश्चात् दूसरी इच्छा उत्पन्न होती है और वह भी अपने विषय को प्राप्त करने के लिए संकल्पशक्ति

का आवाहन करती है और संकल्प- शक्ति जो एक ओर लगी हुई थी अब दो ओर विभक्त होगई। इसी प्रकार संकल्प शक्ति कई भागों में विभक्त होकर शिथिल होजाती है क्योंकि इच्छा के लिए तो कोई रोकटोक है ही नहीं.

यदि अपने देशकी रक्षा के लिए एक सेना की आवश्यक्ता पडे और उस सेना में प्रवेश होने के लिए कुछ भी नियम न हो तो निःसंदेह उस सेना में मनुष्यों की संख्या अधिक हो जाएगी बरन उस सेनाकी शक्ति नहीं बढेगी और न वह सेना ही सेना का काम कर सकेगी। उस सेना से देश की रक्षा नहीं हो सक्ती क्योंकि उसमें आपके शत्रु भी आकर रहेंगे छोटे बच्चे जो कि केवल भार रूप होंगे वे भी आकर उसमें मिल जाएंगे और परिणाम यह होगा कि रक्षाके बदले वह सेना नाशका कार्य करेगी। ठीक इसी प्रकार यदि इच्छाओंके लिए भी कोई नियम नहीं रखा जायगा तो वे भी कल्याण करने के बनिस्बत नाश करेंगी।

यदि देश का प्रबंध आपके हाथमें दे दिया जाय और यही सेना भी दे दी जाय तो फिर आप क्या करेंगे। क्या इस प्रकार के अनुपयोगी, भार रूप और अहित चाहने वाले सिपाहीयों से युक्त सेना देश की रक्षा कर सक्ती है सर्वदा असंभव है। उत्साही और शक्तिसंपन्न दस योद्धा जो कार्य्य कर सक्ते हैं उतना कार्य्य भी १००० मनुष्य ऐसी सेना में नहीं कर सक्ते। क्योंकि उनके अन्दर देशसेवाके भाव नहीं, प्रेम नहीं, संगठन नहीं, शक्ति नहीं, उत्साह नहीं, और न कार्य करनेकी कोई प्रणाली है, इस कारण सबसे प्रथम आपको इस सेना का संगठन ठीक करना पडेगा।

सबसे पहिले सारी सेना को अपने सन्मुख खडा कराइए और प्रारंभसे अंततक अवलोकन करिए। (२) बालक और वृद्ध आदमी जो शक्ति से हीन है और सैनिक कार्य्य के अयोग्य हैं निकाल दीजिए। (३) जो अपनी इच्छासे नौकरी करना चाहें उन्हें ही रखिए और औरोंको पृथक करिए! (४) जिन्हें आपके देश का गौरव नहीं हैं, देश प्रेम नहीं है उन्हें पृथक करिए। (५) बचे हुओं में तुलनात्मक दृष्टि से देखिए जो अधिक साहसी, पुरुषार्थी अनुकूल एवं आज्ञापालक हो उन्हें रखिए और बाकी को निकाल दीजिए। अब आपकी सेना उन्हीं मनुष्यों से युक्त मिलेगी जो आपमें प्रेम रखते होंगे और सैनिक कार्य्य के लिए सर्वदा योग्य हैं।

आपका मन भी ठीक इसी प्रकार की सेना के समान है; जिसमें असंख्य इच्छाएं प्रवेश हो चुकी हैं। कोई अनुकूल है तो कोई प्रतिकूल, कोई हितकारी है तो कोई अहित करनेवाली; जितनी इच्छाएं हैं न उन सब की पूर्ति हो सक्ती है और न उन सबके लिए एक समयमें प्रयत्न हो सक्ता है क्योंकि उनमें कई इच्छाएं ऐसी भी हैं जो दूसरी इच्छाओं के प्रतिकूल हैं और एक की पूर्ति दूसरी इच्छाओं के बलिदान की आवश्यक्ता रखती है। इच्छाओं के अनेक होनेके कारण मनुष्य की शक्तियां विभक्त होकर कमजोर हो जाती हैं और चिन्ता के कारण शिथिल पड जाती हैं। यही कारण है कि परिस्थिति के गुलाम मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार कोई कार्य्य नहीं कर सक्ते।

इस कारण यावत् आप अपनी वास्तविक इच्छा का स्वरूप नहीं पहिचानेंगे तावत् आप उसकी पूर्ति नहीं कर सक्ते। जिस प्रकार नियमों द्वारा उक्त सेना अल्प व्यय में सुव्यस्थित रूप में परिणित की जा चुकी थी ठीक इसी प्रकार थोडे समय में और थोडे परिश्रम से वांछित फल की प्राप्ति के लिये इच्छाओं को नियमों से बांधने की आवश्यक्ता है।

उक्त सेना के अनुसार यहां भी अपनी सब इच्छाओं को एक कागज पर लिख लीजिए। चाहे इच्छा

हार्दिक हो या किसी अन्य कारणसे मनमें उत्पन्न हुई हो, प्रत्येक इच्छा को लिखिए। तत् पश्चात् अपनी प्रतिमाओं से तुलनात्मक विचार कीजिए। जो त्याज्य प्रतिमा का "हां" में उत्तर दे उस इच्छा को उस पत्र पर से काट डालीए और जो ग्रहण प्रतिमा का "हां" में उत्तर दे उसे रहने दीजिए। तदनन्तर जो इच्छाएं स्वयमेव उत्पन्न नहीं हुई बरन अपर व्यक्तियों के कथन मात्रसे इच्छाके रूप में आचुकी हैं और जिन का निश्चित रूप से चाह नहीं है उन्हें भी पृथक कर दीजिए। इस समय कई इच्छाएं इस प्रकार की भी होंगी जो परिणाम में एक होंगी बरन संख्या और शब्द भेद से पृथक पृथक गिनी गई होंगी; इस कारण इस प्रकार की भिन्न भिन्न इच्छाओं को भी कि जिनका फल एक ही हो काट डालिए।

जिन इच्छाओं की पूर्ति में आनंद कम है बरन परिश्रम अधिक है उनको भी काट डालिए। इस समय तर्कका यथावत् उपयोग कर परिश्रम, आनंद, समय और दृढता का विचार कीजिए। जिनकी पूर्ति में कम परिश्रम, आनंद अधिक, कम समय और जिनकी मन में स्वाभाविक दृढता हो उन्हीं इच्छाओं को रखिए अब यह विचार कीजिए कि आपकी इच्छाओं में कोई एक दूसरे के प्रतिकूल इच्छा तो नहीं है, यदि अभी तक भी इस प्रकार की कोई इच्छा जीवित रह चुकी हो तो उन विरुद्ध इच्छाओं में फिर आपस में तुलना कीजिए और अपनी बुद्धि का सदुपयोग करते हुए दोनों में से एक को पृथक कर दीजिए।

कृपया दया और क्षमा का उक्त विवेचन में तनिक भी उपयोग न करिए क्योंकि संग्राममें दुश्मनोंको सच्चे वीर दया और क्षमा का परिचय नहीं देते बरन रणभूमि में तो दृढता तथा शक्ति का पूर्ण उपयोग करना चाहिए।

इस इच्छा-युद्ध के उपरांत अब वेही इच्छाएं बचेंगी कि जो आपके सर्वदा अनुकूल हैं और जो अब पहिले के बनिस्बत बहुत न्यून संख्या में होंगी। ये इच्छाएं अवश्य वे होंगी जिन्हे आप अपने हृदयसे चाहते होंगे और जिनकी पूर्ति करने में आपको कष्ट भी प्रतीत न होगा और यही इच्छाएं आपकी प्रकृति का वास्तविक परिचय दे सकेंगी। इस तुलनात्मक विचार में आप अपनी बुद्धि, स्वतंत्र विचार, अनुभव, स्मृति और तर्क का आवश्यक उपयोग कीजिए।

कई मनुष्य इच्छा के इस निर्णय पर विना स्वतंत्र विचार के पहुंच जाते हैं बरन इस प्रकार के निश्चय से यथेष्ट सिद्धिको कभी नहीं प्राप्त होते!

तुलनामूलक विचार की सहायता उद्देश को निश्चित करने में ही आवश्यक नहीं है बरन उसे कार्य्य रूप में परिणत करने के लिए भी आनिवार्य है! हम हमारे पाठकों के सन्मुख एक दृष्टांत रखते हैं उससे ज्ञात हो जायगा कि तुलनात्मक विचार उद्देश को कार्य्य रूप में परिणित करने के लिये कितना उपयोगी है।

एक यौवन पुरुषने विवाह करना निश्चित किया। उसकी बुद्धि, शक्ति और विद्याका परिचय पाकर अनेक लडकियों ने विवाह करने की इच्छा प्रगट की। उक्त पुरुष न उन सब लडकियों से विवाह कर सक्ता है और न सब को प्रसन्न रख सक्ता है। ब्रह्मचारी का विवाह एक ही कन्यासे होना है और जिसके साथ उसका विवाह होगा वही उससे प्रसन्न होगी और बाकी सब अप्रसन्न होगी अब वह उन सब का परिचय पाकर एक पत्र पर उनका नाम लिख लेता है और साथ ही प्रत्येक के गुण भी उस नाम के सन्मुख लिख लेता है (१) रूपवान और सुन्दर है (२) सुंदर और वय में बडी है।

३ कुरूपा और धनी, (४) बृहत् परिवार वाली तथा निर्धन, (५) लडाकू और धनी, (६) चपल एवं दुराचारी, (७) पठित और दूर देश में रहनेवाली है (८) व्यङ्ग तथा धन प्राप्ति का साधन (९) पति की आज्ञा के विरुद्ध चलना ही जिसका धर्म है और बलिष्ठ है और प्रतिष्ठित है (१०) कला कौशल्य में निपुण तथा रावण की बहिन सूर्पनखासी नाक रहित है इत्यादि इत्यादि इसप्रकार सब के नाम और गुण लिख कर वह ब्रह्मचारी अपना विचार प्रारंभ करता है।

संतानोत्पत्ति और सुखमय जीवन व्यतीत करना विवाह का उद्देश है। संतान उत्पन्न कर उनको सुशिक्षा और भरण पोषण का उचित प्रबंध करना मेरा कर्तव्य होगा। तत्पश्चात् वहभी विचारता है कि यदि मेरे और मेरी स्त्री के विचारों में समानता यदि नहीं हुई तो गृह कलह को प्रतिदिन निमंत्रण देना पडेगा। इस प्रकार विवाह के निर्णय करने के लिए उद्देश, कर्तव्य, तर्क और अनुभव का यथावत विचार करता हुआ वह ब्रह्मचारि प्रत्येक के गुणों में अपना हेतु सोचता है १ ली का रूप, २ री अधिक ३ कुरूप ४ बृहत् परिवार ५ झगडालू स्वभाव ६ दुराचार ७ पठित होना, ८ व्यंग ९ प्रतिकूलता १० कला कौशल्य इत्यादि.

आजन्म का प्रश्न है, विवाह हो चुकने के पश्चात् चाहे कितनी भी आपत्तियां आवे बरन एक ने दूसरे का त्याग करना मानवी मर्यादा के बाहर है। इस समय थोडी सी गलती करने से या दूसरों के कहने में आने से या किसी प्रलोभन या अन्य किसी प्रभाव से प्रेरित होकर कार्य्य करने से भावी जीवन कंटक एवं निराशामय हो जाएगा।

अपने पूर्व अनुभव का विचार करता है कि मुझे किस प्रकार के मनुष्य द्वारा शांति की प्राप्ति और दुःख का नाश हो सक्ता है, तर्क और बुद्धि का यथावत् उपयोग करता है।

ठीक इसी प्रकार ही मनुष्य को उद्देश और उसे कार्य रूप में परिणित करने के लिये तुलनात्मक विचार का उपयोग करना चाहिए बिना तुलनमूलक विचार के संकल्प में दृढता और कार्य्य परिणित होने की शक्ति नहीं प्राप्त हो सक्ती।

पाठ ३
निश्चय।

किसी संकल्प के निश्चय करने में दो क्रियाएं होतीं हैं। एक तो तुलनात्मक विचार कर एक निर्णय को पहुंचना एवं द्वितीय उस निश्चित किए हुए संकल्प को मनमें दृढता पूर्वक रखना। पहिली क्रिया एकगति का अंत और विचारों का परिणाम और दूसरी नई धारणाका प्रारंभ बतलाती है अर्थात् किसी संकल्प को करने में एक मानसिक क्रिया का अंत और दूसरी क्रिया धारणा का प्रारंभ होता है।

गत पाठ में जो विवाह का दृष्टांत दिया था उस पर यहां कुछ और वक्तव्य है। ब्रह्मचारी के मन में दो क्रियाएं हुई (१) विवाह की इच्छा (२) तुलनामूलक विचार. इन दो गतियों को समाप्त कर ही वह ब्रह्मचारी मनमें विवाह का संकल्प धारण कर सका था। बरन निर्णय संकल्पका प्रथम अंग है। संकल्प यावत् कार्य्य रूपमें नहीं परिणित किया जाता तावत् संकल्प अधूरा कहा जाता है। अर्थात् १ इच्छा २ तुलनात्मक विचार ३ निश्चय ४ परिश्रम (कार्य्य परिणितता) इन चार गतियों को समाप्त करने पर ही संकल्प कहा जा सक्ता है। संकल्प की क्रिया जो पाहिले इच्छा के रूप में प्रगट हुई थी न तुलनात्मक विचार से और न निर्णय करने से बरन कार्य रूप में परिणित होने से ही समाप्त होती है।

लेखक- प्रोफेसर नन्दकिशोर विद्यालंकार

पुनर्जन्म.

भूमिका लेखक श्री. १०८ स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

निश्चय जानिये आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं, और सदा रहेंगे। इसलिये यदि आप को "मृत्यु" के इस भीषण नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह जानना हो कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्माकी क्या गति होती है। पितृयान और देवयान मार्ग क्या हैं। उपनिषदों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कितने ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना चाहते हैं। यदि आप जानना चाहते हैं कि किस प्रकार आजकल के धुरन्धर पश्चमीय विद्वान् आपके प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते जाते हैं। पाश्चिमके घोर नास्तिक वाद तथा डार्विन के बिकासवाद की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं तो इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

इस ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपक्षियों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा। सृष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकरण को आधुनिक विज्ञानके साथ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है। इस ग्रन्थसे आपको जर्मनी में किये गये घोडों पर नवीन परीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा। ग्रन्थका विषय दार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रक्खा गया है—इस लिये यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। श्री. स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान् क्या लिखते हैं देखिये:—

"ग्रन्थकर्ताने 'पुनर्जन्म' की सचाई को साधारण जन के आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषतः हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की है।"

श्रीयुत डाक्टर गङ्गानाथ झा, वाइस चान्सलर अलाहाबाद युनिवर्सिटी।

"मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें 'पुनर्जन्म" सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशदरूपमें रखनेमें ग्रन्थकर्ता को पूर्णतया कृतकार्यता हुई है। और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं।

(श्री० डॉ० प्रभुदत्त शास्त्री एम० ए० पी एच.डी. प्रेसिडेन्सी—कालेज-कलकत्ता युनिवर्सिटी)

". ग्रथकर्ताकी मूल पुस्तकको मैंने देखा था और प्रशंसा की थी-मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ता ने इसे प्रकाशित किया और हिंदी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो। (बा० भगवानदास एम० ए० बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।)

मैनेजर गोबिला अँण्ड कम्पनी ८।२ हेस्टिंग्स स्ट्रीट, कलकत्ता।

कायस्थ वर की आवश्यकता ।

मेरे एक कायस्थ मित्र (सकसेना दूसरे)की चौदह वर्षीया कन्याके लिये वर की आवश्यकता है जो कायस्थों के बारह विभागों में से किसी भी विभाग का हो, आयु २०-२२ वर्ष की हो, पढा लिखा, सुंदर, सुशील, स्वस्थ, सदाचारी तथा आर्यसामाजिक परिवार का हो। यदि पढता हो तो कम से कम मैट्रिकपास हो। यदि व्यवसाय करता हो तो कम से कम ५०) मासिक उपार्जन करता हो। कन्या पढी, लिखी, सुशीला, सुंदर, स्वस्थ तथा गृहकार्य में कुशल है।

आवश्यक पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर कीजिये

शिवदयालगुप्त सबअसिस्टेंट सर्जन, इटावा

(कोटा राज्य) राजपूताना

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य ।

(लेखक ' राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति ' आत्मारामजी अमृतसरी)

संस्कारचन्द्रिका । शताब्दी संस्करण बहुत उत्तम छपकर तय्यार है। मनुष्य मात्र के उपयोगी ग्रन्थ है। इस में हमारे जीवन में जो महत्व पूर्ण संस्कार होते हैं उनकी वैज्ञानिक खोज उनको कहां तक करने के लिए बाधित करती है यह सविस्तर बताया है। महर्षि दयानन्द प्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या है। प्रत्येक संस्कार की फिलासफि युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा बडी विद्वत्ता से सिद्ध की है। मू. सजिल्द ४) डा. व्यय ।।।)अजिल्द ३॥)

सृष्टिविज्ञान पुरुषसूक्तका स्वाध्याय तथा वेदोत्पत्ति संबंधी मंत्रोंकी व्याख्या मू. २)

तुलनात्मक धर्म विचार १)ब्रह्मयज्ञ।।) शरीरविज्ञान ।≡) आत्मस्थान विज्ञान-) नीति विवेचन १।) गीतासार ।=)

गुजराती हिन्दी शब्द कोष ६) समुद्रगुप्त ॥=) आरोग्यता।।) श्रीहर्ष॥) मजहबेइस्लामपर एक नजर =) ऋषिपूजा की वैदिक विधि-) विज्ञापकके ग्राहकों को =) रुपया छूट। वा. मूल्य २)

विज्ञापक, बडोदा । अपने ढंग के अनूठे मासिक में प्रति मास **वैदिक समाजान्तर्गत** आर्य समाज के प्रसिद्ध, विद्वान् राज्यरत्न आत्मारमजी, कुंवर चांदकरणजी शारदा, रावसाहब बाबु रामविलास जी, पं. आनन्द प्रिय जी, प्रोफेसर आर्ते एम.ए. के लेखों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रोचक विषय भी। वा. मू. २) नमूना ।-) प्रकाशक)

जयदेव ब्रदर्स बडोदा ।

वैदिक उपदेश माला ।

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी।

मूल्य ॥) आठ आने। डाकव्यय-) एक आना।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

संस्कृत पाठ माला।

स्वयं संस्कृत भाषा सीखने की अत्यंत सुगम पद्धति। इतनी सुगम पुस्तकें देखकर आपको भी आश्चर्य होगा !

१ इन पुस्तकों के अध्ययनसे आप घर बैठे, विना किसीकी सहायताके, संस्कृत सीख सकते हैं।

२ यदि आप प्रतिदिन आधा घंटा अध्ययन करेंगे तो एक वर्षके अंदर रामायण महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

३ जो साधारण हिंदी जानते हैं वे भी इन पुस्तकों का अध्ययन करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

४ जो स्त्रियां संस्कृत पढना चाहती हैं, उनके लिये ये पुस्तक अपूर्व लाभ कारी हैं।

५ आठ दस वर्ष की अवस्था के बालक और बालिकाओं को भी ये पुस्तक पढाये जा सकते हैं, इतनी सुगम पद्धति से ये लिखे गये हैं।

६ हरएक पाठशालाकी पढाईमें ये पुस्तक अत्यंत लाभ कारी हैं।

शीघ्र ग्राहक बन जाइये और अपने इष्टमित्रों को संस्कृत पढने का उत्साह दीजिये।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ।-) पांच आने है,

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४) रु. है

नमूनेके अंकके लिये ।-) तिकिट भेजिये।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक १ क्रमांक ७१ कार्तिक सं. १९८२ नवम्बर सन् १९२५

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ शूरवीर आगे बढ ३२९
२ भारत वर्ष में यज्ञ ३३०
३ पशुयाग शास्त्रार्थ ३३६
४ विचारणीय प्रस्ताव............ ३४१
५ यज्ञीय पशुहिंसा ३४४
६ पुस्तक परिचय ३४६
७ देवलस्मृति प्रायश्चित .... "
८ भुजंगासन ३४८
९ देवलस्मृतिका विचार ३४०
१० देवलस्मृति.... .... ३५०

वैदिक धर्म का आगामी वर्ष।

इसक पश्चात और एक अंक प्रकाशित होनेसे वैदिक धर्मका षष्ठवर्ष समाप्त होगा और क्रमांक ७३ से सप्तम वर्षका प्रारंभ होगा।

(१) इस समय इसकी पृष्ठसंख्या ३२ है। परंतु अगले वर्षसे इसकी पृष्ठसंख्या ४० की जायगी।

(२) वार्षिक मूल्य म. आ० से ३॥) है और वी. पी. से ३।॥=) है, वह वार्षिक मूल्य म. आ. से ४) रु. और वी. पी. से ४॥) रु. होगा।

(३) प्रतिमास सुंदर वेदमंत्र अनेक रंगोंमें मुद्रित करके वैदिक धर्म मासिक के साथ दिये जांयगे।

(४) प्रतिमास कमसे कम आठ पृष्ठ वेदमंत्रों के स्वाध्याय केलिये दिये जांयगे।

तथा अन्यान्य परिवर्तन बहुतसे किये जांयगे जो अवश्य ही इस मासिक की उपयुक्तताको बढायेंगे इतना करने पर भी एक —

सहूलियत

पाठकोंको देनेका विचार है। जो पाठक इस सहूलियत से फायदा उठाना चाहते हैं वे शीघ्र ही उठावें क्यों कि यह सहूलियत एक जनवरी १९२६ के पश्चात् मिलेगी नहीं।

सहूलियत की हद।

(१) जो पाठक दो सालका चंदा इकठ्ठा भेज देंगे वे केवल सात रु० में दो वर्ष वैदिक धर्म प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनका एक रु० का लाभ होगा।

(२) जो पाठक तीन सालका चंदा इकठ्ठा भेज देंगे वे केवल दस रु० में तीन वर्ष वैदिक धर्म प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनका दो रु०का लाभ होगा।

स्मरण रहे कि यह चंदा ३१ दिसंबर सन १९२५ तक ही आना चाहिये। आगामी जनवरीसे इस सहूलियत के चंदेका स्वीकार नहीं होगा। और उनको म. आ. से चार रु. और वी.पी. से ४॥)रु. ही देना पडेगा आशा है कि पाठक इससे अपना लाभ उठावेंगे।

पाठकोंसे प्रार्थना।

इस वर्ष यदि पाठक कमसेकम एक नया ग्राहक वैदिक धर्म के लिये देनेकी कृपा करेंगे तो हम इस में अधिकाधिक सुधार कर सकते हैं। आशा है कि पाठक इतनी सहायता करेंगे।

प्रबंधकर्ता — वैदिक धर्म।

छप गया ! छप गया ! छप गया ! ! !

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य ।

(लेखक-प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न गुरुकुल कांगडी)

श्री. स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं-

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडीके वेदोपाध्याय श्री. पं. चंद्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त की अनुवाद और व्याख्या करके आर्य-जगत का बडा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है। मेरी सम्मति से प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निज् पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं॰ गंगानाथ झा. एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी, लिखते हैं—

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है। मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था। इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगोंसे पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशनमें समर्थ हो सकें।

श्री० मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बडोदा लिखते हैं।

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा। इस ग्रंथ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है। इस अनुसंधान-युगमें प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए-ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगलवाद करता हूं। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियोंको वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को अवश्य पढना चाहिए। पृष्ठसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥) रु० है।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य। ८ आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६ आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेंगी।

पता—प्रबन्धकर्ता अलंकार, गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

कायस्थ वर की आवश्यकता।

मेरे एक कायस्थ मित्र (सकसेना दूसरे) की चौदह वर्षीया कन्याके लिये वर की आवश्यकता है जो कायस्थों के बारह विभागों में से किसी भी विभाग का हो, आयु २०–२२ वर्ष की हो, पढा लिखा, सुंदर सुशील, स्वस्थ, सदाचारी तथा आर्यसामाजिक परिवार का हो। यदि पढता हो तो कम से मैट्रिक पास हो। यदि व्यवसाय करता हो तो कम से कम ५०) मासिक उपार्जन करता हो। कन्या पढी, लिखी, सुशील सुंदर, स्वस्थ तथा गृहकार्य में कुशल है।

आवश्यक पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर कीजिये शिवदयालगुप्त सबअसिस्टेंट सर्जन, इटावा (कोटा राज्य) राजपूताना

सर्व नमुने २० तोळे वी. पी. नें. १॥ दीड रु.

उंची नमुने ६० तोळे वी. पी. नें ५ पांच रु. एक वेळ नमुने मागवा म्हणजे खात्री होईल.

व्यवस्थापक—सुगंधशाळा, किन्हई, (जि. सातारा).

वर्ष ६
अंक ११
क्रमांक ७१

कार्तिक
संवत १९८२
नवंबर
सन १९२५

वैदिकधर्म.

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

शूर वीर आगे बढे ।

मा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुंक्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

अथर्व. १२ । १ ।

(सा) वह (नः भूमिः) हमारी मातृभूमि, (यत् धनं) जो धन हम (कामयामहे) चाहते हैं, हमें (आदिशतु) देवे । (भगः) धनवान् (अनु प्रयुंक्तां) पीछेसे प्रेरणा करे और (इन्द्रः) शत्रुनाशक वीर (पुरोगवः) अग्रगामी होकर (एतु) चले ॥

ऐसी श्रेष्ठ हमारी मातृभूमि हमें सब अभीष्ट धन देवे । वीर लोग सबसे आगे बढें और धनी लोग उनकी योग्य सहायता धनके द्वारा करें । राष्ट्रहित के कार्य के लिये वीर लोग आगे बढें और धनी उनकी सहायता करें ।

"भारतवर्षमें यज्ञकी कमी।"

भूमिका।

इस देशमें होनेवाले किसीभी सार्वजनिक कार्य की गतिको देखते हुए यह अनुभव हुए विना नहीं रहता कि हम लोग " यज्ञ " को नहीं समझते। 'यज्ञ' शब्दका उच्चारण बेशक हम लोगही करते हैं परन्तु जो यज्ञवस्तु है उसे हमही सबसे कम समझते हैं। संसार के अन्य उन्नत देशोंमें ' यज्ञ ' शब्द तो बोला नहीं जाता (क्यों कि उनकी भाषायें हमसे भिन्न हैं) परन्तु यज्ञवस्तुका अनुष्ठान हमारे अपेक्षा वे बहुत अधिक करते हैं, इसी लिये वे उन्नत और सुखी हैं।

हमारे लिये यज्ञशब्द मुर्दा होगया है। वेदों और शास्त्रोंमें, सब प्राचीन संस्कृत साहित्य में हम " यज्ञ " शब्द बार बार पढते हुये भी किसी सजीव वस्तुका बोध नहीं प्राप्त करते हैं। हमारा सब साहित्य ही मृतप्राय है। यह बहुत थोडोंके लिये जीवनरूपमें है। शब्द जीवित तब होते है जब उनके अर्थोंका किसी जनसमुदाय में मनुष्य-जीवन के साथ सम्बन्ध होता है। जिन शब्दोंका केवल उच्चारण शेष रह जाता है और उनके अर्थों से जीवन का कुछ सम्बन्ध नहीं रहता वे शब्द मर जाते हैं और उनसे बने साहित्य भी मर जाते हैं। तो स्पष्ट है कि हम वैदिकधर्मावलम्बियोंको क्या कर्तव्य है जो कि वैदिक साहित्यका पुनरुज्जीवन करना चाहते हैं? वैदिक साहित्यमें वर्णित बातों को अपने दैनंदिनीय व्यवहारमें लाना चाहिये। इसके विना कभी भी वैदिक साहित्य जीवित नहीं हो सकता। यहीं तो 'यज्ञ' का प्रकरण चला रहा है। हमें अपने जीवनों को 'यज्ञीय' बनानेका यत्न करना चाहिये। जितना जितना हम यज्ञवस्तु को अपने दैनिक जीवनमें वर्तेंगे उतना उतना ही यज्ञका तत्त्व, यज्ञका रहस्य, यज्ञका वास्तव अर्थ प्रगट होता जायगा। और धीरे धीरे इसी प्रकार हमें यज्ञका असली तत्त्व स्पष्टतया प्रकाशित हो जायगा, तथा हमारे बहुतसे भ्रम दूर हो जायंगे। हमारे शास्त्रों में जो यज्ञके बडे बडे आश्चर्यकारी फल बतलाए हैं, तब हम उन्हें न केवल सत्य समझेंगे पर उन्हें साक्षात्प्राप्त किया करेंगे। तब हमारे शास्त्रों को कौन मुर्दा कह सकेगा? और यज्ञ जैसे एक महत्त्व के विषय को पुनरुज्जीवित करना हमारी बहुत ही भारी सफलता होगी।

२ यज्ञ की महिमा।

वैदिक साहित्य में यज्ञका बडा भारी महात्म्य है, यह बात तो इसीसे प्रगट है कि इस सभी साहित्यमें-इस साहित्य की प्रत्येक पुस्तकमें-यज्ञचर्चा भरी पडी है।

प्राचीन वैदिक साहित्यमें से यदि सब यज्ञपरक स्थलोंका उद्धरण मात्र किया जाय तो एक बडा भारी पोथा बन जायगा। बहुतसे लोग तो मानते हैं कि वेदमें केवल यज्ञका ही विषय है। हम भी इसे ठीक समझते हैं। परन्तु केवल भेद इतना है कि हम यज्ञका अर्थ बहुत विस्तृत समझते हैं। 'याज्ञिक' कहलाने वाले लोग जिस वस्तुको यज्ञ कहते हैं हमारा यज्ञ उससे बहुत विशाल है, व्यापक है। बल्कि हम तो कहते हैं कि चारों वेद पैदा ही यज्ञसे हुए हैं।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

इत्यादि। अस्तु। हम यहां तो यह कह रहे हैं कि वैदिक साहित्यमें सर्वत्र यज्ञका वर्णन है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, गीता (महाभारत) आदि सब ग्रंथों में जो यज्ञका बहुत बहुत व्याख्यान है वह बतलाता है कि वैदिक धर्म में यज्ञ का महात्म्य कितना अधिक है और हमारा स्वभावतः ध्यान खींचता है कि हम ऐसी अद्भुत वस्तु को जाने कि यज्ञ क्या है।

३ सबको बांधे रखनेवाली वस्तु।

इस यज्ञ महात्म्यके प्रकरण में निम्न लिखित वेदमन्त्र ध्यान देने योग्य हैं—

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।

ऋ० १। १६४। ३५ यजु० २३। ६२
अथ० ९। १०। १४

"यह यज्ञ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी नाभि है, बान्धने वाला है।" यह मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद तीनों में आता है। इससे पहिले मन्त्रमें प्रश्न किया गया है—

"पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिम्)"

(ऋ० १। १६४। ३४, यजु० २३। ६१, अथ० ९। १०। १३)

इस मन्त्रके चारों पादों में चार ही प्रश्न हैं और अगले मन्त्रमें क्रमशः इन चारों के उत्तर हैं। शेष तीन प्रश्नोंका यहां प्रसंग न होनेसे उन्हे छोड दिया है और यहां एक एक पाद ही दोनों मन्त्रो का उद्धृत किया है। प्रश्न यह है "मैं तुम से पूछता हूं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको बांधने वाली वस्तु कौन है।" इसका उत्तर दिया है कि यह यज्ञ इस संसार को बांधनेवाला है।

"अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।"

तो फिर यह जानना चाहिये कि यह यज्ञ क्या है, कहां है जिससे कि सब संसार बंधा हुआ है?

४ यज्ञका मुख्यार्थ।

"भारतवर्ष में यज्ञ की कमी" यह शीर्षक देखकर कई लोग समझेंगे कि शायद मैं इस लेखद्वारा इस बातपर जोर देने लगा हूं कि भारतवर्ष में प्रत्येक घरमें प्रातः और सायं अग्निहोत्र होना चाहिये। परन्तु यह बात तो दूर है। अन्य उन्नत देशोंकी अपेक्षा से तो इस बातकी भारत में कमी भी नहीं है। यज्ञ और अग्निहोत्र में भेद है। अग्निहोत्र भी एक प्रकारका यज्ञ है अर्थात् यज्ञ अग्निहोत्र से एक बहुत व्यापक वस्तु है। यज्ञ वह है जिससे कि सब ब्रह्माण्ड बन्धा हुआ है, बिखरता नहीं। अग्निहोत्र तो गृहस्थाश्रमियों के नैत्यिक कर्मोंमें से एक कर्म है। परन्तु यह कर्म भी वृथा है जब तक कि हम यज्ञके असली अर्थको नहीं समझते। वह असली अर्थ क्या है? इसे प्रकट करने के लिये मैं निम्न लिखित शब्दोंको प्रयोग करूंगा।

मेल, मिलना, जुडना, सम्बन्ध रखना, ठीक तरह जुडना, ठीक तरह सम्बन्ध स्थापित रखना।"

इन शब्दोंका स्पष्टीकरण आगे इसी लेखमें आता जायगा। यहां केवल यह अभीष्ट है कि पाठकोंको पता लग कि यज्ञ के अर्थ में मुख्य बात "संगति-करण" है या वेदके भावानुसार कहा जाय तो 'बांध रखना" (नाभि) यह यज्ञका मुख्य चिन्ह है। परन्तु यज्ञका एक अर्थ क्या हुवा? यज्ञका लक्षण क्या है? यदि यह मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूंगा कि—

मिल कर किये जानेवाले शुभकर्म का नाम यज्ञ है।

यही यज्ञका लक्षण है। यही यज्ञका मुख्य अर्थ है। इसी अर्थ में वेदशास्त्रोंमें यह शब्द मुख्यतया कहा गया है। यह मेरी स्थापना है। इस स्थापना के आधार परही मेरा अन्य सब कथन है। अतः इसे विना सिद्ध किये आगे चलना कठिन है। उपर्युक्त लक्षण ही यज्ञका मुख्यार्थ है यदि इस पर पाठकोंका विश्वास न हुआ तो मेरा यह लेख लिखने का श्रम ही व्यर्थ जायगा। अतः पहिले इस स्थापना को पुष्ट, प्रमाणित और स्पष्ट करके हम आगे चलेंगे। आशा है पाठक धैर्य रखेंगे यदि इसके कारण "भारतवर्षमें यज्ञ की कमी" कैसे है यह दिखलाने में कुछ विलम्ब हो जाय।

२ "यज्ञ" वाच्य अर्थ।

यज्ञका स्वरूप समझना और समझाना अवश्य बडा कठिन है। परन्तु सत्यान्वेषण के लिये हमें यह दुःसाहस या सुसाहस ही करना चाहिये। चाहे पीछेसे कोई साहस दुःसाहस साबित हो, परन्तु सत्यान्वेषण में वहभी सहायक होता है। अस्तु। प्राचीन साहित्यमें यज्ञ शब्द बहुतसे भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुवा प्रतीत होता है। अतः स्वभावतः स्वाध्यायकर्ता विचलित हो जाता है कि फिर यज्ञका मतलब क्या हुवा? परन्तु हमारी समझमें इन सब यज्ञ के अर्थों में एकसूत्र होना चाहये और है। उस सूत्र को जहांतक मैंने पहिचाना है मैं इसी निश्चय पर पहुंचा हूं कि वह सूत्र वह है जिसे कि उपर मैंने "मेल, मिलना, जुडना, ठीक तरह संबन्ध स्थापित रखना" इन शब्दोंसे प्रकट करना चाहा है। इस सूत्रको सर्वत्र गया हुआ दिखलाने के लिये यज्ञ शब्दके जो जो वाच्य प्राचीन साहित्य में हुए हैं उन्हें एक क्रमसे रखता हूं। आशा है पाठकगण इनकी व्याख्या पढते हुए इस सूत्र को सुगमतासे इनमें देखते जायंगे। पहिले इन यज्ञवाच्य अर्थोंको केवल गिनाता हूं।

(१) परमात्मा यज्ञ है।

(२) यह संसार यज्ञ है।

(३) संगठित मनुष्यसमुदाय यज्ञ है।

(४) मनुष्यजीवन यज्ञ है।

(५) मनुष्यका प्रत्येक श्रेष्ठ कर्तव्यकर्म भी यज्ञवाच्य है।

इन अर्थोंके अतिरिक्त यदि कोई अन्य यज्ञवाच्य रह गये हुवे पाठकोंको प्रतीत होंगे तो वे आगे देखेंगे कि इन पांच या पांच प्रकारके अर्थों की व्याख्या में वे संभवतः आजांयगे। अस्तु। पाठकोंको ध्यान होगा कि इन पांच अर्थोंमें तीसरा अर्थही मुझे मुख्य अभिप्रेत है। यही दिखलाता हुआ कि यह तीसरा अर्थही यज्ञ का मुख्यार्थ है मैं क्रमशः इन पांचों का स्पष्टीकरण करता हूं।

(१) सबसे पहिले परमात्माका नाम यज्ञ है। उसने इस सब संसार को पूर्णतया ठीक ठीक जोडा है अर्थात् उसने अपने यज्ञरूप से इस संसार को रचा है। अत एव पुरुषसूक्त में इस परमात्मपुरुषको बारबार यज्ञ नामसे पुकारा है। परमात्मामें यज्ञकी भी पराकाष्ठा है।

" यज्ञो यत्र पराक्रान्तः । "

अतएव मनुष्य के किये हुए सब यज्ञोंका अन्तिम एक मात्र विषय वही है । वह यज्ञरूप है । इसलिये उसे यज्ञ शब्द से पुकारा जाता है । परन्तु परमात्मा तो सब कुछ है अतः यज्ञ भी है । वह संसार का मूल है, अतः संसार व्यापक यज्ञ का मूल भी वही होने से उसका नाम यज्ञ भी हो गया । जैसे अग्नि वायु आदि उसके सैकडों नाम हैं वैसे ही यज्ञ भी एक उसका नाम है । यज्ञ उसका मुख्य नाम नहीं है ।

(२) यह संसार यज्ञ है । वेदमें बहुत जगह इस संसार को यज्ञ कहा है । यह असल में यज्ञ है । यज्ञका अर्थ इसीमें स्पष्टतया दीखता है । परमात्मा तो इसमें भी यज्ञीय का देनेवाला होनेके कारण यज्ञ कहलाया है । यह संसार बडी अच्छी तरह ठीक ठीक जुडा हुआ है, इसमें सब कार्य ठीक ठीक अटल नियमों द्वारा इस तरह हो रहे हैं कि यहां सर्वदा सब वस्तुयें ठीक ठीक स्थानपर ठीक ठीक सम्बन्धमें विद्यमान रहती हैं । यह संसार ठीक तरह बंधा हुआ है । ऐसा बंधा हुआ है कि मिलकर एक वस्तु बना हुआ है । और इतनी अच्छी तरह बंधा हुआ है कि यह सब मिलकर पूर्ण है ।

' पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । '

यह संसार यज्ञ है ।

परन्तु इस पूर्ण यज्ञका कर्ता है परमात्मा । इसी लिये यह यज्ञ पूर्णतया सदा बिना त्रुटिके चल रहा है । इस अल्पज्ञ, अल्प शक्तिवाले जीवों में से कोई इस यज्ञको नहीं कर सकता है । अतः हमारे लिये यह यज्ञ भी गौण है । इसे हमने नहीं करना है । यह परमात्मा का यज्ञ है । हमें तो वह यज्ञ जानना है जो कि वह हम मनुष्यों ने करना है । वह इन दोनों में से कोई नहीं है ।

(३) इन दो यज्ञों के बाद जो शेष तीसरा, चौथा, पांचवां यज्ञ रह गये हैं वे हम मनुष्यों ने करने हैं ऐसा कहा जा सकता है । परन्तु इनमें भी चौथे के विषय में वस्तुतः ऐसा नहीं कहा जा सकता है जैसा कि चौथे की व्याख्यामें बतलाया जायगा तथा पांचवें को यज्ञांग होने से ही यज्ञ कहा जाता है यह भी वहीं दिखलाया जायगा । अतः यह तीसरा अर्थात् " मनुष्यों का संगठित समुदाय " ही मुख्य यज्ञ है जो कि मनुष्यने करना है । और इसी वास्तविक यज्ञ की भारत वर्षमें बहुत कमी है । क्यों कि पीछे इस सब लेखमें इसी असली यज्ञ की व्याख्या होनी है अतः यहां इस पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है । केवल इतना कह देना आवश्यक है कि सब सभा, समिति, संग्राम इसी यज्ञ में आते हैं अर्थात् सब संगठण, सब संघ, सब संस्थायें इसी में समाविष्ट हैं, कर्म काण्ड के प्रसिद्ध बडे बडे (आज कल यज्ञ शब्द इन्हीं में बहुत प्रयुक्त होता है) राजसूय विश्वजित आदि यज्ञ इसी तीसरे प्रकार के अर्थमें आते हैं ।

(४) फिर मनुष्य जीवन यज्ञ है । ऊपर संसार को यज्ञ कहा है जिस का कि कर्ता परमात्मा है । मनुष्यभी संसारकी एक छोटीसी प्रतिमा है । एवं यह मनुष्यजीवन भी एक यज्ञ है जिसे कि जीवात्मा (इन्द्र) शतक्रतु बनकर सौवर्ष तक चलाता है । मनुष्य-जीवन यज्ञ है इसका बड सुन्दर वर्णन छांदोग्योपनिषद् में हुवा हुवा है । पर मनुष्य जीवन क्या है ? अपने अन्दरकी सब वस्तुओं को ठीक जोडे रखना, उनका सम्बन्ध बिगडने न देना और साथ ही संसार के साथ सम्बन्ध न बिगाडना । संबन्ध बिगडते ही यज्ञ विध्वंस होजाता है । रोग या कोई अन्य

कष्ट आते हैं । इस पवित्र यज्ञको बडी सावधानी से चलाना चाहिये ।

परन्तु पाठकों को देखना चाहिये कि यह यज्ञ मनुष्य का प्रारंभ किया हुआ नहीं है । यह प्रारम्भ तो परमात्मा का किया हुआ है । मनुष्य ने तो इसे ठीक तरह चलाना है या (ऐसा कहना अधिक ठीक है) चलते रखना है । परमात्मा के यज्ञ का-संसार का मनुष्य भी एक अवयव है । अतः यह भी एक तरह उसी का यज्ञ है, परन्तु उसने इसे चलानेका काम अपनी आधीनता में जीव को सौंप रखा है । मनुष्य की दृष्टि यही होनी चाहिये कि यह मेरा जीवन परमात्मा की वस्तु है-उसके यज्ञका एक अंग है-इसे बिगडने न देना तथा संसारयज्ञ में काम आने के लिये इसे ठीक तरह चलाना ही उसका कर्तव्य है। अस्तु। तात्पर्य यह है कि यह यज्ञ भी वह नहीं है जिसे कि मनुष्य ने स्वयं रचना है, चलाना है और पूर्ण करके लाभ प्राप्त करना है । ऐसा यज्ञ तो उपर्युक्त " मनुष्य संगठन " ही है । इस मनुष्य-यज्ञ को तो मनुष्यने संसारयज्ञके आधीन चलते रखना है, बस यही कर्तव्य है, परन्तु इस कर्तव्य के लिये जो उसने स्वयं यज्ञ रचने हैं और चलाने हैं वे नाना प्रकार के मनुष्यसंगठनरूप यज्ञ हैं ।

इस बात को और स्पष्टतया देखनेके लिये यों विचारना चाहिये कि यज्ञ एक पुरुष है। यज्ञ पुरुष का वर्णन हमारे साहित्य में प्रायः पाया जाता है । यहां पुरुष का अर्थ है " अवयववान् शरीर " या " संगठन " (Organized Body या Organization) । संसार और मनुष्य ये दोनों यह " पुरुष " हैं (Organism है) । संसार भी पुरुष है, विराट् शरीर प्रसिद्ध है । मनुष्य तो पुरुष (Organisation) है ही । परन्तु ये दोनो (संसार और मनुष्य) पुरुष (Organisation) पहिलेसे बने हुए हैं । मनुष्य ने जो पुरुष बनाना है-अवयववान् शरीर बनाना है वह अपने आपसे बनाना है अर्थात् मनुष्योंका सामुदायिक संगठनरूपमें बनाना है । यह राष्ट्रपुरुष है (Body Politic) या समाज पुरुष है, एवं अन्य पुरुष हैं । यही (पुरुष) यज्ञ है जो कि मनुष्यने करना है । इस लिये मैं कहता हूं कि मनुष्यने जो यज्ञ करना है वह " मिलकर किये जानेवाले किसी संगठित कार्य " के रूप में है । यही हमारे यज्ञ का अर्थ है । अस्तु । यहां तो इतनाही अभिप्रेत था कि मनुष्यजीवन यज्ञ भी वह यज्ञ नहीं है, जो कि मनुष्यने करना है ।

(५) यज्ञ का अन्तिम वाच्य अर्थ मनुष्य के प्रत्येक उस कर्म का है जिस से कि उसका इस (परमात्मा के) संसार के साथ ठीक सम्बन्ध जुडा रहता है। इस प्रकार प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म का नाम, प्रत्येक कर्तव्य का नाम यज्ञ है, क्यों कि उचित अर्थात् प्रकृति नियमों के अनुकूल कर्मसे यह संसार संगत रहता है-जुडता है । हमारे प्रत्येक बुरे, नियमों के विपरीत कार्य से संसार बिगडता है-बिखरता है, हमारा जगत् से सम्बन्ध उखडता है और फलतः हमें क्लेश पहुंचता है । ये सब अयज्ञ कर्म हैं । भगवद्गीतामें कहा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ॥

भ० गी० ३ । ९

" इस लोकमें वे ही कर्म बन्धन होते हैं जो कि यज्ञार्थ के अतिरिक्त किये जाते हैं । " इस का अर्थ यह हुआ कि यज्ञार्थ कर्म ही हमें करने चाहियें, क्यों कि यज्ञ के लिये-संसारयज्ञको ठीक तरह चलने के

लिये -- जो कर्म किये जाते हैं (वे निष्काम स्वयमेव ही होंगे) उनके करने से बन्धन कभी नहीं होता। एवं अन्यत्र गीता में कहा है कि यज्ञ, दान और तप ये कर्म करने चाहिये। यदि यज्ञ का उपर्युक्त अर्थ लें तो दान और तपभी इसी में आजायंगे और इस प्रकार गीता का कहना है कि यज्ञके अतिरिक्त और कुछ कर्म नहीं करना चाहिये अथवा हमारा प्रत्येक कर्म यज्ञ होना चाहिये। यज्ञ के इस अर्थ में बहुत से यज्ञ आजाते हैं। भगवद्गीतामें चौथे अध्यायके २५ से ३२ श्लोकों में जो बहुतसे यज्ञों का वर्णन है वहां यज्ञ इसी अर्थ में है।

"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।"

यहां भी इसी अर्थमें यज्ञशब्द है। सन्ध्या और अग्निहोत्र को यज्ञ इसी अर्थमें कहते हैं। पांचों महायज्ञ प्रसिद्ध हैं। गीतामें स्वधर्मपालन को ही यज्ञ कहा है। ये सब बातें यज्ञ के इसी अर्थ में संगत हैं। यदि प्रातः से सायंतक हमारा प्रत्येक कर्म "यह मेरा कर्म जगत्--यज्ञ के चलाने के लिये है" "यह कर्म भगवान् के लिये है" इस भावनासे किया जाय तो हमारा प्रत्येक कर्म यज्ञही हो जायगा और हम जीवन्मुक्तिका आनन्द लेंगे। परन्तु यज्ञ का यह अर्थ मेरी समझमें लाक्षणिक अर्थ है। मुख्य अर्थ नहीं। यहां यज्ञ के एक अंग कर्म को यज्ञ कहा जाता है या भगवद्गीता के शब्दों में "यज्ञार्थ कर्म" को यज्ञ कह दिया जाता है। ये कर्म मुख्य अर्थ में यज्ञ नहीं है किन्तु संसार यज्ञ के या मनुष्यजीवन यज्ञ के या अन्य मनुष्यकृत संगठन यज्ञ के अंग होने से यज्ञ कहलाते हैं। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय महासभा का चर्खासंगठन एक यज्ञ है, जो कि प्रत्येक राष्ट्रप्रभानद के चर्खा चलानेसे बना है। परन्तु व्यक्ति के चर्खा चलाने के कर्म के लिये भी यज्ञ शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि यज्ञ के एक कर्म को भी यज्ञ कहा जाता है। इसे खूब ध्यान रखना चाहिये कि इस अर्थ में साहित्य में यज्ञका बहुत बहुत प्रयोग हुआ है। यह ठीक भी है। क्यों कि यज्ञ का एक कर्म अर्थात् सामाजिक यज्ञमें एक व्यक्तिका कर्म बडे महत्त्व का है। मैं इसे "वैयक्तिक यज्ञ" के नाम से कह सकता हूं। यद्यपि ये मुख्य यज्ञ नहीं है, तो भी क्यों कि इनके विना मुख्य सामाजिक यज्ञ नहीं बन सकता इसलिये इन यज्ञों की वैदिक साहित्य में इतनी चर्चा है तथा इन्हें यज्ञ नामसे ही पुकारा गया है। इनका विशेष वर्णन अन्त में किया जायगा।

६ इन अर्थों का समन्वय।

इन पांचों यज्ञार्थों की व्याख्या से यह स्पष्ट होगया होगा पहिला दूसरा और चौथा यज्ञ ऐसा है जो कि स्वयं हो रहा है इसे मनुष्यने नहीं रचना है और पांचवां वास्तवमें यज्ञ नहीं है किन्तु यज्ञार्थ कर्म है। इसलिये तीसरा ही वास्तविक यज्ञ है। इसलिये हमारी यह स्थापना प्रमाणित हुई कि यज्ञका मुख्य अर्थ है "मिलकर किये जानेवाला संगठित शुभ कार्य।" इस सब विवेचनका एकवाक्य में अर्थ यह हुआ कि यह संसार यज्ञस्वरूप परमात्मा का चलाया हुआ एक बडा भारी महायज्ञ है, इसी महायज्ञ के अन्तर्गत उसीके नियन्त्रण में मनुष्यों के जीवनरूपी बहुत से छोटे छोटे यज्ञ भी चल रहे हैं, इस लिये कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को न केवल यह चाहिये कि वह सब ऐसे ही कर्म करे जो कि इस महायज्ञ के अनुकूल हों -- सहायक हों अर्थात यज्ञार्थ कर्म ही करें, अपि तु उस स्वयं भी ऐसे यज्ञ (जो कि मनुष्य संगठन का नाम है) करने चाहियें जो कि

इन महायज्ञके अनुरूप हों अर्थात हमारे यज्ञ—सब संगठन—एसे ठीक होने चाहिये जैसे कि यह संसार है या ऐसे सुसंगठित (well organised) होने चाहिये जैसे कि यह शरीर है।

संक्षेप में इस का अर्थ यह है कि जैसे आधिदैविक यज्ञ संसारमें हो रहा है और आध्यात्मिक यज्ञ शरीर में हो रहा है उसी तरह मनुष्य को भी यज्ञ करना चाहिये अर्थात् आधिभौतिक संगठित शरीर बनाकर कार्य करना चाहिये। यही यज्ञ का वास्तविक अर्थ है। इसी लिये शायद (निरुक्त के पढनेवाले जानते हैं) निरुक्तकारने मन्त्रों के आधिदैविक अर्थ किये हैं और आध्यात्मिक अर्थ भी किये हैं, परन्तु उस में आधिभौतिक अर्थ नहीं दिखाई देते उसकी जगह 'अधियज्ञ' अर्थ विद्यमान है। इसका तात्पर्य यह समझमें आता है कि उन के समय में आधिभौतिक और यज्ञ बिलकुल समानार्थक होगये थे। इस से भी स्पष्ट है, कि यज्ञका असली अर्थ आधिभौतिक है-सामाजिक है, आध्यात्मिक व वैयक्तिक नहीं।

अब हम इसी वास्तविक यज्ञ की मनुष्यों के संगठित होकर किये जानेवाले कार्यों की - ही अच्छी तरह व्याख्या करेंगे। और पीछे से वैयक्तिक यज्ञों की अर्थात् यज्ञार्थ कर्मों की भी व्याख्या करेंगे।

(शेष पुनः)

पशुयाग शास्त्रार्थ के विषयमें अंतिम निश्चय !

औंध के पशुयाग शास्त्रार्थ के विषयमें अंतिम निश्चय करने के लिये हमने निम्न लिखित पत्र लिखा था—

(१)

हमारा पत्र।

ॐ

स्वाध्याय मंडल औंध (जि. सातारा)

ता. २१।७।२५

श्री० धुंडिराज गणेश बापट दीक्षित सोमयाजी पाचाड (जि. सातारा)

श्रीहरिःसस्ते। आपने औंधमें सोमयाग किया था उस की समाप्ति के दिन औंध के पंचवटी राममंदिर में उपस्थित पंडितों की सभा शास्त्रार्थ के विषयमें हुई थी जिस सभामें यह निश्चय हुआ था कि (१) श्री० श्रीधरशास्त्री पाठक संस्कृताध्यापक डं० कालेज, (२) श्री नारायण शास्त्री मराठे आचार्य प्राज्ञ पाठशाला वाई (३) श्री. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव संचालक नित्यकर्ममाला पूना, तथा [४] आप स्वयं इन चारों की उप सभा शास्त्रार्थ का निश्चय करे। इस सभाको होकर आज कई मास व्यतीत हुए तथापि शास्त्रार्थ के विषयमें अपना अंतिम निश्चय हमें कुछ भी विदित नहीं हुआ। अतः प्रार्थना है कि आप यथा समय अतिशीघ्र शास्त्रार्थ की तिथिका निश्चय करके हमें सूचित कीजिये।

भवदीय

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

इस पत्रका निम्नलिखित उत्तर हमें प्राप्त हुआ

[२]

श्रीयज्ञनारायण ।

पाचवड [जि. सातारा]

आश्विन वद्य १० सोमवार शके १८४७]

श्री. पं. श्री. दा. सातवळेकर, औंध.

नमस्कार । औंधमें यज्ञिय पशुहिंसाके संबंधमें जो शास्त्रार्थ होनेका विचार चलरहा था उस संबंधमें व्यक्तिशः मेरा मत और मैंने किस भावना से प्रेरित होकर औंधमें सोमयाग किया था इस विषयके मेरे विचार मैंने केसरी पत्र में प्रकाशित किये हैं । उस लेख को यदि आप देखेंगे तो आपको मेरा मत ज्ञात हो जायगा । इस से अधिक शास्त्रार्थ के विषयमें वादानुवाद करके व्यक्ति व्यक्ति में झगडा बढाकर समय का व्यय करनेकी अब मेरी इच्छा नहीं है ।

भवदीय

धुंडिराज गणेश दीक्षित बापट सोमयाजी ।

(३)

[पूनाके केसरीपत्र में प्रकाशित पत्र]

(ले० श्री. धुंडिराज ग. दीक्षित)

गत फर्वरी मास में औंध में मैंने अग्निष्टोम नामक सोमयाग किया था और उस में पशुहनन करके उसके अंगोंकी आहुतियां दी थीं। उस पशुहनन के संबंध में वैदिक धर्मकी आज्ञा न जाननेवाले लोगों ने बहुत कुछ विरुद्ध लेख अखबारों में लिखे थे। इन में जिनकी लेख परंपरा वैदिक धर्म के विषय में तुच्छता दर्शानेवाली हैं उनको उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है । परंतु जो वेदधर्म के विषयमें मनमें आदर रखते हैं और जो वेदको प्रमाण मानते हैं उन की शांतिके लिये उचित उत्तर देना आवश्यक है ।

ब्राह्मणादि त्रैवर्णियों के वर्णाश्रमविहित कर्तव्योंमें यज्ञकर्म मुख्य है । यज्ञमें हवन मुख्य है और हवन में अनेक देवताओंके उद्देश्यसे मंत्रपठनपूर्वक विविध पदार्थोंकी आहुतियां दी जाती हैं जैसे आज्य, चरु, पुरोडाश, सोमरस ये हव्य हैं तथा अज मेष आदि पशुओंके अवयवों का मांस भी है ।

भारतीय युद्ध के पश्चात् जैन और बौद्धोंने वैदिक धर्म पर बडा भारी हमला किया जिससे वैदिक यज्ञसंस्थाको बडा धक्का लगा । तथापि तत्पश्चात् गुप्तवंशीय राजा लोग, शातकर्णी, चालुक्य, पुलकेशी आदि राजाओंने अश्वमेध जैसे यज्ञ (कि जिन में तीन सौ पशुओंका हवन विहित है) किये और वैदिक परंपरा को स्थिर किया । राजा जयसिंगने भी अश्वमेध यज्ञ किया था ।

यज्ञीय हिंसा हिंसा नहीं है ।

छांदोग्य उपनिषद में कहा है कि—

मा हिंस्यात्सर्वाणि भूतानि
अन्यत्रतीर्थेभ्यः ।

शांकर भाष्य—तीर्थं नाम शास्त्रानुज्ञाविषयः ततोऽन्यत्रेत्यर्थः ।

अर्थात् शास्त्रकी अनुज्ञा जिसको है उस कर्मका नाम तीर्थ है । इस प्रकारके कर्मोंको छोडकर अन्य कर्म में हिंसा करना नहीं चाहिये । तात्पर्य श्री शंकराचार्य भी यज्ञीय हिंसा के विरोधी नहीं थे ।

देवतों के उद्देशसे यज्ञप्रसंग में वेदोक्त विधिसे जो पशुहनन होता है उसका नाम हिंसा नहीं है । अपना पेट भरने के लिये मांस खानेकी इच्छासे जो पशुहनन होता है वह हिंसा है । वेदोक्त पशुहिंसामें देवतोंके लिये मांसाहुतियां समर्पित करनाही मुख्य उद्दिष्ट होता है । हुतशेष मांसका भक्षण करना भी

विधिविहित है । अतः शास्त्राज्ञाका रक्षण करने की इच्छा से ही इस हुतशेष मांसका भक्षण किया जाता है ।

वर्णाश्रमविहित होनेसे ही यज्ञीय पशुहिंसा की जाती है । सोमयाग में पशुहिंसा के विना कर्म-पुर्ण ही नहीं हो सकता । जो निंदक अविचारसे तथा वेदशास्त्रकी मर्यादा का उलंघन करके इस प्रकार के सोमयागादि वैदिक कर्मोंका उपहास करते हैं उनसे यज्ञकर्ता लोग कम अहिंसावादी हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता । अहिंसा परम धर्म है ही परंतु उस में भी अपवाद हैं । क्षत्रिय जिस प्रकार मृगया और युद्ध में हिंसा करते हैं उसी प्रकार यज्ञ कर्ता यज्ञ में विधिके कारण पशुहनन करता है ।

दसपांच वर्षों में एकाद पशुयाग होगा उस में कितनीसी हिंसा होनी है ? इस लिये अहिंसा-वादियों को उचित है कि वे गौ आदि पशुओंकी हिंसा जो अन्यत्र होती है उसके प्रतिबंध का उपाय सोचें और वे यज्ञ की निंदा न करें ।

यज्ञमें जो पशुहनन होता है वह शस्त्रवध की अपेक्षा कम दुःखदायी है ।

उत्तर दिशाकी ओर पांव करके पशुको भूमिपर लेटाना चाहिये पश्चात् श्वासादि प्राणवायु बंद करके नाक मुख आदि बंद करें इत्यादि सूचनाएं शमिता को कहीं है -

उदीचीनां अस्य पदो निदधतात ।

अंतरेवोष्माणं वारयतात ।

ऐ. ब्रा ६ । ७ तै. ब्रा ३ । ६ । ६

तथा --

अमायुं कृण्वन्तं संज्ञपयतात।

अर्थात् पशुका हनन उसे न्यूनसे न्यून दुःख देते हुए करना चाहिये । इत्यादि आज्ञाएं स्पष्टतासे बता रहीं हैं कि पशुहननके समय पशुको न्यूनसे न्यून दुःख देनाही अभीष्ट है ।

जो लोग मांसभक्षण के लिये पशुमारते हैं वे इससे अधिक दुःख देकर मारते हैं । जैसा की मुर्गी को उबलते पानीमें रखना और गौ आदि पशु की हत्या शस्त्र वध से करना इ० ।अतः यज्ञीय पशुहनन अन्यवधोंसे कम दुःखदायक है ।

अब कईयोंका यह पक्ष है कि आज कल जनता की प्रवृत्ति अहिंसा की ओर विशेष है इस लिये यज्ञमें पशुहनन न करते हुए उसके प्रतिनिधिरूप अन्य हविर्द्रव्यसे ही यज्ञ करना उचित है । यह प्रश्न अत्यंत सात्विक है और अत्यंत विचार करने योग्य है । परंतु यह कार्य किसी एक व्यक्तिका नहीं है । वेदविषयमें श्रद्धा रखनेवाले तथा वैदिक कर्मोंके अभिमानी किसी भी अकेले श्रोत्रिय को वैदिक कर्मों में इस प्रकार फर्क करनेका कोई अधिकार नहीं है। तथापि यदि वेद विषयमें श्रद्धालु, शास्त्री पंडित तथा अन्य विद्वान इकठ्ठे होकर श्रध्दापूर्वक विचार करेंगे और यदि वे पशुहनन के स्थानपर तत्प्रतिनिधिभूत अन्य हवन की योजना करेंगे तो वह मार्ग हरएक को अवश्य स्वीकृत हो जायगा । तथापि इस प्रकार का कोई मार्ग सिध्द होने तक श्रद्धालु श्रोत्रिय को परंपराप्राप्त यज्ञविधिके अनुसार आचरण करना ही योग्य है ।अतः यज्ञकर्ता की इस प्रकार निंदा करना सर्वथैव अयोग्य है ।

याज्ञिय पशुहिंसा के विषय में यही मेरा मत है इसका विचार सूज्ञ वाचक करें । (केसरी, पूना)

(४)

इस लेखपर केसरी के संपादक महोदयजीका मत।

[श्री. दीक्षित जीका उक्त पत्र प्रसिद्ध करके श्री. संपादक महोदयजीने जो अपनी संमति लिखी हैं वह भी यहां दी जाती है ताकि पाठक गण उसे देखें और समझ लें की श्री० दीक्षित जी के लेखका परिणाम महाराष्ट्रीय शिक्षित जनता पर कैसा हुआ है]

"सोमयाजी धुंडीराज दीक्षित बापट जी का लेख हमने दूसरी ओर मुद्रित किया है। परंतु इस लेखसे किसी का भी समाधान नहीं हो सकता। जो अहिंसावादी हैं उनको इन के विचारों के साथ सहमति नहीं हो सकती और जो इनके प्रति विरोध रखते हैं वे यह लेख पढने योग्य भी नहीं समझेंगे। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो वेदोक्त श्रौत कर्म करनेवाला श्रोत्रिय जनताकी दृष्टिसे निंदनीय नहीं होना चाहिये था। परंतु देशकाल परिस्थिति के अनुसार धर्माचरण में बदल करना चाहिये यह भी भूलना योग्य नहीं है। वेद के सभी विधिनिषेध त्रिकालाबाधित होते तो कलिवर्ज्य प्रकरण उत्पन्न ही न होता।

इसके अतिरिक्त हिंसामय यज्ञविधि के लिये भी दो पर्याय हो सकते हैं। एक पिष्टका उपयोग पशुके स्थानपर करना तथा दूसरा यह है कि अन्य अहिंसामय यज्ञकर्म करना। पहिला पर्याय तज्ज्ञ शास्त्री लोगोंको संमत होगा या नहीं इस विषयमें हमें शंका है। तथापि दूसरे के विषयमें हमें निश्चय है। हिंसात्मक यज्ञविधिको छोडकर ऐसे सैंकडो यज्ञ विधि हैं जिनमें पूर्ण अहिंसामय कर्म हैं, उन कर्मोंके होते हुए पशुयागका ही आग्रह ये लोग क्यों करते हैं? ऐसी कौनसी राष्ट्रीय आपत्ति इस समय आगई है कि जिसके कारण इस समय पशुयाग करना ही आवश्यक हुआ है। अपने धर्म में साधनों की अनेकता है इस लिये यदि कोई आपत्ति हटाना हो तो उस कार्य के लिये अहिंसापूर्ण याग भी मिल सकते हैं। इस लिये लोकमतविरुद्ध हिंसायज्ञ न करना ही उत्तम है। बापट दीक्षित अपने लेख में जयसिंग आदिकोंके अश्वमेध का उल्लेख करते हैं। इस पर कहना यह है कि जयसिंग क्षत्रिय है और उस कारण उस को अन्यान्य प्रसंगोंमें हिंसा करना होता ही है। परंतु ब्राह्मणोंके लिये उस प्रकार के हिंसाकर्मों की प्राप्ति ही नहीं है। इस लिये ब्राह्मणों को उचित है कि वे इस प्रकार हिंसापूर्णयाग न करें।" (संपादक – केसरी)

(५)

हमारा विचार।

ऊपर हमने (१) हमारा पत्र, (२) श्री० दीक्षित जीका पत्र, (३) उनका केसरी में प्रसिद्ध लेख और (४) श्री० संपादक केसरी की संमति दी है। श्री० दीक्षित जी के लेख पर जिस प्रकार केसरी जैसे प्रतिष्ठित पत्र की विरुद्ध संमति हुई है उसी प्रकार प्रायः सभी महाराष्ट्रीय पत्रों की विरुद्ध संमति प्रकाशित हुई है। श्री० शंकराचार्य (डा० कुर्तकोटी) जी के अधिष्ठातृत्व में प्रकाशित होने वाले "स्वधर्म" पत्र ने भी इस यज्ञ के विषय में अनुकुल मत नहीं प्रकाशित किया।

प्रारंभ से हमें बहुत ही आशा थी कि श्री० दीक्षित महोदय शास्त्रार्थ के लिये खडे हो जांयगे। प्रेमसे वादानुवाद करने की इच्छा उन्होने पहिले प्रकट भी की थी और तदनुसार ही पूर्वोक्त उपसभा बन गयी थी। इस विषय में उपसभा के एक दो सदस्यों के पत्र भी हमारे पास हैं परंतु उनको यहां मुद्रित करना अनावश्यक है। हमने इन सदस्योंपर पूर्ण विश्वास रखकर शास्त्रार्थ का आह्वान दिया था।

और हमारे आह्वान की स्वीकृति सार्वजनिक सभा में भी की गई थी। इतना होनेपर अब ये शास्त्रार्थ से पीछे हट रहे हैं। यदि इनको पहिलेसे शास्त्रार्थ करना मंजूर न था तो आह्वानका स्वीकार ही करना नहीं चाहिये था। सार्वजनिक सभा में आह्वान का स्वीकार करके इस प्रकार अब संपूर्ण तैयारी होनेके पश्चात् पीछे हटने का जो तात्पर्य है वह पाठक जान सकते हैं।

केसरीके लेखमें श्री० पं० दीक्षितजी लिखते हैं कि यदि निर्मांस सोमयाग की पद्धति कोई विद्वत्सभा निश्चित करेगी तो हमें वह पद्धति स्वीकृत होगी। यदि यह पं० दीक्षितजीकी भी इच्छा है तो उसका उपाय शास्त्रार्थ के लिये आगे बढना ही है। यदि वे शास्त्रार्थ के लिये आगे बढते तो उस समय हम बता सकते थे कि निर्मांस यज्ञपद्धति किस प्रकार शास्त्रसंमत है और संपूर्ण यज्ञकांड निर्मांस यज्ञपद्धति की ओरही याजकको कैसा ले जा रहा है।

थोडेही दिन हुए गत भाद्रपद मासमें जिस समय पं० दीक्षित जी यहां पधारे थे, उस समय उन्होंने "यज्ञ में सामगान" पर एक व्याख्यान दिया था। इस व्याख्यानमें उन्होंने यह प्रतिपादन किया था कि अत्यंत प्राचीन वेदकालके यज्ञोंमें साधारण रीति से ही वेदमंत्रोंका गान होता था, परंतु आर्य जैसे उत्तर से पंजाबकी ओर उतरे वैसा उनका संबंध गांधारादि देशवासी अनार्योंके साथ हुआ और आर्योंने अनार्योंसे आलापादि गायन प्रक्रिया सीखी और अपनी सामगान पद्धतिका सुधार किया। इसरीति से याज्ञिक साम गानकी उन्नति हुई।

यदि यही विचार पद्धति स्वीकृत की जाय तो वैदिक यज्ञयागका क्रियाकलाप पहिले अपूर्ण था और उस में पीछे से सुधार होता गया, यह मानना पडेगा। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो हमारा इस मतसे पूर्ण विरोध है, परंतु क्षणमात्र पं. दीक्षित जीकी मोहबत के लिये हम यह मत यहां स्वीकार करते हैं और उनसे पूछते हैं कि यदि देशकाल परिस्थिति के अनुसार वैदिक यज्ञपद्धतिमें बदल होना आप स्वीकार कर रहे हैं और यहांतक आप स्वीकार कर रहे हैं कि अनार्योंके रीतिरिवाज भी ऋषिमुनियोंने यज्ञक्रिया में घुसेड दिये थे और यज्ञ को जनमनोरंजनका एक साधन बना दिया था, तो आप कैसे मान सकते हैं कि वैदिक यज्ञपद्धति जैसी परमेश्वर निश्वसित वेदके प्रकट होने के समय में थी वैसी ही आज है और यदि उनमें भिन्नता हुई है तो पूर्व समयका यज्ञ स्वर्ग देनेवाला था, या अनार्योंके रीतिरिवाजोंसे मिश्रित नूतन यज्ञ स्वर्ग देनेवाला है? आपने जो औंधमें सोमयाग किया था वह शुद्ध आर्योंकी विधिसे किया था अथवा उसमें भी अनार्योंके रीतिरिवाज मिले हुए हैं? यदि हैं तो कौनसे हैं और उनको हटाने में आप को कौन सी आपत्ति है? यदि यज्ञोंमें कालानुसार भिन्नता हो सकती है तो पशुयाग के स्थान पर घृत धान्य आदि के हवनसे कार्य किया जा सकता है वा नहीं? आप जानते ही हैं कि यह आज्यादि प्रतिनिधि ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें दियेही हैं। फिर आपके लिये रुकावट किस कारण होती है?

अस्तु पूर्वोक्त श्री० पं० दीक्षित जीके लेखपर बहुत विस्तार से लिखा जा सकता है परंतु वैसा करना अब व्यर्थ ही है। क्यों कि वे इस बात का निर्णय करना चाहते नहीं। यदि चाहेंगे तो सब कुछ हो सकता है।

हमारा यज्ञ विषयक पुस्तक अब छप रहा है उस में इन सब प्रश्नोंका विचार किया गया है अतः

उसको यहां दुहराना अनावश्यक है। इस लिये पशुयाग विषयक शास्त्रार्थ को यहां ही इस प्रकार समाप्त करते हैं।

जिन सज्जनोंने पशुयाग शास्त्रार्थ विषयक पुस्तक मुद्रणार्थ सहायता भेजी है उनके लिये हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। उनकी सहायतासे पुस्तकका मुद्रण चल रहा है और पुस्तक छपते ही उनके पास भेजी जायगी। आज तक निम्न लिखित सहायता आगई है-

म. लालचंदजी कपूर	१) रु.
" पुंडलिक प्रभु	२)
" जगदीश प्रसादजी	॥=)
म. ए. आर. तत्त्वनिधि.	१)
श्री. स्वामि केशवानन्दजी	१)
म. देवीदयालजी वकील	५)
	१०॥=)

योग	१० ॥=)
पूर्वांकमें प्रकाशित	१३१७ ॥≡)
सर्वयोग	१३२८ ।-)

अब पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस कार्य के लिये कोई सहायता न भेजे। पुस्तक का प्रकाशन होनेके पश्चात् दानदाताओंके पास पुस्तक भेजा जायगा और विक्रयार्थ भी रखा जायगा। पुस्तकका मूल्य अत्यंत अल्प रख कर प्रचार की दृष्टिसे ही इसका अधिकसे अधिक प्रचार करने का विचार है ताकि जहां जहां आगे इस प्रकारके पशुयाग होंगे वहां की जनता के लिये यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी हो सके और जहांतकवहां हो तक पशुयाग की प्रवृत्ति भी बंद हो जाय और -

वैदिक यज्ञ का विजय हो!

हिंदूजाति के नेताओं की सेवा में एक विचारणीय प्रस्ताव।

(ले. श्री. पं. रामचंद्र भारद्वाज, अंबाला शहर.)

विचार यह है कि अब तक हमने हिन्दू जाति के उत्थान के लिये अनेक उपाय किये परन्तु हमने उन उपायों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जो सहज से ही हमारे हाथ में थे, और जिन से बडे बडे लाभ पहुंचनेकी सम्भावना है। वे उपाय हिन्दुजातिके तीर्थस्थान हैं जिनमें समय समय पर लाखों की संख्या में हिन्दूयात्री (दर्शक) एकत्रित होते हैं।

यह शोक से कहना पडता है कि हमनेइन तीर्थ-स्थानों को उस दृष्टि से नहीं देखा, जिस दृष्टिसे कि ये देखे जाने चाहिये थे, हम ने केवल इनको आडम्बर समझा, और अतः इन की कुछ परवाह न की। परन्तु यह हमारी बडी भूल थी जो हमने अब तक ऐसा किया॥

यह हमें विश्वास होना चाहिये कि हमारे पूर्वज मूर्ख नहीं थे अपितु वे पूर्ण दीर्घदर्शी एवं जातीय संगठन के नियमोंको भलीभांति समझने वाले थे,

भला क्या सम्भव हो सकता है? कि जो दर्शन-शास्त्रोंके पठन पाठन करने वाले हों वे कभी तीर्थ यात्रा को या उन की स्थिति को अच्छा समझते यदि उस में वास्तविक कोई लाभ न देखते, सच तो यह है कि हमने उनके गम्भीर भावों को समझने का प्रयत्न ही नहीं किया। उनकी दृष्टि इतनी गम्भीर थी कि वे जानते थे कि भारतवर्ष जैसे लम्बे चौडे देश में बिखरी हुई हिन्दु जाति किस प्रकार एक लडी में पिरोई जासक्ती है, वे अनुभव करते थे कि देश, काल, जल, वायु के प्रभाव से भिन्न भिन्न भाषा और भिन्न भिन्न रहनसहन रखती हुई भी हिन्दु जाति किस प्रकार एक शृङ्खला सूत्र में बद्ध हो सकती है। इस लक्ष्य को दृष्टि में रख कर ही उन्हों ने भारत वर्ष के प्रत्येक प्रान्त में जा जो स्थान जल-वायु की उत्तमता और प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण पाये उसी स्थान को यात्रा (तीर्थ) स्थान निर्धारित करदिया और सर्वसाधारण के प्रवृत्यर्थ जहां तहां कथारूपसे पुस्तकों में रोचक इतिहास लिख दिये जिस का प्रभाव यह हुआ कि एक पञ्जाबी हिन्दू भाई यू॰ पी॰ के हिन्दू से अप को पृथक् नहीं समझ सक्ता, क्योंकि वह जानता है कि वह भी उस की गङ्गा माताको अथवा जगन्नाथपुरी को ऐसा ही पवित्र स्थान समझता है जैसा कि वह अपने आप ॥

एवं दूसरे प्रान्तवासी भी आपस में एक दूसरे को सजातीय भाई समझते हैं दूसरा लाभ जो इन तीर्थ स्थानों से हुआ है, वह यह है कि जितने भी रमणीक (प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण) स्थान भारतवर्ष में थे, वे सब इतने घोर राष्ट्र विप्लव होने पर अब तक हिन्दूजनता के ही अधिकार में हैं। तीसरा लाभ यह है कि यदि यात्रा प्रथा न होती तो उस समय जब कि रेल और तार के अभाव से यात्रा में बडी कठिनाईयां थी तो कौन घरसे निकल कर बद्रीनारायण, या, अमरनाथ आदि के दुर्ग स्थानोंमें टक्करें मारता और कौन प्रकृति के सुन्दर और मनोरंजक दृश्योंको देखकर ईश्वर की महिमा को स्मरण करने का अवसर प्राप्त करता।

यही नहीं इस यात्रा प्रथाने ही देश के व्यवसाय और शिल्प को जो लाभ पहुंचाया है बडा भारी बाचातीत है, यदि यह यात्रा न होती तो देश में बन्द पानी के छप्पड की भान्ति क्या कुछ दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती।

पाठकवृन्द! ये लाभ तो सामाजिक और व्यवहारिक दृष्टिसे हुए हैं धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी जो लाभ इस यात्रासे हुए हैं, वे भी बहुमूल्य हैं, यथा यात्रा स्थानों पर देश देश के तथा प्रान्त प्रान्त के अनेक विद्वान् साधु, महात्मा, एकत्रित हो जाते हैं यात्रियों को भिन्न भिन्न देश तथा प्रान्त के विद्वान् महात्माओंके दर्शन एवं उन से वार्तालाप करने का सुअवसर सहज ही से प्राप्त हो जाता था, अर्थात् जो काम लाखों विज्ञापक और ट्रैक्ट बांटने पर भी नहीं हो सकता था, वह एक यात्रा जाने से अनायास हो जाता था। और फिर यह कितनी बडी बात है कि न कोई विज्ञापन छापने पडते हैं और न कोई बुलेटिन निकालने पडते हैं न अखबारों में शोर मचाना पडता है, यूंही चुप चाप नियत दिन और नियत घडी पर लाखों यात्री एक स्थान पर आकर जमा हो जाते हैं, अहो! क्या ही बुद्धिमत्ता थी उन महानुभावों की॥

आत्मिक उन्नति लिये कभी यह प्रथा बडी सहायता देती थी जब यात्री घरसे चलता था तो वह अपने को यात्री समझ कर अपने व्यवहार में

अधिकाधिक सावधान होता था, वह ब्रह्मचर्यव्रत से रहता, पृथ्वी पर सोता, एवं हित, मित तथा मेध्य भोजन करता था। दूसरे की सहायता करना निज कर्त्तव्य धर्म समझता था, और यात्रा स्थान में जाकर कुछ न कुछ दान भी करता था, साथ ही यात्रा के दिना में यात्री लोग जो आपस में बात चीत करते थे, वह भी प्रायः निरी धार्मिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर होती थी जिस से यात्रियों को सहज और अनायास ही से अपनी पुरानी सभ्यता और इतिहास का पता लग जाता था।

यह भी ध्यान रहे कि यात्रा स्थानों में जो किसी न किसी महात्मा विशेष के जीवन की घटना विशेष के कारण प्रसिद्ध हैं एक प्रकार के शुद्ध संस्कारों के ओघ का वायु मण्डल सा बन जाता है—जहां जाकर यात्री महानुभाव—यदि वे श्रद्धा भक्ति से परिपूर्ण चित्त लेकर आये हैं—तो उन संस्कारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते किंबहुना यह यात्रा की प्रथा अनेक रूप में लाभकारी थी।

अब प्रश्न यह है कि इस प्रथाको कैसे लाभदायक बनाया जावे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि आज कल यह प्रथा बहुत कुछ बिगड गई है और यात्रा स्थानोंमें बहुत कुछ संशोधन की आवश्यकता है, परन्तु प्रयत्न और पुरुषार्थ प्रत्येक कठिनाई को हटा देता है यह विधाताकी सृष्टि का अटल नियम है। सो यदि हिन्दू जातिके सच्चे हितैषी और दीर्घ दर्शी पुरुषार्थशील विद्वान महाशय एक समिति बनाकर इस काम को करने के लिये कटि बद्ध हो जावें तो कार्य सिद्धि में कुछ भी सन्देह नहीं। मेरे विचार में भारतीय हिन्दूसभा इस काम को करने के लिये सब से बढकर योग्य है।

अब रही यह बात कि किस प्रकार से कार्यारम्भ किया जावे सो भारतीय हिन्दू सभा के अन्तर्गत ऐसे सुयोग्य एवं प्रतिभाशाली अधिकारी हैं जो स्वयं भली भांति सोच समझ सकते हैं -कि कार्यक्रम कैसा क्या होना चाहिए, इत्यादि। परन्तु दो चार बातें जो कार्य कर्ताओं के लिये अवश्य ही विचारणीय हैं वे ये हैं:—

१- तीर्थ स्थानों को वास्तविक रूप में तीर्थ स्थान बनाया जावे, अर्थात् वहां पर धर्म और शिष्टाचार का वायुमण्डल उत्पन्न किया जावे।

२- हिन्दुओं की सब सम्प्रदाओं को एक दूसरे के निकट लाने का यत्न किया जावे।

३- हिन्दू जाति के अन्दर से उन कुरीतियों और कुसंस्कारों को जिन्हों ने जाति को छिन्न भिन्न करके विशृङ्खलित तथा निर्बल बनाया हुआ है, दूर किया जावे।

४- संस्कृत और हिन्दी भाषा का प्रचार किया जावे।

५ हिन्दू जाति के अन्दर शिल्प विद्याका उत्साह उत्पन्न किया जावे।

६- अच्छे तीर्थस्थानों पर पाठशालाएं, साधु-आश्रम तथा शिल्प शालाएं खोली जावें और उन के चलाने के लिये यात्रियों से धन इकट्ठा किया जावे। इत्यादि।

इस कार्य को पहिले किसी एकस्थान में आरम्भ किया जावे और जब वहां कार्य सिद्ध हो जावे तो फिर क्रमशः अन्यान्य स्थानों में भी उक्त कार्य का प्रारंभ किया जावे और उन स्थानों को अपने हाथ में लिया जावे।

जनवरी १९२६ में सूर्य ग्रहण का मेला होगा जिस में लगभग सात आठ लाख यात्री एकत्रित होंगे कार्यारम्भ करने के लिये यह स्थान सब से

श्रेष्ठ है और हमें पूर्ण विश्वास है कि यहां पर पूर्ण सफलता प्राप्त होगी। यदि भारतीय हिन्दू सभा अभी से इस कार्य को आरम्भ कर देवे।

इस लिये हिन्दू सभा के सभ्यों से प्रार्थना है कि इस पर स्वयं विचार करें और यदि आप भी इन विचारों से सहमत हों तो शीघ्र भारतीय हिन्दू सभा को नितरां प्रेरणा करें कि वह इस कार्य को स्वयं हाथ में ले-और अभी से आवश्यक प्रबन्ध के लिये कार्यारम्भ कर दे।

मैं आप को विश्वास कराता हूं कि हिन्दू जाति के उत्थान के लिये जितने भी उपाय आज तक किये गये उन सब से यह कहीं बढ चढ कर लाभ दायक सिद्ध होगा।

हिन्दू जाति सृष्टि के आरम्भ से ही एक धर्म-परायण जाति है अतः इस के उत्थान के लिये ऐसे ही उपाय उपयोग में लाने हितकर हैं और लाने चाहियें। जिन से कि इस के धर्म भावों पर पूर्ण प्रभाव पडे और यह उपाय इस हेतु से सर्व श्रेष्ठ है।

यज्ञीय पशुहिंसा विचारः।

औंधनगेर(जि. सातारा)संगमिष्यमाणवैदिकयज्ञसंबंधिशास्त्रार्थचिंतनपरिषद्ग्रासनमलंकरिष्यमाणानां सभाधिपतीनां सान्निध्याने।

कर्नाकदेशस्थितदक्षिण कन्नडाजिल्लांतर्गतबैंदूरुप्रदेशनिवासिनांसनातनधर्मानुयायिनांमहाजनानांविज्ञप्तयः॥ यथाः-

अथ खलु निखिल जगदादिहेतुना, सकलचराचरसृष्टिस्थित्यंतकारिणा, वेदवेदांताद्यनेकशास्त्रप्रतिपादित सच्चिदानंदस्वरूपेण सर्वभूतानुकंपिना, परमात्मनाऽदिपुरुषेणाऽभिव्यक्तेष्वाम्नायेषु तदनुरुद्धस्मृत्यादिशास्त्रेषु च प्रतिपादितो धर्मो वैदिकः। तथा भूतस्य धर्मस्य मूलप्रमाणानि हि स्मृतानि भगवता याज्ञवल्क्येन "श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः॥ सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्"॥ (या- स्मृ. १.७) इति। यद्येतत्पंचानां मूलप्रमाणानां श्रुत्यादीनां परस्परविरोधापत्तौ पूर्वपूर्वो बलीयानित्युक्तेरिष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं वेदत्रयीभ्यः श्रुतिभ्यः परं प्रमाणं न विद्यते। परंतु तच्छ्रुति पदवाक्यादेः प्राक्तनाद्यतनाचार्यैर्विद्वद्भिश्चस्वस्वमतानुसारमर्थस्याकृष्टत्वात्सामान्यजनैरतीवदुर्ज्ञेयताप्राप्तस्तद्वेदार्थजिज्ञासुषु केवल मौदासीन्यमेव प्रतिभाति। विपश्चिज्जनानां वादविवादैर्वेदानां तथ्यार्थोऽपि संदिग्धतरोऽवस्थितः। तथापि सर्वभूतानुग्रहीतृपरमदयालु श्रीमद्भगवत आज्ञारूपेषु वेदेषु हिंसाचरणमर्थात्पशुवधो विहित इति समस्तशास्त्रार्थपारावारपारगैर्निर्मलांतःकरणैः संख्यावद्भिरविश्वसनीयः। तथा च श्रूयते— "येन केन प्रकारेण को हि नाम न जीवति ?। परेषामुपकारार्थं यज्जीवति स जीवति"। (ऋ. वे. अष्ट ८-७. वर्ग १४ परं परिशि- व ६) अनयाज्ञापितं परोपकरणमेव मानुषजन्म साफल्यनिदानम् तदेव परमोधर्मोनान्यत्परपीडनाहिंसनादीति। अयमर्थः स्वयं भगवतोदितेगीतासु— "ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः"। (गी. अ. १२.४) इतीतः सर्वभूतहितासक्तिरेव भगवत्स्वरूपप्राप्तित्वात्तदनुलक्षितपरमनिश्रेयससाधनम्— नान्यदित्यवगम्यते। अपि च देवासुरसंपद्विभागावसरे तेनैव तत्रोक्तम्—

"अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्। दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ १॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता । भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत" ॥ (गी. अ. १२. २, ३) इति ॥ अनेनाहिंसा भूतदयामार्दवमित्यादीनां दैवीसंपत्त्वमित्युक्तार्थः। अतस्तदहिंसाद्यैरेव श्रेयः सिद्धिरर्थात्तद्विरुद्धहिंसानिर्दयताकाठिन्यादीनामासुरसंपत्त्वात्तद्दुराचरणमतोनिरयाप्तिकारणंचेति सूचितम् । तथाचाद्यधर्मशास्त्रप्रवर्तको भगवान्मनुरप्याह—" अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिंद्रिय निग्रहः । एतं सामासिकं धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः "॥ (म.स्मृ. अ. १०-६३) इति ॥ हिंसात्यागो, यथार्थाभिधानं, अन्यायेन परधनस्याग्रहणं, विशुद्धिः, इंद्रियसंयम, इत्येवंसामासिकधर्मः समस्तमानवजन्मभिरनुष्ठेयत्वात्स मानुषसामान्यलक्षणम् ।यतोनतद्धर्मो ब्राह्मणादिकेवलवर्णमात्रोपलक्षकः । चातुर्वर्ण्यइति वर्णसमुदायस्मरणात । प्रकरणसामर्थ्यात्संकीर्णानामप्ययंधर्मोवोदितव्यः । ततस्तं विनामानुषत्वमेव न सिध्यतीतिफलितार्थः । तथाहि तेनैव मनुना "यो बंधनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति । स सर्वस्यहितप्रेप्सुः सुखमत्यंतमश्नुते " ॥ (अ. ५-४६) "यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च । तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्तिनकिंचन" ॥ (अ. ५-४७), ,,नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत " ॥ (५-४८) " वर्षेवर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् " ॥ (५-५३) इत्याद्यनेकत्र, बंधनादिहिंसाचरणमांसाशनयोर्निषेधोऽहिंसयास्वर्गादिफलोत्कर्षश्चेति सुस्फुटंस्मृतम् । तथैवैतदनुस्मृतं भगवता याज्ञवल्क्येन-"सर्वान्कामानवाप्नोतिहयमेधफलं तथा । गृहेऽपि निवसन्विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात् " ॥ (या. स्मृ- आचार १८१) इति । एवमादीनि हिंसादूषकाऽहिंसाप्रशंसकानि वचांसि सहस्रशः प्रामाणिकग्रंथेषु सन्त्यपि नात्र तानि पत्रवितानभीत्या लिख्यंते। अत्र विषये पुराणेतिहासवेदान्तदर्शनादिप्रामाणिकग्रंथप्रणेत्रा सर्वज्ञेन महर्षिणा भगवता व्यासेन सकलशास्त्रार्थसर्वस्वं सुसंक्षिप्य सत्यतरं यदुक्तम्:—

"परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् " इत्येवं सुपर्यासमासीत्। अतएवाहिंसा परमोधर्मः, सर्वभूतहितासक्तिरेवात्यंतनिश्रेयसनिदानम्, बुद्धिपूर्वकं चेतनहिंसनमतीव दुराचरणम् , समस्तसच्छास्त्रदूषितम्, न तदन्यद्दुरंतरं पापकर्म, तत्कर्तुश्चाऽपि महाघोरनरकंविना नान्यद्गतिरिति, यथामतिविदितशास्त्रार्थाः स्वस्वांतरात्मानुशासिता वयं सुदृढं विश्वसिमः । यद्यपि पुराणादिग्रंथान्तरे सामिषयागवर्णनं तत्प्रेरकवाक्यंचास्ति,तदर्थवादात्मकम्, रूपकाद्यालंकारिकम् , अन्यार्थकम् प्रक्षिप्तं वा यथाक्राममूहनीयं सुधीभिः । तस्मात्समांसयज्ञोवेदविद्भिः सदाचारसंपन्नैः सर्वथा दूष्य एव। तथा यज्ञं चिकीर्षुणा यजमानेन श्रीमद्भागवतोक्तिमनुसृत्य पिष्टमयो वा-,"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" इति भगवद्वचनेन जपयज्ञस्यैव प्रधानत्वात्तज्जपयज्ञो वा कार्यः। सदयार्द्रांतःकरणा विद्वांसः सभ्या अपि पशुवधादिप्राणिहिंसनस्यानर्थत्वं तत्संभाव्यभयंकराघनिचयं च स्वस्वान्तःकलषहृदि सम्यग्विमृश्य निरामिषयज्ञमेव पुरस्कुर्युरित्याशास्महे । सकलशास्त्रार्थतत्त्वविदो महांतो भवंतः सभाध्यक्षाश्च अशास्त्रीयं समांसयज्ञं निरस्य "सर्वभूताविरोधः, सर्वजनसम्मतः सकलशास्त्रविहितो निर्दुष्टश्च निर्मांसयज्ञ एवेतः परं सकल वैदिककर्मनिष्ठागरिष्ठशिष्टजनैरादरणीय आचरणीयश्चेति निर्णयेयुः॥ इति

वयं सानुनयम्—

विज्ञापयामहे ॥

——

पुस्तक परिचय ।

१ हिमगिरि संदेश –(अनुवादक-श्री. हरिशरण श्रीवास्तव्य मराल, मेरठ । प्रकाशक-सरस्वती प्रिंटिंग वर्क्स मेरठ । मू. ।≈)

श्री. पाल रिचर्डका नाम पाठक जानते ही हैं। आप यूरपके तत्त्वज्ञानी हिमालयमें तपस्या कर रहे हैं उनके पुस्तकका यह भाषानुवाद है। यह पुस्तक पद्य में होनेसे अधिक रोचक बना है।

२सुबोध संस्कृत- (ले. श्री. बी. बी. कामत. बी. ए. ४४८ रोब्सन रोड, कराची । मू. १) रु.

सुबोध रीतिसे संस्कृत सीखनेकी रीति इस पुस्तक में है। हिंदी, मराठी तथा अंग्रेजी भाषा जो जानते हैं वे इस पुस्तक का अध्ययन कर सकते हैं। पुस्तक सचित्र होनेसे अधिक चित्ताकर्षक हुआ है। सरकारी विद्याविभागने इस पुस्तक को स्वीकार किया है। इससे इस पुस्तक की उपयुक्तता सिद्ध है।

३ शिल्प सर्वस्व—संपादक व प्रकाशक श्री. पं. चंद्रिका प्रसाद तर्काचार्य कानपुर वा. मूल्य ॥–)

अतिस्वस्त शिल्पविषयका मासिक है।

४ वेदोंपर भयंकर अत्याचार–प्रकाशक श्री. स्वा० सच्चिदानन्द । वेदोंके मंत्रोंके सत्य अर्थ बताने का इसमें प्रयत्न किया गया है।

५ संजीवन–(प्रकाशक बा. भद्रसेन वर्मा संपादक-श्री. चतुरसेन शास्त्री देहली) यह वैद्यक का मासिक पढनेयोग्य लेखोंसे भूषित है।

६ आरोग्यदर्पण—(संपादक-श्री. वैद्य गोपीनाथ गुप्त हलदौर (बिजनौर) वा. मू. २)रु.

आरोग्यशास्त्र विषयके सुबोध लेख इस मासिकमें प्रकाशित होते हैं।

देवलस्मृतिमें कहा प्रायश्चित्त ।

देवलस्मृति में कालमर्यादा, बलात्कार, केवल, सहवास और अगम्यागमनादि सब पातकों का विचार कर उस के लिए भिन्न भिन्न प्रायश्चित्त बताए गए हैं। जिस प्रकार दूसरे स्मृतिवचन या धर्मग्रंथों की सुसंबद्धता बताने की आवश्यकता रहती है उसी प्रकार इन विधानों को भी सुस्पष्ट करने की आवश्यकता है।

देवलस्मृति के अनुसार एक वर्षतक परधर्मीय रह कर अगम्यागमनादि पातक किए हों तो ऐसे ब्राह्मण की शुद्धि सपराक चांद्रायण से, क्षत्रिय की पादकृच्छ्रयुक्त पराक से, वैश्य की पराकार्ध से और शूद्र की दिनपंचक प्रायश्चित्त से हो सकती है।

यदि उपरोक्त पातकों का आचरण एक वर्ष से अधिक काल तक हुआ हो तो उपरोक्त प्रायश्चित्त और गंगास्नान भी करना चाहिए।

यदि बलात्कार से गोहत्यादि पातक होने के कारण धर्म विद्रोह हुआ हो तो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य प्राजापत्य (कृच्छ्र) करें, आहिताग्नि चांद्रायण या पराक करें। यदि इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया हो तो सपराक चांद्रायण करना चाहिए।

शूद्र यदि इस दशा में एक वर्ष रहा हो तो उसे पंद्रह दिनतक माड पीकर रहना चाहिये या चांद्रायण करना चाहिए।

यदि यह अवधि एक वर्ष से अधिक और चार वर्ष से कम हो तो उपरोक्त प्रायश्चित्तों पर से विद्वान् लोग प्रायश्चित्त निश्चित्त करें।

शूद्र यदि छः महिने तक रहा हो तो पराक, तीन महिने रहा हो तो पराकार्ध और एक महिने तक रहा हो तो पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करें।

यदि केवल बलात्कार के कारण दस से बीस वर्ष तक परधर्म में रहना पडा हो और विशेष पातक न हुए हों तो प्राजापत्यद्वय से शुद्धि प्राप्त होती है। यही बात यदि केवल स्वेच्छापूर्वक की गई हो (अर्थात् यदि अपनी इच्छासे म्लेच्छोंके साथ सहवास हुआ हो तो चांद्रायण प्रायश्चित्त करना चाहिए। म्लेच्छ से व्याभिचार करने वाली स्त्री तीन दिन के पश्चात् शुद्ध होती है परंतु यदि उस स्त्री को गर्भ रहे तो प्रसुति तक वह अशुद्ध रहती है। प्रसूत होकर वह गर्भ दूसरे को दे देवे और कृच्छ्रसांतपन करे; तब उसकी शुद्धि होती है।

यात्रा के समय म्लेच्छों के उपद्रव से अभक्ष्य भक्षण और धर्मविद्रोह हुआ हो तो ब्राह्मण कृच्छ्र प्रायश्चित्त करें क्षत्रिय वैश्य और शूद्र यथाक्रम चतुर्थभाग कम कम करें।

बताए हुए प्रायश्चित्त संक्षिप्तरूप से समझना अत्यावश्यक है। इस विधि में प्रायः निम्न लिखित प्रायश्चित्तों का ही विशेष उपयोग होता है। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं: —

कृच्छ्र (प्राजापत्य) —सात दिन तक उपवास करना अर्थात् उपवासयोग्य पदार्थ अल्प प्रमाण में खाना। या कपिला गाय की धारोष्ण दूध पीना। द्रव्य दान का परिमाण — हरेक कृच्छ्र के लिए एक रुपया या उतना न बन सके तो एक चवन्नी दान करनी चाहिए।

ग्रंथकारों ने कहा है कि इस द्रव्य दान के बदले दस बारह कोस दूर किसी तीर्थ का या पवित्र स्थल का दर्शन करने से भी काम निकल सकता है।

तीन दिन सुबह और तीन दिन शाम को भोजन करने से तीन दिन अयाचितवृत्ति से रहने से और तीन दिन उपवास करने से भी कृच्छ्र होता है।

पादकृच्छ्र—एक भुक्त नक्त, और एक दिन अयाचित वृत्ति से याने विना मांगे जो मिले उस पर रहने से या उपवास करने से पादकृच्छ्र होता है। यह व्रत सब सहलता से कर सकते हैं। इस लिए सब इसे करें।

चांद्रायण—

एकैकं वर्धयेत् पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत।
इंदुक्षये न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः॥

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा के दिन एक, द्वितीया को दो, इस क्रम से बढाते हुए पौर्णिमाके दिन पंद्रह ग्रास भोजन करना चाहिए और कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा के दिन चौदह द्वितीया को तेरह, इस क्रम से कम करते हुए अमावास्याके दिन पूर्ण उपवास करना चाहिए।

अर्थात् एक महीने में दो सौ चालीस ग्रास भोजन करना चाहिए। प्रति दिन आठ ग्रास भोजन किया, या एक दिन सोलह ग्रास लेकर दूसरे दिन उपवास किया तौभी चल सकता है। इस में कृच्छ्र से चौगुना द्रव्य दान करना चाहिए।

पराक —बारह दिन उपवास करने से पराक नामक व्रत होता है। इस में कृच्छ्र से दुगुना द्रव्य दान करना चाहिए।

(ले०-श्री. पं. प्रियरत्न विद्यार्थी)

यह सर्पासन चिकित्सा सम्बन्धि आसनों में वीर्य्यरक्षण के लिये एक मुख्य आसन है अर्थात यदि मेरे बताए एकेले इस सर्पासन को ही निरन्तर दोनों समय करें तो "स्वप्नदोष" रोग सर्वथा नष्ट हो जावे । विधि यह है कि भूमिपर औन्धा लेट जांव और दोनों हाथ, हनु (ठोडी), छाती, उपस्थेन्द्रिय, दोनों जानु (घुटने,) दोनों पैरों के पंजे भूमिको स्पर्श करें या यों समझिये कि शरीर का भार इन नव अङ्गोंपर होना चाहिये "एडी मिली हों हाथ स्कन्धों के पास रखे हों फिर ठोडी को भूमिसे ऊपर उठावें और शनैः शनैः जहां तक आगे के अङ्गोंको भूमिसे ऊपर उठासकें उठावें प्रत्युत हाथों पर भार न पडने पावे, ऐसा करते हुए एक आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम (श्वासको भीतर रोकना) करें यह भुजङ्गासन का प्रथमप्रकार है फिर देखो-

(२) इस के अनन्तर पूर्ववत् नवाङ्ग लेटे हुए दोनों हाथ पृष्ठ के ऊपर मिलाकर रखें एवं पूर्ववत् आभ्यन्तर प्राणायाम करें और हनुसे लेकर अङ्गको जितना ऊपर उठासकें शनैः शनैः उठावें, प्रथम प्रकार में और इस में भेद इतना ही है कि हाथों को पृष्ठ के ऊपर मिला कर रखना और सब पूर्व के समान है ॥

(३) इसके पश्चात प्रथम प्रकार का भुजङ्गासन करके दोनों जानु (घुटने) भी ऊपर उठालेवें फिर प्रथमप्रकार के समान सब कुछ करें प्रथम और इस तृतीय प्रकार में भेद इतना ही है कि इस में दोनों जानु ऊपर उठाने होते हैं ॥

(४) तत्पश्चात् द्वितीय प्रकार के समान दोनों हाथ ऊपर उठाकर पृष्ठ पर मिलादें बस तृतीय प्रकार और चतुर्थ प्रकार में केवल इतनाही अन्तर है और सब समान है ॥

एवं इस प्रकार का भुजङ्गासन जो चार प्राणायामों में होगा जिस में ५ मिनिट के लगभग लगेंगी सायं प्रातः दोनों समय जो कोई इसका अनुष्ठान करेगा चाहे वह पुरुष अन्य चिकित्सा सम्बन्धी आसनों को न भी करे पर अति शीघ्र स्वप्नदोष रोग से मुक्ति पावेगा। कुछ दिवस इसही एकेले को करते हुए अभ्यासानुभव से परीक्षा कर देखें ।

देवल स्मृतिका विचार।

वैदिक धर्मके इस अंकमें देवलस्मृति का पतितोंकी शुद्धि करनेका प्रकरण दिया है। पाठक इस लेखको विचार की दृष्टिसे पढें। इस स्मृतिमें म्लेच्छों द्वारा धर्मांतर किये गये तथा अन्य रीतिसे बलात्कारपूर्वक भ्रष्ट किये हुए पतितोंकी शुद्धि करनेकी विधि दियी हुई है। इसमें–

(१) तत्काल धर्मभ्रष्ट हुए अर्थात् एक दो या दस पांच दिन तक अन्य धर्ममें रहे हुए लोग,

(२) मास दो माससे सालभरतक अन्यधर्ममें रहे हुए,

(३) सालसे अधिक देर तक अन्य धर्ममें गये और वहां रहे हुए लोग,

(४) स्वेच्छासे अन्य धर्ममें प्रविष्ट हुए,

(५) बलात्कार से अन्य मतमें गये हुए,

(६) अन्य धर्ममें जाकर उनके संगमें रहकर खान पान स्त्रीसंग आदि किये हुए लोग,

(७) अभक्ष्य भक्षण तथा अपेय पान किये या कराये हुए जन,

(८) स्त्रियोंके बलात्कार से धर्मभ्रष्ट होने तथा उनके गर्भवती होनेपर,

(९) बाल, तरुण, वृद्ध तथा बाला, तरुणी और वृद्धाओंके स्वेच्छासे अथवा अनिच्छा से धर्मांतर करनेपर-

जो प्रायश्चित्त उनको देना उस समय के धर्माचार्योंने मंजूर किया था, उसका सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार इस देवलस्मृतिमें दिखाई देता है।

स्मृतिका आचार कालानुरूप बदलता जाता है वह श्रुतिके आदेशोंके समान त्रिकाल में स्थिर नहीं रह सकता। यह बात सब विद्वान जानते ही हैं। इस नियमको ध्यानमें धरनेसे देवलस्मृतिमें वर्णन किये हुए प्रायश्चित्त त्रिकालाबाधित नहीं हो सकते। उस समयके धर्माचार्योंने अपनी अवस्था, समाज स्थिति, तथा देशकी और अन्य धर्मीयोंकी परिस्थिति के अनुसार अर्थात् इन सब बातों का विचार करके अपने समयके लिये ये प्रायश्चित्त बनाये थे। इस समय की सब अवस्था और परिस्थिति पूर्णरूपसे बदल गई है, इस कारण इस समयके प्रायश्चित्त भी भिन्न होंगे। अर्थात् देवलस्मृतिके प्रायश्चित्तोंकी अपेक्षा सौम्य अथवा तीव्र होंगे। यह सिद्ध करने के लिये प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं है।

इस देवल स्मृतिमें जो पतितोंका वर्णन किया है, प्रायःवेही प्रकार आज भी हो रहे हैं। आज भी लडके और लडकियों को जबरदस्ती म्लेंच्छ लोग ले जा रहे हैं। स्त्रियोंपर अत्याचार हो रहे हैं। तरुणों को लुभाकर धर्मांतर में फसा रहे हैं, खानपान आदिका नियम बिलकुल रहा नहीं है।

देवलस्मृतिके समय स्वधर्मी राजाओंका राज्य होनेसे राजदर्बार में स्वधर्म का प्रवेश था आजकी स्थिति उससे भिन्न है। राजदर्बारमें स्वधर्म के प्रवेश के लिये कोई स्थान नहीं है और इस कारण बडी कष्टतर परिस्थिति हुई है।

म्लेंच्छों की चालाखियां बढ गई हैं और स्वधर्मियों की मर्दानी कम हुई है। पहिले जो लोग स्वसंरक्षणमें समर्थ थे वेही आज अपनी रक्षा के लिये दूसरों के मुंहकी ओर देख रहे हैं।

इससे पाठक जान सकते हैं कि देवलस्मृति के समय की अपेक्षा इस समय के प्रायश्चित्त स्वल्प और सुगम होने चाहिये । यह प्रायश्चित्तोंका विषय समाज के धुरंधर विद्वान जिनको अपने समाज की रक्षा करने की चिन्ता हो वेही निश्चित कर सकते हैं ।

देवलस्मृतिके समयके विद्वान अपने संगठन की रक्षा, अपने सामाजिक शक्तिकी रक्षा तथा अपने धर्म की रक्षा करनेके उद्देश्यसे जो जो प्रयत्न कर रहे थे उनका ज्ञान इस स्मृतिको देखनेसे हो सकता है । वे प्राचीन कालके स्मृतिकार आजकल के कूपमंडूक विद्वान पंडितोंके समान अपने ही समाजका घात करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होते थे । समाजका संख्याबल भी एक बल होता है । किसी भी समाजको यदि जीना है तो अपने संख्या बलका उसे अवश्य विचार करना चाहिये । क्या इस समयके विद्वान अपने सामाजिक संख्याबलका विचार कर रहे हैं ? यदि करते तो शुद्धि और संगठन तथा पतितोद्धार के विषयमें इतने उदासीन न रहते । अतः इस देवलस्मृतिको यहां मुद्रित करके हम अपने धर्म भाईयोंका मन इस बातकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि वे अपने स्मृतिकारोंके आशय को देखें, उनके उदार भावों का अवलोकन करें, उनके संगठनके विचारों का मनन करें और इस समयमें जो अपने समाजपर आपत्ति आरही है उसको दूर करनेके लिये शुद्धि संगठन और पतितोद्धार के कार्य करके अपने समाज का बल बढावें ।

देवलस्मृतिः ।

सिन्धुतीरे सुखासीनं देवलं मुनिसत्तमम् ।
समेत्य मुनयः सर्वे इदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥

(सिन्धुतीरे)सिन्धु नदी के तीर पर (सुखासीनं) सुखसे बैठे हुए (मुनिसत्तमम्) मुनिश्रेष्ठ (देवलं) देवल के (समेत्य) पास जाकर (सर्वे मुनयः) सब मुनियों ने (इदं वचनं) ये शब्द (अब्रुवन्) कहे —

भगवन्म्लेच्छनीता हि कथं शुद्धिमवाप्नुयुः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवानुपूर्वशः ॥ २ ॥

(भगवन्) भगवन् (म्लेच्छनीता हि) म्लेच्छों द्वारा भ्रष्ट किए गए (ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र (अनुपूर्वशः) क्रमसे (कथं) कैसे (शुद्धिं) शुद्ध (अवाप्नुयुः) हो सकेंगे ।

कथं स्नानं कथं शौचं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
किमाचारा भवेयुस्ते तदाचक्ष्व सविस्तरम् ॥ ३ ॥

(कथं स्नानं) वे किस प्रकार स्नान करें ? (कथं शौचं) किस प्रकार शुद्ध हों ? (कथं) किस प्रकार (प्रायश्चित्तं) उन्हें प्रायश्चित्त (भवेत) दिया जावे ? (किम्)कौनसे(ते आचाराः)आचारों का वे (भवेयुः) पालन करें ? (तत्) वह (सविस्तरम्) विस्तारपूर्वक (आचक्ष्व) बताइए ।

देवल उवाच—

त्रिशंकुं वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् ।

उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीटकम् ॥४॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महर्षयः ॥५॥

(महानद्या उत्तरेण) उत्तर में महानदीको (दक्षिणेन तु) दक्षिण में (कीटकम्) मगध देशको (सर्वं) इस सब (द्वादशयोजनं) बारहयोजन विस्तीर्ण (त्रिशंकुं) त्रिशंकु देश (वर्जयेत्) छोडकर (विस्तरेण) विस्तारपूर्वक (प्रायश्चित्तं) मैं प्रायश्चित्त (प्रवक्षामि) बताता हूँ।

मृतसूते तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते स्वामिनि यौनिकम् ॥६॥

(अनुलोमिनाम्) अनुलोमरीति से की हुई (पत्नीनाम्) स्त्रियोंको (दासीनां च) और दासियों को (स्वामितुल्यं) स्वामी के समान (मृत सूते शौचं भवेत्) जाताशौच और मृताशौच रहना चाहिए। (स्वामिनि मृते) स्वामी के मृत होने पर (यौनिकं) कुटुंबियों के समान अशौच रहना चाहिए।

अपेयं येन संपीतमभक्ष्यं चापि भक्षितम् ।
म्लेछैर्नीतेन विप्रेण अगम्यागमनं कृतम् ॥ ७ ॥
तस्य शुद्धिं प्रवक्ष्यामि यावदेकं तु वत्सरं ।

(म्लेछैर्नीतेन) म्लेच्छों द्वारा भ्रष्ट किए हुए (येन विप्रेण) जिस विप्रसे (यावदेकं तु वत्सरं) एक साल तक (अपेयं संपीतं) अपेय पान हुआ हो (अभक्ष्यं भक्षितं च) अभक्ष्य भक्षण हुआ हो; (अगम्यागमनं कृतं) और अगम्यगमन हुआ हो (तस्य) उसे मैं (शुद्धिं) प्रायश्चित्त (प्रवक्षामि) बताता हूँ।

चांद्रायणं तु विप्रस्य सपराकं प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥
पराकमेकं क्षत्रस्य पादकृच्छ्रेण संयुतं ।
पराकार्धं तु वैश्यस्य शूद्रस्य दिनपंचकम् ॥ ९ ॥

(विप्रस्य तु) ब्राह्मणों के लिए (सपराकं चांद्रायणं) सपराक चांद्रायण (प्रकीर्तितम्) बताया गया है; (क्षत्रस्य) क्षत्रियों के लिए (पादकृच्छ्रेण संयुतं) पादकृच्छ्र के साथ (पराकं) पराक बताया गया है; (वैश्यस्य तु) वैश्यों को (पराकार्धं) अर्ध पराक (शूद्रस्य) और शूद्रों को (दिनपंचकं) पांचदिन का उपवास बताया गया है।

नखलोमविहीनानां प्रायश्चित्तं प्रदापयेत् ।
चतुर्णामपिवर्णानामन्यथाऽशुद्धिरस्ति हि ॥१०॥

(नखलोमविहीनानां) नख और केश निकाले हुए लोगों को (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त (प्रदापयेत) दिया जावे, (अन्यथा) अन्यथा (चतुर्णां वर्णानामपि) चारों वर्ण के लोग (अशुद्धिरस्ति हि) अशुद्ध ही रहते हैं।

प्रायश्चित्तविहीनं तु यदा तेषां कलेवरम् ।
कर्तव्यस्तत्र संस्कारो मेखलादण्डवर्जितः ॥११॥

(यदा) यदि (तेषां कलेवरं) भ्रष्ट मनुष्योंका शरीर (प्रायश्चित्तविहीनं) विना प्रायश्चित्त के मृत हुआ हो तो (तत्र) उनके (मेखलादण्डवर्जितः) मेखलादण्डवर्जित (संस्कारः कर्तव्यः) संस्कार किए जावे।

म्लेच्छैर्नीतेन शूद्रैर्वा हारिते दण्डमेखले ।
संस्कारप्रमुखं तस्य सर्वं कार्यं यथाविधि ॥१२॥

(म्लेछैर्नीतेन शूद्रैर्वा) म्लेच्छभ्रष्ट या शूद्र (दण्डमेखले हारिते) यदि दण्डमेखला ले जावें तो (तस्य) उसके (यथाविधि) यथाशास्त्र (सर्वं संस्कारप्रमुखं कार्यं) सब संस्कार किए जावें।

संस्कारान्ते च विप्राणां दानं धेनुश्च दक्षिणा ।
दातव्यं शुद्धिमिच्छद्भिरश्वगोभूमिकांचनम् ॥ १३ ॥

(संस्कारान्ते) संस्कार हो जाने पर (विप्राणां) विप्रों को (दानं धेनुश्च दक्षिणा) दान, धेनु और दक्षिणा दी जावे। (शुद्धिमिच्छद्भिः) शुद्धिकी इच्छा करने वाले (अश्वगो भूमि कांचनं) अश्व, गाय, भूमि और कांचन का (दातव्यं) दान करें।

तदासौ तु कुटुंबानां पङ्क्तिं प्राप्नोति नान्यथा ।
स्वभार्यां च यथान्यायं गच्छन्नेव विशुध्यति ॥ १४॥

(तदासौ) फिर वह (कुटुंबानां) कुटुंबियों की (पांक्तिं प्राप्नोति) पंक्ति में बैठने के योग्य होता है । (अन्यथा न) अन्यथा नहीं । (स्वभार्यां) अपनी स्त्री के पास (यथान्यायं गच्छन्नेव) यथाशास्त्र गमन करने से ही (विशुध्यति) शुद्धि होती है ।

अथ संवत्सरादूर्ध्वं म्लेच्छैर्नीतो यदा भवेत् ।
प्रायश्चित्ते तु संचीर्णे गंगास्नानेन शुध्यति ॥ १५॥

(अथ यदा) यदि (संवत्सरादूर्ध्वं) एक वर्ष से अधिक दिनतक (म्लेच्छैर्नीतो भवेत) म्लेच्छ ने भगाया हो तो (प्रायश्चित्ते तु संचीर्णे) उपरोक्त प्रकार से प्रायश्चित्त लेकर (गंगास्नानेन) गंगास्नान करने से (शुध्यति) शुद्धि होती है ।

सिंधुसौवीरसौराष्ट्रं तथा प्रत्यन्तवासिनः ।
कलिंगकौङ्कणान्वंगान् गत्वा संस्कारमर्हति ॥ १६॥

(सिंधुसौवीर सौराष्ट्रं) सिंधु, सौवीर और सौराष्ट्र देशों में (तथा) उसी प्रकार (प्रत्यन्तवासिनः) आसपास के लोगोंके देशमें (कलिंग कौङ्कणान्वंगान्) कलिंग, कोकण, और वंग देशों में (गत्वा) जाने से (संस्कारमर्हति) मनुष्य को शुद्धि के लिए संस्कार की अपेक्षा रहती है ।

बलाद्दासीकृता ये च म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः ।
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणहिंसनम् ॥ १७॥
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथा तस्यैव भोजनं ।
खरोष्ट्रविड्वराहाणामामिषस्य च भक्षणं ॥ १८॥
तत्स्त्रीणां च तथा संगं ताभिश्च सह भोजनम् ।
मासोषिते द्विजातौ तु प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ १९॥

(ये) जो (म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः) म्लेच्छोंद्वारा, चाण्डालों द्वारा या शूद्रों द्वारा (बलाद्दासीकृता) जबरदस्ती से दास बनाए गए हैं, (गवादि प्राणहिंसनम्) गाय आदि की हिंसा के समान (अशुभं कर्म कारिताः) अपवित्र कार्य जिनसे कराए गए हैं; (उच्छिष्टमार्जनं चैव) जिन्हें झूठा उठाना पडा हो (तथा तस्यैव भोजनं) वैसे ही झूठा खाना पडा हो ; (खरोष्ट्रविड्वराहाणां) और गधा, उँट, सूअर के (आमिषस्य) मांसका (भक्षणं) भक्षण करना पडा हो, (तथा तत्स्त्रीणां संगं च) और उनकी स्त्रियों का संग हो (ताभिश्च सहभोजनं) और उन स्त्रियों के साथ सहभोजन करना पडा हो (मासोषिते द्विजातौ तु)और यदि ब्राह्मणको इस प्रकार एक मास व्यतीत करना पडा हो तो (प्राजापत्यं विशोधनं) उसकी प्राजापत्य प्रायश्चित्त से शुद्धि होती है ।

चांद्रायणं त्वाहिताग्नेः पराकस्त्वथ वा भवेत ।
चांद्रायणं पराकं च चरेत्संवत्सरोषितः॥ २०॥

(आहिताग्नेः) आहिताग्निको (चांद्रायणं) चांद्रायण (अथवा पराकं) या पराक (भवेत्) करना चाहिए; (संवत्सरोषितः) परंतु जिसे एक वर्ष इस प्रकार व्यतीत करना पडा हो वह (चांद्रायणं पराकं च)चांद्रायण और पराक (चरेत्) करे ।

संवत्सरोषितः शूद्रो मासार्धं यावकं पिबेत ।
मासमात्रोषितः शूद्रः कृच्छ्रपादेन शुध्यति ॥ २१ ॥

(संवत्सरोषितः) जिसे एक वर्ष तक परधर्म में रहना पडा हो (शूद्रः) वह शूद्र (मासार्धं) पन्द्रह दिन तक (यावकं) गेहूँ की माड (पिबेत्) पीकर रहे ; (मासमात्रोषितः शूद्रः) परंतु जिस शूद्रको एक मास तक ही रहना पडा हो वह (कृच्छ्रपादेन) कृच्छ्रपाद प्रायश्चित्त से (शुध्यति) शुद्ध होता है ।

ऊर्ध्वं संवत्सरात्कल्प्यं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः ।
संवत्सरैश्चतुर्भिश्च तद्भावमधिगच्छति ॥ २२॥

(द्विजोत्तमैः)इस पर से विद्वान लोग (संवत्सरादूर्ध्वं) एक वर्ष से अधिक परधर्म में रहने वालों के

(प्रायश्चित्तं कल्पयं) प्रायश्चित्त की कल्पना करें; (चतुर्भिः संवत्सरैः) इस प्रकार चार वर्ष तक रहने से (तद्भावमधिगच्छति) मनुष्य परधर्मियों के भाव अपनाता है।

ह्रासो न विद्यते यस्य प्रायश्चित्तं दुरात्मनः।
गुह्यकक्षशिरोभ्रूणां कर्तव्यं कलापनम् ॥ २३ ॥

(यस्य दुरात्मनः) जिस पतित मनुष्य का (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित होता है (ह्रासो न विद्यते) उसके जीव का पतन नहीं होता। (गुह्य कक्षशिरो भ्रूणां, गुह्य बगल शिर और भ्रू के (केशवापनं कर्तव्यम) बाल निकालना चाहिये।

प्रायश्चित्तं समारभ्य प्रायश्चित्तं तु कारयेत।
स्नानं त्रिकालं कुर्वीत धौतवासा जितेन्द्रियः ॥२४॥

(प्रायश्चित्तं समारभ्य) प्रायश्चित के प्रारंभ होने से (प्रायश्चित्तं तु कारयेत) उसके सब विधि प्रायश्चित्त लेनेवाले से कराए जावें। (कभी प्रायश्चित्त विधि कई दिनों तक चलती हैं। उस के लिये यह निर्देश है। (धौत वासा जितेन्द्रियः त्रिवारं स्नानं प्रकुर्वीत) प्रतिदिन तीन बार स्नान करके धोए हुए वस्त्र धारण करना चाहिये और इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिए।

कुशहस्तः सत्यवक्ता देवलेन ह्युदाहृतम्।
वत्सरं वत्सरार्धं वा मासं मासार्धमेव वा ॥ २५ ॥
बलान्म्लेच्छैस्तु यो नीतस्तस्य शुद्धिस्तु कीदृशी।

(देवलेन ह्युदाहृतम्) देवलऋषि का कहना है कि (कुशहस्त.) प्रायश्चित्त लेने वाला हाथ में दर्भ ले (सत्यवक्ता) और सत्य बोले।

(यो) जो (वत्सरं) एक वर्षतक (वत्सरार्धम्, आधे वर्ष तक (मासं) महीने तक (मासार्धमेव वा) या आधे महीने तक (बलात्) जबरदस्ती के कारण (म्लेच्छः नीतः) म्लेच्छ भ्रष्ट हो (तस्य) उसकी (शुद्धिस्तु) शुद्धि (कीदृशी) किस प्रकार की जावे। [उत्तर] (ऊनषोडशः बालोऽपि) और सोलह वर्ष से छोटे

संवत्सरोषिते शूद्रे शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु ॥२६॥
पराकं वत्सरार्धे च पराकार्धं त्रिमासिके।
मासिके पादकृच्छ्रश्च नखलोमविवर्जितः ॥२७॥

(संवत्सरोषिते शूद्रे) यदि शूद्र एक साल तक भ्रष्ट रहा हो तो (चान्द्रायणेन शुद्धिस्तु) उसकी चांद्रायण से शुद्धि होती है। (वत्सरार्धे च, यदि अर्धवर्ष तक रहा हो तो (पराकं) पराक (त्रिमासिके पराकार्धं) तीन महीने तक रहा हो तो आधा पराक (मासिके पादकृच्छ्रश्च) और महीने तक रहा हो तो पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करना चाहिए। (नखलोमविवर्जितः) नख और केश सभी को निकालना चाहिये।

पादोनं क्षत्रियस्योक्तमर्धं वैश्यस्य दापयेत।
प्रायश्चित्तं द्विजस्योक्त पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२८॥

(क्षत्रियस्य पादोनमुक्तं) क्षत्रियों को इसमे एक चतुर्थांश कम प्रायश्चित्त बताया गया है। (वैश्यस्य अर्ध दापयेत्) वैश्य को इसका आधा प्रायश्चित्त दिया जावे। (द्विजस्योक्तं) ब्राह्मण को बताए हुए (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त का (पादं) चतुर्थ भाग (शूद्रस्य) शूद्र को (दापयेत) दिया जावे।

प्रायश्चित्तावसाने तु दोग्ध्री गौ दक्षिणा मता।
तथाऽसौ कुटुम्बान्ते ह्युपविष्टो न दुष्यति ॥ २९॥

(प्रायश्चित्तावसाने तु) प्रायश्चित समाप्त होनेपर (दोग्ध्री गौ) दूध देनेवाली गाय (दक्षिणा मता) दक्षिणा रूप दी जावे। (तथाऽसौ) फिर वह (कुटुम्बान्ते ह्युपविष्टो) कुटुम्ब में जाकर रहे तो (न दुष्यति) किसीको भी उसके कारण दोष नहीं लगता।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यून षोडशः।
प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३० ॥

(यस्य अशीतिः वर्षाणि) जो अस्सी सालका हो

लडके को (स्त्रियां रोगिण एव च) स्त्रियों और रोगियों को (प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति) आधा प्रायश्चित्त दिया जावे ।

अनेकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च ।

प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वाऽन्योऽपि बान्धवः ॥ ३१ ॥

(अनेकादशवर्षस्य) ग्यारह साल से कम (पंचवर्षात् परस्य च) और पांच वर्ष से बडे लडके का (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त (पिता भ्राता वा अन्योऽपि बान्धवः) पिता भाई या अन्य पालक (चरेत्) कर सकता है ।

स्वयं व्रतं चरेत्सर्वमन्यथा नैव शुध्यति ।

तिलहोमं प्रकुर्वीत जपं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ३२ ॥

इ के सिवा दूसरों को (सर्वं व्रतं) सब व्रत का (स्वयं) स्वयं (चरेत्) आचरण करना चाहिए; (अन्यथा) नहीं तो (नैव शुध्यति) शुद्धि नहीं होती । (तिल होमं)तिल होम (प्रकुर्वीत) करना चाहिए; (अतन्द्रितः) और आलस्यरहित होकर (जपं कुर्यात्) जप करना चाहिए ।

संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानासनाशनात् ।

याजनाध्यापनाद्यौनात्पापं संक्रमते नृणाम ॥ ३३ ॥

(संलापात्) संभाषण से (स्पर्शात्) स्पर्श से (निश्वासात्) निश्वास से (सहयानात्) साथ घूमने से (आसनात्) एक साथ बैठने से (अशनात्)एकत्र भोजन से (याजनात्) याजनसे (अध्यापनात्) सिखाने से (यौनात्) और योनिसंबंध से (नृणां) मनुष्यों के (पापं) पाप (संक्रमते) एक दूसरे को लगते हैं ।

याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम् ।

कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ॥ ३४ ॥

(पतितेन) पतित के साथ (याजनं) धर्मविधि (योनिसबंधम्) विवाह (स्वाध्यायम्) अध्ययन (सहभोजनं) सह भोजन (कृत्वा) करने से (सद्यः पतत्येव) मनुष्यका त्वरित पतन होता है । (न संशयः) इसमें कुछभी संशय नहीं ।

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन् ।

याजनासनयज्ञादि कुर्वाणः सार्वकामिकम् ॥ ३५ ॥

(संवत्सरेण) एक वर्ष तक (पतितेन सह) पतितके साथ (आचरन्) रहकर (याजनासनयज्ञादि) याजन, साथ बैठना, यज्ञ आदि (सार्वकामिकं) सब कामनिक कर्म (कुर्वाणः) करने से (पतति) मनुष्य पतित होता है ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तमिदं शुभम् ।

स्त्रीणां म्लेच्छैश्च नीतानां बलात्संवेशने क्वचित् ॥ ३६ ॥

(अतःपरं) अब आगे (क्वचित् बलात्संवेशने म्लेच्छैः नीतानां स्त्रीणां) क्वचित् बलात्कार से म्लेच्छों द्वारा भ्रष्ट की हुई स्त्रियों की (इदं शुभं प्रायश्चित्तं) शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त (प्रवक्ष्यामि) बताता हूं ।

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा नीता यदाऽन्त्यजैः ।

ब्राह्मण्यः कीदृशं न्याय्यं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ३७ ॥

(यदा) यदि (अन्त्यजैः) अन्त्यज आदि लोगों से (ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा) ब्राह्मण स्त्री, क्षत्रिय स्त्री, वैश्य स्त्री और शूद्र स्त्री (नीता) भ्रष्ट की गई हों तो (ब्राह्मण्यः) ब्राह्मण स्त्री के लिए (कीदृशं) कौनसा (न्याय्यं प्रायश्चित्तं) योग्य प्रायश्चित्त (विधीयते) होगा ।

ब्राह्मणी भोजयेन्म्लेच्छमभक्ष्यं भक्षयेद्यदि ।

पराकेण ततः शुद्धिः पादेनोत्तरतोत्तरान् ॥ ३८ ॥

(यदि) यदि (ब्राह्मणी) ब्राह्मण स्त्री (म्लेच्छं) म्लेच्छ को (भोजयेत्) परसे (अभक्ष्यं च) और अभक्ष्य (भक्षयेत्) भक्षण करे (ततः) तो (पराकेण) पराक से (शुद्धिः) उसकी शुद्धि होती है । (पादेनोत्तरतोत्तरान्) क्षत्रिय वैश्य और शूद्र स्त्रियों की शुद्धि के लिए क्रमशः चतुर्थ भाग प्रायश्चित्त कम किया जावे ।

न कृतं मैथुनं ताभिरभक्ष्यं नैव भक्षितम्।
शुद्धिस्तदा त्रिरात्रेण म्लेच्छान्ने नैव भक्षिते ॥ ३९॥

(म्लेच्छान्ने नैव भक्षिते) यदि केवल म्लेच्छान्न-भक्षण न हुआ हो किंतु (ताभिः) उनसे (मैथुनं न कृतं) मैथुन न हुआ हो (अभक्ष्यं न नैव भक्षितम्) और अभक्ष्य भक्षण न हुआ हो (तदा) तो (त्रिरात्रेण) तीन रात व्रतस्थ रहने से (शुद्धिः) शुद्धि होती है।

रजस्वला यदा स्पृष्टा म्लेच्छेनान्येन वा पुनः।
त्रिरात्रमुषिता स्नात्वा पंचगव्येन शुध्यति ॥ ४० ॥

(यदा) यदि (म्लेच्छेनान्येन वा पुनः) म्लेच्छ या और किसी के द्वारा (रजस्वला स्पृष्टा) रजस्वला स्पृष्ट हो तो (त्रिरात्रमुषिता) तीन रात तक अलग रह (स्नात्वा) स्नान कर (पंचगव्येन शुध्यति) पंचगव्य लेने से शुद्ध होती है।

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा।
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्देवलस्य वचो यथा ॥ ४१ ॥

(ब्राह्मणी तथा क्षत्रिया रजस्वला) रजस्वला चाहे वे ब्राह्मणी हो या क्षत्रिया (अन्योन्यं स्पृष्ट्वा) एक दूसरी को स्पर्श करने से वे (त्रिरात्रेण) तीन रात्रि के उपरान्त (विशुद्धिः स्यात्) शुद्ध होती है ; (यथा देवलस्य वचः) जैसा कि देवल ऋषि ने कहा है।

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा।
पंचरात्रं निराहारं पंचगव्येन शुध्यति ॥ ४२ ॥

यदि (ब्राह्मणी तथा शूद्रजा) ब्राह्मणी और शूद्र स्त्री (रजस्वला) रजस्वला होकर (अन्योन्यं स्पृष्ट्वा) एक दूसरी को छीलें तो (निराहारं पंचरात्रं) वे पांच रात्रि तक निराहार रहकर (पंचगव्येन शुध्यति) पंचगव्य लेनेसे शुद्ध होती हैं।

ब्राह्मण्यनशनं कुर्यात् क्षत्रिया स्नानमाचरेत्।
सचैल वैश्य जातीनां नक्तं शूद्रे विनिर्दिशेत् ॥ ४३ ॥

(ब्राह्मणी) ब्राह्मण स्त्री (अनशनं कुर्यात्) उपवास करे, (क्षत्रिया) क्षत्रिय स्त्री (स्नानमाचरेत्) स्नान करे, (वैश्यजातीनां सचैलं शूद्रे नक्तं विनिर्दिशेत्) वैश्य स्त्री सचैल स्नान करे और शूद्र नक्तव्रत करे।

म्लेच्छान्नं म्लेच्छसंस्पर्शो म्लेच्छेन सह संस्थितिः।
वत्सरं वत्सरादूर्ध्वं त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥ ४४ ॥

यदि (वत्सरं) एक वर्ष तक (वत्सरादूर्ध्वं) या एक वर्ष से अधिक (म्लेच्छान्नं) म्लेच्छान्न भक्षण (म्लेच्छसंस्पर्शो) म्लेच्छों का संस्पर्श (म्लेच्छेन सह संस्थितिः) और म्लेच्छों के साथ वास हुआ हो तो (त्रिरात्रेण) तीन रात्रि में (शुध्यति) उसकी शुद्धि होती है।

म्लेच्छैर्हृतानां चौरैर्वा कान्तारेषु प्रवासिनाम्।
भुक्त्वा भक्ष्यमभक्ष्यं वा क्षुधार्तेन भयेन वा ॥४५॥
पुनः प्राप्य स्वकं देशं चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः।
कृच्छ्रमेकं चरेद्विप्रस्तदर्धं क्षत्रियश्चरेत्।
पादोनं च चरेद्वैश्यः शूद्रः पादेन शुध्यति॥४६॥

(कान्तारेषु) वन में (म्लेच्छैः चोरैर्वा) म्लेच्छ या चोर (हृतानां प्रवासिनां) जिन्हें पकड़ ले गए हों उन्होंने यदि (क्षुधार्तेन) क्षुधा के कारण (भयेन वा) या भयसे (भक्ष्यमभक्ष्यं भुक्त्वा) भक्ष्याभक्ष्य भोजन किया हो तो (पुनः स्वकं देशं प्राप्य) फिरसे अपने देश में आकर (चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः) उनके-वे किसी भी वर्ण के हों-पाप की निष्कृति होती है, (विप्रः) विप्रको (एकं कृच्छ्रं चरेत्) कृच्छ्र का आचरण करना चाहिए; (क्षत्रियः तदर्धं चरेत) क्षत्रिय आधा कृच्छ्र करे (वैश्यः पादोनं चरेत) वैश्य उससे चतुर्थ भाग कम करे; (शूद्रः पादेन शुध्यति) कृच्छ्रके चतुर्थ भागसे शूद्र की शुद्धि होती है।

गृहीता स्त्री बलादेव म्लेच्छैर्गुर्वी कृता यदि।
गुर्वी न शुद्धिमाप्नोति त्रिरात्रेणेतरा शुचिः ॥ ४७ ॥

(यदि म्लेच्छैः बलादेव स्त्री गृहीता) यदि म्लेच्छों ने बलात्कार से किसी स्त्री को पकड लिया हो। (गुर्वी कृता) और यदि उसे म्लेच्छ से गर्भ रहा हो तो (गुर्वी) गर्भिणी स्त्री (शुद्धिं नाप्नोति) शुद्ध नहीं होती; (इतरा) अन्य स्त्री (त्रिरात्रेण) तीन दिन में (शुध्यति) शुद्ध होती हैं।

योषा गर्भं विधत्ते या म्लेच्छात्कामादकामतः ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वर्णेतरा च या ॥४८॥
अभक्ष्यभक्षणं कुर्यात्तस्याः शुद्धिः कथं भवेत् ।
कृच्छ्रं सांतपनं शुद्धिर्घृतैर्योनेश्च पाचनम् ॥४९॥

(ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वर्णेतरा च या योषा) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या किसी भी वर्ण की स्त्री यदि (कामादकामतः) अपनी इच्छा से या इच्छा के विरुद्ध (म्लेच्छाद्गर्भं विधत्ते) म्लेच्छसे गर्भ धारण करे (अभक्ष्यभक्षणं कुर्यात) और अभक्ष्य भोजन करे (तस्याः) तो उसकी (शुद्धिः) शुद्धि (कथं भवेत्) किस प्रकार हो ? (कृच्छ्रं सांतपनं) कृच्छ्र सांतपन से (घृतैर्योनेश्च पाचनं) और घी से योनि का पाचन करने से (शुद्धिः) शुद्धि प्राप्त होती है।

असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते।
अशुद्धा सा भवेत् नारी यावच्छल्यं न मुंचति॥ ५०॥

(असवर्णेन) असवर्ण पुरुष से (स्त्रीणां योनौ) स्त्रीको (यो गर्भः) जो गर्भ (निषिच्यते) रहता है (यावत् शल्यं न मुंचति) उस गर्भ का जब तक मोचन न हो तब तक (सा नारी) वह स्त्री (अशुद्धा भवेत्) अशुद्ध रहती है।

विनिःसृते ततः शल्ये रजसो वापि दर्शने।
तदा सा शुध्यते नारी विमलं कांचनं यथा॥ ५१॥

(ततः शल्ये विनिःसृते)परंतु गर्भमोचन होने पर (रजसो दर्शने वा) या रजोदर्शन होने पर (तदा सा नारी) वह स्त्री (शुध्यते)शुद्ध होती है (यथा विमलं कांचनं) मानों कि (वह) पवित्र सुवर्ण है।

स गर्भो दीयतेऽन्यस्मै स्वयं ग्राह्यो न कर्हिचित् ।
स्वजातौ वर्जयेत् अस्मात् संकरः स्यादतोऽन्यथा ॥५२॥

(स गर्भो) वह गर्भ (अन्यस्मै) दूसरे को (दीयते) दिया जावे (कर्हिचित्) कभी भी (स्वयं न ग्राह्यः) स्वयं न ले; (स्वजातौ वर्जयेत्) उसे अपनी जाति से अलग रखना चाहिए (अन्यथा अस्मात् संकरो जायते) नहीं तो उससे वर्णसंकर होगा।

गृहीता यो बलान्म्लेच्छैः पंच षट् सप्त वा समाः ।
दशादि विंशतिं यावत्तस्य शुद्धिं विधीयते ॥५३॥

(यो म्लेच्छैर्बलाद्गृहीतः तस्य) म्लेच्छ ने जिसे जबरदस्ती से भ्रष्ट किया हो उसकी (शुद्धिः) शुद्धि (पंच षट् सप्त वा समाः यावत् दशादि विंशतिं) पांच, छः, सात, या दस से बीस वर्ष तक (विधीयते) की जासकती है।

प्राजापत्यद्वयं तस्य शुद्धिरेषा विधीयते ।
अतःपरं नास्ति शुद्धिः कृच्छ्रमेव सहोषिते ॥५४॥

(प्राजापत्यद्वयं) प्राजापत्यद्वय करने से (एषा तस्य शुद्धिः विधीयते) उसकी शुद्धि होती है (अतःपरं) इससे अधिक समय के पश्चात् (शुद्धिर्नास्ति) शुद्ध नहीं हो सकती (सहोषिते एव) यदि केवल सहवास ही हुआ हो तो (कृच्छ्रम्) कृच्छ्र करने से शुद्धि होती है।

म्लेच्छैः सहोषितो यस्तु पंचप्रभृति विंशतिः ।
वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चान्द्रायण द्वयम् ॥५५॥

(यः) जो (पंचप्रभृति) पांच वर्ष से (विंशतिः वर्षाणि) बीस वर्ष तक (म्लेच्छैः सहोषितः) म्लेच्छों के साथ रहा हो (तस्य) उसके लिए (चान्द्रायण द्वयं) दो चान्द्रायण करना (एषा शुद्धिरुक्ता) यही शुद्धि बताई गई है।

कक्षागुह्यशिरः श्मश्रूभ्रूलोमपरिकृन्तनम् ।

(कक्षा) बगल (गुह्य) गुह्य (शिरः) सिर (श्मश्रू) मूँछे (भ्रू) भ्रू आदि स्थान के (लोम परिकृन्तनम्) बाल निकालने चाहिए।

प्राहृत्य पाणिपादानां नखलोम ततःशुचिः ॥५६॥

(पाणिपादानां) हाथ पैरके (नखलोम) नख रोम (प्राहृत्य) निकालना चाहिए (ततः) ऐसा करने से (शुचि) शुध्दि होती है।

यो दातुं न विजानाति प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।

शुद्धिं ददाति चान्यस्मै तदशुद्धः स भाजनम्॥५७॥

(यो द्विजोत्तमः) जो विप्र (प्रायश्चित्तं दातुं) प्रायश्चित देना (न विजानाति) नहीं जानता (अन्यस्मै) परंतु तो भी दूसरों को (शुद्धिं ददाति) शुद्ध करलेता है (सः) वह (अशुद्धेः) अशुद्धिका (भाजनम्) पात्र होता है।

सभायां स्पर्शने चैव म्लेच्छे न सह संविशेत् ।

कुर्यात् स्नानं सचैलं तु दिनमेकमभोजनम् ॥५८॥

(सभायां) सभा में (स्पर्शने चैव) स्पर्श हो तो भी (म्लेच्छेन सह) म्लेच्छके साथ (संविशेत) बैठना चाहिये। (सचैलं तु स्नानं)किंतु सचैलस्नान (एकं दिनमभोजनम्) और एक दिन उपवास (कुर्यात) करना चाहिये।

माता म्लेच्छत्वमागच्छेत्पितरौ वा कथंचन ।

असूतकं च नष्टस्य देवलस्य वचो यथा ॥ ५९ ॥

(कथंचन)किसी तरह (माता पितरौ वा) माता या पिता (म्लेच्छत्वमागच्छेत) म्लेच्छ हो जावे तो (नष्टस्य) उनको मृत्यु से (असूतकं) अशौच नहीं होता। (यथा) जैसा कि (देवलस्य वचः) देवल का कहना है।

मातरं च परित्यज्य पितरं च तथा सुतः ।

ततः पितामहं चैव शेषपिण्डं तु निर्वपेत् ॥ ६०॥

(मातरं तथा पितरं च परित्यज्य) ऐसे माबाप को छोड़ (सुतः) पुत्र शेषपिंडं पितामहं निर्वपेत्)बचे हुए शुद्ध पितामहादि को पिण्डदान करे।

स्त्रीणां चैव तु शूद्राणां पतितानां तथैव च ।

पंचगव्यं न दातव्यं दातव्यं मंत्रवर्जितम् ॥ ६१ ॥

(स्त्रीणां शुद्राणां तथा पतितानां) स्त्री शूद्र और पतित इन्हें (पंचगव्यं) पंचगव्य (न दातव्यं) न देना चाहिये।(मन्त्रवर्जितं दातव्यं) यदि देना ही हो तो मंत्रवर्जित पंचगव्य दिया जावे।

वरुणो देवता मूत्रे गोमये हव्यवाहनः ।

सोमः क्षीरे दध्नि वायुर्घृते रविरुदाहृतः ॥ ६२ ॥

(मूत्रे) गोमूत्र में (वरुणो) वरुण (गोमये)गोबर में (हव्यवाहनः) अग्नि (क्षीरे) दूध में (सोमः) चंद्र (दध्नि) दही में (वायुः) वायु (घृते)घी में (रविः) सूर्य (देवता उपाहृतः) देवता बताए गए हैं।

गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ।

पयः कांचनवर्णाया नीलायाश्चापि गोर्दधि॥६३॥

घृतं वै कृष्णवर्णाया विभक्तिर्वर्णगोचरा ।

उदकं सर्ववर्णं स्यात्कस्य वर्णो न गृह्यते ॥६४॥

(ताम्रवर्णायाः गोमूत्रं) लाल गाय का मूत्र, (श्वेतायाश्चैव गोमयम्) सफेद गाय का गोबर, (कांचनवर्णायाः पयः) सुनहली गाय का दूध, (नीलायाश्च गोर्दधि) नीली गाय का दही, (कृष्णवर्णाया घृतम्) और काली गाय का घी लेना चाहिए। (वर्णगोचरा विभक्तिः) विशेष गुण वर्णपर निर्भर हैं। (उदकं सर्ववर्णं स्यात) पानी के सब रंग होते हैं। (कस्य वर्णो) पानी किसका रंग (न गृह्यते) नहीं लेता।

षण्मासिके तु गोमूत्रं गोमयं च कुशोदकम् ।

त्रिमासिकं घृतं क्षीरं दधि स्याद्दशमासिकम्॥६५॥

(षण्मात्रिकं) छः भाग (गोमूत्रं गोमयं कुशोदकं च) गोमूत्र, गोबर और दर्भ जल,(त्रिमात्रिकं) तीन भाग (घृतं क्षीरं) घी और दूध और (दशमात्रिकम्) दस भाग (दधि) दही (स्यात) होना चाहिए ।

व्रते तु सर्ववर्णानां पंचगव्यं तु संख्यया ।
प्रायश्चित्तं यथोक्तं तु दातव्यं ब्रह्मवादिभिः ॥६६॥

(सर्ववर्णानां व्रते) सब वर्ण के लोगों के व्रत में (ब्रह्मवादिभिः) ब्राह्मणों को चाहिए कि वे (संख्यया पंचगव्यं) संख्यानुसार पंचगव्य और (यथोक्तं प्रायश्चित्तं) निश्चित प्रायश्चित्त (दातव्यं) दें ।

अन्यथा दापयेद्यस्तु प्रायश्चित्ती भवेद् द्विजः ॥६७॥

(यस्तु द्विजः) जो ब्राम्हण (अन्यथा दापयेत्) इस प्रकार न करेगा (प्रायश्चित्ती भवेत) वह प्रायश्चित्त का भागी होगा ।

कपिलायाश्च गोर्दुग्ध्वा धारोष्णं यः पयः पिबेत्।
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥६८॥

(यः) जो मनुष्य (कपिलायाः गोः पयः दुग्ध्वा) कपिला गाय का दूध निकालकर (धारोष्णं पिबेत्) धारोष्ण पियेगा वह (एष व्यासकृतः कृच्छ्रः) व्यास ऋषि ने बताए हुए इस कृच्छ्र से (श्वपाकमपि) चाण्डाल हो तो भी शुद्ध होगा ।

तिलहोमं प्रकुर्वीत जपं कुर्यादतन्द्रितः ।
'विष्णो रराट' मंत्रेण प्रायश्चित्ती विशुध्यते ॥६९॥

ॐ विष्णोरराटमसि विष्णोः पृष्ठमसि विष्णोरन्यप्त्रेस्थो विष्णोःस्यूरसि विष्णो ध्रुवमसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ १॥

(तिलहोमं प्रकुर्वीत) तिलहोम करना चाहिए अतन्द्रितः जपं कुर्यात) और ध्यानपूर्वक जप करना चाहिए (विष्णोरराटमंत्रेण) "विष्णोरराट" मंत्रसे (प्रायश्चित्ती) प्रायश्चित्त लेनेवाला (विशुध्यति) शुद्ध होता है ।

बहुनाऽ किमुक्तेन तिलहोमो विधीयते ।
तिलान्दत्त्वा तिलान्भुक्त्वा कुर्वीताऽघनिवारणम् ७०।

(अत्र बहुनोक्तेन किम्)अधिक क्या कहें (तिलहोमो विधीयते) तिल का होम करना चाहिए । (तिलान्दत्त्वा) तिल देकर और (तिलान्भुक्त्वा) तिल खाकर (अघनिवारणम्) पापनिवारण (कुर्यात) करना चाहिए ।

संपादयन्ति यद्विप्राः स्नानं तीर्थफलं तपः ।
संपादी क्रमते पापं तस्य संपद्यते फलं ॥७१॥

(विप्राः) ब्राह्मण (स्नानं तीर्थफलं तपः) स्नान, तीर्थका, फल, तप (यत् संपादयन्ति) आदि जो पुण्य प्राप्त करते हैं उससे (संपादी)वे पुण्य संपादन करनेवाले (पापं संक्रमते) पापसे मुक्त होते हैं और (तस्य फलं) उसका पुण्य भी (संपद्यते) उन्हें मिलता है ।

प्रायश्चित्तं समाख्यातं यथोक्तं देवलेन तु ।
इतरेषामृषीणां च नान्यथा वाक्यमर्हथ ॥७२॥

(देवलेन तु) देवल ऋषीने (यथोक्तं) इस प्रकार (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त (समाख्यातं) बताया है । (इतरेषामृषीणां च) अन्य ऋषियों का (अन्यथा वाक्यं) इस के विरुद्ध मत (नार्हथ) नहीं हो सकता ।

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं गवान्हिकम् ।
विप्रेभ्यः संप्रयच्छेत प्रायश्चित्ती विशुध्यति॥७३॥

(सुवर्णदानं) सुवर्णदान (गोदानं) धेनुदान (भूमिदानं) भूमिदान, (गवान्हिकम्) गाय के लिए आवश्यक खाद्यादि सामुग्री, (विप्रेभ्यः) ब्राह्मणों को (संप्रयच्छेत) देना चाहिए । (प्रायश्चित्ती विशुध्यति) इस से प्रायश्चित्त लेने वाले मनुष्य की शुद्धि होती है ।

पंचाहान्सहवासेन संभाषणसहाशनैः ।
संप्राश्य पंचगव्यं तु दानं दत्त्वा विशुध्यति ॥७४॥

(पंचाहान्सहवासेन) पांच दिन सहवास (संभाषण सहाशनैः) संभाषण और सहभोजन हुआ हो तो (पंचगव्यं संप्राश्य) पंचगव्य पीकर (दानं दत्त्वा) दान देकर (विशुध्यति) मनुष्य शुद्ध होता है।

एकद्वित्रिचतुःसंख्यान्वत्सरान्संवसेद्यदि ।
म्लेच्छवासं द्विजश्रेष्ठः क्रमते द्रव्ययोगतः ॥७५॥

(यदि) यदि (एकद्वित्रिचतुःसंख्यान्) एक, दो, तीन या चार (संवत्सरान्) साल तक (संवसेत्) म्लेच्छों के साथ रहे तो (द्विजश्रेष्ठः) ब्राह्मण (द्रव्ययोगतः)द्रव्य के साथ प्रायश्चित करनेसे (म्लेच्छवासं क्रमते) म्लेच्छवास के पातकसे मुक्त होता है ।

एकाहेन तु गोमूत्रं द्व्यहेनैव तु गोमयम् ।
त्र्यहात्क्षीरेण संयुक्तं चतुर्थे दधिमिश्रितम ॥७६॥
पंचमे घृतसंपूर्णं पंचगव्यं प्रदापयेत् ।

(एकाहेन तु गोमूत्रं)एक दिन गोमूत्र, (द्व्यहेनैव तु गोमयम्) दो दिन गोबर, (त्र्यहात् क्षीरेण संयुक्तं) तीन दिन दूध मिला हुआ (चतुर्थे दधि मिश्रितम) चौथे दिन दही मिला हुआ (पंचमे घृतसंपूर्ण पंचगव्य प्रदापयेत) और पांचवे दिन घृतसंपूर्ण पंचगव्य देना चाहिए ।

पंचसप्तदशाहानि पंचदशाच्च विंशतिः ॥ ७७ ॥
संवासं च प्रवक्ष्यामि देहशुद्धिं द्विजन्मनाम् ।

(पंचसप्तदशाहानि) पांच, सात, दस, (पंचदशाच्च विंशतिः) और पंद्रह से बीस दिन तक (संवासं) सहवास हुआ हो तो (द्विजन्मनां देहशुद्धिं)द्विजों की देहशुद्धि के लिए (प्रवक्ष्यामि) मैं प्रायश्चित्त बताता हूँ ।

पंचाहे पंचगव्यं स्यात्पादकृच्छ्रं दशाहिके ॥७८॥
पराकं पंचदशभिर्विंशेऽतिकृच्छ्रमेव च ।

(पंचाहे पंचगव्यं स्यात)पांच दिन का सहवास हुआ हो तो पंचगव्य देना चाहिये (दशाहिके पादकृच्छ्रं) दसदिन का सहवास हुआ हो तो पादकृच्छ्र करना चाहिये, (पंचदशभिः पराकं) पंद्रह दिन के सहवास में पराक और (विंशेऽतिकृच्छ्रमेव च) बीस दिन के सहवास में अतिकृच्छ्र करना चाहिये।

उदरं प्रविशेद्यस्य पंचगव्यं विधानतः ॥ ७९ ॥
म्लेच्छैर्नीतस्य विप्रस्य पंचगव्यं विशोधनम्॥८०॥

(पंचगव्यं) पंचगव्य यदि (विधानतः) विधिपूर्वक (अस्य उदरं प्रविशेत्)मनुष्य के पेट में पहुँचे तो (पंचगव्यं) उस पंचगव्य से (म्लेच्छैर्नीतस्य विशोधनम्) म्लेच्छभ्रष्ट मनुष्य की शुद्धि होती है ।

पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं घृतं पयः ।
यत्किंचिद् दुष्कृतं तस्य सर्वं नश्यति देहिनः ।
पंच सप्ताष्ट दश वा द्वादशाहोऽपि विंशतिः।
प्राश्यापरेऽहन्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥८१॥

(गोक्षीरं) गाय का दूध (दधि) दही (मूत्रं) मूत्र (घृतं) घी (पयश्च) और पानी (पंचगव्यं) यही पंचगव्य है । (पंचसप्ताष्ट दश वा द्वादशाहोऽपि विंशतिः)पांच, सात, आठ, दस या बारह दिन के सहवास का पातक आदि (तस्य देहिनः) मनुष्य का (यत्किंचिद् दुष्कृतं) जो कुछ भी पाप हो (सर्वं नश्यति) उस सब का नाश होता है। (प्राश्य) पंचगव्य पीकर (अपरेऽहनि) दूसरे दिन (उपवसेत) उपवास करना चाहिये । (सांतपनं कृच्छ्रं) इससे सांतपन कृच्छ्र का (चरेत्) आचरण होता है ।

पृथक्सांतपनं द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनः स्मृतः॥ ८२ ॥

(षडहः) छः दिन तक (द्रव्यैः) अलग अलग पदार्थों से (सोपवासकः) उपवास करने से (पृथक्सांतपनं) पृथक्सांतपन होता है । (सप्ताहेन तु) इसी

प्रकार सात दिन तक उपवास करने से (अयं कृच्छः) कृच्छ्र होता है। (महासांतपनः स्मृतः) उसे महा सांतपन कहते हैं।

पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः ।
प्रत्येकं प्रत्यहं पीतैः पू(प)र्णकृच्छ्र उदाहृतः॥८३॥

(पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वकुशोदकैः) पर्ण, उदुम्बर, कमल, बिल्वपत्र और कुश इनका उदक (प्रत्यहं प्रत्येकं पीतैः) एक एक दिन यथाक्रम पीने से (पूर्ण कृच्छ्र उदाहृतः) पूर्ण कृच्छ्र होता है।

तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत् ।
एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्रस्तु पावनः ॥८४॥

(तप्तक्षीरघृताम्बूनाम्) तपा हुआ दूध, घी और पानी (प्रत्यहं एकैकं) एक एक दिन क्रमसे (पिबेत्) पीने से, (एकरात्रोपवासश्च) और एक रात्रि उपवास करने से (पावनः तप्तकृच्छ्रः) तप्तकृच्छ्र नामक पवित्र प्रायश्चित्त होता है।

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवाऽयाचितेन तु।
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्र उदाहृतः ॥८५॥

(एकभुक्तेन) एक वार भोजन करके (नक्तेन) नक्त करने से (तथैव अयाचितेन) उसी प्रकार अयाचित वृत्तिसे रहने से (एकेन उपवासेन च) या एक उपवास करने से (पादकृच्छ्र उदाहृतः) पादकृच्छ्र होता है।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥८६॥

(एकविंशतिं दिवसान्) इक्कीस दिनतक (पयसा) दूध पर रहने से (कृच्छ्रातिकृच्छ्रः) कृच्छाति कृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है। (द्वादशाहोपवासेन) बारह दिन के उपवास से (पराकः परिकीर्तितः) पराक प्रायश्चित्त होता है।

पिण्याकशाकतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सौम्यः प्रकीर्तितः ॥८७॥

(पिण्याकशाकतक्राम्बुसक्तूनां) माण्ड, भाजी, मठा, पानी और सत्तु (प्रतिवासरम्) एक एक दिन खाकर (एकरात्रोपवासश्च) एक रात्रि उपवास करने से (कृच्छ्रः सौम्यः प्रकीर्तितः) सौम्य कृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है।

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम्।
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पंचदशाहिकः ॥८८॥

(एषां) इन पदार्थों में से (एकैकस्य) एक एक का (यथाक्रमम्) यथाक्रम (अभ्यासात) भक्षण करने से (पंचदशाहिकः) पंद्रह दिन का (तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः) तुलापुरुष नामक प्रायश्चित्त होता है।

तिथिवृध्या चरेत्पिण्डाञ्शुक्ले शिखण्डसंमितान् ।
एकैकं ह्रासयेत्पिण्डान्कृच्छ्चांद्रायणं चरेत् ॥८९॥

(शुक्ले) शुक्लपक्ष में (तिथिवृध्या) तिथिक्रम से (शिखण्डसंमितान् पिण्डान् चरेत्) मोर के अण्डे के बराबर ग्रास बढाते जाना चाहिए और कृष्ण पक्ष में (पिण्डानेकैकं ह्रासयेत्) एक एक ग्रास कम करते जाना चाहिए। (कृच्छ्चान्द्रायणं चरेत) इस से चांद्रायण नामक कृछ् होता है।

यथा कथंचित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम् ।
इति देवलेन कृतं धर्मशास्त्रं प्रकीर्तितम्॥९०॥

(यथा कथंचित्) किसी भी प्रकार महीने के (चत्वारिंशच्छतद्वयं) दो सौ चालीस ग्रास होने चाहिए। (इति) इस प्रकार (देवलेन कृतं धर्मशास्त्रं प्रकीर्तितम्) देवल ऋषी ने धर्म शास्त्र कथन किया है।

समाप्तेयं देवलस्मृतिः ।

यहाँ देवल स्मृति समाप्त होती है।

श्रीयुत प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री तर्क शिरोमणी एम, ए, एम् ओ. एल. एन्. आर. ए. एस; भूतपूर्व सम्पादक आर्य्य मित्र, भूतपूर्व प्रिंसपल गुरुकुल वृंदावन, प्रोफेसर मेरठ कालेज, मेरठ। की सम्पादकता में निकलने वाला मुर्दों के हृदय को भी जोश से थर्राने वाला, सामाजिक क्रांतिकारी पारिवारिक साप्ताहिक पत्र.

" प्रभात ।"

सदियों के अंधकार के पश्चात् ऊषाकी लाल लाल किरणें फूट रहीं हैं उस नये युग के प्रभात का संदेश सुनिये:—

भारत की भावी नयी क्रांति का नया संदेश

क्या आप भारतीय समाज का परदे में छिपा हुआ चित्रपत्र-पट पर प्रकट देखना चाहते हैं?

क्या आप दीन दुःखियों पर और बहिनों पर रोमाञ्चकारी अत्याचारों की करुण कथा को सुनकर उन पापों का ज्वलन्त भाषामें जोरदार जवाब सुनना चाहते हैं?

क्या आप साहित्योद्यानके सुन्दर सुमन-सञ्चय से अपने हृदय मंदिर को सुरभित करना चाहते हैं?

क्या आप सांसारिक संतापों से सताये हुये अध्यात्मिक झरने में एक गोता लगाना चाहते हैं; और एक बार उपनिषदों के वायुमण्डल में श्वास लेना चाहते हैं?

क्या आप प्रतिसप्ताह समाचार पत्र के द्वारा खासकर अपनी बहिनों और देवियों में नये जीवन और स्फूर्ति को बिजली का सञ्चार करना चाहते हैं?

तो आप " प्रभात " (मेरठ) पढ़िये।

प्रभात में समाज का सजीव-चित्र दिखाने वाले अपूर्व लेख विशेष विशेष जोरदार लेखकों के रहते हैं। प्रभात में चुने हुये विशेष विशेष लेखकों और कवियों की कवितायें होती हैं, प्रभात की विशेषता यह है कि प्रतिसप्ताह किसी महान तत्वज्ञानी का एक अध्यात्मिक लेख रहता है। जो सम्प्रति पूज्यपाद श्रीनारायण स्वामीजी का चल रहा है। देवियों और बहिनों के लिये तो महिला जगत् पृथक रहता है, जिस में उनके लिये बहुत उपयोगी और लाभ दायक नोट रहते हैं। इसलिये " प्रभात " एक प्रकारसे पारिवारिक पत्र है। प्रभात में संसार के समाचार विशेष रूपसे चुने जाते हैं।

आजही प्रभात का मूल्य ३॥) भेजिये

प्रभात का नमूना कम से कम एक कार्ड भेजकर मंगायें।

मैनेजर-प्रभात। मेरठ

उत्कृष्ट वैदिक साहित्य।

(लेखक ' राज्यरत्न व्याख्यानवाचस्पति ' आत्मारामजी अमृतसरी)

संस्कारचन्द्रिका।

शताब्दी संस्करण बहुत उत्तम छपकर तय्यार है। मनुष्य मात्र के उपयोगी ग्रन्थ हैं। इस में हमारे जीवन में जो महत्व पूर्ण संस्कार होते हैं उनकी वैज्ञानिक खोज उनको कहां तक करने के लिए बाधित करती है यह सविस्तर बताया है। महर्षि दयानन्द प्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या है। प्रत्येक संस्कार की फिलासफि युक्ति तथा प्रमाणों द्वारा बडी विद्वत्ता से सिद्ध की हैं। मू. सजिल्द ४) डा. व्यय ॥।)अजिल्द ३॥)

सृष्टिविज्ञान पुरुषसूक्तका स्वाध्याय तथा वेदोत्पत्ति संबंधी मंत्रोंकी व्याख्या मू. २)

तुलनात्मक धर्म विचार १)ब्रह्मयज्ञ॥।) शरीरविज्ञान ।≡) आत्मस्थान विज्ञान-) नीति विवेचन १।) गीतासार ।≈) **गुजराती हिन्दी शब्द कोष** ६) समुद्रगुप्त ॥≈) आरोग्यता॥) श्रीहर्ष॥) मजहबेइस्लामपर एक नजर ≈) ऋषिपूजा की वैदिक विधि-) विज्ञापकके ग्राहकों को ≈) रुपया छुट। वा. मूल्य २)

विज्ञापक, बडोदा। अपने ढंग के अनूठे मासिक में प्रति मास **वैदिक समाजान्तर्गत** आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् राज्यरत्न आत्मारामजी, कुंवर चांदकरणजी शारदा, रावसाहब बाबु रामविलास जी, पं. आनन्द प्रीय जी, प्रोफेसर आर्ते एम.ए. के लेखों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण रोचक विषय भी। वा. मूं. २) नमूना ।-) प्रकाशक)

जयदेव ब्रदर्स बडोदा।

वैदिक उपदेश माला

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी।

मूल्य ॥) आठ आने। डाकव्यय-) एक आना।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :– श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय,
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

Registered No B. 1463

वर्ष ६, अंक १२ क्रमांक ७२ मार्गशीर्ष सं. १९८२ दिसंबर स. १९२५

...थम वर्षका प्रारंभ होगा।

...)इस समय इसकी पृष्ठसंख्या ३२ है। ...गले वर्षसे इसकी पृष्ठसंख्या ४० की जायगी।

...) वार्षिक मूल्य म. आ. से ३॥) है और ... से ३॥।=) है, वह वार्षिक मूल्य म. आ. ... और वी. पी. से ४॥) रु. होगा।

...) प्रतिमास सुंदर वेदमंत्र अनेक रंगोंमें मुद्रित ...दिक धर्म मासिक के साथ दिये जांयगे। ... वेदमंत्रों के

(१) जो पाठक दो सालका चंदा इकट्ठा भेज ... वे केवल सात रु. में दो वर्ष वैदिक धर्म प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनका एक रु. का लाभ होगा।

(२) जो पाठक तीन सालका चंदा इकट्ठा भेज देंगे वे केवल दस रु. में तीन वर्ष वैदिक धर्म प्राप्त कर सकेत हैं। इससे उनका दो रु. का लाभ होगा।

स्मरण रहे कि यह चंदा ३१ दिसंबर सन १९२५ तक ही आना चाहिये। आगामी जनवरीसे इस सहूलियत के चंदेका स्वीकार नहीं होगा और उनको

छपकर तैयार है।

महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग

मूल्य ॥) डाकव्यय ≈)

वी. पी. से ॥।≈)

मंत्री.— स्वाध्यायमंडल औंध

(जि. सातारा)

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ३॥) वी. पी. से ४) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

१ हम शत्रुरहित हों .... १६१ | ४ मनके दो अंश १८५
२ यज्ञोंके रूप .... १६२ | ५ ...

स्वयं संस्कृत भाषा सीखने की अत्यंत सुगम पद्धति।
इतनी सुगम पुस्तकें देखकर आपको भी आश्चर्य होगा !

१ ... (जि. सातारा)

योगमीमांसा

योग विषय पर शास्त्रीय, रोचक नवीन विचार। आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नतिके नियम बतानेवाला अंग्रेजी भाषाका

त्रैमासिक पत्र।

संपादक—श्रीमान् कुवलयानंद जी महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है और जिस खोजका परिणाम आश्चर्य जनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और ६ चित्र दिये जांयगे।

वार्षिक चंदा ७); विदेशके लिये १२ शि० ; प्रत्येक अंक २)।

श्री. प्रबंधकर्ता–योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन पोष्ट–लोणावला, (जि. पुणें)

वैदिक धर्म का आगामी वर्ष.

वैदिक धर्मका षष्ठवर्ष समाप्त होगया और क्रमांक ७३ से सप्तम वर्षका प्रारंभ होगा।

(१) इस समय इसकी पृष्ठसंख्या ३२ है। परंतु अगले वर्षसे इसकी पृष्ठसंख्या ४० की जायगी।

(२) वार्षिक मूल्य म. आ. से ३॥) है और वी. पी. से ३॥।=) है, वह वार्षिक मूल्य म. आ. से ४) रु. और वी. पी. से ४॥) रु. होगा।

(३) प्रतिमास सुंदर वेदमंत्र अनेक रंगोंमें मुद्रित करके वैदिक धर्म मासिक के साथ दिये जांयगे।

(४) प्रतिमास कमसे कम आठ पृष्ठ वेदमंत्रों के स्वाध्याय के लिये दिये जांयगे।

तथा अन्यान्य परिवर्तन बहुतसे किये जांयगे जो अवश्य ही इस मासिक की उपयुक्तताको बढायेंगे इतना करने पर भी एक—

सहूलियत।

पाठकोंको देनेका विचार है। जो पाठक इस सहूलियत से फायदा उठाना चाहते हैं वे शीघ्र ही उठावें क्यों कि यह सहूलियत एक जनवरी १९२६ के पश्चात मिलेगी नहीं।

सहूलियत की शर्तें।

(१) जो पाठक दो सालका चंदा इकट्ठा भेज देंगे वे केवल सात रु. में दो वर्ष वैदिक धर्म प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनका एक रु. का लाभ होगा।

(२) जो पाठक तीन सालका चंदा इकट्ठा भेज देंगे वे केवल दस रु. में तीन वर्ष वैदिक धर्म प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनका दो रु. का लाभ होगा।

स्मरण रहे कि यह चंदा ३१ दिसेंबर सन १९२५ तक ही आना चाहिये। आगामी जनवरीसे इस सहूलियत के चंदेका स्वीकार नहीं होगा और उनको म. आ. से चार रु. और वी. पी. ४॥) रु. ही देना पडेगा आशा है कि पाठक इससे अपना लाभ उठावेंगे।

पाठकोंसे प्रार्थना।

इस वर्ष यदि पाठक कमसे कम एक नया ग्राहक वैदिक धर्म के लिये देनेकी कृपा करेंगे तो हम इसमें अधिकाधिक सुधार कर सकते हैं। आशा है कि पाठक इतनी सहायता करेंगे।

प्रबंधकर्ता—वैदिक धर्म।

श्रीयुत प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री तर्क शिरोमणी

एम, ए, एम् ओ. एल. एन, आर. ए० एस; भूतपूर्व सम्पादक आर्य्य मित्र, भूतपूर्व प्रिन्सिपॅल गुरुकुल वृंदावन, प्रोफेसर मेरठ कालेज, मेरठ।

की सम्पादकता में निकलने वाला मुर्दों के हृदय को भी जोश से ठर्राने वाला, सामाजिक क्रांतिकारी पारिवारिक साप्ताहिक पत्र.

सदियों के अंधकार के पश्चात् उषाकी लाल लाल किरणें फूट रही हैं उस नये युग के प्रभात का संदेश सुनिये:—

भारत की भावी नयी क्रांति का नया संदेश

क्या आप भारतीय समाज का परदे में छिपा हुआ चित्रपत्र-पट पर प्रकट देखना चाहते हैं ?

क्या आप दीन दुःखियों पर और बहिनों पर रोमाञ्चकारी अत्याचारों की करुण कथा को सुनकर उन पापों का ज्वलन्त भाषामें जोरदार जबाब सुनना चाहते हैं ?

क्या आप साहित्योद्यानके सुन्दर सुमन-सञ्चय से अपने हृदय मंदिर को सुरभित करना चाहते हैं ?

क्या आप सांसारिक संतापों से सताये हुये अध्यात्मिक झरने में एक गोता लगाना चाहते हैं, और एक बार उपनिषदों के वायुमण्डल में श्वास लेना चाहते हैं ?

क्या आप प्रतिसप्ताह समाचार पत्र के द्वारा खासकर अपनी बहिनों और देवियों में नये जीवन और स्फूर्ति को बिजली का सञ्चार करना चाहते हैं !

तो आप "प्रभात" (मेरठ) पढ़िये ।

प्रभात में समाज का सजीव-चित्र दिखाने वाले अपूर्व लेख विशेष विशेष जोरदार लेखकों के रहते हैं ! प्रभात में चुने हुये विशेष विशेष लेखकों और कवियों की कवितायें होती हैं, प्रभात की विशेषता यह है कि प्रतिसप्ताह किसी महान तत्त्वज्ञानी का एक आध्यात्मिक लेख रहता है। जो सतम्प्रति पूज्य-पाद श्रीनारायण स्वामीजी का चल रहा है। देवियों और बहिनों के लिये तो महिला जगत् पृथक् रहता है, जिस में उनके लिये बहुत उपयोगी और लाभ-दायक नोट रहते हैं। इसलिये "प्रभात" एक प्रकारसे पारिवारिक पत्र है। प्रभात में संसार के समाचार विशेष रूपसे चुने जाते हैं।

आजही प्रभात का मूल्य ३॥)भेजिये

प्रभात का नमूना कम से कम एक कार्ड भेज-कर मंगायें।

मैनेजर-प्रभात । मेरठ

कृतं स्मर ॥

यजुर्वेद. ४०।१५

अपने किये हुए कर्मोंका विचार कर ।

आपल्या केलेल्या कर्मांचा विचार कर.

Think of thy past deeds.

वर्ष ६

अंक १२

क्रमांक ७२

मार्गशीर्ष

संवत १९८२

दिसंबर

सन १९२५

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

हम शत्रुरहित हों ।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुंदुभिः ॥
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी
कृणोतु ॥ ४१ ॥ अथर्व. १२ । १ । ४१

(यस्यां) जिस भूमिमें (वि-ऐलबाः) विशेष प्रेरणा करने वाले वीर (मर्त्याः) मनुष्य (गायन्ति) गाते हैं और (नृत्यन्ति) नाचते हैं । जिसमें (आक्रंदः) गर्जना करनेवाले वीरगण (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं और जिसमें (दुंदुभिः) ढोल बजता है । वह हमारी विस्तृत मातृभूमि हमारे (सपत्नान) शत्रुओंको (प्रणुदतां) हटा देवे और (मा) मुझे (अ—सपत्नं)शत्रुरहित (कृणोतु)करे ।

जिस मातृभूमिमें हम सब लोग आनंदसे गाते और नांचते हैं, जिसकी स्वतंत्रताके लिये हम युद्ध करते हैं और रणवाद्य बजाते हैं वह मातृभूमि हमें शत्रु रहित करे और सब शत्रुओंको दूर भगा देवे ।

यज्ञों के रूप ।

(ले०– श्री० पं० अभय देवशर्माजी वेदाचार्य)

इस यज्ञकी व्याख्या पढने से पूर्व पाठकों को इस बातसे परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है कि यह संगठनरूप यज्ञ हमारे सामने किन किन रूपोंमें आता है और इस परिचय को पानेके लिये पाठकों को अपने मनसे यज्ञविषयक अन्य सब अशुद्ध संस्कार निकाल डालने चाहिये। अभीतक 'यज्ञ' शब्द सुनने से या तो हमें हवन अग्निहोत्र का ध्यान आता है या किन्हीं कथाओंमें सुने अज्ञात गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, राजसूय, पुत्रेष्टि आदिका अपना अपना मनःकल्पित चित्र सामने आजाता है। पर मैं जानता हूं कि अब इतने विवेचन के बाद आपके सामने यज्ञ शब्द किसी 'संगठित मनुष्य समुदाय द्वारा किये जाते हुए शुभ कार्य' का ही चित्र आने लगे, अधिक से अधिक अपने नैत्यिक पवित्र वैयक्तिक कर्तव्यों को भी यज्ञाङ्ग होने के कारण आप यज्ञ कह सकते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त और सब यज्ञविषयक कल्पनायें अपने मन से निकाल दीजिये। तभी आप यज्ञको यथार्थरूप में समझ सकेंगे। इस प्रकार समाज का चातुर्वर्ण्य और आश्रम व्यवस्था का संगठन एक महायज्ञ है। राष्ट्र एक यज्ञ है। स्वराज्यसंगठन (Government) एक यज्ञ होता है। संग्राम-बुराई के नाश के लिये किया गया संग्राम-यज्ञ है। वर्तमान समयमें भारतमें राष्ट्रीय महासभा(National Congress) एक यज्ञ है। आर्य समाज एक उच्च यज्ञ है। गुरुकुल आदि शिक्षा संस्थायें यज्ञ हैं। हमारी प्रतिनिधि सभायें यज्ञ हैं। राष्ट्रीय सभासमितियां यज्ञ हैं। सेवा समितियां पवित्र यज्ञ हैं। दलितोद्धार सभा यज्ञ है। सम्मेलन और सभाओंका प्रत्येक अधिवेशन यज्ञ है। व्यापार संगठन (जो कि गरीबोंका नाश नहीं करता) यज्ञ है। प्राचीन भारत के एक पेशेवालों के ये संगठन यज्ञ होते थे। एक गृहस्थ परिवार यज्ञ है। तात्पर्य यह कि सब छोटे बडे संगठन जो कि कल्याण के लिए किए गए हैं यज्ञ हैं। इन में हमारी यज्ञभावना होनी चाहिये। यदि हम इनमें महत्त्व देखेंगे और इन यज्ञों का अनुष्ठान करेंगे तभी हम इस योग्य भी होंगे कि हमारे शास्त्रोंमें जो अन्य सूक्ष्म यज्ञ प्रतिपादित हैं उन्हें भी समझ सकें। इस लिए हमें ऐसा अभ्यास डालना चाहिये कि हम इन उपर्युक्त संगठनों में यज्ञ-दृष्टि रखें। येही रूप हैं जिन रूपों में कि यज्ञ प्रतिदिन हमारे सामने रहता है। इन्हीं यज्ञों का ठीक तरह करना हमारा पहिला कर्तव्य है। इन्हीं को पूरा करने से हमारा कल्याण हो सकता है। और इन्हें विना पूरा किये हम आगे नहीं बढ सकते। इसके लिए हमें यह पता लग जाना चाहिये कि ये उपर्युक्त संगठन यज्ञ हैं और येही अवश्य कर्तव्य यज्ञ हैं।

यह तो लिखने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक प्रकार का संगठन (अर्थात् अशुभ के लिये किया गया संगठन भी) यज्ञ नहीं होता। यह बात आगे विस्तार से लिखी जायगी, पर यहां इतना संकेत कर देना आवश्यक है कि पर पीडन के लिए, गरीबोंको

सतानेके लिए, दूसरों का खून चूसने के लिए भी संगठन—बडे भारी संगठन—किए जा सकते हैं, पर वे इतने ही बडे भारी पाप पुंज होते हैं-यज्ञ नहीं। दुर्लक्ष्य सामने आते ही संगठनमें से यज्ञकी देवता निकल जाती है और उस पर असुरों का कब्जा हो जाता है। जब लोग यज्ञ करना सीख जाते हैं तो यह ही सब से बडा खतरा है जिससे कि यज्ञको प्रतिक्षण बचाना होता है। शक्ति पाने पर उसके दुरुपयोगका प्रलोभन स्वभावतः आता है। यज्ञ एक महाशक्ति है अतः इसे भी इस शत्रु से बचाना आवश्यक है। ऋषि लोग सब यज्ञोंको लगातार असुरोंके आक्रमण से बचाया करते थे। अस्तु। भारतवासियोंने तो अभी यज्ञ कला सीखा ही नहीं अतः इन्हें अभी इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं।

(८) यज्ञसे जो चाहो प्राप्त कर लो।

यदि पाठक यह जान गए कि यज्ञ मिल कर काम करनेका नाम है तो वे अब जरा गीतामें कहे भगवान् कृष्णके निम्नश्लोक का मनन करें : —

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

'प्रजापतिने यज्ञके सहित प्रजाओंको बना कर (प्रजाओंसे) कहा कि (तुम) इस (यज्ञ) से (जो कुछ चाहो) उत्पन्न करो। यह (यज्ञ) तुम्हारी सब अभिलषित इच्छाओंका पूरा करने वाला होवे।

इस श्लोकमें दो बातें कहीं हैं (१) प्रजाओंके साथ साथ ही यज्ञको भी प्रजापतिने पैदा किया (२) यज्ञ प्रजाओंकी सब इच्छा पूरी करने वाला होता है। पहिले बातको समझनेके लिए यह ढूंढना चाहिये कि मनुष्यके साथ ही पैदा होनेवाला यज्ञ कौनसा है। वेदमें भी मनुष्यमें स्थित इस यज्ञका वर्णन पाया जाता है। उदाहरणार्थ अथर्व वेदके केन नाम्नी सूक्त (१० । २) में जहां मनुष्यके अंग अंगोंके उत्पादक को पूछा गया है वहां यह भी पूछा है कि—

को अस्मिन्यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे।
अ० १० । २ । १४

"किस एक देवने इस मनुष्यके अन्दर यज्ञको रखा है"। ऐसी अन्य भी कई स्थल हैं जहां कि यज्ञको परमात्मा द्वारा मनुष्यके अन्दर रखा हुवा बताया गया है। वह यज्ञ क्या है ?। यह है मनुष्य का मिलनेका, मिलकर काम करने का स्वभाव मनुष्य स्वभावतः मिलनस्वभाव है, यज्ञशील है। प्रायः लोग कहा करते हैं कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, (Man is a social being.) यहां मूल यज्ञ को यज्ञ कहा है। मनुष्यमें जो यज्ञका बीज है उसे यज्ञ कहा है। यह है यज्ञ जो कि मनुष्य के साथ ही मनुष्य के हृदयमें प्रजापति ने पैदा किया है, क्यों कि स्वभावतः ही प्रजापति परमात्माने मनुष्य को मिलनसार बनाया है। यह मिलन स्वभावता का बीज ही--यह मनुष्य के साथ पैदा हुआ यज्ञ ही बढता हुआ सब सामाजिक संगठनों को बनाता है। अथर्व वेदके ८। १०। (१) सूक्त में इस बीज का गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभा, समिति, आदिरूप में विकास दिखाया गया है। इस लिए यहां तथा अन्य ऐसे स्थलों पर यज्ञ का अर्थ है मनुष्य का मिलने का स्वभाव जो कि बाहर यज्ञ (संगठन) के रूपमें प्रकट होता है। अस्तु। हम प्रजाओंके पालनेवाले ने हम में उत्पत्ति के साथ इस यज्ञ को पैदा कर अर्थात् हमें मिलन स्वभाव बनाकर ही मानो कह दिया है कि तुम इस

यज्ञ से जो चाहो पैदा कर लो। यह दूसरी बात सब जानते हैं कि संगठन, मिलना ' इष्टकामधुक्' है। संघशक्तिसे जो चाहो प्राप्त करलो। कमसे कम बातें करने के लिए हम भी यह जानते हैं। हम इस पर व्याख्यान दे सकते हैं, मेरे जैसे इस पर लेख लिख सकते हैं। परन्तु इस यज्ञको करना इससे अपनी कामनायें पूरा करना जरा विश्वास की अपेक्षा रखता है। जिसे विश्वास है कि संघशक्ति के विना ये काम पूरे नहीं हो सकते यह अवश्य इस यज्ञ को अवश्य करता है। उसी के विषय में कहा जा सकता है कि वह इस तत्त्वको जानता है। चाहें उसने भगवद्गीता को कभी न पढा हो।

इस तत्त्व को जानते हैं हालैण्ड निवासी जो कि मुट्ठी भर लोग समुद्र में समुद्र को अपने बांधोंसे बांधते हुए अपनी सत्ता रखते हैं। अपनी स्वतंत्र' उन्नति शील और स्वाभिमान सत्ता रखते हैं। क्या अपनी यह इच्छा पूरी करना साधारण बात है? इस तत्त्व को जानते हैं वे थोड़ेसे इग्लैण्ड निवासी जो कि सात समुद्र पार एक छोटे से टापूमें रहते हुए ३०करोड हिन्दुस्थानियों भेडों की तरह जिधर चाहते हैं हांकते हैं इससे अधिक और असंभव इच्छा क्या हो सकती है ? पर यज्ञ — संघशक्ति उन की यह इच्छा भी पूरी करती है। इसमें किसी का क्या है; भगवान् कृष्ण के शब्दों में कोई यज्ञका अनुष्ठान करेगा यज्ञ उसके सामने कामधेनु होकर खडा हो जावेगा और कहेगा कि " मुझ से जो चाहो दुह लो "। भले ही यह लेख हिन्दुस्थानिओं की पवित्र धर्म पुस्तक में लिखा है, पर जो इसे करेगा फल तो उसे ही मिलेगा। यज्ञ के विना हिन्दुस्थानियोंकी स्वराज्य (अपना राज्य) होने की परम स्वाभाविक इच्छा भी पूरी नही हो सकी और न पूरी होगी जब तक कि हम ठीक ठीक यज्ञ करना न सीखेंगे। हमारी हालत तो यह है कि वह यज्ञ जिससे कि स्वराज्य की इच्छा पूरी हो वह तो दूर रहा, हमारे अभी छोटे छोटे मिलकर किये जानेके कार्य भी नहीं चलते हैं। छोटा सा यज्ञ भी हमसे निबाहा नहीं जाता है। हमारे चाहें कैसी हालत हो पर यह सत्य तो सूर्यकी तरह चमक रहा है और सदा चमकता रहेगा (हम इसे देखें या न देखें) कि ' यज्ञसे जो चाहो दुह लो '।

(९) यज्ञमें अविश्वास

हर एक विचारशील भारतवासी के मन में अन्ततः आता है कि यज्ञ के विना हमारा विस्तार नहीं। पर फिर भी हम मिल कर कार्य करने में असमर्थ रहते हैं। क्यों ? इस के दो कारण हैं। (१)यज्ञमें अविश्वास (२) यज्ञ के नियमों का अज्ञान। हमारा इस यज्ञमें विश्वास तो तब हो यदि हम पहले इन्हें यज्ञ तो समझें। मुझे यह फिर दोहराना पडता है कि हमारी इन कार्यों में यह भावना होनी चाहिये। यदि कोई हमारा पवित्र संगठन टूटता है या हमारी कोई संस्था बिगडती है तो हमें कोई विशेष बात नहीं अनुभव होती। हम यह नहीं समझते कि यज्ञ-ध्वंस हो गया, एक बडा पाप होगया। यह इसलिए होता है क्यों कि हम इस श्रेष्ठ संगठनों में कार्य करते हुए अपना स्वाभिमान नहीं अनुभव करते कि " मैं यज्ञ में संमिलित हूं। " राष्ट्रीय महासभा के एक सभ्य को तथा प्रतिनिधि सभा के अधिकारी को गुरुकुल के एक कर्मचारी को अपने अपने संगठन के कर्तव्यों को करते हुए यह भाव सदा जागृत रखना चाहिये कि ' मैं यज्ञ कर रहा हूं। ' इस यज्ञभावना के विना यज्ञ में श्रद्धा कैसे हो सकती है जो कि परम आवश्यक है। यह यज्ञभावना ही हमें बहुत ऊंचा

उठा देगी और हमारे कार्य में कर्तव्य पालन में तेज, बल और सौन्दर्य ला देगी। इस के साथ फिर यज्ञ की सफलता में श्रद्धा होनी चाहिये। चाहे कितनी विपरीत अवस्थायें हों यज्ञका सहारा न छोडना चाहिए और विश्वास स्थिर रखना चाहिये कि यज्ञ से अवश्य विजय मिलेगी। इष्ट काम अवश्य पूरा होगा। वेदों और उपनिषदों के मानने वालों को चाहिए कि वे यज्ञ की ही शरण लें तो उनके दुःख निश्चय से ही निवृत्त होंगे। यह ठीक है कि हमारे संगठन जल्दी जल्दी बिगड जाते हैं और बिगडते भी रहेंगे, पर हमें घबरा कर यज्ञ को न छोड देना चाहिए। यज्ञ तो अमोघ अस्त्र है केवल इस में श्रद्धा और तज्जनित धैर्य चाहिए।

(१०) यज्ञ के नियमों का अज्ञान।

दूसरी बात है यज्ञ के नियमों का न जानना। यह एक घोर सचाई है, कि हम भारतवासी यज्ञों के चलाने के नियमों को-मिलकर काम करने के सिद्धान्तों को-कुछ भी नहीं जानते हैं। कारण स्पष्ट है कि हम ने संगठन बनाये ही नहीं, इन्हें यज्ञ समझना भूल गये, अतः इनके नियमों का हमारे समाज में विकास नहीं हुआ पाश्चात्य देशों में (यद्यपि वे यज्ञशब्दका प्रयोग नहीं करते) इन यज्ञों का बडा प्रचार हुआ और वे मिल कर काम करने की विद्याके नियमों को बहुत जान गए। अस्तु। आगे इस लेखमें इन्हीं नियमों को कुछ बतलाने का यत्न किया जायगा। परन्तु अमल में नियम व्यवहारमें आने से ही समझमें आते हैं, किताबों में लिखे रहने से कुछ नहीं होता। अतः विचारशील पाठकों से निवेदन है कि वे आगे लिखे यज्ञ के मोटे मोटे नियमों का ही पालन करें- व्यवहार में लाकर देखें (तब अन्य नियम इन्हें अपने आप दीखने लगेंगे) तो इनके संगठन अच्छी तरह चलने लगेंगे। हमें पूरा विश्वास है कि अपने पवित्र संगठनों को यज्ञ समझते हुए यदि हम इन निम्न नियमों का पालन करेंगे तो हमारी स्वराज की इच्छा ही नहीं पूरी होगी किन्तु हम भी सचमुच यज्ञरूपी कामधेनुवाले हो जायेंगे और अपनी अतीव असम्भव दीखने वाली इच्छाओं को भी पूर्ण कर सकेंगे।

(११) यज्ञ पुरुष के तीन अंग।

यज्ञ के नियमों को जानने के लिए मेरी समझ में यज्ञके धात्वर्थ को ही समझ लेना बहुत है। (यज्ञ) शब्द में ही सब कुछ विद्यमान है। संस्कृत की धातुओं में कितनी उत्तमता है और पूर्णता है इसका शायद सर्वश्रेष्ठ उदाहरण यज्ञशब्द की 'यज्' धातुमें देखने को मिलता है। एक बार धातुपाठके रचयिता ऋषिके आगे सिर झुक जाता है और हृदयमें उन के लिए सम्मान का पद स्थिर हो जाता है। अस्तु। यज धातुका अर्थ है 'देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु'। यज् धातु के ये तीन अर्थ हैं।

(१)देवपूजा = देवकी पूजा

(२)संगतिकरण = मिलना, मिले रहना

(३)दान = देना

मैं पहले बतला चुका हू कि यज्ञका मुख्य अर्थ बीच के अर्थ में अर्थात् 'संगति करण' में है। यज्ञ अपने मध्य के अर्थ में केन्द्रित है। इसी लिए यज्ञ का स्वरूप मैंने बतलाया है "मिलना, सम्बन्ध रखना, ठीक संबन्ध रखना" इत्यादि। परन्तु यह मिलना या सम्बन्ध तीन प्रकारसे हो सकता है, अतः यज् धातु के तदनुसार ऋषिने तीन ही उपर्युक्त अर्थ रक्खे हैं। मनुष्य का मनुष्य के साथ निम्न लिखित तीन प्रकार के सम्बन्ध हो सकता है।

(१) अपने से बडे के साथ सम्बन्ध-जुडे रहना।

(२) अपने बराबर वाले के साथ सम्बन्ध-जुडे रहना ।

(३) अपने से छोटेके साथ सम्बन्ध जुडे रहना।

यह तीन प्रकार का सम्बन्ध क्रमशः देवपूजा, संगतिकरण और दान का होना चाहिए। स्पष्ट है कि इस प्रकार प्रत्येक संगठन के ३ विभाग हो सकते हैं। ये ही यज्ञ के तीन अंग हैं। तात्पर्य यह हुआ कि अपने से बडे के साथ, अपने बराबर वाले के साथ, अपने से छोटे के साथ क्रमशः देवपूजा के सम्बन्ध से, संगति करण के सम्बन्ध से, दान के संबंध से जुडे रहने का नाम यज्ञ है। और स्पष्ट कहा जाय तो प्रत्येक संगठन में अपने से बडोंके साथ देववत् पूजाका संबंध रहना चाहिए, अपने साथियोंके साथ सदा मिला रहना चाहिए और अपने से छोटोंको देते रहना चाहिए तब प्रत्येक संगठन ठीक तरह चलता रहेगा। बडों की पूजा हो, सेवा हो, उनका आज्ञापालन हो, इसीसे हम बडों के साथ जुडे रह सकते हैं, इस में त्रुटि होने से यज्ञ ऊपर से भंग हो जाता है। बराबर वालोंके साथ परस्पर मेल रहना चाहिए, प्रेम का आकर्षण होना चाहिए, मैत्री-स्नेह रहना चाहिये, नहीं तो यज्ञ मध्यसे टूट जायगा। और अपने से छोटों को सब कुछ देना चाहिये, कमी पूरी करते रहना चाहिए नहीं तो यज्ञ नीचे से गिर पडेगा इस प्रकार इन तीन नियमों में ही सब कुछ आगया है। इसे विस्तार से समझने के लिए पाठक निम्न लिखित कोष्टक को ध्यान से देखें और आगे जो दूर तक इसकी व्याख्या की गई है उसे पढकर इस कोष्टक को अच्छी तरह हृदयंगम करलें तो वे यज्ञ के रहस्यको समझ जायेंगे।

१२ यज्ञ पुरुष।

यज्ञ के तीन अंग		अंगोंका रस	अंगोंकी चेष्टा कर्म	एकएक अंगके रक्षक देव	एकएक अंगके नाशक असुर	यज्ञका प्राण	यज्ञका चालक शत्रु
अंग	नाम						
उत्तमांग सिर	बडोंकी देवपूजा	भक्ति	आज्ञापालन अनुसरण	श्रद्धा ऋ१०-१५१ विश्वासी	अज्ञान अभिमान संदेह काम आदि	बलिदान	स्वार्थ
मध्यमांग पेट	बराबरवालोंसे संगतिकरण	प्रेम	एकोद्देशसे तत्परता सदुद्योग	सांमनस अथ०३-३० परसस्परमत्री	ईर्ष्या द्वेष क्रोध द्रोह आदि	बलिदान	स्वार्थ
आधारांग नाभि से नीचेका भाग	छोटोंको दान	करुणा	सहायता देना रक्षा करना	सोम औषधि ऋ. १०-९७ सहानुभूति	क्रूरता अन्याय लोभ मद आदि	बलिदान	स्वार्थ

१३ यज्ञ पुरुषके अंगोंका रस

संसार में दो प्रकार की शक्तियां काम कर रही हैं। एक शक्ति मिलाने वाली है, दूसरी जुदा करनेवाली है। एक जोडने वाली, इकट्ठा करने वाली है और दूसरी अलग अलग करने वाली, फाडने वाली है। इन का नाम भिन्न भिन्न दोन क्षेत्र में भिन्न भिन्न है। पर मानवी संस्कार में मिलाने वाली शक्ति का नाम प्रेम है और जुदा करने वाली का नाम घृणा। इन में पहिली शक्ति यज्ञिय है और दूसरी अयाज्ञिय है। जिन्हें यज्ञ करना है-मिलना है-मिलाना है वे प्रेम को अपनाएंगे, जिन्हें यज्ञभंग करना है-लोगों को फाडना है-एक दूसरे को जुदा करना है वे घृणाकी पूजा करेंगे। अतः यज्ञ चाहने वाले भारत वासियों को प्रेम की उपासना करनी चाहिए। प्रेमही यज्ञ-शरीर में " अंगिरस " है। यज्ञ के अंगों में बहने वाला रस है। प्रेम के न्हास होने से यज्ञ सूख कर नष्ट हो जाता है। इस प्रेम रस के सूखने पर यज्ञ का प्राण (जो पाठक आगे देखेंगे) निकल जाता है। प्रेमके रस से यज्ञ का एक एक अणुअणु परस्पर जुडा रहता है। प्रेम मिलाने वाली शक्ति है और मिले हुए संगठन का नाम यज्ञ है। इसलिए 'प्रेम' यज्ञ का जीवन रस है।

पं० भगवानदास जी ने अपनी (The Science of the Emotions) नामक पुस्तकमें सब भावोंके (Emotions के) दो विभाग किए हैं (१) प्रेम मूलकभाव (२) घृणा मूलक भाव। फिर प्रत्येक के तीन तीन विभाग किए हैं। उसे यहां यज्ञ की व्याख्या में अवश्य स्मरण करना चाहिए। यज्ञ शरीर में बहने वाले रस का एक नाम प्रेम है परन्तु वह रस भिन्न भिन्न अवयवों में भिन्न भिन्न नाम से पुकारा जाता है। उत्तमांग में वह भक्ति है, मध्य शरीर में प्रेम है और तृतीय भाग में करुणा है अर्थात् अपने से बडे में प्रेम का नाम " भक्ति " है, अपने बराबरवाले में प्रेम " प्रेम " शब्द से ही कहा जाता है और छोटे से प्रेम करना " करुणा " कहलाता है।

इस प्रकार एक ही प्रेमरस यज्ञ शरीर के तीन अंगों में इन तीन रूप से बहता है और यज्ञ को सजीव रखता है।

यज्ञ का उत्तमाङ्ग अर्थात् देवपूजा तभी ठीक तरह काम करेगा यदि उस में भक्तिरस द्वारा हम अपने बडों का आदर सत्कार करते रहेंगे। यज्ञ का मध्य अर्थात संगति करण तभी ठीक तरह काम करेगा यदि प्रेमका रस बराबर वालों में मेल बनाए रखेगा। और यज्ञ का आधराङ्ग अर्थात् दान तभी ठीक तरह काम करता रहेगा यदि करुणा रस से आर्द्र रहकर हम अपने छोटों को सदा देते रहने में तत्पर रहेंगे (देखो कोष्टक का दूसरा स्तम्भ)

१४ यज्ञ पुरुष के अङ्गों का व्यापार व कर्म।

परन्तु केवल (भक्ति आदि) भावों से काम नहीं चलेगा जब तक कि भावसे प्रेरित होकर कर्म न निकलेंगे, भाव कर्म के रूप में न प्रकट होंगे। इसी लिए यज्ञ में कर्म की मुख्यता है। शरीर के अपने कर्म को व्यापार व चेष्टा कहते हैं। इन भक्ति, प्रेम और करुणा द्वारा क्रमशः तीनों अंगों में जो कर्म होने चाहिए-जो व्यापार होने चाहिए-उन्हें कोष्ठक के तीसरे स्तम्भ में लिखा हुआ पाठक देखेंगे।

भक्ति प्रेरित हो यज्ञ के उत्तमांग में बडों का आज्ञापालन तथा उन का अनुसरण (नेतृत्वस्वीकार) यह चेष्टा होनी चाहिए। प्रेम प्रेरित हो यज्ञ के

मध्यमांग में एकोद्देश्य से मिलकर काम करना, सहोद्योग यह चेष्टा उत्पन्न होनी चाहिए तथा करुणा-प्रेरित हो यज्ञके तृतीयांग में दान द्वारा छोटों की सब प्रकारसे सहायता करना, उनकी रक्षा करना यह चेष्टा व कर्म होता रहना चाहिए।

देवपूजाका अर्थ वाचिक या मानसिक ही नहीं है। यज्ञ में तो कर्म मुख्य है। इस लिए बडों की पूजा जब भी की जावेगी, बडों की पूजा क्रियामें आएगी तब वह "उन का आज्ञापालन, उनकी शिक्षा मानना, उनका अनुमरण करना" इन रूपों में ही प्रकट होगी। एवं क्रियात्मक संगति करण "एकोद्देश्यता से चलने, परस्पर मिलकर सहोद्योग" के रूपमें ही प्रकट होगा। और दान का अर्थ कुछ ही दे देना नहीं है किन्तु छोटों को उनकी आवश्यकता जान कर उसकी पूर्त्यर्थ देना, छोटो की कष्टों-से रक्षा करने की चिन्ता रखना और सदा सहायता देते रहना है। यज्ञका दान अंग इसी रूपमें अपना काम करता हुआ प्रकट होगा।

यह यज्ञ के तीन अंगों के तीन व्यापार हैं जो कि स्वस्थ यज्ञ शरीरमें होते रहने चाहिए। यदि ये व्यापार होते ही नहीं या ठीक तरह न होकर विपरीत प्रकार से होते हैं तो समझना चाहिए कि यज्ञ शरीरमें कोई रोग है। इन रोगोंका इलाज करना चाहिए जिस से कि शरीर के ये तीनों अंग उपरिनिर्दिष्ट अपने अपने व्यापार (Function) ठीक प्रकार करते रहें।

१५ यज्ञ के उत्तमांग में त्रुटि।

यज्ञाङ्गों में बहने वाला रस जान लेने के बाद तथा यज्ञके प्रत्येक अंगका व्यापार समझ लेने के बाद अब यह सुगमता से जाना जा सकता है कि हम भारत-वासियोंके यज्ञ क्यों नहीं चलते। इसका कारण यज्ञ के किसी अंगके कार्य में त्रुटि होना है। ये रोग हमें हटाने पडेंगे, यदि हम भारतमें यज्ञों को चलाना चाहते हैं।

पहले, यज्ञ के प्रथम अंग - देवपूजा - की त्रुटियां देखिए। या तो अपने संगठनों के बडों में हमारी भक्ति नहीं होती (हम उन्हें योहीं स्वीकार कर लेते हैं) या हमारी भक्ति बीमार होती है जो कि आज्ञा-पालन के रूपमें प्रकट नहीं होती। म. गान्धीके (जो कि राष्ट्रमहासभाके यज्ञमें देववत् पूज्य हैं) दर्शन करने के लिए सहस्रो लोग आते हैं - उन्हें रातको नींद भी नहीं लेने देते, परन्तु वे न तो खद्दर पहनते हैं और न उन की अन्य आज्ञाओंका पालन करते हैं। इस का नाम देव पूजा नहीं हैं। यह तो घोर देव निन्दा है। पर हम लोगों की अकल में यह बात नहीं आती है। नेताका आज्ञापालन तथा अनुसरण में जिस नियंत्रण, तंत्र निष्ठा की जरूरत है उस का 'क ख' भी हमने अभी नहीं सीखा है। यदि गत वर्षों के स्वराज्य आन्दोलन में (और अबभी) हम राष्ट्रमहासभकी केवल खद्दर धारण और खद्दर की उत्पत्ति की आज्ञा का जी जान से पालन करते तो अबतक बहुत कृतकार्य हो चुके होते, न जाने कहां पहुंचे होते। पर यहां तो काम शुरू नहीं हुआ। देवपूजा की जगह हम अपना मनमाना करते रहे। एक वक्ता ने बहुत सच कहा था कि लायड जार्ज जैसे मिथ्या-चारी, मिथ्यावादी पुरुष के नेतृत्वमें इग्लैण्ड ने महासमरमें विजय पा ली, परन्तु महात्मा गांधी जैसे सच्चे दिव्य पुरुष को पाकर भी भारत वासी कृतकार्य न होसके, इस का कारण है (Organisation) संगठन का अभाव। परन्तु वैदिक शब्दों में मैं कहूंगा कि इसका कारण है "यज्ञ का अभाव, यज्ञ

मेंभी देव पूजा अंग का अभाव "। बिलकुल सैनिकों की तरह आज्ञापालन को न करते हुए अपने को देवपूजक समझना कोरी मूर्खता है जो कि जितनी शीघ्र हट जाय उतनाही अच्छा है। घोर युद्ध के अवसरपर भोजन की कमी पूरी करने के लिए अंग्रेज लोगों को कहा गया कि अपने घरों के छोटे छोटे आंगनों में आलू बो दो, उन्हों ने बोए और यह मूर्खता युक्त प्रश्न न उठाया कि आंगन की जरा सी भूमि के थोडेसे आलुओंसे क्या लाभ होगा। परन्तु भारतवासी पूछते हैं कि चर्खे के जरा से सूत से क्या होगा? कई पूछते हैं मेरे थोडासा कातने से क्या होगा? केवल पूछते ही नहीं, किन्तु कार्य करना भी नहीं शुरु करते। यह है भेद हम म और यज्ञ का महत्व समझने वाले अंग्रेजों में। वहां बचपन से आज्ञापालन सिखाया जाता है। वहां के लोगों ने आत्मार्पण करते हुए "आज्ञापालन' अङ्ग की साधना की है। वहां कैसे बियेन्का जैसे बालक पैदा होते हैं। आज्ञा के न मिलने के कारण जल मरना तो दूर रहा, हम तो अपने संगठन की आज्ञा को थोडे से स्वार्थ के लिए तोड देते हैं और तोडनेका कारण प्रायः धार्मिक (?) बताते हैं। बहुतों को जरासी बात में अन्तःकरण (Conscience) बोलने लगता है। ऐसे कार्य करते हुए हम सचमुच समझते हैं कि हम धर्म कर रहे हैं, जब कि असल में हम यज्ञ भंग का भारी पाप कर रहे होते हैं। यदि हमने अपनी वर्तमान अवस्थासे उठना है तो हमें यज्ञ धर्म को समझना होगा और अपने अन्तःकरणों को विशाल बनाना होगा। मतभेद होने के कारण आज्ञाभंग का अधिकार प्राप्त कर लेना वहां का धर्म है। वेद में तो संग्रामवाचक शब्द तथा यज्ञवाचक शब्द बहुत कुछ एक ही हैं। इसका एक अर्थ यह समझा जा सकता है कि यज्ञ में संग्राम जैसा नियंत्रण (Discipline) होना चाहिए। संग्राम यज्ञ में यदि सेनापति देव की आज्ञा पालन द्वारा पूजा न की जाय तो यह यज्ञ कैसे चल सकता है। राष्ट्रयज्ञ में यदि राजा की आज्ञाओंका पालन न हो तो राष्ट्र कैसे जिवंत रह सकता है। परन्तु गुलाम भारतवासियों को सैनिकों की तरह विना "कथं किमर्थं" के आज्ञा पालन करने में गौरव की जगह बन्धन दिखाई देता है। और वह भी अपने बनाए नेता के अपने राजाके आज्ञा पालन में। हमें यह सैनिकीय आज्ञा-पालन भेड चाल दिखाई देता है, इसी लिए हम पराये राजा द्वारा भेडों की तरह हांके जाते हैं। यदि हम अपने बनाए राजा का आज्ञापालन सिख जांय तो हम ही सैनिक हो जांय। ग्रामों में जहां पुरानी पंचायतों का रिवाज बिगडा नहीं है वहां तो अब भी (जो कि बहुत ही बिरले उदाहरण हैं) "पांचों में परमेश्वर" मानकर लोग पंचायत की कठोर से कठोर आज्ञाका भी पालन कर देते हैं, परन्तु साधारण-तया आज कल की सभाओं और सम्मेलनों में देखा जाता है कि सभापति वक्ताको बोलने से बन्द करते हैं, पर वक्ता बोलता जाता है; सभापति चुप होने को कहता है पर लोग शोर करते रहते हैं। बल्कि कई लोग रोके जाने के कारण सभापतिसे नाराज हो जाते हैं। भला, वहां नाराजगी का क्या काम? इस सब का कारण यह है कि हम सभ्य, साम्मित्य नहीं हुए हैं यज्ञार्ह नहीं हैं घडे हुए नहीं हैं। हमें घड कर अपने आपको यज्ञार्ह बनना चाहिए। पहलेही अपने सभापति को खूब सोच विचार कर चुनना चाहिए, पर जब वह सभापति चुना गया और जब तक है तब तक यदि उस

देव पूज्य का आज्ञापालन न हो तो काम कैसे चल सकता है। यह तो आत्महत्या होगई। अपने यज्ञ का अपने आप नाश करना है। कुटुम्ब यज्ञ में बालक माता पिता के आदेशों को न मानें, गुरु शिष्य यज्ञ में शिष्य गुरु वचनों को न मानें तो इन यज्ञों का क्या हाल होगा। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक यज्ञ में आज्ञापालन आवश्यक है, इस के विना यज्ञ का पहला ही अंग नहीं चल सकता। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि अपने नेता का आज्ञापालन अर्थात् भक्तिसे, सच्चे दिलसे उस के पीछे चलना ही देव पूजा है, यज्ञ के प्रथम अङ्ग का कर्म है।

१६ यज्ञ के मध्याङ्ग में त्रुटि।

अब भारत वर्ष के यज्ञोंके मध्याङ्ग की अवस्था सुनिए। यज्ञ का यह मध्यभाग प्रायः सभी संगठनों में बडा होता है, क्यों कि उन में बडे तथा प्रायः छोटे भी थोडे होते हैं और बराबर वाले बहुत होते हैं तथा क्यों कि प्रायः सभी संगठनों में बडे और छोटे का सम्बन्ध विशेष अवसरों पर होता है और बराबर का संबन्ध प्रायः सदा रहता है। उत्तमांग से तो यह अवश्यही बडा होता है। अतः इसे ठीक रखना बहुत आवश्यक है। यह ठीक रहे, फिर यदि ऊपर नीचे का भाग कुछ बिगड जाय तो वह शीघ्र ही सुधर सकता है। यह मध्य अंग का महत्व है। अतः मध्य अंग के स्वास्थ्य के लिए संगठन में के सब सभ्योंको परस्पर प्रेमसे जुडे रहना चाहिए और एकोद्देश्य में तत्पर रहना चाहिए। उन सबको जोडने वाली एक वस्तु संगठनका उद्देश्य होता है। जैसे कि भारतीय राष्ट्रमहासभा के सभ्यों को जोडने वाला देश प्रेम है, आर्य समाज सभासदों को जोडनेवाला वैदिक धर्म है, एक संग्राम के सैनिकों को जोडने वाला शत्रुपर विजय पाने का उनका उद्देश्य है, एवं एक शिक्षणालय के छात्रों को परस्पर जोडनेवाली उस शिक्षणालय का विशेष शिक्षण या विद्या होती है। इस जोडने वाले एकोद्देश्य को जब कोई सभ्य भूलता है या इसे गौण कर देता है तभी वह अपने कर्म द्वारा यज्ञ को हानि पहुंचाता है। इस संयोजक वस्तु को वेद में 'यज्ञ तन्तु' कहा गया है। यह यज्ञ तन्तु कभी नहीं टूटना चाहिए। इसे तन्तु से यज्ञ के सब सभ्य जुडे होते हैं। परन्तु हमारा यह यज्ञतन्तु इतना ढीला होता है कि अन्य छोटी छोटी बातें इसके ऊपर हो जाती हैं और यज्ञ का लोप कर देती हैं। हिन्दु और मुसलमान आपसमें लडते हैं क्यों कि देशप्रेम के तन्तु से अपने आपको नहीं जोडते, इस यज्ञ तन्तु के सामने अन्य गौण बातों को मुख्यता दे देते हैं और इसी लिए राष्ट्रीय महासभा का यज्ञ छिन्न हो जाता है। दो आर्य समाजी सभासद आपस में ही लडते हैं; वैदिक धर्म का तन्तु उन्हें जोडने में असमर्थ रहता है, क्यों कि वे अन्य वैयक्तिक बातोंको मुख्यता दे देते हैं और फलतः आर्यसमाजके यज्ञ को हानि पहुंचती है। यज्ञ के लिए सब सभ्यों को एकोद्देश्य में तत्पर रह कर सहायोग करना चाहिये, परंतु हम सहयोग तब तक नहीं कर सकते जब तक पहले हम एकोद्देश्य से जुड कर एक न हो जांय। इसी लिए अथर्ववेद के सांमनस्य (३ - ३०) सूक्त में जहां "सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा" होने को कहा गया है वहां कहा है कि 'समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि' अर्थात् मैं तुझे एक जूए में जोडता हूं। इस सूक्त में तथा ऋग्वेद के प्रसिद्ध "संगच्छध्वं संवदध्वं" वाले सूक्त में यज्ञके मध्याङ्ग का कार्य बहुत ही अच्छी तरह

बताया गया है । भारतवासियों को यह उपदेश न जाने कब तक समझमें नहीं आवेगा ।"सहस्रबाहू पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्" (अथर्व २० -६-१) यह यदि यज्ञ पुरुष का ही वर्णन नहीं है तो यज्ञ पुरुष का भी तो है हा । क्याही सुन्दर दृश्य हो, जब कि सहस्रों बाहुएं मिल कर एक ही उद्योग कर रही हों । राष्ट्रपति की आज्ञासे यदि राष्ट्र शरीरके सहस्रों हाथ सूत निकालने में ही लग जांय तो क्या हम अपना एक कार्यक्रम पूरा नहीं कर सकते । भारत राष्ट्र - पुरुष के तो ६० करोड हाथ हैं । पर रोना यही है कि हमारी धर्म पुस्तक में चाहे कुछ लिखा पड़ा हो, पर उस का करना और बात है । हम से यह बनता नहीं कि किसी उच्च प्रेम स प्रेरित हो मिल कर किसी रूपमें जुड जांय । यदि कहीं कहीं जुडते हैं और यज्ञ के "संगति करण" अंग को बनाते हैं तो यह अंग इतना निर्बल या रुग्ण होता है कि इस से 'सहोद्योग' कांपते हुए नहीं के बराबर निकालता है । फूट, नाना प्रकार क भेद ही सर्वत्र दिखाई देते हैं । इन भेदों को भी जोडने वाला यज्ञ तन्तु कहीं कहीं ही टूटा फूटा दिखाई देता है । नानामत तो योरोप में भी पाश्चात्य लोगों में भी हैं। वहां तो पति और पत्नी भी भिन्न भिन्न गिरजों में जाते हैं। वहां के (यथा इंगलैण्ड में) राष्ट्र कार्य में भी बहुत से दल हैं । पर वे राष्ट्र कार्य का सदा ऐकमत्य से ही करते हैं । और बातों में चाहे कितना मतभेद रहे पर वे देश कार्य के लिए सब एक हैं। अतः उनका अपना अपना राष्ट्र पुरुष संसार में एक बलवती सत्ता रखता है । उन का देश प्रेम का तन्तु अन्य बातों से नहीं टूटता । गत महायुद्ध में इंग्लैण्ड वासियों ने कितना मिलकर काम किया, उस की कथा हमारे लिए आश्चर्य कर है परन्तु जर्मन लोगों का सहोद्योग इन से भी बढकर था । उन्हों ने तो मानो अक्षरशः "संगच्छध्वं संवदध्वं" का पालन किया था । फिर भी उन की हार क्यों हुई यह और बात है । इस का भी वर्णन आगे आजायगा । यह तो स्पष्ट है कि हम में तो इतने जोर से लडने की भी सामर्थ्य नहीं है । उन को पुरुष बनाने वाली और सामर्थ्य देने वाली सम्मेलन शक्ति हमारे लिए सदा ही अनुकरणीय है। अस्तु। सारांश यह है कि यज्ञ का मध्य अंग (जो कि बहुत बडा भाग होता है) तभी ठीक तरह चल सकता है जब कि उस के सब सभ्य एकोद्देश्यता में तत्पर होकर सहोद्योग करते रहें, यही इस अंग के स्वाथ्य का चिन्ह है ।

१७ यज्ञ के आधाराङ्ग में त्रुटि ।

इसी प्रकार यज्ञ का "दान" अंग जो कि आधार अंग है मुर्दा हो जायेगा, यदि हम अपने संगठन में निर्बलों को, छोटे भाइयों को सदा सहायता प्रदान न करते रहेंगे । छोटों के साथ अपना संबन्ध ठीक रखने के लिए उन्हें अपने साथ जुडा रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम उन्हें धन देकर, बल देकर, ज्ञान देकर जो उन की कमी हो उसे पूरा करते रहें । संगठन के, यज्ञ के ऊंचे लोग जब घमण्ड में आकर, अपनी शक्ति के नशे में मस्त होकर अपने छोटे हीन भाइयों को भूल जाते हैं और यज्ञ शरीर में करुणा के जीवन रस का प्रवाह बन्द हो जाता है तो अधार से ही यज्ञ का भंग हो जाता है । क्या हम नहीं देखते कि भारत के पददलित अछूतों के कारण भारत का राष्ट्रीय यज्ञ बीच में ही पडा हुआ है । इन बिचारों की दशा किन्हीं स्वामिहीन पालतू पशुओंसे भी अधिक शोचनीय है, परन्तु भारतीय हिन्दुओं के हृदय इस पर भी नहीं

पिघलते । देश और जाति के इन आधारों को जब तक हम अपने सर्वविध दान कर्म से तृप्त न कर लेंगे तब तक हमारा हिन्दू संगठन और देश संगठनका यज्ञ आगे नहीं बढ सकता। इसी प्रकार हमारे देश में ज्ञान में छोटे पुरुष बहुत हैं, हम में अक्षर ज्ञान ही बहुत थोडा है, जहां अन्यदेशों में ९५, ९९ प्रतिशतक शिक्षित होते हैं वहां इस देशमें ५ प्रतिशतक शिक्षित कहे जा सकते हैं। इस ज्ञान दान की कमी के कारण हमें कितनी कठिनाइयां हैं यह सब भारत के यज्ञप्रिय पुरुष अनुभव करते हैं। परन्तु इस से भी पहले तो धन का दान आवश्यक है, क्योंकि इस देश में निर्धनता के कारण भूख मरने वालों की संख्या हृदय विदारक है भूखे को ज्ञान और उपदेश तो पीछे चाहिए, पहले भोजन चाहिए। इस देश में दस लाख मनुष्य प्राणी ऐसे हैं जिन्हें कि एकवारही सूखी रोटी नसीब होती है और एक दुर्भिक्ष में लाखों आदमी मर जाते हैं। बहुतों को वास्तव में इन संख्याओं पर विश्वास नहीं होता है, अत एव वे निश्चिन्त रहते हैं। परन्तु करुणा मूर्ति महात्मा गांधी इसी चिन्ता से चर्खेपर पागल हुए हुए हैं और चर्खे के प्रचार की इतनी आवश्यकता अनुभव करते हैं। चर्खा प्रचार अपना अन्यफल पीछे लायगा, पहिले यज्ञ के तीसरे 'दान' आधाराङ्ग को चलता करने के लिये इस में प्राण डालेगा। अस्तु अभिप्राय यह है कि प्रत्येक संगठन में जो जिस बात में बडा हो उस का कर्तव्य है कि अपने से छोटों को वह वस्तु देने के लिए न केवल सदा तत्पर रहे, किन्तु उसकी कमी को स्वयं यत्न से जान कर पूरा करता रहे। एवं ज्ञानियों को अपना ज्ञान देना चाहिए और बल वानों का अपने बल से निर्बलों की सहायता करनी चाहिए। धनियों को अपना धन छोडना चाहिये और शूद्रों को शारीरिक श्रम की अपनी सेवा का दान करना चाहिए। ठीक तरह काम करते हुए यज्ञ के आधारांग का यही स्वरूप है।

यह यज्ञ का आधार अंग है। जिस संगठन में छोटे आवश्यक दान पाकर तैयार नहीं होते रहते वह संगठन समझना चाहिए कि जड से सूख रहा है। भारत ने छोटों की उपेक्षा की अतः छोटे बढते गए और सामूहिक रूप से सारा देश ही हर एक बात में छोटा रह गया है। पाश्चात्यों के राष्ट्र यज्ञ में यदि कोई त्रुटी है तो वह आधाराङ्ग में ही है। वहां सब बातों में नहीं तो धन में तो बडों ने छोटों की उपेक्षा की है। वहां धनियों और निर्धनों का बहुत फर्क है। अत एव वहां 'सोशियलिझम्' बोल्शेवि-झम' (Socialism, Bolshevism) आदि रोग अथवा रोग को दूर करने की स्वाभाविक चेष्टाएं (जो कि वास्तव में सब रोग होते हैं) उत्पन्न हुईं और उन से सारे राष्ट्र शरीर को दुःख भोगना पडा गत महासमर में रूस को इसी विपत्ति के कारण युद्ध से जुदा होना पडा तथा जर्मनी शिथिल पड जाने के कारण भी उस के अन्दर साम्यवादियों (Socialists) का जोर हो जाना था। अतः इस आधाराङ्ग का हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए, विशेषतया हम में से उन भाइयों को जो हरबात में पाश्चात्यों का अनुसरण करना लाभदायक समझते हैं। अस्तु।

आशा है अब पाठक बहुत कुछ समझ गए होंगे कि हमारे यज्ञ किन किन त्रुटियों के कारण असफल रह जाते हैं।

१८ यज्ञ के देव और असुर

परन्तु ये त्रुटियां क्यों होती हैं, और इनको हटाया कैसे जा सकता है? इसका उत्तर है कि यज्ञ के देवों

और असुरों में सदा यह होता रहता है जब असुरोंका पगड़ा भारी होता है तब यज्ञ में उतनी त्रुटि रह जाती है और जब देवों की विजय होती रहती है तब यज्ञ पूरा पूरा चलता है; अतः त्रुटिओं के हटाने का उपाय है कि देवों की ही लगातार विजय रखी जाय। ये देव असुर कहीं बाहर नहीं हैं, ये अन्दर हैं और हमारे हृदय के अन्दर हैं। देवासुर संग्राम की रणस्थली यज्ञकर्त्ता मनुष्य का हृदय ही है। यदि यह बात पाठकों को कुछ विचित्र लगती हो तो उन्हें भगवद्गीता के १६वें अध्याय में दैव और आसुर संपदोंका वर्णन पढ लेना चाहिए। अस्तु। इस यज्ञ में देव कौन हैं जिनसे कि यज्ञ बढता है और असुर कौन हैं जिनसे कि यज्ञ की रक्षा करनी चाहिए यह पाठक कोष्टक के चौथे पांचवें स्तम्भ में देखेंगे।

यज्ञ के उत्तमांग में 'श्रद्धा' देवता है और इसके विरोधी असुर हैं अज्ञान, अभिमान, सन्देह, काम आदि। देवपूजा अंगको निर्विघ्न चलाने के लिए हमें अपने हृदयों में 'श्रद्धा' को आसनारूढ करना होगा। यज्ञ के बडों में, नेता में यदि हमें श्रद्धा नहीं तो उसका पूजन, उसका आज्ञापालन आदि कर्म कैसे हो सकता है। जहां नेताको चुनना हमारे हाथ में है, तब अवश्य हमें ऐसा ही पुरुष चुनना चाहिए जिसमें हमारी श्रद्धा हो। दौर्भाग्य से किसी समाज में यदि कोई भी पुरुष श्रद्धनीय नहीं है तो वहां यज्ञ बन ही नहीं सकता। प्रत्येक दशामें अपने बडों में श्रद्धा आवश्यक है। नेता लोग कई वार ऐसे काम करेंगे जो कि हमें अच्छी तरह समझ में न आवे तो उनमें एक दम श्रद्धा छोड देना बडी मूर्खता होगी। गुरु शिष्य यज्ञ में शिष्यों को या गृहस्थ यज्ञ में पुत्रों को बहुत वार अपने स्वाभाविक अज्ञान के कारण अपने आचार्य या माता पिता की बातें बुरी और अहित कर लगती हैं परन्तु यदि वे इससे उनमें श्रद्धा छोड कर मनमाना करें तो कितना अनर्थ होगा। ऐसी अवस्था में उन्हें यही उचित होता है कि वे अपने बडों के पास जावें और नम्र होकर अपना अज्ञान दूर करने का यत्न करें; न कि 'श्रद्धा' देवता की शरण छोड दें। 'श्रद्धा' ही बालकों अज्ञानियों, निर्बलों, असहाया अर्थात सब छोटों की एकमात्र रक्षिका देवता है। परन्तु इस देवता को पदच्युत कर अपना राज्य स्थापित करने के लिए अज्ञानादि असुर सदा जोर करते रहते हैं श्रद्धा को स्थिर रखने की इच्छावाले यज्ञ प्रिय को सदा इस से लगातार लडना पडता है। अज्ञान ऐसा भ्रमाता है कि छोटे को अपना हित अहित दिखाई देने लगता है। सन्देह आकर आज्ञा पालन नहीं करने देती। 'अभिमान' के वश हो जाता है तो कहता है कि "क्या यही सब कुछ जानता है "यह बात तो स्पष्ट हानकारक है" अभिमान का रंग और चढता है तो वह पूजा की जगह देव का तिरस्कार करने में नहीं झिझकता। काम' अर्थात् अपने विषय की तीव्र इच्छा उसे और भी कर्तव्याकर्तव्य विचार के अयोग्य बना देती है।

इस प्रकार श्रद्धा का आसन डोल जाता है। इसे स्थिर रखना ही यज्ञ कर्ता की वीरता है। जिस पुरुष की हृदयस्थली पर इस युद्ध में सदा 'श्रद्धा' देवता की ही विजय रहती है वही पुरुष यज्ञ के उत्तमांग में सम्मिलित होनेके योग्य हैं।

यज्ञके मध्यमांग में 'साम्मनस देवता है जोकि इस अंगमें सम्मिलित सब पुरुषों को अपने हृदयों में बिठलानी चाहिए। परन्तु इसकी जगह छीनने के लिए ईर्ष्या आदि असुर चारा तरह सदा चक्कर लगाते रहते हैं। इन से सावधान रहना

चाहिए। यदि 'ईर्ष्या' का हृदय राज्य में थोडासाभी स्थान मिल गया तो वह हमारी आंख ऐसी फेर देती है कि हमें अपने भाई की बढती देखकर आनन्दकी जगह दुःख होने लगता है। अब प्रेम की जगह 'द्वेष' असुर ले लेता है। जहां इन दो असुरों का प्रवेश हुआ तो 'क्रोध' महासुर की विकराल मूर्ति अपना काम दिखाने लगती है और भारत माताके दो पुत्र आपस में एक दूसरेका सिर फोडने लगते हैं क्यों कि वे हिन्दु और मुसलमान हैं। धीरे धीरे इतनी आसुरी माया छा जाती है कि वे भाई एक दूसरों को धोखा दे देकर नाश करना चाहते हैं और 'द्रोह' की फौजें आ खडी होती हैं। इस प्रकार 'यज्ञ' नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। पाठक अपने अपने संगठनों में स्वयं इस देवासुर संग्राम को अनुभव करें। यहां तो यही कहना है कि युद्ध में 'साम्मनस' देवता की ही विजय होनी चाहिए। कोई चाहे कितना यत्न करे अपने साथियों को कभी न छोडना चाहिए। अपना साथी चाहे रूखा प्रतीत हो, प्रेम न रक्खे, हानि भी पहुंचाये तो भी उससे मन मिलाए रखना चाहिए। वैयक्तिक हानि चाहे कितनी हो, पर यज्ञतन्तु को न टूटने देना चाहिए। अन्त में निश्चयसे "साम्मनस" देवकी ही विजय होगी। यदि हम विचारेंगे कि "इसकी वृद्धि में तो मुझे प्रसन्न होना चाहिए, यह मुझे कष्ट देगा तो वह भी मैं प्रेम से सह लूंगा, अन्ततः यह मेरा भाई ही है" तो इन भावना ओं द्वारा हमारे पवित्र उद्देश्य प्रेम के तेज से ईर्ष्या द्वेष आदि सब असुर भस्मीभूत हो जाएंगे और यज्ञ निर्विघ्न चलता हुआ बढता जायगा।

एवं यज्ञ के तीसरे अङ्ग के देवता का नाम "ओषधी या सोम" कहा जा सकता है। इनका अर्थ है दूसरों के कष्ट निवारण करने या दूसरों की कमी पूरी करके तृप्त करने वाला देवता। इसका तात्पर्य है हृदय में सहानुभूतिका राज्य होना। परन्तु इस राज्य के मुकाबले में विरोध का झण्डा खडा करने वाले क्रूरता आदि राक्षसभी विद्यमान है। क्रूरता राक्षसी जब आती है तो हृदय में से दयास्रोत निकलना बन्द हो जाता है। इसी लिए हिन्दु चमारोंको ऊपर से गालियां देते हैं, इसकी जगह कि उन्हें गढ्ढों का सडा पानी पीते देखकर तरस खावें। इस क्रूरता राक्षसी को और पोषण मिलता है जब कि 'अन्याय' साथ मिल जाता है, क्यों कि "अन्यायासुर" हमें देखने ही नहीं देता कि हमारे छोटे भाइयों की बुरी दशा है। देश में विरले ही पुरुष हैं जो कि अपने देश की गरीबी आदि कमियों को अनुभव करते हैं। 'मद' भी आजाय तब तो कहना ही क्या है। तब तो पडौसी घरका आर्तनादभी सुनाई नहीं देता और पैरों तले रौंदे जाते अपने भाई की चीखें निकलवाना उनका मनोविनोद होता है। ऐसे 'मद' मस्तों की भी हमारे देश में कमी नहीं है। परन्तु 'लोभासुर' के वश होने वाले तो इस देश में बहुत से भले आदमी हैं जो कि अपने छोटों को कुछ देने की जगह उन से रिश्वतें लेते हैं, बेगार लेते हैं और न जानते क्या छीना झपटा करते हैं। इस प्रकार हमारे हृदयों में से 'सोम' देवता का राज्य लगभग सब छिन जा चुका है जिसे कि हमने फिर स्थापित करना है यदि हम अपने देश के यज्ञों का समूल नाश नहीं कर देना चाहते हैं। हमें इस देवता की विशेष आराधना करनी चाहिए और अपने में करुणा, दया का पूर्णतया उदय करना चाहिए, जिससे कि क्रूरता, अन्याय, लोभ, मद आदि असुरों का सर्वथा पराजय होकर

हृदय में सहानुभूति का राज्य जम जाय। तभी यज्ञ के आधारांग की रक्षा हो सकती है।

इस प्रकार अब तक हम यह समझ गए होंगे कि यदि यज्ञ के इन तीनों अंगों में उपर्युक्त तीनों देवताओं का निर्विघ्न राज्य रखा जाय तो यज्ञ स्वयमेव ठीकठीक चलता रहेगा। परन्तु इन देवताओंका राज्य स्थिर करने का उपाय क्या है यह भी बात हमें जान लेनी चाहिए।

१९ यज्ञ का प्राण ।

यज्ञ की सब से आवश्यक वस्तु का वर्णन तो अभी रहता ही है। यज्ञ के इन बाधक असुरोंका निरन्तर हनन करने वाला अस्त्र क्या है? देवों का राज्य स्थिर रखने वाली वस्तु क्या है? अथवा यज्ञ के देवपूजादि अंगों को निरन्तर जीवित रखने वाली वस्तु क्या है? यह है आत्मबलिदान (Sacrifice) स्वार्थत्याग। यह यज्ञका प्राण है। जैसे प्राण शरीरमें सब से बडा देवता है, वैसेही यज्ञ शरीर में सब देवों का महादेव यही 'बलिदान' है। इस लिए इसके उत्क्रान्त होने से श्रद्धा आदि सब देव उत्क्रान्त हो जाते हैं और इस के स्थापित होने से स्थापित हो जाते हैं। इसे यज्ञ की आत्मा भी कह सकते हैं। यह यज्ञ का सब कुछ है। क्यों कि इस के विना यज्ञ केवल मृतवत् है, लाश है। इसी लिए कई विद्वान् यज्ञ शब्द का अर्थ ही 'बलिदान' (Sacrifice) किया करते हैं। यह बहुत हद्दतक ठीक है, क्यों कि बलिदान के बिना यज्ञ कुछ देर भी जीवित नहीं रह सकता। जैसे कि जीवित पुरुष में प्राण श्वास प्रश्वास के रूप में निरन्तर चलती रहती है और पुरुष को जीवित रखता है, एवं यज्ञ के जीवन के लिए भी यह आवश्यक है कि उस में 'बलिदान' निरन्तर चलता रहे। इसी लिए बाहर के अग्नि होत्र आदि यज्ञ में भी एक एक मंत्र पढ कर 'स्वाहा स्वाहा' करते हुए ही यज्ञ चलाना होता है। यह 'स्वाहा' ही यज्ञ की जान है (देखो स्तंभ ६)

यज्ञांगों की इतनी मीमांसा पूर्व प्रकरणों में हो जाने के बाद अब पाठक गण प्रत्येक अंग में बलिदान के प्राणत्व को स्वयं सुगमता से देख सकते हैं। (१) उत्तमांग में जब आज्ञा पालन तथा अनुसरण का व्यापार होता है। तब प्रत्येक व्यापार में कुछ न कुछ बलिदान करना होता है। उस एक आज्ञप्त इच्छा के अतिरिक्त शेष सब इच्छाओं का, शेष सब बातों का बलिदान करना होता है। प्रायः अपने सुख या आराम की इच्छा, अपने किसी विषय की इच्छा इस आज्ञप्त इच्छा के विरोध में खडी होती है और इस के खडे करने वाले होते हैं हमारे पूर्व परिचित असुर। पर यह खूब समझ लेना चाहिए कि इस आज्ञप्त इच्छा के सामने अन्य सब विरोधी इच्छायें हीन हैं, पशु हैं, विघ्न हैं, इन को तुरन्त बलि चढा देना चाहिए। यदि हम इच्छा रूप में विचार रूप में विद्यमान इन को बलि न कर देंगे तो इन के कर्म रूप में आजाने पर इन का बलिदान करना बडा कठिन हो जायगा और यज्ञ को हानि तो पहुंच ही जायगी। उदाहरणार्थ कभी "अज्ञान" और "अभिमान" के असुर यह विरोधी विचार खडा करते हैं कि "यह आज्ञा अशुद्ध है, सेनापति की इस बात से अधिक अच्छी बात तो फलानी है, क्या हम में अकल ही नहीं है..........."। परन्तु सच्चा याज्ञिक इन सब विरोधी विचारोंको श्रद्धा की अग्निमें स्वाहा कर देता है और इस आहुति द्वारा श्रद्धा की अग्नि और भी अधिक प्रचण्ड हो जाती है। कभी मन कहता है "सभा की यह बात इतनी अशुद्ध है

कि मेरे अन्तःकरण की आवाज इसे करने से रोकती है " । परन्तु पीछे ज्ञान होता है कि यह भी " अज्ञान " असुर की करतूत है और वह अपने अन्तःकरण की झूठी आवाज का भी बलिदान कर देता है। इस प्रकार यदि विचारावस्था में ही पशु भावोंका स्वाहा होता जाय तो यह स्वाभाविक तौर पर बढता जाता है। यज्ञ के प्रत्येक अङ्ग का जीवन यज्ञ कर्ताओंकी बलिदान शक्ति पर निर्भर है। वे निरन्तर बलिदान कर सकते हैं या नहीं इस बात पर निर्भर है। प्रत्येक आज्ञापालन में और अनुसरण में भिन्न भिन्न प्रकार के विरोधी विचार आते रहेंगे उनका निरन्तर स्वाहा करते रहना ही यज्ञ को जीवित रखना है। एकवार जोश में आकर बलिदान करना और बात है तथा निन्तर बलिदान करना और बात है। दूसरी अवस्था ही यज्ञ का जीवन है। पहिली अवस्था तो किसी कृत्रिम उपायों से थोडी देर के लिए श्वास चला देने के तुल्य है। हमने भी असहयोग क दिनों में बलिदान किए हैं, कइयों ने राष्ट्र की आज्ञा पाकर कराडों की आमदनी और भोगविलास का बलिदान कर दिया, हजारों ने जेलमें जाकर अपने घर के सुखोंका बलिदान कर दिया। किन्तु यदि यह सब हमारा बलिदान स्थिर नहीं है तो यह हमारे राष्ट्रयज्ञ के जीवन का चिन्ह नहीं है। हमारा राष्ट्रयज्ञ यदि जीवित है तो उस में अब (जब कि जोशका काम नहीं है) ऐसे पर्याप्त पुरुष होने चाहिए जो कि देश के लिए फकीर बन जानेके उद्यत हों, ऐसे लोग अधिक होने चाहिए। जो कि राष्ट्र आज्ञा से चर्खा कातने के लिये आलस्य का बलिदान, अपने गप्प मारने के समय का बलिदान, सीखने का कष्ट उठाने के रूप में बलिदान और नियमपूर्वक न कातने में जो सुविधा होती है उसका बलिदान करनेको उद्यत हों और ऐसे लोग तो सभी होने चाहिए जो कि विदेशी वस्त्र पाहिनने के सुख का बलिदान कर सकते हों। जीवन तो सतत बलिदान से ही चलता है, देवों की पूजा करने के प्रकरण में वेद में बहुत जगह " हविषा विधेम " यह पाठ आया करता है। इसका अर्थ यह है हम उस देवकी त्याग द्वारा पूजा करते हैं। कितना स्पष्ट है कि देव पूजा के लिए हवि की, त्याग की जरूरत है। कम से कम वेदविहित देवपूजा त्याग के विना नहीं हो सकती। यह हुई देवपूजा अंग की चर्चा। (क्रमशः)

छूत और अछूत।

या

चारों वर्णों का व्यवहार।

भाग १ ला।

विषयोपन्यास।

ॐ येन देवा न वियन्ति, नो च
विद्विषते मिथः, ॥
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे, संज्ञानं
पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥
अथर्ववेद अ. ३। ३० ॥

"जिससे विद्वान लोग विभक्त न हों और जिससे वे एक दूसरे का वैर न करें, ऐसा (पूज्य और उत्तम) ज्ञान हम तुम्हारे घरके तथा सब लोगों को देते हैं।"

१ "हे दयालु परमेश्वर! एकता को बढाने वाला और द्वेष का नाश करने वाला उत्तम ज्ञान जो तूने लोगों को दिया है, वह सारी जनता को मिले और सद्बुद्धि तथा बन्धुभाव बढे। सब लोगों के अंतःकरण में एक दूसरे के प्रति प्रेम की वृद्धि होवे, और इससे सहानुभूति बढकर लोग सार्वजनिक उन्नति कर लेने के योग्य होवें।"

२. इस मातृभूमि में, इस पूज्य भारतवर्ष में अधिक नहीं तो ढाई हजार वर्षों से भिन्न भिन्न जातियों का जन्मसिद्ध उच्चनीच भाव और इसीकी अनुगामी छूत अछूत जारी है। इतिहासका ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से मालूम होगा कि जैसे जैसे हम प्राचीन काल की ओर दृष्टिक्षेप करेंगे वैसेंही हमें इस भेद भाव की मात्रा कम दिखाई देगी। इसी प्रकार जैसे जैसे हम आधुनिक काल की ओर बढेंगे वैसे ही उसकी मात्रा बढती हुई दिखाई देगी।

३ छूत अछूत का व्यवहार और जन्मसिद्ध उच्चता और नीचता का विचार हमारे भारतवर्ष में किसी विचित्र घटना के कारण चल पडा। ऐसा विचार और किसी देश में नहीं दिखाई देता। सनातन धर्म में जो छूत अछूत का व्यवहार है वह ईसाई और इसलामी में नहीं दिखाई देता। भारत निवासी बौद्ध धर्मियों में इसका कुछ थोडा प्रचार है, पर भारतवर्ष के बाहर जिन देशों में बौद्ध धर्म जारी है उनमें इसका नाम निशान तक नहीं दिखता। बौद्ध धर्म के प्राचीन ग्रंथों से इस बात का पता नहीं चलता कि सब मानव संसार को अपने धर्म में लाने की चेष्टा करने वाले भगवान बुद्ध को यह प्रथा पसंद थी। इस पर से निश्चित रूप से कह सकते हैं कि असली बौद्ध धर्म को यह प्रथा मान्य नहीं थी। यदि हम कहें कि भारतनिवासी बौद्धधर्मियों में जो छूत अछूत का विचार है वह उनके हिंदुओं के सन्निध रहने का फल है तो अनुचित न होगा। पुराने ढंग पर चलने वाले पारसियों में धर्म कार्यों के समय छूत अछूत का कुछ विचार रहता है। परन्तु ईरान में रहने वाले पारसी इन नियमों का पालन नहीं करते। उन लोगों में छूत अछूत का व्यवहार करीब करीब बिलकुल नहीं है। भारतीय पारसियों पर जैसी हिन्दुओं के निकट रहने से उनकी रीति रस्मों का प्रभाव पडा है वैसे ही ईरान के पारसियों पर मुसलमानों की रीतिरस्मों का प्रभाव पडा है। इससे यह

जानने के लिये कोई प्रमाण नहीं पाया जाता कि पारसी लोग इस व्यवहार को शुरू से मानते थे। तिस पर भी यदि उनके धर्म ग्रन्थों का, दोनों स्थानों के पारसियों के रीतिरस्मों का और पारसी लोगों में 'कालानुसारित्व' (काल के अनुसार बर्ताव)का जो विशेष गुण है उसका विचार करें तो मालूम होगा कि उन लोगों में छूत अछूत का वैसा व्यवहार कभी भी न था जैसा कि आज हिन्दु लोगों में है। भारत को छोड कर और किसी भी देश में जैन धर्म का प्रचार नहीं है; और उनकी सामाजिक रहन सहन पर हिन्दुओं का प्रभाव पडा है। इस से उनका स्वतन्त्र रीति से विचार करने की आवश्यकता नहीं है। शिंतो, कानफ्यूशियन आदि धर्मों में छूत अछूत के विचार का अत्यन्त अभाव है। तात्पर्य यह है कि जैसे इस छूत अछूत का प्रचार दूसरे किसी देश में नहीं है वैसे ही वह दूसरे किसी धर्म में भी नहीं है। इसकी उत्पत्ति और इसकी वृद्धि हिन्दुस्थान में और खास कर हिन्दु धर्म में ही हुई है। इसी कारण से इसका सूक्ष्म विचार जैसे हिन्दु धर्म के ग्रन्थों में दिखाई देता है वैसे वह दूसरे धर्म ग्रन्थों में नहीं पाया जाता।

(४) इस प्रकार यद्यपि छूत अछूत का प्रचार सर्वत्र है और हर एक काम में वह न्यूनाधिक मात्रा में दिखाई देता है तथापि भारत के सब स्थानों में एकही नियम के अनुसार वह नहीं पाया जाता। साधारण रीति से कह सकते हैं कि ज्यों ज्यों उत्तर की ओर जाते हैं त्यों त्यों इसका प्रचार कम दिखाई देता है और ज्यों ज्यों दक्षिण की ओर जाते हैं इसका प्रचार अधिक तीव्र होता जाता है। यह बात सच है कि भारत वर्ष के सनातन धर्म का वह एक मुख्य अंग है। तो भी भिन्न भिन्न प्रान्तों में उस में भिन्नता पाई जाती है। छूत अछूत के जो नियम महाराष्ट्र में दिखाई देते हैं वे कर्नाटक और मद्रास में नहीं दिखाई देते और जो नियम इन स्थानों में जारी हैं वे बंगाल और पंजाब में नहीं हैं। किसी किसी स्थान में इसकी तीव्रता नजर आती है और किसी किसी स्थान में वह सूक्ष्म रूप में पायी जाती है। इस कारण से इसकी ऐसी व्यापक परिभाषा बनाना कि जिसमें सब प्रांतों की छूत अछूत सम्मिलित हो, कठिन काम है। दूसरे धर्म में और दूसरे देश के लोगों को यह बात बिलकुल अनोखी है। इससे इसका ऐसा लक्षण बताना कि जिससे वे लोग इसे ठीक ठीक जान लें करीब करीब असम्भव है।

५ प्रत्येक प्रान्त में छूत अछूत के विचार भिन्न भिन्न हैं और कहीं कहीं परस्पर विरुद्ध भी हैं। तथापि लोगोंको अपने प्रान्त के विचार धर्म के अनुसार और उस से भिन्न विचार धर्म के विरुद्ध जान पडते हैं। धर्म ग्रन्थों के अनुसार जो जातियां छूत हैं वे भी कई प्रान्तों में अछुत समझी जाती हैं और यदि वहां के लोगों को धर्मग्रन्थ का प्रमाण बताने की चेष्टा की जाय तो 'शास्त्राद् रूढिः बलीयसी' इस लोकोक्ति के अनुसार उस प्रमाण को मानने के लिये वे तैयार नहीं होते। इस परिस्थिति में जहां स्वेच्छासंचारी रूढि का शास्त्र-वचनों की अपेक्षा अधिक मान है वहां ऐसी परिभाषा बनाना जिसे सब लोग मान लें कठिन काम है। तब भी साधारण रीति से कहा जा सकता है कि (१) रूढि, (२) देश का आचार, (३) वृद्धों के ख्यालात और (४) ग्रन्थ का प्रमाण जिनका आदर करता है वे छूत हैं और जिनका निरादर करता है वे अछुत हैं। आज कल छूत अछूत का जो स्वरूप है उसकी ओर ध्यान देवें, तो मालूम होगा कि पहले प्रमाण की अपेक्षा दूसरा प्रमाण गौण समझा जाता है।

परंतु यदि यथार्थ प्रमाण और अप्रमाण देखा जाय तो स्मरण रखना चाहिये कि दूसरा गौण नहीं है पहलाही गौण है । विचार की सुभीता के लिये यदि छूत अछूत के चार विभाग करें तो वे इस प्रकार होंगे :-

(१) जन्म।

(२) परिस्थिति ।

(३) शुद्धता ।

(४) संस्कार ।

इन चार बातों को ध्यान में रख कर छूत अछूत का विचार समाज में किया जाता है। साधारण लोगों की समझ के अनुसार, वर्तमान स्थिति में, इन चार बातों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक गौणता आती जाती है। पर यदि युक्ति, विचार और शास्त्र के वचनों को देखा जाय तो उपर्युक्त बातों में अधिकाधिक प्रधानता माननी पड़ेगी । अब यदि इन चारों का मेल पहिले की चार बातों से करना हो तो बहुत से भेद बनेंगे ! वे कितने होंगे यह जानना अपनी अपनी कल्पना शक्ति पर निर्भर है। उनका विस्तारसे विवरण करना व्यर्थ है ।

(१) जन्म ।		(१) रूढि ।
(२) परिस्थिति।	X	(२) देशका आचार।
(३) शुद्धता ।		(३) वृद्धों के ख्यालात।
(४) संस्कार ।		(४) ग्रन्थों के प्रमाण।

६. इन मुख्य भेदों की ओर ध्यान देने से छूत अछूत का कुछ ज्ञान हो जावेगा। इसका थोडा खुलासा करने की आवश्यकता है ।

(१) कोई जाति जन्म के कारण दूसरी जाति से नीच और अछूत समझी जाती है; और कोई जाति जन्म ही से उच्च और छूत समझी जाति है । इस भेद के लिये उनकी शुद्धता, उनके संस्कार या उनकी परिस्थिति का ख्याल नहीं किया जाता, केवल उनके जन्म पर ही ध्यान दिया जाता है । जैसे-ब्राह्मण जाति जन्म से ही ऊँची समझी जाति है और चमार, डोम, चण्डाल आदि जातियां जन्मही से नीची समझी जातीं हैं । नीच जाति के लोग यदि शुद्धता और स्वच्छता से भी रहें और उनकी हालत भी अच्छी होवे तब भी केवल इसी लिये कि उनका जन्म नीच जाति में हुआ है वे नीच और स्पर्श के लिये अयोग्य समझे जाते हैं !

ब्राह्मणादि उच्च जातियां सदा के लिये स्पर्श करने योग्य समझी जाति हैं और चमार, चण्डाल आदि जातियां सदा के लिये अयोग्य समझी जातीं हैं । इन जातियों का स्पर्श उच्च जातियों से कभी भी सहा न जावेगा । इन उच्च और नीच जातियों के लोगों को छोडकर और भी कई जातियां हैं (जिन्हें मध्यम वर्ग की जातियां कह सकते हैं) जो सिर्फ कुछ बातों में स्पर्श के लिये अयोग्य समझी जातीं हैं । तेली, पन्सारी, बढई, लुहार आदि जातियां मध्यम जातियां हैं । ये लोग यदि शिक्षित हों, धनवान हों अथवा अन्य किसी कारण से उनकी अच्छी दशा हो, तो वे आपस में सम्मिलित हो सकते हैं, सभामें ब्राह्मण के साथ बराबरी से बैठ सकते हैं, या ब्राह्मण के घर विवाह में सम्मिलित होनेवाले महिमानों के साथ एक ही स्थान में बैठ सकते हैं । परन्तु चमार आदि का ऐसा हाल नहीं है । किसी भी कारण से उनकी अवस्था मध्यम जातिके लोगों की सी स्पर्श करने योग्य नहीं हो सकती । तात्पर्य यह कि जन्म परसे निश्चय किये जाने वाली जातियों के उच्च, नीच और मध्यम तीन भेद किये जा सकते हैं ।

मध्यम जाति के लोग ऊँची जाति के लोगों से किसी किसी समय पर मिलजुल सकते हैं, पर कोई कोई समय ऐसे हैं जब कि इन जातियों का भी

संबंध ऊँची जातियां बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। जैसे— भोजन के समय ब्राह्मण समाज में मध्यम जातिका मनुष्य प्रवेश तक नहीं कर सकता, पंगत में बैठ नहीं सकता, तब स्पर्श की बात तो बहुत दूर है। रसोई बनाते समय चौके में मध्यम जातिके मनुष्य का आना ही रसोई को अपवित्र बना देता है, तब उसका स्पर्श उसे अपवित्र करेगा इसमें आश्चर्य ही क्या? यह बात तो बिलकुल स्पष्ट ही है कि नीच जाति का स्पर्श किसी भी समय किसी भी ऊँची जाति के मनुष्य को बर्दाश्त न होगा। वर्तमान परिस्थिति इस प्रकार है।

(२) एक ही जाति के लोगों में से कोई कोई, परिस्थिति के कारण-खास कर ऊँची जातियों में- स्पर्श करने योग्य और कोई कोई अयोग्य माने जाते हैं। जैसे- सूतक में अर्थात् जब किसी के घर का कोई संबंधी मर गया हो तब वह मनुष्य दूसरों के लिये कुछ समय तक अस्पृश्य हो जाता है। मध्यम और नीच जातियों में भी यही नियम प्रचलित है। लाश का स्पर्श भी इसी प्रकार अशुद्ध समझा जाता है। उंची जाति की लाश उसी जाति के लोगों तक को स्पर्श करने योग्य नहीं होती। उसे छूते ही स्नान करने की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार अछूत जातियों का स्पर्श होने से स्नान करना पडता है, उसी प्रकार जिसके निकट संबंधी की मृत्यु हो गई हो उसको या मुर्दे को स्पर्श करने से स्नान करने की आवश्यकता होती है। ऊपर बतलाए हुए उदाहरणों में जाति के संबंध से आने वाली अछूत बहुत ही थोडी है, परन्तु उनमें अछूत परिस्थिति के कारण आ जाती है। एकही जाति के लोग जो थोडे ही समय पहले एक दूसरे को छू सकते थे परिस्थिति बदलने पर अछूत बन जाते हैं। अछूत का यह प्रकार परिस्थिति के कारण कुछ समय के लिये रहता है।

(३) शुद्धता के कारण भी होने वाला छूत अछूतका एक प्रकार है जो महाराष्ट्र तथा मद्रास की ओर विशेष रूपसे प्रचलित है। स्नान करने के बाद धोया हुआ वस्त्र पहिन कर उच्च जाति का मनुष्य स्वजातीय अस्नात मनुष्य को भी स्पर्श नहीं करता तब नीच जाति के मनुष्य को स्पर्श करने की बात ही क्या? इस प्रकार अशुद्ध मनुष्य को अथवा अशुद्ध वस्तु को स्पर्श करने से उसका वस्त्र अशुद्ध हो जाता है। और कई बार ऐसा भी होता है कि शुद्धता के लिये इस प्रकार के अशुद्ध मनुष्य का स्पर्श हो जाने पर पुनः स्नान कर धोया हुआ वस्त्र पहिनना पडता है और किसी किसी समय केवल वस्त्र बदलने से शुद्धता हो सकती है। इस शुद्धता के प्रकार में रेशम, ऊन, कोसा, सन इत्यादि के वस्त्र मामूली वस्त्रों से अधिक पवित्र समझे जाते हैं और वे साधारणतः अशुद्ध भी नहीं होते। परन्तु सूतके कपडे खासकर धोतियां मामूली स्पर्श से अशुद्ध हो जाती हैं। यह छूत अछूत का प्रकार शुद्धता और अशुद्धता के कारण बना है।

(४) संस्कारः— कोई खास पदार्थ किसी विशेष रीतिसे तैयार किये जांय तो वे दूसरी जाति के पास से भी स्वीकृत किये जा सकते हैं। 'कच्ची' और 'पक्की' का प्रचार जो उत्तरीय देशों में है इसी का उदाहरण है। चमार के पास से यदि कोई चमडे की बनी चीज लेनी हो तो उसके ऊपर एक तेल का बूंद डाल देने से वह शुद्ध होती है। तैल-पक्व अथवा घृतपक्व पदार्थों में छूत अछूत नहीं रहती। जिन वस्त्रों पर दर्जी द्वारा सीने का संस्कार हुआ हो वे धोने पर भी शुद्ध नहीं समझे जाते, जैसेः— कुडता, कमीज, कोट, वास्किट, पजामा आदि। परन्तु जिस कपडे की वे चीजें बनी हैं वह

कपडा यदि धोया जाय तो वह शुद्ध और पवित्र समझा जाता है। ऐसे कई रिवाज हैं जिनको जन्म, परिस्थिति अथवा शुद्धता में शामिल नहीं कर सकते वे सब संस्कार में शामिल हैं।

(५) रूढि — शुद्धता और अशुद्धता की ऐसी बहुतसी बातें हैं जिनकेलिये ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं मिलता। कई बातें ऐसी हैं जो ग्रन्थों में बतलाए हुए नियम के विरुद्ध होने पर भी समाज में दृढ रूप से रहतीं हैं। विचार शील पुरुष भी उन के सामने अपना सिर झुका देते हैं। ऐसी बातें और ऐसे रिवाज रूढि में शामिल हैं। उनके उदाहरण देखिये। नीच जातिका हिन्दू जो अछूत समझा जाता है, यदि ईसाई या मुसलमान बन जावे तो वह छूत बन जाता है। इसके लिये धर्म ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं पाया जाता और विचार से भी यह बात उचित प्रतीत नहीं होती। धर्म ग्रन्थों में 'न नीचो यवनात् परः' सरीखे वचन मिलते हैं। मामूली मनुष्य की समझ में अपना धर्म सब धर्मों से अच्छा रहता है। इन बातों के रहते हुए भी हिन्दु धर्म के अनुसार नीच जातियों के लोग, जब तक वे हिन्दु हैं, अछूत समझे जाते हैं!! धर्मके, समाज के और राजनीति के व्यवहार में विचारशील लोग भी इन नियमों का पालन आंखें बंद करके करते हैं। इस प्रकार के सब नियम रूढि से संबंध रखते हैं।

(६) देश का आचार- किसी किसी प्रान्त में नाई का स्पर्श होने पर स्नान करना पडता है, परन्तु किसी किसी प्रान्त में वही नाई घरके बिस्तर तक बिछा सकता है। इस प्रकार के भिन्न भिन्न प्रान्तोंकी छूत अछूत के व्यवहार इस भाग में शामिल हैं।

(७) वृद्धों के ख्यालात-- वृद्ध लोग कभी कभी किसी बातको धर्म के विरुद्ध बतलाते और किसी को धर्म के अनुसार बतलाते हैं। उस समय वे धर्म ग्रन्थों के प्रमाणों पर अधिक ध्यान नहीं देते। किन्तु 'हमने आज तक ऐसा नहीं देखा' 'हमारी समझ में ऐसी बात न होनी चाहिए।' इस प्रकार कहकर उस को अग्राह्य बतलाते हैं। ऐसी बातों में वृद्ध पुरुषों की अपेक्षा वृद्ध स्त्रियों का मत अधिक प्रभावशाली रहता है। इस के लिये वृद्धों की स्मरण शक्ति एक मात्र आधार है। इसके आगे उन्हें देशाचार या धर्मग्रन्थों की भी विशेष पर्वाह नहीं रहती। इस प्रकार की बातें घरेलु होने के कारण उनका विस्तार अधिक नहीं होता। वाचक अपने घर की प्रथा को देखकर इन बातों के उदाहरण पा सकते हैं।

(५)ग्रन्थों का प्रमाण- इसमें धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थ शामिल हैं। कुछ आधुनिक ग्रन्थ भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न हैं तब भी प्राचीन धर्म ग्रन्थों को सारे भारत वासी और बाहरी देशों में रहने वाले हिन्दु एकसा मानते हैं और उसके प्रमाणों का आदर करते हैं। विषय को समझने की दृष्टि से इस प्रकार के धर्म ग्रन्थों के छः विभाग हो सकते हैं। (१) वेदों की चार संहिताएं (२) ब्राम्हण ग्रन्थ, (३) स्मृति और धर्म शास्त्र (४) सूत्र ग्रन्थ, (५) पुराण और (६) आधुनिक धर्म शास्त्र के ग्रन्थ। हिन्दुओं के धर्म शास्त्र के छः विभाग ऊपर बताए हैं। इन इन विभागों के द्वारा कौन से ग्रन्थ किस काल में बने हैं इस बात का भी पता चल सकता है। लोगों के आजकल के रिवाज और आचार आखीर के चार विभागों के अनुसार चलते हैं। किसी किसी स्थान में आधुनिक धर्म शास्त्र के ग्रन्थ ही अधिक प्रमाण माने जाते हैं। परन्तु यथार्थ में आखीर के चार विभागों की अपेक्षा पहले के दो विभाग अधिक श्रेष्ठ एवं आदरणीय हैं। मनुस्मृति में भी कहा है-

या वेदबाह्याः स्मृतयः याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फला ज्ञेयाःस्तमोनिष्ठाः हि ता स्मृताः।मनु.

स्मृति ग्रन्थों के जो वचन वेद बाह्य होंगे और जो कुत्सित दृष्टि से लिखे गये होंगे वे निष्फल समझना चाहिये क्यों कि वे सब तमसे—अज्ञान के कारण लिखे जाते हैं।

इस प्रकार वेदबाह्य आज्ञाओं की व्यर्थता का स्मृतियों में भी उल्लेख है । जब स्मृति ग्रन्थों की यह दशा है तब आधुनिक ग्रन्थों क विषय में क्या कह सकते हैं ? तात्पर्य यह कि धर्म संबंधी किसी बात का विचार करते समय आधुनिक ग्रन्थों की अपेक्षा प्राचीन ग्रन्थ अधिक माननीय होने चाहियें । ऐसा रहते हुए भी छूत अछूत का विचार आधुनिक ग्रन्थों की ही सहायतासे कई बार किया जाता है ।

अब तक छूत अछूत के मुख्य मुख्य आठ बिभागों का स्वरूप बतलाया गया। उनको आपस में मिलाने से जो उपभेद बनेंगे उनकी ओर ध्यान देने की यहां आवश्यकता नहीं। मुख्य विषय से संबंध रखने वाली बातों के लिये कौनसा आधार है और वह आधार किस मात्रा तक ग्रहण करने योग्य है इसका विचार करने के लिये इन आठ विभागों का हमें बहुत उपयोग होगा।

(७) अभीतक बतलाई हुई बातों पर खूब विचार करने से और हिन्दुओं की समाज स्थिति की ओर भी ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि सब ऊंची जातियां नीची जातियों को न्यूनाधिकतासे अछूत समझती हैं अर्थात बिलकुल ही नीच जातियां को वे स्पर्श ही नहीं करतीं और कुछ ऊंची जातियों को केवल किसी खास समय स्पर्श नहीं करतीं । एकही जाति में किसी विशेष कारण से उत्पन्न होने वाली अछूतता का विचार गौण है, इसलिये उसका विवरण इस लेख में विशेष रूपसे करने की आवश्यकता नहीं है । मुख्य मुख्य प्रकारों का विचार करनेसेभी अपना कार्य सिद्ध होगा। जो जन्मसे ही अपने को शुद्ध समझते हैं वे ब्राम्हण हैं। भारत में पंचगौड और पंचद्राविड मिलकर कुल ब्राह्मण देढ करोड हैं । अंत्यज जिनको बिलकुल स्पर्श नहीं किया जाता और जिनकी छाया तक किसी प्रान्त में अछूत समझी जाती है,सारे भारत वर्ष में छः करोड हैं। ऐसे हिन्दू जिन्हें खास समय पर स्पर्श कर सकते हैं तेरह करोड हैं, इनका स्पर्श भी अशुद्धता उत्पन्न करता है परंतु उसमें एक विशेषता हैं इस अशुद्धता की तीव्रता कुछ कम रहती है । ये मध्यम जाति के लोग समाजमें मिलते जुलते हैं, ऊंची जातियों के घर जाकर भी बैठ सकते हैं पर उच्च ब्राह्मणों को उनको अपने साथ बैठालना पसंत नहीं है । इस प्रकार हिंदू समाज में पूर्ण शुद्ध लोग देढ करोड और कम अशुद्ध तथा अधिक अशुद्ध मिलकर बीस करोड हैं । इसका मतलब यही होता है कि सब लोगों की समझ में अल्प संख्यावालों की अपेक्षा शेष अजान लोग हीन हैं । यह जादती है। यह प्रथा दो हजार वर्षों से बराबर चली आ रही है । इस लिये वह श्रेष्ठ जाति और निकृष्ट जाति दोनोंके नस नस में भरी हुई है। इस धार्मिक गुलामी का लोगों के मन पर बिचित्र परिणाम हुआ है उच्च जातियों के साथ समानता के हकों की भावना तक इन नीची जातिके लोगों में से बिलकुल नष्ट हो गई है। यह बौद्धिक अवनति है और इसका कारण है धार्मिक गुलामी इसका विचार आगे चलकर करेंगे। वर्तमान समय में समाज में जो छूत अछूत का व्यवहार है उसके अनुसार लोगों के चार विभाग बन सकते हैं।

(१) शिक्षित समाज इस विभाग में विशेषतः नोकरी करने वाले लोग आते हैं तथा बडेबडे सरदार जागीरदार ओहदेदार बडे बडे व्यापारी बडे बडे अधिकारी और प्रसिद्ध विद्वान आदि इसमें शामील हैं।

(२) मध्यम समाज -- इसमें मामूली मुन्शी, दुकानदार, चित्रकारी या उसीके समान किसी कला विशेष का काम करके पेट पालने वाले अल्पशिक्षित लोग शामिल हैं ।

(३) अशिक्षित समाज — बिलकुल अनपढे और मिहनत का काम करके पेट पालनेवाले लोग इसमें शामिल हैं । माली, कुष्टा, धोबी, किसान आदि लोग इसी विभाग में आते हैं ।

(४) अस्पृश्य समाज — इसमें ढेड, चमार, नामशूद्र, परया, अंत्यज, डोम, मेहेतर, मिरासी आदि जातियां शामिल हैं । इनमें से कुछ मेहेतरों को छोड कर शेष सब हिन्दू हैं । पर दूसरे हिन्दुओं को इनका स्पर्श तक असहनीय है । तब रोटी की बात ही क्या? एक ही धर्म में रहते हुए भी इस प्रकार का व्यवहार दूसरे किसी धर्ममें नहीं पाया जा सकता ।

और भी एक समाज हो सकता है । वह जंगली लोगों का बना हुआ है । पर वे अस्पृश्य जातियों के समान समाज के बाहर नहीं समझे जाते । इस कारण और वे अपने को हिन्दुधर्मीय नहीं कहलाते इसलिये भी उनका विचार इस स्थान में अलग नहीं किया जावेगा ये लोग किसी किसी बातमें तीसरे विभाग में शामिल किये जा सकते हैं और किसी किसी बातमें चौथे विभाग में । इसलिये जो बात इन दो विभागों के लिये कही जावेगी वही उनके लिये भी होगी । उनके विषय में अलग कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । केवल स्थिति का विचार करना हो तो हिन्दु समाज चार भागों में बंट सकता है जैसा कि ऊपर बताया गया है । और संख्या का विचार करते हुए अछूत जातिका अनुपात देखा जावे तो तीन छूत हिंदू पीछे एक अछूत ऐसा हिसाब बैठता है । जिस समाज का चौथा हिस्सा इस प्रकार अछूत, हीन तथा निंदित माना जाता है उसके द्वारा सहानुभूति पर निर्भर रहने वाले कार्यों की आशा कहां तक की जा सकती है । और उस समाज को सचेत भी कैसे कह सकते हैं ?

पहले कहा जा चुका है कि इस अछूत जाति के लोगों की संख्या छः करोड है । इन छः करोड लोगोंको समाज, सभा, पाठशाला, अस्पताल आदि स्थानों में---जहां जाने का प्रत्येक हिन्दु का जन्मसिद्ध हक है— जाने की मनाई है । पहले तीन विभाग के लोग किसी किसी समय एकत्रित हो सकते हैं । मंदिर में या सभामें वे एक ही स्थानमें मिलकर बैठ सकते हैं, परन्तु चौथे विभाग के अछूत लोगों का प्रवेश उन स्थानों में नहीं हो सकता । इस बात की ओर ध्यान देने से स्पष्ट होगा कि समाज ने इनका कैसा तीव्र बहिष्कार किया है और बहिष्कार से उनकी मानसिक अवनति कितनी भयंकर हुई है !

८. यह एक दो मनुष्यों का प्रश्न नहीं है । यह छः करोड लोगों के जन्मसिद्ध समान हक का प्रश्न है । ईश्वर ने पांच कर्मेन्द्रियां और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सारी मनुष्य जाति को समानता से बांट दी है । हर एक मनुष्य के शरीर में उन्नति करने के लिये आत्मा रखा हुआ है । और हरएक स्थान में ईश्वर विद्यमान है । ब्राम्हण के शरीर में जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष हैं उसी प्रकार वे चंडाल के शरीर में भी हैं । तो इसी समाज को विशेषरूप से बहिष्कृत क्यों समझते हैं ?

भगवद्गीता में इस प्रकार कहा है:--

> विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
> शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

गीता अ. ५

" विद्वान्, ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चंडाल को पण्डित एकसी दृष्टि से देखता है । "

जीवमात्र की भलाई तथा विश्वकुटुम्बित्व दोनों में समान हक का विचार पूर्णतया सम्मिलित है । किसी खास समाज को बहिष्कृत समझने से शिक्षित समाज से उसका संबंध नहीं आता इस लिये उनके हृदय पर उच्च संस्कृति का प्रभाव बिलकुल नहीं पडता । सहवास और सहानुभूति ही उन्नति के साधन हैं । हर एक मनुष्य यदि जन्म से ही— वह अच्छे कुल का क्यों न हो— अलग रखा जावे तो उसकी उन्नति किस प्रकार हो सकेगी ? ज्ञान प्रसार के लिये एक दूसरे का मिलना जुलना ही नितान्त आवश्यक है । छः करोड हिन्दुओं को अज्ञानता में सडाने का पातक छूत हिन्दुओं के ही सिर पर है । ये हिन्दु हमारी समाज का एक अंग होते हुए भी अलग हो गये हैं । हम लोगों के बांधव रहते हुए भी वे हम लोगों से दूर हो गये हैं । हम लोगों की भलाई के कामों में वे मदद करने वाले हैं तिस पर भी उनका दूसरों से संबंध न आने के कारण परस्पर प्रेम बढता नहीं है।

अछूतों के उद्धार का यह प्रश्न सनातन धार्मियों के चौथे हिस्से का प्रश्न है तथा भारतीयों के पांचवे हिस्से का है । इतने विशाल समाज का हित या अहित इस प्रश्न के उचित जबाव पर निर्भर है और इसी लिये इस प्रश्न पर पूर्ण विचार करना नितान्त आवश्यक है।

मनके दो अंश ।

(ले० श्री. गणेश चंद्र प्रामाणिक)

"मानवी मनमें चन्द्र और विद्युत् दोनोंके अंश हैं । एक चन्द्रमाका अंश जागृतिमें कार्य करता है और वैद्युत् मन सुषुप्ति अथवा समाधिमें जागता है । यद्यपि इस विषयमें मुझे अबतक निश्चित ज्ञान नहीं है, तथापि उपनिषदोंकी और वेदमंत्रकी संगति देखनेसे उक्त बातका पता लगता है । इसके विषयमें निश्चित ज्ञानवाले पुरुष अधिक स्पष्ट लिखेंगे तो संशोधकों पर उनके बडे उपकार हो सकते हैं । "

मैं इस विषय पर कुछ प्रकाश डालनेके अभिप्रायसे स्वामि मायानन्द कृत गीताकी व्याख्या "गीतानुशीलन" के उपक्रमणिकाध्यायके सप्तम परिच्छेदसे कुछ उद्धरण आपकी सेवामें भेजता हूं ।'

"गीतानुशीलनके" इस परिच्छेदमें "भारतीय आर्य जातिमें समाज-सेवामें ज्ञानका लोप" इस विषय पर विचार करते हुए महाभारत वन पर्वके यक्ष युधिष्ठिर संवादके अन्तर्गत "जो अग्निहोत्रपरायण है वही यथार्थ में ब्राह्मण है" इस वाक्यकी समालोचना करते हुए अग्निके विषयमें इस नीचे लिखा विवरण दिया हुआ है:....

" अब हमको पुराण और वेदोंमें इस बातका अनुसन्धान करना है कि अग्निके साथ मनुष्योंको ज्ञानार्जनी वृत्तिका वह कौनसा सम्बन्ध है कि जिसके आधार पर युधिष्ठिर महाराजने " अग्निहोत्र परायण" शब्द कहा है । पुराणोंमें अग्निका परिचय इस प्रकार मिलता है—' अग्नि कश्यप (महत्) और अदितिके (आकाशके) पुत्र हैं, । यहां अग्नि तेजःतत्त्व है । क्योंकि आकाश और वायुके मेलसे तेजःतत्त्व (उष्णता और प्रकाश) की उत्पत्ति दर्शनोंमें मानी गई है । 'धर्मके औरससे वसु-भार्याके गर्भमें अग्नि उत्पन्न हुए थे । ' वसुधा पृथ्वीका नाम है । सुतरां वसु शब्द से जीव और स्थावर वस्तुओंका लक्ष होता है । धर्म वह है जिससे जीवका धारण (पालन— पोषण उन्नति) होता है । अपने पालन-पोषण की आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिये मनुष्यों में जो मानसिक चेष्टा है, उसके और स्थावर वस्तुओंके परस्पर संघर्षसे कार्यकारिणी बुद्धि उत्पन्न होती है। दृष्टान्त —भूमि जल और बीज पृथ्वीपर उपस्थित रहते हुए भी आदिम मनुष्योंको कृषि कौशलका ज्ञान न था । उसको अन्नकी आवश्यकताका ज्ञान था और उसकी पूर्ति के लिये उनमें इच्छा थी । उसकी यह इच्छा जब बलवती होकर अन्नके उपादान भूमि, जल और बीजके संग मिलकर चेष्टान्वित हुई तब दोनोंके संघर्षसे कार्यकारिणी बुद्धिका उदय हुआ, जिससे कृषि कौशलका आविष्कार हुआ । इसी प्रकार अन्य विषयों में भी समझो । उचित उपायसे जीवन यात्राके लिये तथा अपनी उन्नतिके लिये जो प्रयत्न है वह धर्म है। और यह प्रयत्न, कर्ता होनेसे रूपकमें भर्ता कहा गया और वसु याने अन्य पार्थिव वस्तु उपादान होनेके कारण रूपकमें भार्या कही गई । इन दोनोंके संघर्षसे जो कार्यकारिणी बुद्धि उत्पन्न होती गई उसको रूपकमें अग्नि इसलिये कहा कि संघर्षसे ही अग्निकी (उत्तापकी) उत्पत्ति होती है अतएव अग्नि शब्दसे मनुष्योंकी वह मानसिक वृत्ति विवक्षित है जिसकी शक्तिसे मनुष्य अपनी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिये स्थावर वस्तुओंको उपयोग में लाते हैं । मनुष्यकी वह मानसिक वृत्ति " बुद्धि " है ।

अग्निके तीन पैर, सात हाथ और दो मुख हैं । सात्त्विक, राजसिक और तामासिक बुद्धि इस प्रकार बुद्धिके तीन भेद देखे जाते हैं । जिस समय सतोगुण पर खडी होकर बुद्धि काम करती है उस समय वह सात्त्विक, रजोगुण पर खड़ी होकर काम करते समय राजासिक, और तमोगुणके समय तामसिक बुद्धि कहाती है । बुद्धि इन तीनों गुणोंमें किसी एक पर खडी होकर ही काम करती है। अतएव ये तीन गुण ही उसके तीन पैर हैं, अर्थात स्थिति स्थान हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियां और चित्त एवं अहंकार ये सात स्थान बुद्धिके कार्य करनेके और प्रकाशित होनेके साधन हैं , इस लिए कहा गया कि अग्निके सात हाथ हैं। जीवित प्राणी में मुखमण्डल (कण्ठसे ऊपरका का हिस्सा) ही प्रधान अंग है । मनुष्य में व्यक्ति इसी अंगके द्वारा अनायास पहचाने जाते हैं । अतएव 'अग्निके दो मुख हैं' इस वाक्य का अभिप्राय यह है कि अग्निके पहचान के लिये उसके दो स्वरूप हैं। श्री गीताके सप्तम अध्याय के चौथे मंत्रमें कहे हुये भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और जीव (प्राण) इन नव तत्त्वोंमें प्रथम पांच तत्त्व अचेतन हैं, दूसरे तीन चेतन प्राय हैं और शेष एक चेतन है । अचेतनकी कोटी में जो अग्नि है उसके दो विभाग हैं । एक अपनी सुक्ष्मता के कारण तेजस्तत्त्व कहाता है जिसका रूप विद्युतके प्रकाश में हम देखते हैं । दूसरा अपने स्थूलत्वके कारण आग कहाता है । अग्निका सूक्ष्मरूप तेजस्तत्त्व जब मनके साथ जीव देहमें सम्मि-

लित होता है तब वह बुद्धिरूप से प्रकाशित होता है। अतएव अग्निका अचेतन स्थूल रूप --आग, प्रकाश आदि जो ऊष्मा और आलोक देने वाले हैं, उसका एक मुख है। और उसका चेतनःप्राय सूक्ष्मरूप-जो जीव देहमें बुद्धिरूपसे प्रकाशित होता रहता है, वह उसका दूसरा मुख है। अर्थात् अचेतन "तेज" और चेतनःप्राय "बुद्धि" ये दो तत्त्व अग्निके दो मुख हैं।"

"मानवी मनमें चन्द्र और विद्युत् दोनोंके अंश हैं" कहा है, वह विद्युत् का अंश ही बुद्धि है। यह बुद्धि सुषुप्ति दशा में भी जागृत रहती है। इसी कारण मनुष्य निद्रासे जागृत होने पर उसे ज्ञान रहता है कि वह सुखसे सोता था। वह चन्द्रमा का अंश जो जागृत और स्वप्नावस्थामें कार्य करता रहता है वह जीवके अन्तःकरण में "मन" है; जिसके निद्रित होने पर ही सुषुप्ति दशा उपस्थित होती है।

अब आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि मनके साथ चन्द्रमा का कैसा सम्बन्ध है आप अथवा वैदिक धर्म के कोई पाठक समझा देवें।

शंख के समान कंठ अर्थात् गला होना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि, मनुष्यका कंठ सामनेसे देखनेपर जबडों की हड्डीसे बडा दीखना चाहिये। परंतु प्रायः लोगोंके गले छोटे होते हैं और जबडों की हड्डियोंका अंतर बडा होता है।

ऐसा होना चाहिये।
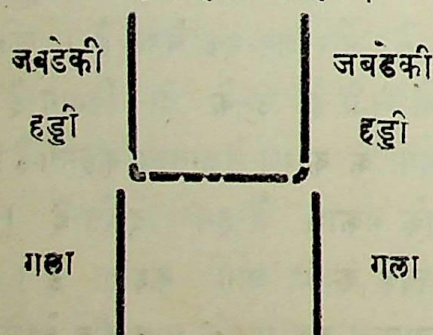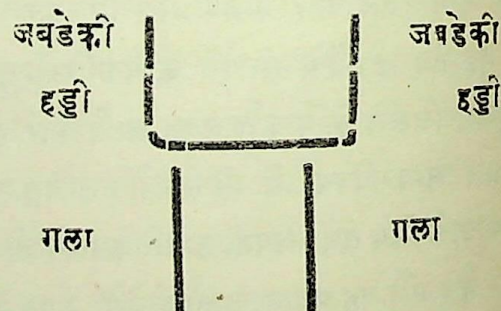
परंतु ऐसा होता है-

गला पतला होनेसे सिरका बोझ उसपर सहा नहीं जाता और थोडीसी अशक्तता आनेपर सिर कंपायमान होने लगता है। तथा वृद्धपकाल होनेपर तो बहुत ही कांपने लगता है। जो लोग "शीर्षासन" करते

हैं उनके गलेमें बहुत शक्ति आती है और इस कारण उक्तदोष से उनको बाधा नहीं होती ! तथापि इस विशेष कार्यके लिये योग साधनमें " कंठ-बंध" का अभ्यास किया जाता है । इसकी रीति निम्न प्रकार है—

(१) समसूत्र स्थिति ।

आप भूमिपर बैठें या खडे रहें, दोनों अवस्थाओं में कंठबंध किये जा सकते हैं । परंतु इस समय अपनी पीठ, कमर, गला और सिर समसूत्रमें रखिये। समसूत्र स्थितिके विना किया हुआ कंठबंध लाभदायक नहीं हो सकता ।

(२) कंठ - पुरो बंध ।

कंठके मूलमें ठोडीको लगानेसे यह बंध सिद्ध होता है । गलेको सिकोड कर ठोडी छाती और गलेकी संधिमें डाटके लगानेसे कंठ पुरोबंध होता है । गलेके मूलस्थानमें दोनों ओरकी हड्डियोंके बीचमें अंगूठा रखने योग्य नरमसा स्थान है, वहां ठोडी लगानी चाहिये । इससे पीठकी रीढके मणियोंका स्थान ठीक होता है । किंचित् काल इस बंधमें बैठनेसेही गलेके पृष्ठ भागपर खिंचाव आता है और वहांकी नस नाडियों की शुद्धि होनेका अनुभव उसी समय आता है। बहुधा लिखने, पढने, चलने आदिके समय मनुष्यका सिर आगे झुकता रहता है और इसकारण गलेके पृष्ठ-भाग में पृष्ठवंश ठीक न रहनेके कारण दोष उत्पन्न होता है । उसकी निवृत्ति इस बंधके अभ्यास से होती है । इसलिये पृष्ठवंशके दोषको ठीक करनेके कारण यह बंध आयुष्य वर्धक है ऐसा कहते हैं । किंचित काल इस बंधका अभ्यास कीजिये, और पुनः पूर्ववत सिर और गला सीधा कीजिये । इस प्रकार प्रारंभमें बार बार कीजिये । पश्चात् इस बंधमें देरतक भी बैठ सकते हैं । कुंभक के साथ इसका करना अधिक लाभदायक होता है । इससे छाती भी फैलती है ।

(३) कंठ-पृष्ठ बंध ।

पूर्वोक्त कंठबंध छोडकर मस्तक को सीधा पीठकी ओर ले जाकर, मस्तक का पृष्ठ भाग गलेके पृष्ठभागके मूलमें लगाइये। इस समय आंख नाक मुख सीधे छतके सामने आजायेंगे। पूर्वोक्त कंठपुरोबंधमें गलेका सामनेका भाग सिकुड गया था, उसी प्रकार इस बंधमें गलेका पृष्ठभाग सिकुड जाता है । और अच्छी प्रकार छाति आगे फैलती है । इसका भी फल पूर्ववत ही है ।

(४) बाहुकर्ण स्पर्शन ।

पूर्ववत् समसूत्रमें रहकर बाहुको ऊपर न करते हुए दायें बाहुको दायां कान लगाइये । किंचित काल इस अवस्थामें रहकर पश्चात बांये बाहुको बायां कान लगाइये । इसका अभ्यास वारंवार करनेसे विरुद्ध दिशा की नसनाडियोंकी शुद्धता होती है ।

(५) बाहुहनु स्पर्शन ।

पूर्ववत् समसूत्रमें रहकर गलेको घुमाकर अपनी ठोडी किसी एक बाहुको लगाइये, पश्चात् दूसरे बाहुको लगाइये । इस प्रकार वारंवार करनेसे गला शुद्ध हो जाता है और गले के नसनाडीके दोष दूर हो जाते हैं।

(६) हनु स्कंधास्थि स्पर्शन ।

बाहुओंसे दो हड्डियां गलेके मूलमें आकर मिलतीं हैं, उनका नाम स्कंधास्थि है । किसी एक हड्डीके मध्यमें हनुका स्पर्श करना और उस के पश्चात् उसकी विरुद्ध दिशा के पृष्ठभागमें सिर लेजानेसे यह बंध सिद्ध, हो जाता है । इसी प्रकार दूसरी हड्डीपर हनु लगाकर पश्चात् उसके विरुद्ध दिशामें सिरका पृष्ठभाग लेजानेसे दूसरी ओरका बंध सिद्ध होगा । इस प्रकार वारंवार करनेसे बडा लाभ होता है ।

(७) शीर्षचक्र।

समसूत्रमें खडा रहकर गलेके साथ सिरको गोल घुमाइये। जितना बडा चक्र सिरके साथ हो सकेगा, उतना कीजिये। दाईं ओर से बांईं ओर तथा उसकी विरुद्ध दिशामें ये चक्र वारंवार करनेसे बडा लाभ हो सकता है।

(८) सिंहासन।

समसूत्रमें खडा हो कर मुख खोल दें। जितना खोला जा सकता है खोल दें। जिह्वा को जितना बाहिर निकाला जा सकता है निकालें। दांतों को अच्छीप्रकार उग्र रूपमें बाहिर निकाल दें। जैसा शेर और बबरका मुख बडा भयानक होता है उस प्रकार मुख बनाइये। आंखें खोल लीजिये। गलेकी नस नाडियां अच्छीप्रकार तना कर अपना रूप उग्र बनाइये। यह सब अपने मनसे ही करना चाहिये। इस प्रकार करनेका नाम सिंहासन है। कंठ और मुखके स्नायुओंमें अच्छीप्रकार खिंचाव आता है, इस लिये यह आसन बडा उपयोगी है।

(९) आरोह और अवरोह।

समसूत्रमें अपने धड को रखिये और अपने गलेको ऊपर उठाइये। इसको आरोह कहते हैं। तथा गलेको अंदर दबाइये इसको अवरोह कहते हैं। गलेके स्नायु निर्दोष करनेके लिये इसका बहुत उपयोग होता है।

(१०) शीर्षभ्रमण।

समसूत्रमें रहकर अपने सिरको दाईं और जितना घुमासकते हैं घुमाइये, पश्चात् बाईं ओर उसी प्रकार अधिकसे अधिक घुमाइये। इस प्रकार बार बार कीजिये। यह अभ्यास बिस्तरेपर लेटते हुए भी किया जा सकता है। सिरोनेपर सिर रखकर सिर दाईं ओर घुमाकर दायां कान सिरोनेको लगाइये, पश्चात् उसकी विरुद्ध दिशामें सिर घुमाकर बायां कान सिरोनेको लगाइये। ऐसा वारंवार कीजिये। इससे गलेके स्नायु शुद्ध हो जायेंगे।

कंठको स्वर्गद्वार कहते हैं। इस स्थानकी विशुद्धि करनेके लिये पर्याप्त प्रयत्न होना आवश्यक है। कंठके निर्दोष होने से उत्तम स्वर बनता है। मस्तिष्कसे मज्जाप्रवाह अच्छी प्रकार नीचे तक शुद्ध रह सकता है, इसलिये सब शरीरके आरोग्यके साथ कंठ की शुद्धीका संबंध है।

इसके अतिरिक्त कंठबंधका एक विषेश महत्त्व यह है कि, केवल कुंभक की सिद्धि के लिये बडी देरतक कंठमूलमें ठोडी लगानी आवश्यक होती है। इस प्रकार स्थिर बैठना उस समय शक्य होता है कि जिस समय गलेके व्यायामों द्वारा गलेकी नस-नाडियां निर्मल हुई हों। इस कारण इस उद्देश्यके लिये यह कंठबंधका अभ्यास बडा सहाय्यकारी होता है।

ऊपर जो कंठबंधके दस व्यायाम बताये हैं, प्रत्येक का अभ्यास प्रारंभमें पांचवार और अभ्यास होनेपर दस या बीस वार करना अच्छा होता है। किसी विशेष कारण के लि कोई विशेष अभ्यास अधिक-वार भी किया जाय, तो कोई हानि नहीं होगी। सब अभ्यासोंको आठ दस मिनिट पर्याप्त होते हैं। आशा है कि पाठक इनका योग्य अभ्यास करके कंठकी निर्दोषता सिद्ध करेंगे।
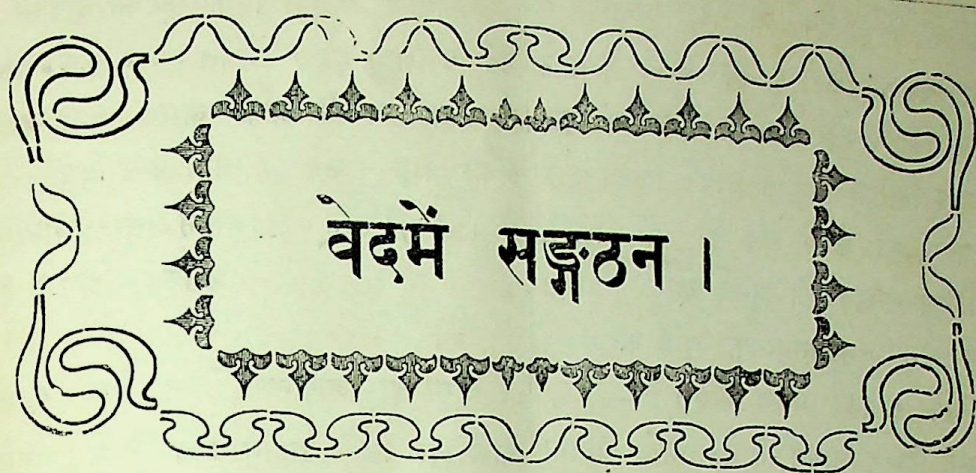
(श्री. पं० हरिहर स्वरूप शर्मा)

हिन्दुओंके सङ्गठनकी चर्चा आजकल बडे जोरों पर हैं। जैसे सङ्कटकी दशामेंसे हिन्दू जाति इस समय गुजर रही है, उसे देखते ही हिन्दुओंकी बिखरी हुई शक्तियोंका एक केन्द्रमें इकठ्ठा करना बहुत ही आवश्यक हो गया है। हिन्दुओंके इतिहासकी तरफ दृष्टि डालनेसे पता चलता है कि यह उनकी नई प्रवृत्ति नहीं है। जब जब उनके धर्म, देश और अस्तित्वपर विपत्ति आई तभी उन्होंने अपना सङ्गठन करके उसका धीरतासे सामना किया। इतिहासमें ही नहीं हिन्दुओंके परम-प्रमाण-भूत वैदिक साहित्यमें भी ऐसे अनुष्ठान मिलते हैं जिन्हें सङ्गठनके सिद्धान्तका मूल समझा जा सकता है। हिन्दुओं के इतिहासों और गाथाओंका उल्लेख न करके इस समय एक वैदिक अनुष्ठानका ही जिक्र मैं करना चाहता हूं। उससे यह पता चलेगा कि हिन्दुओंकी संगठनकी प्रवृत्ति बहुत पुरानी है और इस सिद्धांतको वे समय समयपर काममें लाते रहे हैं।

वेदमें एक अनुष्ठान मिलता है जिसे 'तानूनप्त्रम्' नाम दिया गया है। आपसमें मित्रताका बन्धन दृढ करनेके लिये उस जमानेमें इस कर्म का अनुष्ठान किया जाता था। उस समयके आर्य घी छूकर एक दूसरेकी सहायता करनेकी शपथ लेते थे। आपस्तम्ब श्रौत सूत्रमें इस अनुष्ठानकी विधि विस्तारपूर्वक मिलती है।

'तानूनप्त्रम्' अनुष्ठानका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है– जिस कर्मके अनुष्ठानसे तनु अर्थात शरीरका पतन न हो, शारीरिक दुर्बलताके कारण दूसरेसे पराभव न सहना पडे। आत्म-निर्भरता का भाव जगानेवाले अनुष्ठानका नाम है 'तानूनप्त्रम्' ऐतरेय ब्राह्मणके भाष्य में सायणाचार्य ने इस विधानका यही अर्थ माना भी है— "तनूनां पुत्रादिशरीराणां न पतनम्"। इस अनुष्ठानमें तनु शब्द स्त्री, पुत्र, धन, बल, शरीर आदि सारी सम्पत्तियोंका बोधक है।

जब धन बल आदि सम्पत्तियों की रक्षा करना देवताओं के लिए कठिन हो उठा; आपसकी ईर्षा अनैक्यसे देवताओंका समाज दुर्बल हो गया, एक दूसरे

से प्रधान बननेके लिये देवताओं में प्रतिस्पर्धाके भाव जाग उठे; एककी उन्नति दूसरेकी आंख में कांटे की तरह खटकने लगी और देवताओं के घर की फूट से लाभ उठानेके लिये उनके शत्रु अपने विजय नाद से जब दिशाओं को कंपाने लगे तब आत्मरक्षाके लिये देवताओं को संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई और इस 'तानूनप्त्रम्' अनुष्ठानकी सृष्टि की गई।

इस सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णन मिलता है—

" देवासुराः संयत्ता आसन्, ते देवा मिथो विप्रिया आसन्, तेऽन्योन्यस्मै ज्येष्ठ्यायातिष्ठमानाः पञ्चधा व्यक्रामन् — अग्निर्वसुभिः, सोमो रुद्रैः, इन्द्रो मरुद्भिः वरुण आदित्यैः बृहस्पतिर्विश्वेदेवैः । " तैत्तिरीय संहिता. ६. २. २।

"तान समदविन्दत । ते चतुर्धा व्यद्रावन् अन्योन्यस्य श्रिया आतिष्ठमाना अग्निर्वसुभिः, सोमो रुद्रैः वरुण आदित्यैः इन्द्रो मरुद्भिः बृहस्पतिर्विश्वेदेवैः । इत्युहैक आहुरेते त्वेव ते विश्वेदेवा ये ते चतुर्धा, व्यद्रवन् । " शतपथ ब्राह्मणम्, ३-४-२-१

पहले समयमें देवताओं का असुरोंके साथ जब सङ्घर्ष हुआ तो देवताओं का आपसमें ही बहुत कुछ बिगाड हो गया । वे एक दूसरेके ज्येष्ठत्व (श्रेष्ठत्व) या प्रधानताको सह न सके । आपसके वैमनस्यके कारण देवताओं का मण्डल पांच भागोंमें विभक्त हो गया और देवतागण युद्धके लिये तैयारी करने लगे। इन पांच भागोंमेंसे पहले भागके अधिनायक अग्नि और मन्त्री अष्ट वसु बने; दूसरे भागके नायक हुए सोम और मन्त्री एकादश रुद्र। तीसरे भागके अधिनायक इन्द्र और मन्त्री मरुत्; चौथेके नायक वरुण और मन्त्री द्वादश आदित्य; पांचवें भागके नायक बृहस्पति और मन्त्री विश्वे देवता बने।

देवताओं की आपसकी फूटको देखकर असुरोंको बडी प्रसन्नता हुई । उन्होंने इस मौकेको हाथ से देना न चाहा । घरकी फूटके कारण देवताओं को दुर्बल पाकर असुरोंने उन पर धावा बोल दिया ।

(१) "तान् विद्रुतान् असुररक्षसान्यनुव्ययेयुः।"
शतपथ ब्राह्मणम् ३-४-२-१

असुरोंका आक्रमण होता देख देवताओं की आंखें खुल गई । उन्होंने देखा कि वे घरमें लडाई ठान कर अपने शत्रुओंका होसला बढा रहे हैं और उनका मार्ग साफ कर रहे हैं ।

(२) "तेऽमन्यन्तासुरेभ्यो वा इदं भ्रातृव्येभ्यो रध्यामो यन्मिथो विप्रियाः स्मः ।"
तैत्तिरीय संहिता, ६-२-६-८

"उन्हें शत्रुओंसे अपने पराभवकी आशङ्का हुई और सोचा कि उनके परस्परके वैमनस्यसे असुरोंकी अभीष्ट सिद्धि होगी । उन्होंने समझा कि वे यदि आपस में लडते रहे तो वे पापी होंगे ।

(३) "ते विदुः—पापीयांसो वै भवामोऽसुररक्षसानि वैर नोऽनुव्यवागुः द्विषद्भ्यो वै रध्यामः । "
शतपथ ब्रा० ३-४-२-२

ऐसी गम्भीर परिस्थितिको देख सब देवताओं ने इकठ्ठे होकर अपनी रक्षा का यही उपाय निश्चित किया कि वे सब एक सूत्रमें ग्रथित हो जांय, एककी उन्नतिको सबकी उन्नति मानें और एकको अपना प्रधान बनाकर उसके पीछे चलें ।

(४) "हन्त, संजानामहा, एकस्य श्रियै तिष्ठामहा इति ।" शत० ब्रा० ३-४-२-२

देवताओंके सब दलोंने मिलकर निश्चय किया

कि उन सबको आपसमें एक हो जाने की प्रतिज्ञा करनी चाहिऐ। इस निश्चयके अनुसार सब देवताओं ने अपने अपने तनु (अर्थात् शरीर) के समान प्रिय स्त्री, धनपुत्र, सम्पत्ति आदिको राजा वरुणके घरमें निक्षेप रूपसे रखकर यह शपथ ली कि हममें जो कोई आपसमें द्रोह करनेमें पहल करेगा; अथवा जो इस निश्चयको तोडेगा वह अपने स्त्री पुत्रादिसे रहित होगा।"

" या न इमाः प्रियास्तनुवः ताः समवद्यामहै ताभ्यः स निकृच्छाद् यो नः प्रथमोऽन्यस्मैद्रुह्यादिति

तैत्तिरीय संहिता ।६-२-२-८-९

" हन्त या एव न इमाः प्रियतमास्तन्वस्ता अस्य वरुणस्य राज्ञो गृहे सन्निदधामहै, ताभिरेव नः स न सङ्गच्छत यो न एतदति क्रामेदिति ! "

शत० ब्रा० ३-४-१५

असुरोंके हमलेसे अपनी जान और मालके बचाने के लिये उस आपत्तिके समय आपद्धर्म समझ कर कुछ समयके लिये ही देवताओंने अपने सङ्गठनका उपक्रम नहीं किया था बल्कि उन्होंने आपसमें प्रतिज्ञा की कि जब तक वे स्वर्गमें रहेंगे उनका ऐक्य 'अजर्य'—अक्षय रूपमें रहेगा।

"ते होचुः। हन्तेदं तथा करवामहै, यथा न इदमाप्रादिवमेवाजर्यमसदिति।"　　शत० ब्रा० ३-४-१-४

" ते इन्द्रस्य श्रिया अतिष्ठन्त तस्मादाहुरिन्द्रः सर्वदेवता इन्द्रश्रेष्ठा देवा इति । "

शत० ब्रा० ३–४–२–२

इस प्रतिज्ञाके अनुसार किया हुआ उनका ऐक्य शायद अब तक चला जा रहा है। इस निश्चयके अनुसार उन्होंने अपनेमेंसे इन्द्रको श्रेष्ठत्वका अधिकार दिया और इस प्रकार विजय लाभ करनेमें समर्थ हुए। उस समयसे यह उक्ति चरितार्थ हुई—"इन्द्रश्रेष्ठा देवाः। "

मन्त्र द्रष्टा ऋषियोंने इस इतिवृत्त को कह कर आनेवाली सन्तानोंको यह उपदेश दिया है कि जो वेदाभिमानी उक्त विधिसे तानूनप्त्र अनुष्ठानको करेगा वह शत्रुओंको पराजित करके ऐश्वर्यका उपभोग करेगा। और जो इस ऐक्य सम्पादनके अनुष्ठानकी प्रतिज्ञाको तोडकर किसी भी अपने पक्षवाले के साथ द्रोह करनेमें पहल करेगा उसे दुःख भोगना पडेगा।

देवता आपसमें भेद हो जानेके कारण असुरोंसे हार गये, इस कारण स्वजनोंमें भेद उत्पन्न करना उचित नहीं। स्वजनोंमें भेद उत्पन्न करनेवाला पुरुष शत्रुओं का आनन्द बढानेवाला होता है और स्वयं उन के इशारे पर नाचता है। इसलिये आपसमें द्रोह फैलाना ठीक नहीं। जो इस रहस्यको जानकर आत्मविच्छेद नहीं करता वही शत्रुके इरादों को रोकनेवाला है, वह परपक्ष के वशमें भी नहीं जा सकता।

तस्माद् यः सतानूनप्त्रीणां प्रथमो द्रुह्यति स आर्तिमार्च्छति यत्तानूनप्त्रं समवद्यति
भ्रातृव्याभिभूत्यै भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति।

तै० स० ६-२-२-६

"तस्माद् न स्वा ऋतीयेरन् य एषां परस्तराभिव भवति स एनामनुव्यवैति, ते प्रियं द्विषनां कुर्वन्ति द्विषद्भ्यो राध्यति, तस्मान्नर्तीयेरन्

शत० ब्रा० ३-४-२-३

कैसा सुन्दर उपदेश है। कई युग बीत जाने पर भी इसकी ओजस्विता और उपयोगितामें जरा भी फर्क नहीं आया है। वैदिक ऋषियों ने तानूनप्त्र अनुष्ठानका विधान बतला कर जो अमर उपदेश आर्य सन्तानको दिया है उसे हम लोग भूल गये हैं।

इस परम-रहस्यको भुलाकर खुद देवताओं को भी जब परेशान होना पडा था तो हम मनुष्यों की कौन गिनती। 'तानूनप्त्रम्' अनुष्ठान दूसरे शब्दों में आपसके सङ्गठन या सङ्घशक्तिके भावका द्योतक है। इस अनुष्ठानके समय हवनकी आगमें घीकी आहुतियां डालनेमात्रसे इसकी पूर्णता नहीं थी, तनु (शरीर) के मिलनसे ही यह यज्ञपूर्ण नहीं होता था किंतु हृदयों के मिलनसे इस अनुष्ठानका उद्देश्य पूरा होता था। बाह्य नहीं यह आभ्यन्तर अनुष्ठान है। इस पवित्र व्रतमें दीक्षित हुए देवताओंने आपसके विरोधमें अपना विनाश समझ कर इन्द्रके नेतृत्वमें अपना सङ्गठन करके उस समय सर पर आई विपत्तिसे अपनी रक्षा की। इसी उपायके अवलम्बनसे भिन्न भिन्न जातियोंने अपने अस्तित्वको बचाया और उन्नति प्राप्त की। इस सुन्दर उपदेशको भूली हुई हिंदू जाति भी इसी मंत्रकी आराधना करके फिर से अपने विलुप्त गौरव को पा सकती है और दुनियामें गर्वके साथ अपना सर ऊंचा उठा सकती है। ऐसा करनेसे ही जातिका, धर्मका, समाजका सङ्गठन होगा; देवताओं और पितरोंके ऋणसे मुक्ति होगी; मन्दिरों और तीर्थों, बालकों और स्त्रियोंकी रक्षा होगी। यदि इस उपदेशकी अत्यन्त अवधानके साथ धारण करनेकी कभी आवश्यकता थी तो वह अब है। धर्म पर आई हुई ग्लानि और जाति पर आई हुई आपत्तिका ध्यान करते हुए ऋषियों के इस उपदेशको मनसा धारण करके कर्मणा अनुष्ठित करना हिन्दुओं का कर्तव्य होना चाहिये। पूज्यपाद ऋषियोंने अभ्युदय प्राप्ति का यही उत्तम उपाय समझा था, इसलिये अनेक उपाख्यानों द्वारा अनेक रूपोंमें उन्होंने इस तत्त्वका हमें उपदेश [किया।] मालूम होता है यह उपदेश उन्हें बहुत ही प्य[ारा था;] इसीसे ऋग्वेदके अन्तिम सूक्तमें भी यही वैदिक जगतको दिया है —

"सङ्गच्छध्वं संवदध्वं
सं वो मनांसि जानताम।
देवा भागं यथा पूर्वे
सञ्जानाना उपासते॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो
यथा वः सुसहासति"॥

ऋग्वेद १०।१[९१]

"हे स्तुति करनेवालो, प्राचीन देवता जिस ऐक्यका अवलम्बन करके अपने अंशको प[ाते थे] आप भी वैसे ही एक हो जाओ विरोधको छोड [एक] ही वचन बोलो, तुम्हारा हृदय एक हो।

"तुम्हारा मंत्र समान हो, समिति समान हो[, अन्तः]करण समान हो, विचारसे उत्पन्न हुआ ज्ञान [समान] हो, तुम्हें एक रूप करनेके लिए अभिमन्त्रण [करता] हूं तुम्हारी साधारण ही हविसे सन्तुष्ट होता हूं।

"हे ऋत्विजो और यजमानो, तुम्हारा अभ्य[वसाय] समान हो, तुम्हारे हृदय समान हों [और] तुम्हारा सुन्दर साहित्य सङ्घटित हो"

विश्वमि[त्र]

लेखक— प्रोफेसर
नन्द किशोर विद्यालंकार

पुनर्जन्म ।

भूमिका लेखक श्री १०८
स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

निश्चय जानिये आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं,
र सदा हैंगे। इसलिये यदि आपको "मृत्यु," के इस
ग नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह
नना हो कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्माकी क्या गति हो
है। पितृयान और देवयान मार्ग क्या हैं। उप-
दों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कि-
ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना
हते हैं। यदि आप जानना चाहते हैं कि किस
ार आजकल के धुरन्धर पश्चिमीय विद्वान् आपके
चीनतन वैदिक सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते जाते
। पश्चिमके घोर नास्तिक वाद तथा डार्विनके विकास
द की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं
इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपाक्षि-
ों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा!
ष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकरण को आधुनिक विज्ञानके
थ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है। इस
्थसे आपको जर्मनी में किये गये घोडों पर नवीन
ीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा। ग्रन्थ का विषय
ार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रक्खा
ा है — इस लिये ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। श्री.
स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त
अन्य विद्वान् क्या लिखते हैं देखिये.—

"ग्रन्थकर्ताने पुनर्जन्म' की सचाई को साधारण जन के आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषतः हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की।

श्रीयुत डाक्टर गङ्गानाथ झा, वाइस चान्सलर इलाहाबाद युनिवर्सिटी।

"मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें "पुनर्जन्म"
सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशद रूपसे रखनेमें ग्रन्थकर्त्ता को पूर्णतया कृतकार्यता हुई है। और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं।

(श्री. डॉ. प्रभुदत्त शास्त्री एम. ए. पी. एच. डी
प्रेसिडेन्सी कालेज- कलकत्ता युनिवर्सिटी)

ग्रन्थकर्ताकी मूल पुस्तकको मैंने देखा था और प्रशंसा की थी-मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ताने इसे प्रकाशित किया और हिंदी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो

(बा. भगवानदास, ऐम. ए. बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।) रु.

मैनेजर गोविला अॅण्ड कम्पनी ८।२ हेस्टिंग्स स्ट्रीट कलकत्ता।

गुरुकुल कांगडी से " अलंकार । "

यह मासिक पत्र गुरुकुल के स्नातकमण्डल की ओर से प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धांतालंकार के सम्पादकत्व में एक वर्ष से निकल रहा है। आर्य समाज के क्षेत्र में यह अपने ढंग का अनूठा ही पत्र है। यह पत्र गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर विश्वास रखने वालों, प्राचीन आर्य सभ्यता से प्रेम करने वालों तथा वैदिक रहस्यों की खोज करने वालों के लिये अद्वितीय है। नये ग्राहकों को अलंकार का

शताब्दी – अंक मुफ्त

मिलेगा। अलङ्कार के शताब्दी अंक ने सब पत्रों के शताब्दी अंकों को मात कर दिया है। " मतवाला " लिखता है कि अलंकार के शताब्दी अङ्क ने रिकार्ड बीट कर दिया है। इस अंकमें गुरुकुल के बहुत से चित्र दिये गये हैं। अलंकार का शताब्दी – अंक आर्य समाज के साहित्य में स्थिर रहेगा। मूल्य १२ आने से घटा कर ८ आने कर दिया गया है परंतु ' अलंकार ' के नये ग्राहकों को यह अंक मुफ्त मिलेगा।

' अलंकार ' का नया वर्ष अगले महीने से प्रारंभ होने वाला है अतः दूसरे वर्ष के शुरूसे ही ग्राहक बन जाइये। वार्षिक मूल्य तीन रुपया।

प्रबन्धकर्ता–अलंकार गुरुकुल कांगडी
(बिजनौर ।)

सुखमार्ग ।

यदि आप शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, वैज्ञानिक तथा अन्य विविध विषय विभूषित लेख पढना, बडे बडे विद्वान व शास्त्रों की गुप्तसे गुप्त शिक्षाप्रद सम्मतियां देखना और सुख से जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो इस सर्वोपयोगी मासिक पत्र के ग्राहक बनिये। वार्षिक मूल्य १॥) नमूना मुफ्त। इस में ग्राहकोंके प्रश्नोत्तर मुफ्त छपते हैं। ५ ग्राहक बनाने वालों को एक वर्ष तक मुफ्त मिलेगा।

पताः—'सुखमार्ग' कार्य्यालय
बरानदी बुढांसी
(अलीगढ)

पुरुषार्थ.

स्वधर्माची जागृति करून स्वतःच्या पुरुषार्थानें आपली उन्नति करून घेण्याचे निश्चित मार्ग दाखवणारें मासिक. या मासिका मध्यें आरोग्य वाढवणारे सुगम योगसाधनाचे मार्ग ही दाखवले जातात. याच्या योगानें हजारों माणसांनीं आपलें आरोग्य वाढवलें आहे. वार्षिक वर्गणी म. आ. नें २ रु. व व्ही. पी. नें २॥ रु. नमुन्याचा अंक मागवा.

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडळ औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक :- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)